[illegible] के अर्बुदगिरि में भरा चित्रकूट नामक बड़ा नगर है वहां
[illegible] एक धनवान् वणिया रहता था। ईश्वर की आराधना से उस
[illegible] हुआ अतः उसने उसका नाम ईश्वरवर्मा रक्खा। जब पुत्र सब विद्याओं
[illegible] पूर्ण और ज्वानी के लक्षण दीखने लगे तब एक पुत्रवाला वह सेठ बनिया
[illegible] सोचने लगा 'ब्रह्मा ने अद्भुत वेश्या की जो सृष्टि की यह उनकी बड़ी
[illegible] है, क्योंकि वेश्या यौवनान्ध धनाढ्यों के जीवन और धन दोनों का अपहरण
[illegible] लेती है। सो अब ऐसा करना चाहिए कि मैं अपने इस पुत्र को किसी
[illegible] के सुपुर्द कर दूं जिससे कि यह वेश्याओं की ठगविद्या सीख ले और
में न पड़े।" इतना सोच विचार वह अपने पुत्र को साथ ले यमजिह्वा नाम
की के घर गया वहां जाकर क्या देखता है कि मोटी ठुड्ढी, लम्बे दांत और
नासिकावाली कुटिनी अपनी पुत्री को इस प्रकार कह २ सिखा रही है—
। धन ही से सबका आदर होता है, विशेषतः रण्डी का, सो जो वेश्या प्रेम
[illegible] फंस गई सो फिर धन कैसे पा सकती है इससे वेश्या को उचित है कि अनुराग
[illegible] दे अर्थात् किसी के प्रेम में न फंसे। राग जो है सो वेश्या का तथा पश्चिम की
[illegible]ध्या का अगुआ दूत है अतएव वेश्या को चाहिये कि सुशिक्षित नटी के समान
[illegible]थ्या राग (प्रेम) बहुत जनावे। इस तरह पहिले खूब प्रेम बढ़ा मनुष्य को

सके कि यह चतुर हो जाय मैं इस कार्य्य के लिये एक सहस्र मुहर दूंगा। उ
की यह बात सुन वह कुटिनी राजी हो गयी तब रत्नवर्म्मा उसे एक सहस्र अ
र्फी दे अपने पुत्र ईश्वरवर्म्मा को उसके हाथ में सौंप अपने घर चला गया।

अब ईश्वरवर्म्मा यमजिह्वा के घर में रहके वेश्याओं की धूर्त्तता सीखने लगा,
क वर्ष में अनेक कलायें सीखकर वह अपने पिता के घर चला गया। तब उस
ी अवस्था सोलह वर्ष की हुई तब उसने पिता से बोला कि हमलोगों के धर्म
ौर काम धनही से सिद्ध होते हैं, अर्थही से मान होता है और द्रव्यही से प्रसिद्धि
ोती है। उसकी ऐसी बात सुन रत्नवर्म्मा ने कहा कि बेटा बात तो ऐसीही है,
ो उसने प्रसन्न होकर उसे पांच करोड़ रुपयों की पूंजी कर दी। ईश्वरवर्म्मा निज
ता से इतना द्रव्य पाय बनियों के साथ शुभ मुहूर्त्त में स्वर्णद्वीप जाने की इच्छा
 चल पड़ा। चलते २ उसे मार्ग में काञ्चनपुर नाम एक नगर मिला जिसके बा
र एक बगीचे में उसने डेरा डाल दिया। स्नानोत्तर भोजन कर, अतर फुलेल
गा वह युवा नगर में पैठा और एक स्थान पर जहां कि तमाशा हो रहा था
ेखने गया, वहां जाकर क्या देखता है कि सुन्दरी नाम्नी एक वारवनिता लावण्य
ूपी वायु से उछलती रूपसागर की लहर की भांति नाच रही है। देखते ही इ
सका मन उसपर लट्टू हो गया, इस अवसर पर मानो उस कुटिनी की शिक्षा क्रोध
े दूर जा बैठी। जब नाच (समाप्त) हो चुका तो इसने उसके पास अपने एक
मित्र को भेज सार घाट की बात चलाई जिसे सुन उसने बड़ी नम्रता से अहो-
भाग्य कह उसकी बात स्वीकार कर ली। सो ईश्वरवर्म्मा अपने डेरे में द्रव्य की
रक्षा के निमित्त चतुर रखवालों को नियुक्त कर उस सुन्दरी के घर गया, इतने में
सुन्दरी की माता मकरकटी ने उसके पास आकर बड़ा आदर सत्कार किया। जब
रात्रि हुई तो मकरकटी ईश्वरवर्म्मा को एक कमरे में ले गई जहां रत्नजटित चँ
दवा तना था और एक पलङ्ग भी बिछा था। वहां विविध नृत्य देखने के उपरान्त
कामकला में अति विदग्ध उस सुन्दरी के साथ उसने आनन्द किया। अब तो सुन्दरी
उसके पास से तनिक भी न हटती उसने ऐसा गाढ़ा प्रेम दिखाया कि दूसरे दिन
भी ईश्वरवर्म्मा उसके घर से न निकल सका। इन दो दिनों में उस युवा बनिये ने
पचीस लाख का धन भोग और दान में विचित्र सुन्दरी को दे दिया। परन्तु सुन्दरी ने

चोचला कर उससे कहा कि हे प्रिय ! मैंने बहुत धन कमाया है किन्तु तुम्हारे
मान प्रेमी मुझे कोई न मिला, सो जब तुम्हीं मुझे मिल गये तो अब मैं धन ले
क्या करूँगी। इस प्रकार जब झूठी माया दिखा सुन्दरी वह द्रव्य नहीं लिया च
हती थी कि इतने में उसकी माता ने जिसकी वह एकही सन्तति थी उससे क
"बेटी हमारा जो कुछ धन है सो अब इनका हो चुका सो उसी में मिलाके तू
देना, ले न ले इसमें हानिही क्या है। माता की ऐसी बात सुन सुन्दरी ने अ
च्छापूर्वक वह धन ले लिया और मूर्ख ईश्वरवर्म्मा समझता था कि सचमुच
मेरे प्रेम में दीवानी हो गयी है। इस प्रकार उसके रूप, नाच और गाने से
बनिये का मन मोहित हो गया था सो वह दो मास वहीं डटा रहा, इस अव
में उसने सुन्दरी को धीरे २ करके दो करोड़ रुपये दे दिये।

एक दिन उसका मित्र अर्थदत्त आपही उसके पास जाके एकान्त में उ
कहने लगा कि हे मित्र ! बड़ा परिश्रम कर तुमने कुटिनी से जो विद्या सीखी
सो क्या अवसर पड़ने पर जाती रही जैसे कि कातर की अस्त्रविद्या ?। वेश्या के
को जो तुम सद्भाव समझ रहे हो तो क्या कभी वह सत्य हो सकता है ? मरुभू
में भी क्या कभी जल पाया जाता है ? सो जबलों तुम्हारा धन यहीं खप न ज
इसके पूर्व आओ चले चलें, यह समझ रखो कि तुम्हारे पिता के कान तक
बात पहुँच जायगी तो बड़ा उपद्रव होगा वह कभी क्षमा न करेंगे, बड़े क्रुद्ध हों
मित्र की ऐसी बात सुन वह वणिक्पुत्र कहने लगा "मित्र ! बात तो तुम ठी
कहते हो कि वेश्याओं का विश्वास न करना चाहिए किन्तु सुन्दरी ऐसी नहीं
है सखे ! एक क्षण भी सुन्दरी मुझे बिना देखे नहीं जी सकती: सो यदि स
चलना ही निश्चय है तो जाकर इसे समझाओ।" उसकी ऐसी बात सुन अर्थद
ने उसी के सामने तथा सुन्दरी की माता मकरकटी के समक्ष सुन्दरी से कहा
इसमें कोई सन्देह नहीं कि ईश्वरवर्मा पर तुम्हारी बड़ी प्रीति है परन्तु अब
स्वर्णद्वीप में व्यापार करने के लिये अवश्य जाना है। सुनो सखि ! वहां से बहुत
कमा कर आवेंगे तब फिर जीवन भर तुम्हारे साथ सुख से रहेंगे, इससे कहता
कि यह बात मान लो। अर्थदत्त का ऐसा कहना सुन सुन्दरी की आंखें डबड
आईं वह ईश्वरवर्मा का मुख निरखने लगी, पश्चात् बड़ा विषाद कर इसने द

से कहा "आप लोग स्वयं जानते हैं, मैं क्या कहूं, भला बिना परिणाम देखे कौन किसका विश्वास करता है, मेरे भाग्य में जो लिखा होगा सो होवेहीगा।" यह सुन उसकी माता ने उससे कहा कि बेटी शोक मत कर, धीरज रख, यह तेरा प्रणयी धन कमाकर अवश्य तेरे पास आवेगा, यह कभी तुझे न छोड़ेगा। इस प्रकार माता ने उसे समझा बुझाके धीरज दिया पीछे उसने सलाह करके उन बनियों के जाने के मार्ग में जो कूआं पड़ता था उसमें जाल डलवा दिया। अब ईश्वरवर्म्मा का चित्त झूले के समान असमंजस में पड़ गया बिचारा विरह के शोकसागर में गोते खाने लगा, उस दिन सुन्दरी ने भी बहुत कहने सुनने से थोड़ा सा भोजन किया मानो शोक के मारे उसे कुछ सुहाता ही न था। गाने बजाने तथा नाचने में उसका मन नहीं लगता था, ईश्वरवर्म्मा ने बहुतेरी प्रेम भरी बातों से उसे समझाया बुझाया परन्तु किसी प्रकार उसे चैन न होता था।

अब मित्र के ठहराये दिन ईश्वरवर्म्मा सुन्दरी के घर से विदा हुआ, प्रस्थान समय में कुटिनी ने मङ्गलाचार किया। सुन्दरी भी अपनी माता के साथ रोती हुई उसके पीछे २ नगर के बाहर उस कूएँ तक गई जिसके भीतर पहिलेही जाल बांध दिया गया था। ज्योंही वह सुन्दरी को लौटाकर आगे बढ़ा त्योंही वह उस जाल पड़े कूएँ में धड़ाम से कूद पड़ी। "हा स्वामिनि! हा पुत्रि!" इस प्रकार नौकरानियों और सेवकों का तथा उसकी माता का हाहाकार सुनाई पड़ा इससे अपने मित्र के साथ वह वणिक्पुत्र लौट आया और जब उसे विदित हुआ कि उसकी प्यारी कूएँ में गिर पड़ी है तब तो वह शोक से बड़ाही व्याकुल हुआ। इतने में विलख २ रोती हुई मकरकटी ने अपने उन नौकरों को जिन्हें कि पहिले से सिखा पढ़ा रक्खा था उस कूएं में उतारा, रस्सी पकड़कर वे नीचे उतर गये और बोले "अरे जीती है, जीती है"; इतना कह वे सुन्दरी को ऊपर निकाल ले आये। ऊपर निकलने पर सुन्दरी मुर्दे के समान अचेत पड़ी रही पर जब उसे विदित हुआ कि बनिये का बेटा लौट आया है तो धीरे २ सिसुकने लगी। अब ईश्वरवर्म्मा अपनी प्रिया को समझा बुझाके प्रसन्न हो अपने अनुचरों के साथ उसके घर लौट गया। उसको निश्चय हो गया कि सुन्दरी का प्रेम निष्कपट [illegible] सि से अपना जन्म सफल मान, उसने पुनः यात्रा से मुंह मो

खों में देख लिया न, पांच करोड़ टेके भी तुमने गवाँ दिया पाई, भला ऐसा न सुहि का सागर होगा जो वेश्यायों और वालू में तेल * पाने की इच्छा गा ? अथवा तुम्हारा क्या दोष कहा जाय सांसारिक पदार्थों का गुण ही ऐसा । मनुष्य तभी तक विद्वान्, धीर और शुभकर्मों का भागी रह सकता है जबतों रमणी के जाल में नहीं फँसता। अच्छा जो हुआ सो हुआ अब चलकर अपने ता का क्रोध शान्त कराओ । इस प्रकार समझा बुझाके अर्थदत्त ईश्वरवर्मा उसके पिता के पास लौटा ले गया। पिता बिचारा क्या करे, पुत्र का स्नेह तो र गाढ़ होता है तिसपर जिसके एकही पुत्र हो उसका क्या पूछना, सो वही रत्नवर्मा की थी, यह उसका एकमात्र पुत्र था सो यह स्नेह के मारे कुछ डांट टे तो कर सका ही नहीं, उलटे सान्त्वना देनी पड़ी अतः समझाकर पुनः उसे यजिह्वा नाम्नी कुटिनी के पास ले गया। उसके पूछने पर उसने आदि से लेकर दरी के कुएँ में गिरने और अन्त में धन नष्ट होने पर्यन्त की सारी कथा यथा- त से आद्योपान्त कह सुनवाई। यह सुन यमजिह्वा बोली "बस इसमें मेरा ही पराध है क्योंकि सब कुछ तो सिखाया पर भूल के यह माया इसे न सिखा की। अब मैं समझ गयी, उस कुएँ में मकरकटी ने पहिले ही से जाल लगवा या था इसीसे सुन्दरी उसमें कूद के भी न मरी, अच्छा कुछ चिन्ता नहीं इसका पाय भी मेरे हाथ में है।" इतना कह उस कुटिनी ने अपनी दासियों को बुलाया र कहा कि जरा आल नामक मेरे बन्दर को तो यहां लाना । उन सभों के मक्षही उसने उस बन्दर के साम्हने अपनी हजार अशर्फियां रख दीं और कहा क इन्हें निगल जा, वानर तो खूब सिखाया पढ़ाया था वह झट उन अशर्फियों ो निगल गया। तब यमजिह्वा बोली "पुत्र बीस इसे दे दो, इसे पचीस देश्रो, सको साठ दे दो और एक सौ इसको भी।" इस प्रकार जिस जिसको यमजिह्वा जितनी २ बतलाती थी वह कपि उन निगली हुई अशर्फियों में से उतनीही उतनी उगिलकर उसको देता गया। यों उस २ आल मर्कट का तमाशा दिखाय यम- जिह्वा ने ईश्वरवर्मा से कहा कि बस इस वानर को तुम लेके फिर एक बार सु- न्दरी के घर जाओ, पहिलेही से चुपके इसे प्रति दिन अशर्फियां निगलवा देना,

* वेश्याधन में प्रेम, बालू के धन में तेल।

पीछे मे भिन्न २ प्रकार के व्यय के लिये इसमे मांगना। जब चिन्तामणि के तुल्य इस मर्कट को सुन्दरी देखेगी तो अपना सर्वस्व देकर वह तुमसे अकेले इस बन्दर को मांग लेगी। सो जब तुम उसका सम्पूर्ण धन ले चुकना तो इस को इतनी मुहरें निगलवा देना जितनी दो दिन के लिये उपयुक्त हों और तुम चटपट वहां से कहीं दूर निकल जाना। इतना कह यमजिह्वा ने ईश्वरवर्म्मा को वह बानर दे दिया, पिता ने फिर दो करोड़ की पूंजी पुत्र को दी।

अब यह सब लेके ईश्वरवर्म्मा ने फिर कांचनपुर को यात्रा की। एक दूत तो पहिलेही शुभसम्वाद देने के लिये भेज दिया गया था अब वणिकपुत्र भी सुन्दरी के घर आ पहुंचा। उसके पहुंचते ही सुन्दरी ने बड़े आव भाव से उसका स्वागत किया, उसके सब साथियों का भी बड़ा सत्कार किया पश्चात् वह ईश्वरवर्म्मा के गले में लपट कर मिली मानो अपनी अभिलाषा की पूर्णता के प्रतिरूप से लपटी हो, अब अनेक प्रकार के गुलछर्रे फिर उड़ने लगे। जब ईश्वरवर्मा ने देखा कि सुन्दरी को पूर्ण विश्वास हो गया कि मैं वैसा ही लट्टू हूं तो उसने अवसर पाय खर्च की कमी दिखाय अर्थदत्त से कहा कि जाओ उस आल (बानर) को तो लाओ। "बहुत अच्छा" कह वह चला गया और उस मर्कट को ले आया। वह बन्दर तो पहिलेही एक सहस्र दीनार लील चुका था आतेही ईश्वरवर्म्मा उससे कहने लगा "बेटा आल! देखो तो आज हमलोगों के खान पान के लिये तीन सौ अशर्फियां, ताम्बूल इत्यादि के लिये भी एक सौ देओ, एक सौ मां मकर कटी को देओ तथा एक सौ ब्राह्मणों को बांट दो और एक हजार में जो बचे सो मेरी प्यारी इस सुन्दरी को दे दो। ईश्वरवर्म्मा के कथनानुसार उस बानर ने क्रमानुसार सब अशर्फियां उगिल २ दे दीं। इस प्रकार एक पखवारे तक प्रतिदिन ईश्वरवर्म्मा उस आल से खर्च के लिये अश-

हँसकर उसने कहा कि वही तो मेरे पिता का सर्वस्व (धन) है सो तो नहीं
या जा सकता। उसकी ऐसी बात सुन सुन्दरी ने फिर कहा "अच्छा पांच क-
ड़ ले लीजिये और इसे दे दीजिये।" यह सुन ईश्वरवर्मा ने निश्चित रूप से कह
या कि यह क्या कहती हो, तुम अपना सर्वस्व दे दो अथवा यह काञ्चनपुर ही
ं न दे दो तौभी यह नहीं दिया जा सकता और पांच करोड़ की बातही क्या
। यह सुन सुन्दरी ने उत्तर दिया कि अच्छा मेरा सर्वस्वही ले लीजिये और इस
दर को दे दीजिये नहीं तो मेरी माता मुझ पर बहुत क्रोध करेंगी, इतना कह
दरी ने उसके चरण पकड़ लिये। यह देख अर्थदत्त इत्यादि बोले "अच्छा भाई
देओ जो होगा सो देखा जायगा, तब ईश्वरवर्मा ने देने की प्रतिज्ञा की और
ह दिवस हंसी खुशी से सुन्दरी के साथ बिताया। दूसरे दिन जब सुन्दरी ने बड़ी
रीरी से मांगा तब ईश्वरवर्मा ने उस मर्कट को दे दिया जिसे कि गुप्त रीति से
सहस्र दीनार निगलवाये गये थे और उसके मूल्य में सुन्दरी का जो कुछ रहा
ी सब ले लिया। सब कुछ लेने के उपरान्त झटपट वे सब स्वर्णद्वीप में वाणिज्य
रने चले गये।

अब तो सुन्दरी के आनन्द का ठिकाना न रहा उसने मानो सारी दुनिया का
न पा लिया, दो दिन तक तो वह आल नामक वानर मांगने पर सहस्र सहस्र
दीनार देता रहा पर तीसरे दिन क्या दे, सुन्दरी बड़ी प्रीति से पुचकार २ मांगती
थी पर वह दे कहां से? तब तो क्रोध में आकर वह उसे घूंसे मारने लगी इतने
में वह वानर भी कुपित हो उछला और दांतों और नखों से सुन्दरी और उसकी
मां के मुंह नोचने और बकोटने लगा, वे दोनों पीटतीं और यह उनको नोचता
खरोंचता। तब उसकी माता ने, जिसका कि मुंह लहूलोहान हो गया था, ला-
ठियों से ऐसा पीटा कि वह आल मर्कट वहीं कण्डा हो गया। उधर सर्वस्व नष्ट
हो गया इधर वह वानर भी मर गया यह देख सुन्दरी और उसकी माता शोक
से मरने पर उतारू हो गयीं। धीरे २ यह बात नगर में फैल गई तब सब लोग
हँस २ कहने लगे कि जिस प्रकार मकरकटी ने जाल डाल उसका धन हर लिया
था वैसेही उस चतुर ने भी आल का जाल करके इसका सर्वस्व अपहरण कर
लिया। इसने दूसरे के लिये तो जाल फैलाया पर अपने आल को न पहिचाना।

अच्छा जिद्द तो दे दो किन्तु अब तो कुछ उपाय नहीं, सो सकल समर्पण करके आप अब कुमुदिका के साथ सुख में रहने लगे । उसके द्रव्यों का उपयोग करते और याचकों को उनसे द्रव्य दान करते किन्तु वह तनिक भी विकार न दिखाती प्रत्युत अधिक सन्तुष्ट होती । राजा इसी में बड़े फूले रहते कि इसका मेरे ऊपर बड़ा अनुराग है । एक दिन सुख साथ रहनेवाले धनलगुप्त नामक मन्त्री ने एकान्त में उनसे कहा 'देव ! वेश्याओं में सद्भाव तो कभी होताही नहीं, और कुमुदिका जो आपसे ऐसा प्रेम जना रही है तो न जानें इसमें क्या कारण है।" यह सुन राजा बोले 'ऐसा मत कहिये कुमुदिका मेरे लिये अपने प्राण भी दे देगी, यदि आपको विश्वास न हो तो मैं इसका प्रमाण दिखा देता हूं।" इतनी में इतना कह राजा ने एक बहाना ठान लिया आप थोड़ा सा कुछ भोजन करते थोड़ाही पीते, इस प्रकार अन्न जल त्यागने से धीरे २ उनका शरीर दुर्बल हो गया, अब एक दिन ऐसा दिखाया कि मानो मर गये, हाथ पैर सब लकड़िया गये। तब [illegible]कर वहीं पर उस राजा को श्मशान में ले गये और साथ में रोता और विलपता [illegible]ह धनलगुप्त मन्त्री भी गया । शोक के मारे कुमुदिका भी सती होने चली, [illegible]गों ने बहुत कुछ समझाया बुझाया, वह नहीं मानी, झट श्मशान पर पहुँच [illegible]जा के साथ चिता पर आरूढ़ हो गयी । इसके पहिले कि आग लगाई जावे, [illegible]ह जानकर कि कुमुदिका ने यहां तक मेरा साथ दिया राजा जम्हाकर उठ बैठे। [illegible]ब लोग यह देख कहने लगे कि बड़े भाग्य की बात है कि हमारे महाराज जी [illegible]ठे, इतना कह आनन्दपूर्वक वे उन्हें कुमुदिका के साथ घर ले गये,-वहां राजा के [illegible]ी जागने से बड़ा भारी उत्सव मनाया गया।

जब राजा चंगे होकर भली भांति स्वस्थ हो गये तो एक दिन एकान्त में उन्होंने अपने मन्त्री से कहा कि अब तो आपने देखा न कि कुमुदिका का मेरे ऊपर कैसा अनुराग है ? यह सुन मन्त्री ने उत्तर दिया कि महाराज मैं तो अब भी विश्वास नहीं करता, आप समझ रक्खें इसमें अवश्य कुछ कारण है, अब इसका पता लगाना चाहिये, आइये हम (लोग) अपने को प्रगट कर देवें जिससे यह अपनी सेना हमारे हवाले करे तब अपने मित्रों से भी सैन्य ले हमलोग शत्रुओं पर [illegible] उन्हें युद्ध में नष्ट कर डालें। मन्त्री इस प्रकार कहही रहा था कि वह

उतार कर देने से वह अन्तर्हित हो गये. वहां से कोटर को बुला लाये औषध
से बहुत सा धन देकर उन्होंने उसे कुमुदिका से मिला दिया जिससे आनन्द के
मारे वह फूली न समाई. अब अपने प्रणयी को पाय वह सुखित हुई । इसके
उपरान्त राजा विक्रमसिंह अपने नगर में आये अब वह अपने मन्त्री की एक बात
भी न टालते और क्रमानुसार समस्त पृथ्वी का राज्य करने लगे। देखिये वेश्याओं
का हृदय कैसा चंचल अगाध और अजेय होता है कि कुछ पताही नहीं चलता।

इतनी कथा सुनाय गोमुख जब चुप हो गया तब नरवाहनदत्त के आगे तप
न्तक इस प्रकार कहने लगा 'देव। स्त्रियों का तो कभी विश्वास ही न करना,
चाहे विवाहिता हो या क्वांरी उनका विश्वास नहीं वे ऐसी चञ्चल होती है जैसी
चपला, फिर वेश्याओं को क्या कहिये उनका तो विश्वास किसी अंश में नहीं हो
सकता। और यहां की बात कहूं इसी नगर में जो आश्चर्य देखा है उसका वर्णन
आपसे करता हूं।

इस नगर में बलधर्मा नामक एक बनिया रहता था उसकी स्त्री चन्द्रश्री नाम्नी
थी। एक समय वह अपनी खिड़की में बैठी थी कि उसकी दृष्टि शीलहर नामक
एक सुन्दर वणिक्पुत्र पर पड़ी, देखते ही वह मदनवाण से विद्ध हो गयी। तब अ-
पनी सखीद्वारा उसे उसी के घर बुलवाय गुप्तरूप से उसके साथ रमण करने लगी।
अब तो यह नित्य का काम हो गया प्रतिदिन वह उसे अपनी सखी के यहां
बुलाती और अपनी मदनाग्नि बुझाती। पातक तो पाप का नाम ही है वह कहां
छिपे, धीरे धीरे उसके सब भाई बन्धु जान गये कि यह फसाने से फँसी है परन्तु
एक बलधर्मा उसका पतिही उसे पतिव्रता समझता था ठीक है सौंप लोग अ-
पनी भार्याओं का दुःशील नहीं देखते।

कुछ दिनों के उपरान्त बलवर्म्मा को दाहज्वर ने पकड़ा,. धीरे २ वह बनियां
मृत्यु चला, निजपति की ऐसी अवस्था में भी उस दुष्टा ने अपना दुष्कर्म न छोड़ा,
उसी प्रकार प्रतिदिन सखी के घर बुला वह उपपति के संग प्रसंग किया करती।
एक दिन की बात है कि उधर तो वह जार के साथ रात्रि में रमण करती थी
कि इधर उसका पति मर गया, सवेरे जब उसे उसके पति के मर जाने का हाल
लगा तब अपने प्यारे से छुट्टी ले चली गई। लगी शोक कर विलाप करने, अन्त

गुप्तरूप से भेजा हुआ चार (दूत) वहां आ विराजा और पूछने पर कहने लगा "महाराज शत्रुओं ने सम्पूर्ण देश को तहस नहस कर डाला, जब देवी शशिलेखा ने लोगों से मिथ्याही यह सुना कि आप मर गये तब वह अग्नि में प्रवेश कर गई।" दूत के मुख से इतनी बात सुनतेही राजा पर शोकरूपी वज्र गिर पड़ा, "हा देवि, हा सखि" कह २ वह अति विलाप करने लगे।

निदान कुमुदिका को भी सब बातें विदित हो गईं तब वह राजा विक्रमसिंह के समीप आकर, उन्हें समझा बुझाकर शान्ति दे कहने लगी कि महाराज पहिले ही आपने मुझसे क्यों नहीं कहा, फिर अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है मेरे सर्वस्व धन और सैन्य से आप अपने शत्रुओं का संहार करें उन दुष्टों को दण्ड देवें। इस प्रकार उसके कहने पर राजा ने उसके धन से एक बड़ी सेना खड़ी की, सब तयारी कर वह अपने मित्र एक बलवान् राजा के पास गये। उनकी सेना तथा अपनी सेना के साथ उन्होंने उन पांचो शत्रुओं पर चढ़ाई की, उन्हें मार उनके राज्य भी अपने अधीन कर लिये। तब अति प्रसन्न हो राजा ने पास में बैठी कुमुदिका से कहा 'प्रिये! मैं तुमपर बड़ा प्रसन्न हूं कहो तुम क्या चाहती हो, जो कहो सो करूं।" कुमुदिका ने उत्तर दिया कि प्रभो! यदि सचमुच आप मुझसे प्रसन्न हैं तो मेरे हृदय में बहुत दिनों का जो शल्य चुभा है उसे आप निकाल देवें। उज्जयिनी में श्रीधर नामक एक ब्राह्मणपुत्र मेरा प्यारा रहता है उसे राजा थोड़ेही अपराध में कैद कर दिया है सो आप उसे छोड़ा देवें। सुनिये, जब मैंने आपको देखा तब आपके उत्तम राजलक्षणों ही से पहिचान लिया कि यह कोई महापुरुष हैं इनसे मेरे कार्य्य की सिद्धि होगी, यही समझ, हे देव! मैंने आपकी सेवा की। जब मैंने देखा कि मेरा अभीष्ट सिद्ध नहीं हो सकता तब हो

मन जहां दूसरे से लगा कि यह नागिन सी भयङ्कर हो जाती है, फिर चोट किये बिना नहीं रहतीं, यह पति के प्राण लेही लेती है।

हरिशिख के इस प्रकार कहने पर गोमुख फिर कहने लगा "महाराज! और दूसरे की कौन चलावे, स्वयं वत्सेश्वर के सेवक वज्रसार की क्या दशा हुई है, उसकी बात सुनिये मैं सुनाता हूं, देखिये कैसी हँसी की यह कथा है।

उस सुन्दर शूर वज्रसार की पत्नी मलयदेश की जन्मी एक सुरूपा स्त्री थी जिसे वह अपने शरीर से अधिक प्यार करता था। एक समय उसका श्वशुर अपने पुत्र के साथ अपनी कन्या को बुलाने आया उसमें इसे भी नेवता दिया सो वज्रसार राजा से छुट्टी ले अपनी स्त्री के साथ मालवदेश को गया। एक महीना वह श्वशुर के घर में रह के यहां अपनी नौकरी पर चला आया और उसकी स्त्री वहीं रह गई। कुछ दिनों के उपरान्त वज्रसार का एक मित्र क्रोधन नामक अकस्मात् उसके पास आकर कहने लगा कि मित्र! यह तुमने क्या किया कि अपनी स्त्री को नैहर में छोड़कर अपना कुल दूषित किया, उस पापिन ने वहां परपुरुष से प्रीति कर ली है। यह बात मेरे एक परम मित्र ने आज आकर कही है सो मित्र इसे झूठ न मानना, बस अब उस दुष्टा को दण्ड दे अपना दूसरा व्याह कर लो। इतना कह जब क्रोधन चला गया तब वज्रसार क्षण भर चिन्तित हो बैठा रहा पीछे विचार करने लगा कि बात तो सच जान पड़ती है क्योंकि जब बुलावा भेजा था तो वह आई क्यों नहीं सो अब स्वयं जाकर उसे लिवा लाऊँ देखूं तो बात क्या है।

इस प्रकार सोच विचार कर वह मालव को गया और सास ससुर से विदा कराय अपनी पत्नी को ले चला। कुछ दूर निकल जाने के उपरान्त किसी छल से साथियों का संग छोड़ मार्ग भूल अपनी भार्य्या सहित वह गहन वन में पैठा। जब बीच जंगल में पहुंचा तो एक स्थान में बैठकर, जहां कोई सुन न सके, उससे पूछने लगा कि सच सच बता, मैंने अपने एक विश्वस्त मित्र से सुना है कि तू किसी दूसरे पुरुष के प्रेम में फंस गयी है, मैंने घर से बुलावा भेजा था तब भी तू नहीं आई सो अब सच सच बता बात क्या है? जो न बतावेगी तो मारते २ खाल उतार लूंगा। उसकी ऐसी बात सुन वह बोली "तो मुझसे पूछते क्या हो, जो तुम्हें रुचे सो करो।" इस प्रकार उसका कठिनता से बोलना सुन वज्रसार को अ

ती सती होने चली ; भाई बन्धु तो उसका चरित्र जानते थे, इसलिये वे समझाने लगे कि सती होकर क्या करोगी, परन्तु वह अपने निश्चय से न हटी जलतीजलती चिता पर आरोहण कर अपने पति के साथ जल गई। इतनी कथा सुनाय तब तक कहने लगा कि महाराज! स्त्रियों के चित्त की गति ऐसी गहन होती है कि उसका थाह पाना दुस्साध्य है, देखिये न, यहें तो परपुरुष का प्रसंग और पति के विना मर जावें। जब तपन्तक की कथा समाप्त हो गई तब अपनी पारी से हरिशिख कहने लगा कि देव ! देवदास का जो ऐसाही वृत्तान्त है उसे आपने नहीं सुना है क्या ? अच्छा सुनिये मैं आपको उसकी कथा सुनाता हूं।

पूर्वकाल में एक गांव में देवदास नामक एक कुटुम्बी रहता था उसकी गृहिणी का नाम दुःशीला था वह सचमुच दुःशीलाही थी। वह छिनाल थी यह बात पड़ोस के सब लोग जानते थे। एक समय की बात है कि देवदास किसी काम से राजा के यहां गया, इधर दुःशीला को भी अवसर मिल गया, वह तो उसका वध कराही चाहती थी सो झटपट उसने इसी अवसर में अपने यार को बुलाकर घर की अटारी पर छिपा दिया। जब देवदास आया तो खा पी के सो रहा, आधी रात के समय उस दुष्टा ने अपने पति का उस जार से घात करवा डाला। उपपति को विदा कर वह रात भर तो चुप रही प्रातःकाल में निकलकर चिल्ला २ रोने लगी "हाय मेरे पति को चोरों ने मार डाला"। इतने में बन्धुबान्धव बटुर आये और उसे देखकर बोले कि चोरों ने इसे तो मार डाला पर वे कुछ चुरा तो लेही न गये यह क्या बात है इतना कह उसने बालक पुत्र से पूछा,— 'क्या तू कुछ जानता है कि तेरे पिता को किसने मारा है ?" तब वह स्पष्ट २ कहने लगा कि दिन के समय कोई एक जवान पुरुष अटारी पर चढ़के बैठ रहा था रात के समय उतरकर उसीने मेरे देखते मेरे पिता को मार डाला, जब वह मारने लगा तब पहिलेही मेरी माता मुझे लेकर पिता के पास से उठ खड़ी बालक की ऐसी बात सुन उन्होंने जाना कि बस यह काम इस दुष्टा का है सो उसी समय ढूंढ़ढाढ़ के उन लोगों ने उसके जार को भी मार डाला पुत्र को ग्रहण कर दुःशीला को निकाल दिया।

इतनी कथा सुनाय हरिशिख कहने लगा कि देव ! सुना न आपने,

उनकी भार्य्या का नाम कल्याणवती था जो मालव देश के राजा की बेटी थी।। राजा सिंहबल कल्याणवती को सब पत्नियों में अधिक प्यार करते थे सो वही प्रधान पटरानी थी। राजा अपनी धर्मपत्नी के साथ राज्य का शासन करते थे। एक समय की बात है कि राजा के बलवान् गोतियों ने एकमत हो उन्हें राज्य से निकाल दिया। अब राजा अपनी भार्य्या के साथ केवल अपने अस्त्र और कुछ नौकरों को लेकर मालव देश में अपने श्वशुर के घर को चले। सब लोग चले जा रहे थे कि चलते २ एक जंगल में पहुँचे वहां एक सिंह साम्हने आ टूटा, शूर राजा ने तलवार के एकही वार से उसके दो टुकड़े कर डाले। तत्पश्चात् एक बनैला हाथी चिग्घारता और मण्डल भरता उनपर दौड़ा सो महीप ने खड्ग से उसके सूंड़ और चारों पैर काट उसे मार गिराया और उसका मोती ले लिया। तदुपरान्त चोरों (डांकुओं) के दलों ने उनपर आक्रमण किया सो पृथ्वीपति ने उनके कमलनाल के समान ऐसा चकनाचूर कर डाला जैसे हाथी कोइदों को दल डाले। इस प्रकार मार्ग में अनेक विघ्नों को पार करते और अपना अद्भुत पराक्रम दिखाते राजा मालव में पहुँचे तहां सत्वसिन्धु उन महीपाल ने अपनी पत्नी से कहा,— "प्रिये! अपने पिता के घर में इस मार्ग की घटनाओं का वृत्तान्त किसी से न कहना, क्योंकि यह लज्जा की बात है, इसमें श्लाघा क्या है कि क्षत्रिय अपना विक्रम दिखावे।" इस प्रकार चिताय राजा अपनी पत्नी सहित ससुर के घर में गये, ससुर ने एकाएक उनको आये देख चौंककर उनसे पूछा कि कहो कैसे आये तब राजा सिंहबल ने अपनी बीती कह सुनाई। ससुर ने उनका बड़ा सत्कार किया और अनेक हाथी घोड़े दिये तब राजा अत्यन्त बलसम्पन्न महीपति गजानीक के [illegible] गये और रानी कल्याणवती को नैहर ही में छोड़ते गये क्योंकि उनको तो [illegible] औत्सुक्य न था, और संग २ कहां २ लिये फिरते।

[illegible] के चले जाने पर कुछ दिन जब बीत गये तब एक दिन की बात है कि [illegible]णवती खिड़की पर बैठी थी कि उनकी दृष्टि एक पुरुष पर पड़ी, दे-[illegible] उस पर मोहित हो गई, कामबाण से व्यथित हो सोचने लगी "यह [illegible] जानती हूं कि आर्य्यपुत्र से बढ़कर सुन्दर और शूर कोई दूसरा [illegible] तौभी खेद है कि मेरा मन इस पुरुष पर दौड़ता है, सो अब जो

कोप हुआ सो वह उसे पेड़ में बांधकर लताओं से पीटने लगा, इस प्रकार
२ उसने उसका कपड़ा उतार लिया त्योंही उसे नङ्गी देख उस मूर्ख की
करने की इच्छा हो गई तब उसे बँधी बँधाई बैठा के रमण की इच्छा से
ने उसे आलिङ्गन किया पर वह राजी न हुई, तब तो वह चिरौरी करने लगा
देख वह बोली कि जिस प्रकार तुमने बांधकर मुझे लताओं से पीटा है वैसेही
वांधके मैं पीटूं तब तो कुछ हो सकता है, नहीं तो नहीं । वह तो काम से
ड़ित था ही चट इसकी बात पर राजी हो गया सो वह वज्रसार, मनोभव से
वसार कर दिया गया तब उस दुष्टा ने वज्रसार के हाथ पांव खूब कस के पेड़
बांध दिये और उसी की तलवार से उसके नाक कान काट डाले पश्चात् वह
ापिनी उसके कपड़े पहिन उसका खड्ग लेकर पुरुष वेष बनाय जहां मन में
ाया चली गई ।

अब वज्रसार नाक कान कट जाने से, जिनसे कि लहू बह रहा था, लाज के
मारे नीचे शिर किये वहां बँधा पड़ा रहा । इतने में औषधि लेने के लिये वहां
कोई वैद्य आया सो कृपा कर वह उसे खोल (बन्धन से छुड़ा) कर अपने घर
ले गया । वहां उसने उसको बहुत धीरज दे समझाया बुझाया पीछे वज्रसार वहां
से चलकर अपने घर आया । उसने अपनी उस दुष्टा गृहिणी का बहुत कुछ पता
लगाया पर वह न मिली । वज्रसार ने अपनी सारी कथा क्रोधन को कह सुनाई
और उसने महाराज वत्सराज के समक्ष उसका वृत्तान्त कहा । यह सुन महाराज
के दर्बार के सब लोग हँसकर कहने लगे कि यह कैसा कातर है कि जिसे उसकी
पत्नी ने कपड़ा लत्ता छीन छान के स्त्री वेष में बना दिया, इसने उसका दण्ड
उचित किया । इस प्रकार सब लोग उसकी हँसी करते हैं और यह वज्रसार
छाती पर पत्थर धर यहीं पड़ा है ।

इतनी कथा सुनाय गोमुख फिर कहने लगा कि देव । देखिये, भला कहिये
स्त्रियों का विश्वास क्योंकर किया जाय । गोमुख के मुख से ऐसी कथा सुन
भूति फिर बोला कि बात तो ठीक है, स्त्रियों के मन की गति जानी नहीं जा
इसी विषय में एक कथा कहता हूं सुनिये ।

पहले समय की बात है कि दक्षिण देश में सिंहबल नामक एक राजा र

ी इससे मिलना तो चाहिये" ऐसी दुश्चिन्ता कर उसने अपनी एक विश्वस्त सखी
यह हाल कहा, उसी के द्वारा उसे रात में बुलवाया और उसी खिड़की की
ह रस्सी लटका उसे ऊपर अन्तःपुर में चढ़ाय लिया। वह पुरुष तो चढ़ने को
ी ऊपर चढ़ गया पर रानी के तेज से उसका हियाव न पड़ा कि उनके पलङ्ग
र बैठ जावे इससे अलग एक कुर्सी पर बैठ गया, सो देख रानी सोचने लगी हो
हो यह कोई नीच पुरुष है। वह इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि छत पर
एक सांप उतरा, उसे देखतेही वह पुरुष भय से उठ खड़ा हुआ और झट ध
प पर बाण सन्धान उसने सर्प को मार डाला और उठाकर खिड़की से बाहर
क दिया, उसका भय जाता रहा अब मारे हर्ष के वह कापुरुष नांचने लगा।
सको नाचते देख रानी कल्याणवती बहुत उदास हुई और अपने मनमें सोचकर
पने को धिक्कारने लगी कि हाय हाय यह मैंने क्या किया, अरे इस कातर डर
ोक से मेरा क्या होने का। रानी का मुख देखतेही सखी ताड़ गयी कि अब
न्हें ग्लानि उपजी है सो वह बाहर गई तुरंतही घबड़ाई हुई लौट आई और बोली
देवि! आपके पिता आये हैं सो यह पुरुष जिस मार्ग से आया उसीसे झटपट
िकल अपने घर चला जावे नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।" इतना सुनतेही
ह डरपोक भय से कांपता हुआ रस्सी पकड़ खिड़की से उतरने लगा कि धड़ाम
गिर पड़ा, भाग्य अच्छे थे इससे मरा नहीं। उसके चले जाने पर रानी कल्या
वती अपनी सखी से कहने लगीं कि सखि! तुमने यह बहुतही अच्छा किया
ी इस नीच को निकाल दिया, तुमने मेरे मन की बात जान ली, सखि मेरा
चित्त अब लों दुखता है। सुनो सखि मेरे पति व्याघ्र सिंहादिकों को मार के भी
जाते हैं, यह नीच कातर एक सांप को मारकर नाचने लगा, सो ऐसे पति को
छोड़ भला मैं इससे क्या प्रेम करूं? मैं अपने को धिक्कारती हूं कि मेरी मति
ऐसी कुत्सित हो गयी, अथवा स्त्री जातिमात्र को धिक्कार है, वे मक्खियों के समान
हैं जो कपूर को छोड़ मैले पर भिनभिनाती रहती हैं। इस प्रकार पछताप कर
ाली रात बिताय अपने पति की परीक्षा करती हुई पिता के घर में रही। इतने
भूपति शतानीक के सेना पाय राजा सिंहबल ने जाकर चढ़ाई की और अपनी
उन पांचो पापी गोतियों को　डाला। तब पुनः राज्य प्राप्त कर उन्होंने अपनी

ो इससे मिलना तो चाहिये" ऐसी दुचिता कर उसने अपनी एक विश्वस्त सखी
यह हाल कहा, उसी के द्वारा उसे रात में बुलवाया और उसी खिड़की की
ाह रस्सी लटका उसे ऊपर अन्तःपुर में चढ़ाय लिया। वह पुरुष तो चढ़ने को
ो ऊपर चढ़ गया पर रानी के तेज से उसका हियाव न पड़ा कि उनके पलङ्ग
र बैठ जावे इससे अलग एक कुर्सी पर बैठ गया, सो देख रानी सोचने लगी ही
ः हो यह कोई नीच पुरुष है। वह इस प्रकार चिन्ता कर रही थी कि छत पर
ः एक सांप उतरा, उसे देखतेही वह पुरुष भय से उठ खड़ा हुआ और झट ध
ुष पर बाण सन्धान उसने सर्प को मार डाला और उठाकर खिड़की से बाहर
ेंक दिया, उसका भय जाता रहा अब मारे हर्ष के वह कापुरुष नाचने लगा।
ासको नाचते देख रानी कल्याणवती बहुत उदास हुई और अपने मनमें सोचकर
ापने को धिक्कारने लगी कि हाय हाय यह मैंने क्या किया, अरे इस कातर डर
ोंक से मेरा क्या होने का। रानी का मुख देखतेही सखी ताड़ गयी कि अब
न्हें ग्लानि उपजी है सो वह बाहर गई तुरंही घबड़ाई हुई लौट आई और बोली
'देवि! आपके पिता आये हैं सो यह पुरुष जिस मार्ग से आया उसीसे झटपट
निकल अपने घर चला जावे नहीं तो बड़ा अनर्थ हो जायगा।" इतना सुनतेही
ाह डरपोक भय से कांपता हुआ रस्सी पकड़ खिड़की से उतरने लगा कि धड़ाम
े गिर पड़ा, भाग्य अच्छे थे इससे मरा नहीं। उसके चले जाने पर रानी कल्या
णवती अपनी सखी से कहने लगीं कि सखि! तुमने यह बहुतही अच्छा किया
जो इस नीच को निकाल दिया, तुमने मेरे मन की बात जान ली, सखि मेरा
चित्त अब लौं दुखता है। सुनो सखि मेरे पति व्याघ्र सिंहादिकों को मार के भी
लजाते हैं, यह नीच कातर एक सांप को मारकर नाचने लगा, सो ऐसे पति को
छोड़ भला मैं इससे क्या प्रेम करूँ? मैं अपने को धिक्कारती हूं कि मेरी मति
ऐसी कुत्सित हो गयी, अथवा स्त्री जातिमात्र को धिक्कार है, वे मक्खियों के समान
हैं जो कपूर को छोड़ मैले पर भिनभिनाती रहती हैं। इस प्रकार पछताप कर
रानी रात बिताय अपने पति की परीक्षा करती हुई पिता के
में भूपति गजानीक से सेना पाय राजा सिंहबल ने आकर
उन पांचो पापी गोतियों को मार डाला। तब पुनः राज्य

ने अपनी रानी कन्दाल्पवती को नेहर से बुलवा लिया और समुर बहुत सा धन दे सन्तुष्ट कर बहुत दिनों तक पृथ्वी पर अकण्टक शासन किया।

इतनी कथा सुनाय मरुभूति फिर कहने लगा कि देव सुना न आपने, ऐसे भाग्यवान् वीर और सुन्दर तथा सज्जन पति के रहते भी विवेकवती स्त्रियों का भी मन चञ्चल हो जाता है उनका मन इधर उधर दौड़ता रहता है, शुद्ध सच्चरित्रा पतिव्रता स्त्रियां विरलीही होती हैं।

दोहा।

इहि विधि सुनि मरुभूति त, कथा, वत्सनृपजात।
नरवाहनदत सोइके, सुख सों, वितयो रात ॥ १ ॥

तीसरा तरङ्ग।

दूसरे दिन प्रात:काल होने पर आवश्यक कार्य्यों से छुट्टी पाय नरवाहनदत्त मन्त्रियों के साथ अपने बगीचे में विहार करने के लिये गये। वहां उन्हे पहिले तो एक प्रभा का पुञ्ज दिखाई दिया तिसके पीछे आकाश से उतरी हुई बहुतेरी विद्याधरियां दीख पड़ीं, तिन दीप्तिमती विद्याधरियों के बीच में उन्होंने एक मनमोहिनी कन्या को देखा जैसे तारायों के बीच चन्द्रलेखा। फूले कमल के समान जिसका मुखमण्डल, भ्रमर के समान चञ्चल नेत्र, हंस की सी ठवनि, नीलोत्पल के गन्ध सा शरीर का गन्ध, तरङ्ग की लजावनहारी त्रिवली, कमर में कर्धनी, काम देव के बगीचे की बावड़ी की प्रत्यक्ष अधिष्ठात्री देवी मानों। स्मरसञ्जीवनी उस कन्या को देखकर राजपुत्र क्षुभित हो गये जिस प्रकार चन्द्र की मूर्त्ति देख समुद्र चञ्चल हो जाता है। अपने सचिवों से कहने लगे कि यह ब्रह्मा की सुन्दर रचना की कोई विचित्र सृष्टि है, इस प्रकार अपने मन्त्रियों से कहते २ वह उस कन्या के समीप गये। वह भी प्रेमभरी तिरछी चितवन से इन्हें निरखने लगी, तब इन्होंने उससे पूछा "हे कल्याणि! आप कौन हैं? और यहां आना आपका किस निमित्त हुआ है?" यह सुन वह कन्या बोली,—"सुनिये मैं आप लोगों को अपना वृत्तान्त सुनाती हूं—

लगी कि राजन्! आप इन्द्र के मित्र एक विद्याधर हैं, अब यहां मर्त्यलोक
तीर्ण हुए हैं, उसी पूर्वस्नेह के निहोरे इन्द्र ने आपके पास यह आग्रह
अश्व भेजा है, यह उच्चैःश्रवा का पुत्र है, इसमें यह गुण है कि जब लों
इसपर चढ़े रहेंगे कोई शत्रु आपको न जीत सकेगा। इतना कह मातलि ने
प्रभ को वह वाजिरत्न दे दिया। तदुपरान्त राजपुत्र से समुचित पूजा पाय
के सारथि आकाश में उड़कर चले गये।

सोमप्रभ ने उस दिन बड़ा भारी उत्सव मनाया, दूसरे दिवस उन्होंने अपने
राजा ज्योतिप्प्रभ से कहा "हे तात! अजिगीषुता * क्षत्रिय का धर्म नहीं है,
आप अब मुझे आज्ञा दें कि मैं दिग्विजय करने जाऊँ।" पुत्र की ऐसी बात सुन
बड़े प्रसन्न हुए और बोले "मेरे प्यारे पुत्र! बात तो ऐसीही है, बहुत अच्छा
जाओ दिग्विजय कर आओ," इतना कह महीपति ने उनकी यात्रा का प्रब-
कर दिया। अब शुभ दिन में पिता को प्रणाम कर सोमप्रभ इन्द्र के भेजे उस
अश्व घोड़े पर चढ़ अपनी सेना के साथ दिग्विजय के लिये प्रस्थानित हुए।
अश्वरत्न के प्रभाव से अमेयपराक्रम सोमप्रभ ने सम्पूर्ण दिशाओं के नरपतियों
जीत उनके असंख्य रत्न ले लिये, उन्होंने अपने धनुष तथा शत्रुओं के शिरों को
साथही नवा दिया, धनुष तो फिर भी सीधा हो गया किन्तु रिपुओं के शिर
न उठे।

दिग्विजय करके जब वह लौटे आ रहे थे तो मार्ग में हिमालय पड़ा, वहां
ने सैन्य को टिकाय आप आखेट करने के लिये जंगल में पैठे, वहां उत्तम २
से विभूषित † एक किन्नर उनको दिखाई पड़ा, सो वह उसके पकड़ने को
ही इन्द्र के दिये हुए घोड़े पर चढ़ दौड़े। वह किन्नर तो एक गुफा में पैठ कर
न्तर्धान हो गया, किन्तु वह अश्व उनको लिये हुए बड़ी दूर निकल गया, इतने
मरीचिमाली भगवान् भास्कर अपनी प्रखर किरणों से जगत् को उद्दीप्त कर

* जीतने की अनिच्छा, दिग्विजय की इच्छा ही क्षत्रिय का परम धर्म है,
यह भावार्थ है।

† "उत्तमोत्तम यह ... कन्तु यहां भाव यही
है कि उत्तम २ रत्नों

स्ताचल पर जा विराजे । राजकुमार थक तो गयेही थे सो किसी प्रकार घो
ो रोककर लौटे, मार्ग में एक बड़ा भारी तड़ाग दिखाई पड़ा, उसी के कि
ारे रात बिताने के लिये अश्व पर से उतर पड़े, घोड़े को चारा पानी दे, आ
ो फल फूल खाय जल पी बैठकर विश्राम करने लगे कि इतने में एक ओर
ाने का स्वर सुनाई दिया । जिधर से गाने का शब्द आता था कौतुक से राज
ुमार उसी ओर चले और थोड़ीही दूर जाकर क्या देखते हैं कि एक दिव्य कन
िवलिङ्ग के समक्ष गा रही है। सोमप्रभ उसका अद्भुत रूप देख विस्मित हो ग
ओर सोचने लगे कि यह कौन है, उसने भी इनकी उदार आकृति देख आति
कर इनसे पूछा "सौम्य ! आप कौन हैं और इस दुर्गम भूमि में आपका आ
अकेले क्योंकर हुआ?" यह सुन राजपुत्र ने आत्मवृत्तान्त कह सुनाया, पश्चात् उस
पूछा कि कहो तुम कौन हो, इस वन में कैसे रहती हो ? राजकुमार के इस
कार प्रश्न करने पर वह दिव्य कन्या बोली "महाभाग। यदि आप मेरी कथा सु
चाहते हैं तो सुनिये मैं कहती हूं", इतना कह वह आखों में आंसू भर अप
कथा सुनाने लगी—

यहां हिमाचल पर काञ्चननाभ नामक एक नगर है, यहां पद्मकूट नाम
विद्याधरों के अधीश्वर रहते हैं, उनकी रानी हेमप्रभा से मैं जन्मी हूं, नाम मे
मनोरथप्रभा है। पिता मुझे अपने पुत्रों से भी अधिक प्यार करते हैं। मैं अप
विद्या के प्रभाव से सखियों के साथ प्रतिदिन आश्रम, द्वीप, कूल, पर्वत वन औ
उपवनों में विहरती फिरती हूं और आहार के समय तीसरे पहर को अपने पि
के भवन में आ विराजती हूं । एक समय की बात है कि मैं विहार करती हु
यहां आ पहुँची तो क्या देखती हूं कि एक मुनिकुमार सरोवर के तट पर अप
वयस्य के साथ बैठे हुए हैं। उनके रूप की शोभा से मैं खिंच गई जैसे दूती फुस
ले जाय, सो मैं उनके पास चली गई, उन्होंने भी देखतेही बड़े आव भगत से मे
स्वागत किया। जब मैं वहां बैठ गयी तब मेरी सखी ने हम दोनों का भाव ता
कर उनके सङ्गी से पूछा कि महाशय ! आप कौन हैं ? उनके साथी ने उत्त
दिया "हे सखि ! यहां से थोड़ी दूर पर दीधितिमान् ऋषि आश्रम में रहते है
किसी समय यह ब्रह्मचारी इस सरोवर में स्नान करने आये, उसी समय सौंदर्य

कि इतने में एक तेज:पुञ्जाकृति पुरुष आकाश से उतरा और मेरे प्राणेश्वर
ीर को लेकर उड़ता हुआ गगन में चला गया। तब मैं अकेली ही अग्नि में कू
पर उतारू हुई कि आकाश से यह वाणी सुनाई पड़ी "मनोरथप्रभे। ऐसा म
कर, सुन, इस मुनिकुमार के साथ तेरा कभी फिर मिलना होगा।" यह आकाश-
वाणी सुन मैं (जल) मरने से विरत हुई, अब आशा लगाये उसी समय की प्रतीक्षा
करती यहीं शिव की पूजा में तत्पर रहती हूं, और मुनिपुत्र के वह मित्र भी न
जानें कहां चले गये।

उस विद्याधरी की इतनी बात सुन सोमप्रभ ने उससे पूछा "तो तुम यहां
अकेली कैसे रहती हो और तुम्हारी वह सखी कहां चली गई"। इस प्रकार सोम-
प्रभ की बात सुन वह विद्याधरकन्यका बोली कि सिंहविक्रम नामक विद्याधरों के
एक राजा हैं, मकरन्दिका नाम्नी उनकी कन्या है जिसकी जोड़ी की दूसरी कोई
सुन्दरी नहीं है। वह मेरी सखी है और मुझे प्राणों से प्यारी है, वह मेरे दुःख से
सहानुभूति रखती है, उसने मेरा हालचाल पूछने के लिये अपनी सखी भेजी थी सो
उसकी सखी के साथ मैंने अपनी सखी को उसके पास भेज दिया है यही कारण है
कि आज इस समय मैं अकेली हूं। इस प्रकार कहही रही थी कि उसकी सखी
आकाश से उतरती दिखाई दी। मनोरथप्रभा ने उसे सोमप्रभ को दिखा दिया।
जब सखी आ गई तो सब वृत्तान्त सुनाय उसके द्वारा उसने राजपुत्र के लिये पत्तों
का बिछौना बिछवाय दिया और उनके घोड़े को भी घास डाल दी।

रात बीती, सबेरे सब उठे, उठतेही क्या देखते हैं कि आकाश से एक विद्या-
र उतर के आया है। वह देवजय नामक विद्याधर नमस्कार कर बैठ गया और
ानोरथप्रभा से कहने लगा "मनोरथप्रभे। राजा सिंहविक्रम तुमसे यह कहते हैं
क मेरी पुत्री, जो मकरन्दिका तुम्हारी सखी है, जब लों तुम्हारा पति तुमको न
मेल जाय तुम्हारे स्नेह से अपना विवाह नहीं किया चाहती सो तुम आकर उसे
समझाओ कि वह विवाह कर ले।" यह सन्देश सुनतेही वह विद्याधरकन्यका
अपनी सखी के स्नेह से उसके पास चलने पर उद्यत हुई। उस समय सोमप्रभ ने उससे कहा
"अनघे! मैं भी विद्याधरों का लोक देखा चाहता हूं, सो मुझे भी वहां ले चलो
और घोड़े को घास देकर यहीं छोड़ चलें। सोमप्रभ की बात सुन मनोरथप्रभा

भी यहां आयीं। महामुनि का रूप निरखतेही श्रीदेवी सकामा हो गयीं, पर यह देख कि शरीर से तो यह प्रशान्त मुनि अप्राप्य हैं उन्होंने मनमें मुनि की कामना की इससे उन्हें मानसपुत्र प्राप्त हुआ। तब वह मानसजात पुत्र को लेकर दीधितिमान् मुनि के निकट आकर कहने लगीं "महाराज आपके दर्शनही से मेरे यह पुत्र उत्पन्न हुआ है सो इसे आप ग्रहण करें, इतना कह मुनि को बालक सौंप श्री अन्तर्धान हो गयीं और मुनि भी उस अनायास मिले पुत्र को पाकर अति प्रमुदित हुए। ऋषि ने उस पुत्र का नाम रश्मिमान् रक्खा और क्रमानुसार पालन पोषण कर बड़ा किया, और जनेऊ कर साथही सब विद्याएँ सिखा दीं। हे सखि यह वही मुनिकुमार श्री के पुत्र हैं, विहार करते २ मेरे साथ यहां आये हैं। इतना कह उन मुनिकुमार के मित्र ने मेरी सखी से भी पूछा सो उसने मेरा नाम और वंश उन्हें कह सुनाया, जो कि मैं आपको बतला चुकी हूं।

इस प्रकार परस्पर वंशज्ञान से हम दोनों का अनुराग और बढ़ गया, मुनिपुत्र और मैं, दोनों वहां बैठे थे कि इतने में मेरे घर से एक दूसरी सखी आई और मुझसे बोली "मुग्धे! उठो, उठो, तुम्हारे पिता भोजनागार में तुम्हारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।" सखी की इतनी बात सुनकर मैंने उनसे कहा कि आप यहीं ठहरे रहें मैं अभी आती हूं, इतना कह मुनिपुत्र को वहीं बैठाय मैं भय से पिताजी के पास चली गयी। वहां चटपट कुछ खा पीके ज्योंही मैं बाहर निकली कि वह पहिली सखी घबड़ाई हुई दौड़ती मेरे पास आई और धीरे से मुझसे कहने लगी "सखि! मुनितनय के वह मित्र आये हैं और आंगन के द्वार पर खड़े हैं, वह कहते हैं "अपने पिता से पाई हुई व्योमगमन विद्या देकर रश्मिमान् ने मुझे मनोरथप्रभा के पास भेजा है, प्राणेश्वरी के बिना कामदेव ने उनकी यह दशा कर डाली है कि क्षण भर भी जीना कठिन है।" इतना सुनतेही मैं अपने मन्दिर से निकल खड़ी हुई, आगे २ वह मुनिकुमार के मित्र मार्ग दि[illegible] पीछे २ मैं अपनी सखी के साथ चली। वहां आकर क्या देखती [illegible] मुनिकुमार शान्त हो गये हैं, उधर चन्द्र का उदय होना [illegible] शान्त हो गया। तब मैं उनके वियोग से अत्यन्त व्याकुल हो निन्दा करने लगी और उनका शरीर लेकर अग्नि में प्रवेश

इतने में सोमप्रभ के मन्त्री प्रियङ्कर उन्हें ढूंढ़ते २ सेना सहित वहीं आ
उनसे मिलकर अति प्रसन्न हो अपने मन्त्री से सोमप्रभ अपना वृत्तान्त कहही
। कि उसी अवसर में उनके पिता के यहां से लिखा हुआ पत्र लिये एक दूत स
ंग लाया कि शीघ्र चले आओ । तब मन्त्री की अनुमति से पिता की आज्ञा म
ानकर सोमप्रभ अपने सैन्य के साथ निज नगर को चले गये । चलती समय
नोरथप्रभा और देवजय से यह कह गये थे कि पिताजी को देखकर मैं अति शीघ्र
ौट आऊँगा । इधर सोमप्रभ अपने राज्य में गये उधर देवजय मकरन्दिका के
निकट गया, उससे सब वृत्तान्त सुन मकरन्दिका का विरहानल और धधक उठा।
अब उसे कहीं चैन नहीं, उद्यान में जाय वहां भी मन न लगी, गीत न भाय,
सखियों की संगति अच्छी न लगी, सुग्गों की प्यारी और मधुर बोली उसे विनोदित
न करे, और क्या उसे खानपान कुछ भी अच्छा न लगे, भोजन त्याग दिया, तब
अङ्ग के शृङ्गारादि का क्या पूछना । उसके माता पिता बहुत कुछ समझाते बुझाते
पर उसका मन किसी प्रकार स्थिर न होता, धीरज न होता, कमल की शय्या
त्याग वह उन्मादिनी की भांति इधर उधर घूमने लगी । ठीकही कहा है,—
"कामातुराणां न भयं न लज्जा" ।

मकरन्दिका के माता पिता को उसकी यह दशा देख अत्यन्त सन्ताप हुआ, वे
पुनः २ उसको समझाते और ढाढ़स दिलाते पर वह एक न मानती । इस प्रकार
समझाने बुझाने पर भी जब उसका मन ठिकाने न हुआ तब माता पिता को
बड़ाही क्रोध आया उन्होंने उसको यह शाप दे दिया कि जा तू इसी शरीर से
कुछ काल के लिये दरिद्र निषादों के बीच रह, तेरी जाति तुझे भूल जाय ।" इस
प्रकार माता पिता का शाप पाय मकरन्दिका वहां से गिरी और किसी निषाद के
घर जाकर उसकी कन्या हुई । इसी के सन्ताप और शोक से सन्तप्त हो उसके
पिता विद्याधरेश्वर सिंहविक्रम अपनी पत्नी के सहित पञ्चत्व को प्राप्त हो गये।
वह विद्याधरेन्द्र पूर्वजन्म में सर्वशास्त्र एक ऋषि थे, किसी पूर्व दोष के कारण

व सुग्गा होकर उत्पन्न हुए हैं। इसी प्रकार उनकी आत्मा भी अनुवर्ती हुई है।
: यह सुग्गा अपने तपोबल से पहिले का सब जानता है। यही कारण है
: इसकी विचित्र कहानी देखकर मैं हंसा, और जब यह अपनी इस कर्मगति
: राजसभा में सुनावेगा तब इस योनि से मुक्त हो जावेगा। और सोमप्रभ इसकी
न्या को जो इस समय निषादी हो गयी है, विद्याधरी की योनि में पहुं
चेगा। उसी समय मनोरथप्रभा भी अपने पति मुनिपुत्र रश्मिमान् को जो
म्प्रति भूमिपाल हुआ है, प्राप्त करेगी। सोमप्रभ भी जब अपने पिता के दर्शन
र लौटा तब मनोरथप्रभा के आश्रम में अपनी प्रिया की प्राप्ति के लिये अब भी
ङ्कर की आराधना कर रहा है।

इतनी कथा सुनाय पुलस्त्य मुनि चुप रह गये और मुझे अपनी जाति स्मरण
ो गयी उस समय मैं हर्ष और शोक में मग्न हो गया। तब जो मुनि कृपा कर
झे आश्रम में ले गये थे वह मुझे लेकर पालने लगे। क्रमानुसार मेरे पंख जमे
ब मैं पक्षि जाति की स्वाभाविक चञ्चलता से इधर उधर फुदक २ अपनी विद्या
ा आप २ दिखाने लगा। पीछे मैं निषाद के हाथ में पड़ा और हे राजन्!
मानुसार अब आपके समीप उपस्थित हुआ हूं, अब मेरा पक्षियोनि (से) जनित
ाप क्षीण हो गया।

इस प्रकार अपनी कथा सुनाय जब विचित्र वाग्मी विद्वान् शुक चुप हुआ त
ाजा सुमन ऐसे प्रफुल्लित हुए कि आनन्द के मारे अपने को भूल गये।

इतने अवसर में उधर सोमप्रभ की (परिचर्य्या और) आराधना से आशुतो
भगवान् शम्भु परितुष्ट हो गये और स्वप्न में दर्शन दे उनसे कहने लगे "राजन
उठो, सुमन महीपति के पास जाओ वहां अपनी प्रियतमा को पाओगे। (क्योंकि
मकरन्दिका अपने पिता के शाप से निषादी हुई है यहां उसका नाम मुक्ताल
पड़ा है, सो इस समय वह, शुकयोनि में जन्मे अपने पिता को लेके राजा के नि
कट गयी है। जब वह तुम्हें देखेगी तो वह विद्याधरी अपनी जाति को स्मरण क
शाप से मुक्त हो जावेगी, उस समय परस्पर पहिचान लेने से तुम दोनों का सङ्ग
। हर्ष उत्पन्न करेगा।" महीपति से इतनी बात कह भक्तवत्सल भगवान् भू
आश्रम में वास करनेवाली मनोरथप्रभा से भी बोले "हे मनोरथप्रभे

नियें के बेटे ने देखा कि दैव घोटीला हो गिर के अचेत हो गया है, बहुत कुछ उसके उठाने का उद्योग किया किन्तु बैल न उठा तब वह निराश हो, उस वहीं छोड़ चला गया। दैवयोग से सञ्जीवक सँभला, धीरे २ उठा, इधर उधर चल फिर कर कोमल २ घासों को चर २ कर पहिले सा हृष्टपुष्ट हो गया, पश्चात् यमुना किनारे जाकर हरी २ घास खाने लगा और स्वच्छन्द विचरने से क्रमश: हृष्ट पुष्टाङ्ग और बलवान् हो गया। अब वह उन्नत-डीलवाला बैल, महादेव के वृषवत् अपने सींगों से बांबियें उधेड़ता हँकड़ता फिरता था।

इसी समय समीपवर्त्ती एक दूसरे वन में पिङ्गलक नामक कोई सिंह रहता था जिसने अपने विक्रम से समस्त जङ्गल अपने वश में कर रक्खा था। उस मृग-राज के मन्त्री दो सियार थे एक का नाम दमनक दूसरे का करकट। एक समय की बात है कि वह सिंह यमुना किनारे पानी पीने जा रहा था कि समीपही में उस सञ्जीवक साँड़ का हँकड़ना उसको सुनाई पड़ा। सब दिशाओं में गूंजे हुए उस अश्रुतपूर्व नाद को सुनकर वह सिंह चिन्ता करने लगा "अहो! यह नाद किस जन्तु का है, निश्चय यह कोई बड़ा सत्त्व है और समीपही में कहीं रहता है, सो कहीं ऐसा न हो कि मुझे देख पावे तो मार डाले अथवा वन से निकाल देवे" इस प्रकार सोच कर वह सिंह बिना पानी पीयेही चटपट वन में चला आया और भय के मारे व्याकुल रहता तथापि अपना भाव ऐसा छिपाये रहता कि अनु-चरों पर प्रगट न होने पाया।

तदनन्तर उसका परम चतुर मन्त्री दमनक नामक सियार एकान्त में दूसरे मन्त्री करकट से कहने लगा कि "भाई! हमारे स्वामी पानी पीने गये थे सो न जानें बिना पीयेही क्यों झटपट लौट आये, अब उनसे इसका कारण पूछना चाहिये।" यह सुन करकट बोला "मित्र! हमें इसमें क्या प्रयोजन? क्या तुमने कील उखाड़नेवाले बन्दर का वृत्तान्त नहीं सुना है। सुनो मैं सुनाता हूं"—

किसी नगर में एक बनिया देवमन्दिर बनवाने लगा उसके लिये बहुत सी लकड़ियां मँगवायी गयीं। वहां के बढ़ई एक लकड़ी ऊपर से आधी चीर, बीच में कील ठोंक कर अपने २ घर चले गये। दैव का मारा एक वानर वहां आया और चपलता से चट उछलकर उस काठ पर जा बैठा जिसके पल्ले कील से अलग

चौथा तरङ्ग ।

इस प्रकार दोनों विद्याधरियों की कथा सुनाय मन्त्रिवर गोमुख नरवाहनदत्त से पुनः कहने लगा। "देव! कोई कोई दोनों लोक के हितैषी सामान्य लोग भी बुद्धि का अवलम्बन कर कामादि व्यसनों को सह लेते हैं। देखिये मैं आपको एक कथा सुनाता हूं—राजा कुलधर का एक सेवक शूरवर्म्मा नामक था जो अच्छे कुल में जन्मा तथा प्रसिद्ध पुरुषार्थी योद्धा था। एक समय की बात है कि वह किसी गांव को * गया, वहां से अकस्मात् लौट आकर निःशङ्क घर में पैठतेही क्या देखता है कि उसकी भार्य्या उसी के एक मित्र के साथ एकान्त में विहार कर रही है। देखतेही तो उसे बड़ा क्रोध आया पर धैर्य्य का अवलम्बन कर विचार करने लगा कि इस मित्रद्रोही पशु को मारकर क्या लाभ उठाऊँगा अथवा इस दुश्चरित्रा पापिनी स्त्री को दण्ड देकर क्या करूँगा, व्यर्थ अपने को पापभागी क्यों बनाऊँ। इतना मन में विचार कर वह उन दोनों से कहने लगा "जाओ मुंह में कारिखा पोत कर मेरे घर से निकल जाओ, चेत रखना तुम दोनों में से जिस किसी को फिर कभी देख पाऊँगा तो मारही डालूंगा, देखना कभी मेरी आंखों के साम्हने न पड़ना।" इतना कह उसने दोनों को निकाल दिया, वे दोनों वहां से कहीं दूर चले गये और शूरवर्म्मा अपना दूसरा व्याह कर सुखपूर्वक रहने लगा। इस प्रकार हे देव! जो पुरुष क्रोध को जीत लेता है वह कदापि दुःखभागी नहीं होता, और जो अपनी बुद्धि को काम में लाता है वह कभी विपत्ति में नहीं पड़ता और क्या पशुओं में भी देखा गया है कि बुद्धि के द्वाराही कल्याण हुआ है पराक्रम से कदापि नहीं। सुनिये इसी विषय में सिंह और बैल तथ अन्यान्य पशुओं की कथा सुनाता हूं—

किसी नगर में एक बड़ा धनवान् वणिक्पुत्र रहता था। एक समय की बात है कि वह अपना छकड़ा लदाकर मथुरापुरी में व्यापार करने को चला, जब प्रस्त्रवणाचल के निकट पहुँचा तो वहां कीचड़ के कारण उसका सञ्जीवक नामक बैल फिसलकर गिर पड़ा उसके सब अङ्ग चूर २ हो गये, गाड़ी का जूआ टूट गया,

* किसी युद्ध में गया था, ऐसा भी पाठान्तर है।

तब दमनक फिर बोला "भाई ! बात तो ऐसीही है पर "सूचीप्रवेशे मु
...शः" † की कहावत तुमने नहीं सुनी है। जो बुद्धिमान् होता है वह धीरे
...भु को अपने हाथ पर चढ़ा लेता है, फिर जहां स्वामी हाथ में आ गया तब क्या
...ब तुम्हीं तुम नज़र आओगे। करकट बोला "अच्छा ऐसाही करो"।

करकट की आज्ञा पाय दमनक अपने स्वामी सिंह के पास गया और पिङ्ग...
...क को प्रणाम कर बैठ गया। पिङ्गलक ने उसका बड़ा आगत स्वागत किया। तब
...मनक (हाथ जोड़कर) निवेदन करने लगा "महाराज ! मैं तो आपका पुश्तैनी
...सेवकही हूं, और सोभी सदा आपका भलाही चाहता हूं, देखिये पराया भी
...यों न हो यदि अपना भला चाहे तो उसको ग्रहण करना उचित है और आत्मीय
...ही क्यों न हो पर यदि बुराई करे तो उसका त्याग करना चाहिये । देखिये न,
...बिल्ली बहुत उपयोगी होती है इससे लोग उसे मोल लेकर पोसते हैं और घर
...में उत्पन्न हुआ मूसा अहित करने से मारा जाता है । मेरा अभिप्राय यह है कि
जो अपनी भलाई चाहे वह अपने हितैषी भर्त्यों की बात सुन ले और उन सेवकों
का भी यह कर्त्तव्य है कि स्वामी पूछे या न पूछे (कहे या न कहे) किन्तु समय
पर प्रभु का भला कर देवें । भो देव ! यदि आप मेरा विश्वास करते हैं, यदि
आप कुपित न होवें और न कुछ मुझसे छिपावेंही और मेरे पूछने पर उद्विग्न
न हों तो मैं कुछ पूछा चाहता हूं।

दमनक की इतनी बात सुन पिङ्गलक सिंह बोला "हां, हां, तुम मेरे विश्वास
पात्र हो जो चाहो निःशङ्क कहो (पूछो)।" पिङ्गलक की ऐसी बात सुन दम
नक ने कहा "देव ! आप प्यासे होकर पानी पीने गये थे तो बिना जल पीये
ही उदास हो क्यों लौट आये ?"। दमनक की यह बात सुन मृगेन्द्र विचार करने
लगा 'जान पड़ता है कि इसने लख लिया, यह मेरा भक्त है तो अब इससे छि
पाना क्या।' इतना सोच विचार उसने दमनक से कहा "सुनो दमनक ! तुमसे
कुछ छिपा तो है ही नहीं और ऐसी कोई बात भी नहीं कि तुमसे मैं छिपाऊं। बात

† सूई के जाने भर का अवकाश जहां हुआ कि मूसल घुसेड़ने भर का ठांव
खोज कर लेते हैं। इसी प्रकार भाषा में एक कहावत है "अंगुली पकड़ते पहुंचा
पकड़ना।"

लग मुंह बाये हुए थे । दोनों पल्लों के बीच मानो मृत्यु के मुंह में, बैठकर स्वभावचापल्य से उसने दोनों हाथों से निष्प्रयोजनही यह कील उखाड़ ली। बस क्या था कील के उखड़ जाने से दोनों पल्ले जुट गये बीच में वह बानर दब कर मर गया।"

इतनी कथा सुनाय करकट कहने लगा कि भाई दमनक। इस प्रकार जो जिसका काम नहीं है सो कभी न करे, करने से ही विनाश होता है। सो हम राज के अभिप्राय को जानकर क्या करेंगे। करकट की इतनी बात सुन धीर दमनक बोला, "भाई तुम्हारा कहना ठीक है पर जो बुद्धिमान् होते हैं वे स्वामी के पेट में पैठकर सब बात जान लेते हैं, सो ऐसाही करना चाहिये, और ऐसे तो अपना पेट कौन नहीं पाल लेता।" दमनक की ऐसी बात सुन साधुस्वभाव करकट बोला कि भाई जो हो पर अपनी इच्छा से अधिक प्रवेश करना सेवक का धर्म नहीं है अर्थात् कोई पूछे वा न पूछे पर सब बातों में आगे होना सेवक को उचित नहीं। करकट का ऐसा कहना सुन दमनक ने कहा "यह तो ठीक नहीं है अपना २ मनवाञ्छित फल सभी चाहते हैं, देखो कुत्ता हड्डीही से सन्तुष्ट हो जाता है और सिंह हाथी पर धावा मारता है।" यह सुनकरकट बोला, "माना कि ऐसाही किया, फिर स्वामी प्रसन्न न हुए प्रत्युत कुपित हो गये तो विशेष फल कहां रहा? भाई स्वामी और पर्वत को एक समान समझना, दोनों बड़े कर्कश और स्तब्ध होते हैं। जिस प्रकार पर्वतों में हिंस्र जन्तु भरे रहते हैं वैसेही स्वामियों के पार्श्ववर्ती बड़े २ गुरुघण्टाल रहते हैं, वे हिंसक जन्तुओं से किसी अंश में न्यून नहीं होते। फिर जैसे पहाड़ों का पार पाना कठिन है वैसेही प्रभुओं के गभीर हृदय का गूढ़ भाव जानना अति कठिन है, जैसे पर्वत विषम (ऊबड़ खाबड़) होते हैं वैसेही स्वामी भी विषम, झट पलट जानेवाले, टेढ़े हो जाते हैं। देखो नीति में क्या कहा है।।

प्रायेण भूमिपतयः प्रमदा लताश्च,
यः पार्श्वतो वसति, तं परिवेष्टयन्ति * ।

* राजाओं, स्त्रियों और लताओं का यह स्वभाव होता है कि जो समीपवर्ती होता है उसी को लपेट लेते हैं, फिर जहां उनके वश में हुआ कि विलाते विलम्ब नहीं होता।

इतनी कथा सुनाय दमनक बोला कि देव! आपसे बीर जीव ड-
रें? यदि आप आज्ञा देवें तो मैं इसका पता लगाने जाऊं। दमनक
बात सुन सिंह बोला "भाई! यदि तुम साहस करते हो तो जाओ।" मृगरा-
जकी आज्ञा पाय दमनक वहां से चला और यमुना किनारे पहुंचा। शब्द अकन
कनते ज्योंही वह उस स्थान पर पहुंचा जहां से नाद आता था, तो क्या देखता
है कि एक बैल चर रहा है। सो वह वृष के समीप जाकर उससे आलाप करने
लगा, और बातचीत करके उसने सिंह से जाकर कह दिया कि देव! बात यह
है। उसकी बात सुन पिङ्गलक सिंह ने कहा "भाई! यदि तुमने उस महोक्ष को
देखा है, और उससे मैत्री भी कर ली है तो जाओ किसी युक्ति से उसे यहां ले
आओ, देखूं तो सही वह कैसा जन्तु है।" इतना कह अति प्रसन्न हो पिङ्गलक ने
फिर अपने मन्त्री दमनक को उस वृषभ के पास भेजा।

तब दमनक ने जाकर उस महोक्ष से कहा कि भाई हमारे स्वामी मृगराज
अति प्रसन्न हो तुम्हें बुला रहे हैं सो आओ मेरे साथ चलो, पर भय के कारण वृष
उसकी बात पर सम्मत न हुआ। तब दमनक वन में सिंह के पास लौट गया और
बोला कि मृगेन्द्र यदि आप अभयदान दें तो उसे लिवा लाऊँ। सिंह के अभय प्र-
दान करने पर वह सञ्जीवक के समीप गया और बोला, "लो; भाई हमारे प्रभु
तुम्हें अभय दे रहे हैं तो अब तो डर नहीं है चलो न। इस प्रकार भड़ी पट्टी दे-
कर दमनक सञ्जीवक को केसरी के निकट ले गया। सिंह के समक्ष पहुँचकर
सञ्जीवक ने सिर झुकाकर प्रणाम किया तब पिङ्गलक ने उसका बड़ा आदर कर
उससे कहा "भाई कुछ डर मत करो अब तुम मेरे पास मजे में रहा करो।"
वृष ने कहा "बहुत अच्छा जो आज्ञा," इतना कह वह वहीं रहने लगा। धीरे २
उसने सिंह पर ऐसा रोब जमा लिया कि मृगेन्द्र सब पशुओं से मुंह फेर उसका
ही चेरा बना रहता, और सब प्रकार से वृष के अधीन हो गया।

यह दशा देख दमनक को बड़ा खेद हुआ, उसने खिन्न हो एकान्त में कर-
कट से कहा 'देखो भाई संजीवक ने स्वामी को ऐसा अपनाय लिया है कि वह
हम दोनों की ओर आंख उठा के देखते भी नहीं, अकेले ही मांस खाते हैं हम
दोनों को नहीं देते। भला देखो तो सही यह हमारे प्रभु कैसे मूर्ख है कि बैल

यह है कि जब मैं जल के समीप पहुँचा तो मुझे एक अद्भुत नाद सुनाई पड़ा मुझे तो ऐसा भासता है कि मेरी अपेक्षा किसी अधिक बलिष्ठ जन्तु का शब्द ना है क्योंकि जिसका जैसा शब्द होता है उसी के अनुरूप प्राणी भी होगा ऐसी भावना उठती है. ब्रह्मा की यह सृष्टि बड़ी विचित्र है कि एक से बढ़कर दूसरा होता है। अब वह इस वन में पैठा है मुझे चिन्ता है कि न मेरा शरीरही बचेगा और न वन ही मेरे अधिकार में रहेगा सो भाई! मैं तो यहां से किसी दूसरे कानन में चला जाऊँगा।

इस प्रकार सिंह का कहना सुन दमनक बोला "देव! आप शूर होकर शब्द ही से वन त्याग दिया चाहते हैं? देखिये जल से पुल टूट जाता है, कान में कुछ फुसफुसाने से मैत्री नष्ट हो जाती है, मन्त्र जहां प्रगट किया गया कि उसका प्रभाव चला जाता है इसी प्रकार शब्द मात्र से कातर के प्राण भयभीत हो जाते हैं। शब्द का क्या कहना यन्त्र इत्यादि के शब्द भी तो बड़े भयङ्कर होते है, सो जबलौं परमार्थ न निश्चित हो ले, हे प्रभो!, भय करना उचित नहीं है। सुनिये मैं आप को एक सियार और नगाड़े की कथा सुनाता हूं।"

पूर्वकाल की बात है कि किसी वन में एक सियार रहता था। भोजन की खोज में इधर उधर घूमता फिरता एक स्थान में पहुँचा जहां युद्ध हो चुका था, एक ओर गम्भीर ध्वनि सुन पड़ी जिससे भयभीत हो वह उसी ओर निरखने लगा। बहुत देर तक ध्यानपूर्वक देखने से उसे एक नगाड़ा धरती पर दीख पड़ा, उसने पहिले तो कभी नगाड़ा देखाही नहीं था इससे उसे देखते ही वह अपने मन में बड़े आश्चर्य से विचारने लगा कि अहो! यह कैसा अद्भुत प्राणी है जिसका शब्द ऐसा विलक्षण है। इस प्रकार चिन्ता करता २ वह क्या देखता है कि नगाड़ा तो हिलता डोलता नहीं, तब वह उसके निकट चला गया, समीप जाकर देखने से उसे विदित हुआ कि यह तो कोई प्राणी नहीं है। वाताहत नाराचदण्ड जो इसके चमड़े पर लगता है तो उसमें से शब्द निकलता है, जब इसका निश्चय हो गया तब उसका भय जाता रहा वह यह विचार किक दाचित् इसके भीतर कुछ [illegible] की वस्तु हो, उसे फाड़ उसके भीतर घुस गया और खोजने पर लकड़ी तथा [illegible] और कुछ न मिला।

।तब ज्योंही कि बगुला उसे उस चटान पर पटके कि उसके पूर्वही भीमा और विक्रम मकर ने उस विश्वासघाती बक का शिर कुतुर डाला (लिया), और लौटकर शेष मछलियों से उसका वृत्तान्त कह दिया, वे सब मत्स्य अति प्रसन्न हुए और उस प्राणदाता मकर को अभिनन्दन देने लगे।

इतनी कथा सुनाय दमनक करकट से फिर कहने लगा कि मित्र! बुद्धिही बल है, जिसको बुद्धि नहीं उसको बल कहां, सुनो मैं तुम्हें सिंह और शशक की एक दूसरी कथा सुनाता हूं।

किसी वन में एक भयानक सिंह रहता था जोकि अकेलाही स्वच्छन्द वहां राज्य करता था, जिस जन्तु को देखता उसी को मार डालता । इस प्रकार पशु-संहार देख मृगादि सब जन्तुओंने एकट्ठे हो मृगराज से अभ्यर्थना की "पशुराज! आप हम सभों को एकबारगी मारकर क्यों स्वार्थहानि करते हैं, इससे लाभही क्या? हम आपके भोजन के लिये प्रतिदिन एक एक पशु भेज दिया करेंगे।" उनकी ऐसी प्रार्थना सुन पञ्चानन ने कहा "बहुत अच्छा ऐसाही किया करो।" अब वह प्रतिदिन एक जीव को खाकर रहने लगा।

एक दिन एक खरहेकी पारी पड़ी. सब पशुओं ने उसे भेजा, सो मार्ग में चलता चलता वह अपने मनमें विचारने लगा कि "धीर वही है जो आपत्काल में भी मोह को नहीं प्राप्त होता, उस समय भी धीरज नहीं त्यागता। अब मृत्यु तो उपस्थित हैही, आओ एक युक्ति निकालूं" यों विचार वह कुछ विलम्ब कर सिंह के पास गया। उधर भोजन की वेला निकल गई। जब खरहा विलम्ब करके पहुंचा तो केसरी ने दपटकर उससे कहा "क्योंरे तूने मेरे आहार की वेला क्यों टाल दी, शठ! मृत्यु से बढ़कर मैं तुझे और क्या दण्ड दे सकता हूं"। सिंह की इतनी बात सुन खरहा बड़ी नम्रता से बोला "देव! इसमें मेरा अपराध नहीं है क्योंकि मैं आज अपने बश में नहीं था, मैं परबश पड़ गया था; मार्ग में एक दूसरे सिंह ने मुझे अटका रक्खा था. बहुत देर के अनन्तर मुझे छोड़ा; कहिये फिर मेरा क्या दोष है।" इतना सुनतेही सिंह अपनी पूंछ पटकने लगा, क्रोध के मारे उसकी आंखें लाल हो गईं, वह दांत कटकटा के बोला "अरे! वह दूसरा सिंह कौन है? उसे मुझे दिखा तो सही!" "आइये स्वामी चलकर देखिये" इतना कह खरहा उ-

इन्हें राह दिखाता है। मित्र! क्या कहूं, कुछ कहते नहीं बनता, यह मेरा दोष है कि मैं इस बैल को यहां लाया। अच्छा कोई चिन्ता नहीं, अब मैं उपाय करूँगा जिससे यह बैल नष्ट हो जाय और हमारे स्वामी भी व्यसन (कातरता) से निवृत्त होंगे।" दमनक की ऐसी बात सुन करकट बोला "सखे! इस समय तो तुम ऐसा नहीं कर सकते।" यह सुन दमनक ने कहा मैं बुद्धिबल से अवश्य ऐसा कर सकूंगा, भला यह कोई बात है। जगत् में कौन काम है जिसे वह (पुरुष) न कर सके जिसको बुद्धि आपत्काल में भी नहीं छोड़ती। क्या तुमने बकघाती मकर की कहानी नहीं सुनी है! सुनो मैं सुनाता हूं।

पूर्वकाल में मत्स्यपूरित किसी तालाब में एक बकुला रहता था, उसके भय उस तड़ाग के मत्स्य भूलकर भी उसके दृष्टिपथ में नहीं आते थे, देखते ही जाते थे। जब उसने देखा कि एक भी मछली हाथ नहीं लगती तो उसने युक्ति निकाली, मछलियों से उसने कहा कि यहां एक मछुआ जाल लेकर है, अब वह शीघ्रही जाल डालकर तुम सभों को पकड़कर मार डालेगा, सो यदि तुम सबों का विश्वास मुझ पर हो तो जैसा मैं कहूं वैसा करो। यहां से थोड़ी दूर पर एक एकान्त स्थान में एक स्वच्छ सरोवर है सो आओ मैं एक एक तुमको वहां छोड़ आऊँ। उसकी ऐसी कपटभरी बातें सुन भयभीत हो उन मूर्ख मत्स्यों ने कहा "हां हां ऐसाही करो, हम सब तुम्हारा विश्वास करते हैं।" तब वह धूर्त्त बक एक मछली ले जाता और एक चटान पर पटक उसे खा जाता, इस प्रकार उसने बहुतों को खा डाला।

उस तड़ाग में एक मकर रहता था, उसने देखा बकुला बहुतेरे मत्स्यों को खा रहा है तो उसने इससे पूछा "भाई तुम मछलियों को कहां ले जाते हो?" तब उस बकुले ने मछलियों से जो कुछ कहा था सोही उस भयग्रस्त हो भय ने उससे कहा "भाई! तो मुझको भी की गन्धि से बकुले की बुद्धि मारी गयी, सो वह उसे और उड़ चला। वध्यशिला के निकट लाये हुए मत्स्यों के ताड़ गया कि यह दुष्ट इसी प्रकार विश्वास देके मछलि

? तो शरणागत को कैसे मारूं।" यह सुन दमनक ने कहा "महाराज यह आप
[illegible] वाक्य कहे हैं, ऐसा मत कहिये, सुनिये राजा जब किसी को अपने बराबर कर
बना लेता है तो लक्ष्मी पूर्ववत् नहीं रमती, क्योंकि लक्ष्मीदेवी का स्वभाव चञ्चल
है, जब एकही समय में दो उच्छ्रित व्यक्तियों पर अधिष्ठान करती हैं तो चिरकाल
तो दोनों पर नहीं ठहर सकतीं अवश्य एक का त्याग कर देती हैं। जो प्रभु अपने
हितकारी सेवक से द्वेष करता है और अनिष्टकारी से हेलमेल रखता है, बुद्धिमान्
उसे यों त्याग देते हैं जैसे दुष्ट और जिद्दी रोगी को वैद्य। जो बात पहिले अप्रिय लगे
पर परिणाम में हित करे ऐसी बात के वक्ता तथा श्रोता जहां होते हैं वहीं तो श्री
अचल होती है। जो पुरुष भलों की बात नहीं मानता और दुष्टों की राय में च-
लता है वह अतिशीघ्रही विपत्ति में पड़कर मस्तान होता है । सो देव! आप बैल
का स्नेह करें इसका अर्थ क्या है? भला जो अपना बुरा चाहे उसे अभयदान देना,
मैं नहीं समझता कि यह शरणागतवत्सलता कैसी है! यह बैल तो आपकी जड़
खोदै और आप शरणागतवत्सलता के फेर में पड़े रहें यह बात अच्छी नहीं है।
और फिर देखिये न, यह बैल सदा आपके पास बना रहता है और यहीं गोबर
और मूत करता है उनमें जो कीड़े उत्पन्न होते हैं ये कहीं आपके उन घावों में,
जो कि हाथियों के दांतों की चोट से हुए हैं पैठें तब तो भली बनी, तब कहिये
न यह युक्ति से वध करना हुआ कि नहीं? दुर्जन यदि बुद्धिमान् हुआ वह स्वयं
यदि कुछ दोष (अनिष्ट) न करे तो न सही पर उसके संसर्ग से जो दोष (अ-
निष्ट) हो जाता है वह तो अनिवार्य है। सुनिये इसी विषय में मैं आपको एक
कथा सुनाता हूं।

किसी राजा के पलङ्ग में कहीं से मन्दविसर्पिणी नाम्नी एक यूका (१) चढ़
गयी थी वह वहां बहुत दिनों से रहती थी । अकस्मात् वायु का उड़ाया टिट्टिभ
नामक एक खटमल एक दिन उसी में आ घुसा । उसको देखकर मन्दविसर्पिणी
ने कहा "तू मेरे निवासस्थान में क्यों आया, जा कहीं दूसरी ठौर चला जा।" टि-
ट्टिभ बोला "मैंने राजा का लहू कभी नहीं पीया है देखा चाहता हूं कि वह कैसा
स्वादिष्ट होता है मुझ पर कृपा करो, यहां रहने दो।" उसे बहुत चिरौरी करते

(१) ढील या चीलर।

बड़ी दूर एक कूएं पर ले गया और उसमें दिखाकर सिंह से कहने लगा "हे प्रभो! यह सिंह इसीके भीतर रहता है।" तब वीर गर्जन कर सिंह कूएंमें झांकने लगा, स्वच्छ जल में अपना ही प्रतिबिम्ब देख और अपने ही गर्जन की प्रतिध्वनि सुन वह मदान्ध विचारने लगा कि अवश्य यह प्रतिद्वन्द्वी है जिसका गर्जन मेरे गर्जन से भी घोरतर है, यह सोच वह मृगाधिप क्रुद्ध हो उसके वध करनेके लिये से उस कूप में कूद पड़ा और मूढ़ वहीं मर गया।

इतनी कथा सुनाय दमनक फिर कहने लगा "भाई करकट देखा न तुमने, प्रज्ञा जो है वही परम बल है, पराक्रम कुछ भी नहीं है, देखो बुद्धि के बल से एक साधारण खरहे ने केसरी को मार डाला, सो मैं भी अब बुद्धि के द्वारा अपना अभीष्ट साधन करता हूं। दमनक की इतनी बात सुन करकट चुप हो रहा।

तब दमनक अपने स्वामी पिङ्गलक सिंह के समीप गया और उदास बना रहा। जब सिंह ने उसकी उदासीनता का कारण पूछा तो वह बोला "देव! आपको बताये देता हूं, क्योंकि जानबूझ के चुप रहना अच्छा नहीं है। सेवक का धर्म तो यह है कि जो वह अपने मालिक का भला चाहे तो बिना पूछेही बतलाय दे, सो मेरा कहना अन्यथा न मानियेगा, मैं जो कहता हूं उसे सुन लीजिये। बात ऐसी है कि यह जो संजीवक बैल है, जिसे आपने मन्त्री बनाया है सो आपको मारकर राज्य करना चाहता है, मन्त्री रहकर इसने यह निश्चय कर लिया है कि आप भीरु हैं। आपके बध करनेही के उद्देश से वह अपने आयुध (दोनों सींगों) को मांजा करता है। इतनाही नहीं और भी उसकी करनी सुनिये वन वनमें घूम घूमकर यह सब पशुओं को यह समझाया करता है कि धीरज धरो चिन्ता न करो तृणभक्षी मैं तुम्हारा राजा हुआ कि तुम लोग सुखी हुए, बड़े मजे में आनन्द से जीवनयात्रा निर्वाह करो, घबराओ मत अब इस मांसभोजी मृगेन्द्र को मैं माराही चाहता हूं। इस प्रकार की बातें कह २ कर वह सब पशुओं को उत्साहित करता है। अब आप भी चौकन्ने हो जावें इस की कुछ चिन्ता कीजिये, स्मरण रखिये कि जबलों यह जीता रहेगा आ कदापि न होगा।" दमनक की इतनी बात सुन पिङ्गलक बोला "भो भक्षक बिचारा बैल मेरा क्या कर सकता है; सुनो भाई मैंने उसे अभ

राज उद्विग्न क्यों हो, तुम्हें हुआ क्या है कुछ बतलाओ तो सही ?" तब दमन बोला "सुनो भाई तुम पर मेरा बड़ा ही प्रेम है इससे कहे देता हूं, चेत करना राज मृगराज पिङ्गलक तुम्हारे विरुद्ध हो गये हैं, मैं क्या कहूं वह ऐसे विमुख हो गये हैं कि मैत्री की कुछ भी चिन्ता न कर अब तुमको मारकर खा जाया चाहते हैं, और फिर उनके जितने लग्गूभग्गू हैं ये सब के सब हिंसक हैं, भाई यह उन्हीं सबका खोया कूटा है वेही सदा इस बात की प्रेरणा किया करते हैं, यह मैं अपनी आंखों देखता हूं"। साधुस्वभाव संजीवक को तो दमनक की बात का पता पहिले मिलही चुका था इससे उसको इस बात का भी विश्वास हो गया सो यह उदास होकर बोला 'धिक्कार है ऐसे स्वामी को जो आप क्षुद्र हो और जिसके आश्रयवर्ती भी क्षुद्र होवें तथा जो सेवा करा के भी पीछे बैरी ही हो जावे। सुनो भाई इसी विषय में एक कथा सुनाता हूं—

किसी वन में मदोत्कट नामक एक सिंह रहता था। उसके चीता, कौआ और सियार तीन चाकर थे। एक समय की बात है कि उसने उस जङ्गल में आगे हुए एक ऊंट को जो अपने यूथ से निकल भागा था, देखा ऐसा अद्भुत जन्तु उसकी दृष्टि तले पहिले कभी नहीं पड़ा था। मृगाधिप ने बड़े आश्चर्य से पूछा "यह कौन जीव है।" यह सुन परम चतुर कौआ बोला "मृगराज। यह ऊंट है।" तदुपरान्त सिंह ने अभयदान देकर उस उष्ट्र को बुलवा अपनी सेवा में नियुक्त किया।

एक समय की बात है कि उस सिंह का किसी गजेन्द्र के साथ महा घोर युद्ध हुआ जिसमें केसरी का शरीर क्षत विक्षत हो गया और वह बीमार होकर उपवास करने लगा। उसके अनुचरवर्ग तो सिंह ही के आधार पर जीते थे सिंह शिकार करके लाये तो सब जिसके भाग पड़ावे किन्तु इधर तो वह स्वयं अशक्त पड़ा उपवास कर रहा है तो इधर भी फाके होने लगे, वे सब हृष्टपुष्ट थे पर अब किसी से न बन पड़ा कि कुछ आखेट कर लावें और अपने प्रभु को खाने दें। एक दिन सिंह स्वयं अहेर की खोज में चला, दिन भर घूमा पर कुछ न मिला अन्त में निराश हो स्वस्थान को लौट आया और ऊंट को छोड़ कर अनुचरों को एकान्त में बुलाकर उनसे पूछने लगा कि कहो अब क्या किया जाय। उन सभों में [illegible] ही उत्तर दिया "मृगराज। इस वनस्थान में हम तो कोई ऐसा [illegible] कि जब [illegible]

हित की ही बात होगी, भला यह तो सोचिये कि ऊँट के साथ आपकी का
उसी को आप क्यों नहीं खाते। यह तृणभक्षी, हम मांसाहारियों का भक्ष्य है
बहुतों के भोजन के लिये एक क्यों नहीं त्याग किया जाता ? यदि प्रभु कहें,
अभयदान देके फिर उसका बध कैसे करूँ तो हम सब ऐसा उपाय कर दें
वह अपना शरीर आपही प्रभु को अर्पण कर देगा, तब तो दोष नहीं रहा।"
नकी ऐसी बात सुन सिंह सम्मत हुआ तब मृगराज की आज्ञा से कौवा मन्त्र
उस ऊँट के पास जाकर बोला "भाई करभ ! बड़ा कठिन अवसर आगया है,
न हमारे स्वामी कैसी विपत्ति में पड़ गये है, यद्यपि भूखों मर रहे हैं तथापि
सभों से कुछ भी नहीं कहते । ऐसी दशा में अब हमारा क्या कर्त्तव्य है !
अनुचरों ने तो यह स्थिर किया है कि अपना अपना शरीर दान कर उनको
करें, सो भाई जैसा हम कहें और करें वैसा तुम भी करना जिससे प्रभु तुम
भी प्रसन्न रहें। धूर्त्त वायस की धूर्त्तता भला साधुस्वभाव ऊंट विचारा क्या
वह उसकी भड़ी पट्टी में आ गया और बोला "अच्छा भाई मैं भी ऐसाही करूंगा"
तदुपरान्त वह कौवे के साथ सिंह के पास गया।

वहां पारी पारी से सब जन्तु उठ २ कर आत्मसमर्पण करने लगे, सबसे पहले
कौवा साम्हने जाकर बोला "देव ! मैं स्वायत्त हूं, मुझे खाकर आप पथ्य करें"
काग की बात सुनकर सिंह बोला "तुझ स्वल्पकाय को खाकर मेरी क्या
होगी।" मृगेन्द्र की इतनी बात सुन सियार ने साम्हने जाकर कहा "तो देव
खाइये।" सिंह ने वैसीही बात कह सियार को भी दूर किया। तब चीता साम्हने
जाकर बोला "अच्छा, प्रभु तो मुझको खाइये", पर सिंह ने उसे भी न खा
तदुपरान्त उष्ट्र ने सम्मुख जाकर कहा "मृगराज ! मुझे भक्षण कीजिये"। बस
क्या था, वहां तो केवल वचन का छल मात्र था, सिंह, कौवा तथा उसके चतुर
एकदम उस विचारे ऊँटपर टूट पड़े और टूक २ कर भकोस गये।

इतनी कथा सुनाय सञ्जीवक फिर कहने लगा "बस भाई दमनक ! मैं
झता हूं यह काम किसी चुगुलखोर का है कि जिसने अकारण राजा
को इस घोर प्रेरणा की है, अच्छा अब तो जो भाग्य में बदा होगा वही होगा
राजा गीध हो और उसके पार्श्ववर्त्ती हंस हों तो वह अच्छा है किन्तु यदि

चक्रवर्ती हुए और हम राजा हुआ तो यह अच्छा नहीं"। सञ्जीवक की इतनी बात सुन कुटिल दमनक बोला कि भाई संजीवक! धीरज से सब कार्य्य सिद्ध होते , सुनो इसी विषय में मैं तुमको एक कथा सुनाता हूं—

समुद्रतट पर कोई टिट्टिभ पक्षी अपनी भार्य्या के साथ रहता था, टिट्टिभी को जब गर्भ रहा तब उसने अपने पति से कहा "स्वामिन्! चलिये कहीं और चले चलें, कहीं ऐसा न हो कि मैं यहां अण्डे पाऊँ और समुद्र अपनी लहरों से उन्हें बहा ले जावे।" भार्य्या की इतनी बात सुन टिट्टिभ ने कहा, 'प्रिये! घबड़ाओ मत, समुद्र की इतनी शक्ति नहीं कि मुझसे बैर बिसाहे।" यह सुन टिट्टिभी बोली— 'प्रभो! यह आप कैसी बात कह रहे हैं, भला समुद्र के साम्हने आप है किस गिन्ती में,। सुनिये हित की बात मान लेनी चाहिये उसके विपरीत करने ही से विनाश होता है। कम्बुग्रीव की कथा सुनिये तब आपको मालूम होगा कि हितो पदेश न मानने का क्या फल होता है—"।

किसी सरोवर में कम्बुग्रीव नामक एक कछुआ रहता था उसके सङ्कट और विकट नामक दो हंस मित्र थे। एक समय की बात है कि वृष्टि नहीं हुई, सूखा पड़ा, धीरे २ तड़ाग सूख चला। जब दोनों हंस वहां से किसी दूसरे सरोवर को जाया चाहते थे तब कूर्म्म ने उनसे कहा कि भाइयो। तुम दोनों जहां जाया चाहते हो वहीं मुझको भी ले चलो। यह सुन दोनों हंसों ने अपने मित्र कच्छप से कहा कि भाई जिस सरोवर पर हम जाया चाहते हैं वह यहां से बहुत दूर है परन्तु हां यदि तुम्हारी इच्छा भी चलने की है तो जैसा हम कहें वैसाही करना। हम दोनों एक छड़ी दोनों ओर से (अपनी चोंच से) पकड़ लेंगे और बीच में तुम उसे अपने दांतों से पकड़ लो, किन्तु भाई याद रक्खो कि कुछ भी बोलना मत, बोले कि मारे गये। कछुवे ने कहा अच्छा ऐसाही करूंगा। तब कछुवे ने दांतों से छड़ी पकड़ ली और दोनों हंस दोनों छोर पकड़ उड़ चले उड़ते उड़ते वे दोनों हंस उस तड़ाग के निकट पहुँचे कि नीचे से नगर के लोगों ने उन्हें देखा, देखकर लोग परस्पर एक दूसरे को दिखाने और यह कहने लगे कि अहो! यह बड़े आश्चर्य्य की बात है कि हंस न जानें क्या उठाये लिये चले जा रहे हैं। यह कलरव उस कच्छप को सुन पड़ा, कछुआ तो स्वभावतः चपल था वह हंसों से यह

पूकाली चाहता था कि नीचे क्या कलरव हो रहा है कि मुंह खोलतेही नीचे
पड़ा और लोगोंने उसे मार डाला।

इतनी कथा सुनाय टिट्टिभी कहने लगी कि स्वामिन्! समझा न चापने
जो व्यक्ति बुद्धि से काम नहीं लेता वह इसी प्रकार नष्ट हो जाता है जैसे कि
छोड़कर कूर्म नष्ट हो गया। अपनी भार्या टिट्टिभी की ऐसी बात सुनकर टिं.
ने उत्तर दिया कि प्रिये! तुम्हारा कहना तो ठीक है पर तुम भी तो कथा सुन
जो मैं सुनाता हूं।

पूर्वकाल में किसी नदी के समीप एक झील में तीन मत्स्य रहते थे, एक
नाम अनागतविधाता दूसरे का प्रत्युत्पन्नमतिः और तीसरे का नाम यद्भविष्य, [1]
तीनों की परम मित्रता थी। एक दिन की बात है कि उसी मार्ग से जाते हुए कति
पय मछुए आपस में यह बात करते जा रहे थे कि इस झील में बहुत मछलियां हैं
यह बात उन तीनों मत्स्यों के कान में पड़ी। इससे बुद्धिमान् अनागतविधाता तो
यह आशङ्का कर कि वे मछुवे अवश्य आकर मछलियों का संहार करेंगे, वहां
अन्यत्र चला गया किन्तु प्रत्युत्पन्नमति नि शङ्क वहीं पड़ा रहा, वह यह सोचता
था कि जब भय आ पहुँचेगा तो मैं उपाय निकाल लूंगा; यद्भविष्य भी यही विच
के कि जो होना होगा सो होवेहीगा, वहीं पड़ा रहा। इसके उपरान्त मछुओं
आकर उस झील में जाल डाला, प्रत्युत्पन्नमति जाल में फँस गया, पर मृतक
समान निश्चल पड़ा रहा; धीवरों ने उसे स्वयं मरा समझ नहीं मारा सो वह अ
सर पाय नदी की धारा में पड़कर झटपट कहीं चला गया। बचा यद्भविष्य
जाल में इधर उधर छटकता रहा अन्त में धीवरों से पकड़ा जाके मारडाला गया

इतनी कथा सुनाय टिट्टिभ कहने लगा कि प्रिये! यह मत समझना कि
समुद्र के डर से मैं कहीं भाग जाऊँगा मैं इसका प्रतिविधान करूँगा। अप
भार्या से इतना कह टिट्टिभ अपने खोते में पड़ा रहा। सागर ने भी उसका अ

[1] अनागतविधाता = जो बात नहीं उपस्थित हुई है उसकी पूर्व चिन्ता क
पहिले ही से कार्य का विधान करनेवाला। प्रत्युत्पन्नमतिः = जैसा समय या आ
उसके अनुसार झटपट बुद्धि के अवलम्ब से अपना कार्य साध लेनेवाला।
यद्भविष्य = जो होगा सो ... के ... बैठ रहनेवाला।

(गर्व)पूर्ण वचन सुना और अपने मन में कहा कि देखूंगा न कि टिट्टिभ मेरा क्या कर लेगा, टिट्टिभी अंडे दे तो मैं दिखा दूं कि मैं क्या कर सकता हूं। जब समय (पूर्ण) होने पर टिट्टिभी ने अंडे दिये, तब जलधि उसके अण्डों को लहरों से बहा ले गया उसने सोचा कि अब जरा तमाशा देखना चाहिये कि टिट्टिभ क्या करता है। अब टिट्टिभी रोती और विलपती हुई अपने पति टिट्टिभ से कहने लगी,— "स्वामिन्! देखिये मैंने जो कहा वही भया न, कैसा कष्ट हमपर आ पड़ा है।" तब धीर टिट्टिभ ने अपनी भार्या से कहा "प्रिये! डरो मत धीरज धरो, देखो न इस पापिष्ठ समुद्र का मैं क्या करता हूं"। इतना कह उसने सब पक्षियों को बुला कर अपना पराभव कह सुनाया, सभों की राय ठहरी कि चलकर प्रभु गरुड़ से यह वृत्तान्त कहना चाहिये सो सब पक्षियों के साथ जाकर टिट्टिभ ने पक्षिराज गरुड़ से अपना दुखड़ा रो सुनाया और सब खगों ने भी गरुड़ जी से कहा कि आप ऐसे नाथ रहते हम सब इस समय अण्डों के हरे जाने से अनाथवत् हो रहे हैं। सुनतेही विष्णुवाहन को बड़ा क्रोध हुआ, सो उन्होंने भगवान् हरि से सारा वृत्तान्त कह सुनाया; भगवान् विष्णु ने चट आग्नेयास्त्र से समुद्र को सुखाकर टिट्टिभ के अंडे दिलवा दिये।

इतनी कथा सुनाय दमनक सञ्जीवक से कहने लगा कि भाई इसीसे कहता हूं कि विपत्ति में धीरज रखना ही बुद्धिमानों का कर्त्तव्य है परन्तु अब तो पिङ्गलक के साथ तुम्हारा युद्ध आही पड़ा है। सुनो भाई अब मैं तुम्हें एक बात बताता हूं सो करो, तुम पहिलेही से सजग रहना और ज्योंही सिंह पोंछ उठा चारों पांवों से खड़ा होकर तुम पर प्रहार करने चले त्योंही अपना शिर झुका दोनों सींग उसके उदर में भोंक धरती पर पटक देना कि उसकी आंतमांत सब निकल पड़े और वह मर जाय। सञ्जीवक से इतना कह दमनक ने करकट के पास जाकर उससे कहा "मित्र। काम तो साध लिया, बस अब दोनों लड़ने पर उतारू हो गये"।

तब संजीवक बैल मृगराज के समीप यह जानने के लिये धीरे २ गया कि देखूं पिङ्गलक का कैसा भाव है, आकार और चेष्टा से कुछ पता तो अवश्य लग जायगा। जातेही क्या देखता है कि सिंह लाङ्गूल उठाये तयारा लड़ने को तैयार है और सिंह ने भी देखा कि वृषभ गड्ढा से अपना मस्तक उठाये खड़ा है। बस

अब क्या था दोनों में युद्ध होने लगा, सिंह अपने नखों से प्रहार करता और सींगों से। इन दोनों का भयङ्कर युद्ध देखकर साधुस्वभाव करकट दमनक से कहने लगा कि भाई यह तुमने क्या किया कि अपना मतलब साधने के लिये ... के ऊपर यह विपत्ति ला डाली। सुनो मित्र! जो सम्पत्ति प्रजाओं को सताकर बटोरी जाती है, जो मैत्री छल से की जाती है और जो कामिनी परवश मार कर ली जाती है वह सम्पत्ति, वह मैत्री और वह कामिनी चिरस्थायिनी कदापि नहीं होती, अब बहुत हो चुका, सुनो-बहुत रगड़ा करना अच्छा नहीं है, ... हित की बात न माने उससे बहुत कहनेवाले की यही दशा होती है जैसी बन्दर से सूचीमुख की हुई थी।—

पूर्वकाल में किसी जङ्गल में झुण्ड के झुण्ड बन्दर घूम रहे थे, शीतकाल में एक जुगनू को देखकर सभों ने समझा कि आग है, सो वे उसपर पत्ते रख तापने लगे, एक तो मुंह से उस खद्योत को फूंकता भी था। यह देख सूचीमुख नामक एक पक्षी ने उससे कहा कि भाई यह अग्नि नहीं है यह तो खद्योत है व्यर्थ क्लेश मत करो। उसकी ऐसी बात सुनकर भी वह बन्दर न रुका सो वह सूचीमुख वृक्ष से उतरकर उस बानर को मना करने लगा, इस हठ से उस कपि को बड़ा क्रोध आया, उसने एक पत्थर फेंककर सूचीमुख को चूर २ कर डाला।

इतना कह करकट दमनक से पुनः कहने लगा कि भाई दमनक! समझा न, इसीसे कहता हूं कि जो हित बात न माने उसे हित उपदेश फिर न देना। भाई मैं क्या कहूं, तुमने यह भेद कराकर एक बड़ा दोष किया, क्योंकि जो कार्य दुष्टबुद्धि से किया जाता है वह अच्छा नहीं होता। सुनो एक कथा और सुनाता हूं।

किसी नगर में किसी बनिये के दो बेटे थे धर्मबुद्धि और दुष्टबुद्धि, वे दोनों भाई कमाने चले, चलते २ किसी देश में निकल गये, वहां कुछ दिन रहकर दोनों ने किसी २ प्रकार दो सहस्र दीनार कमाये। कमा धोमा कर दोनों उन अशर्फियों को लेकर अपने नगर को लौटे, समीप पहुँचकर उनमेंसे सौ मुहरें निकाल शेष मुहरें एक वृक्ष के नीचे पृथ्वी में गाड़कर आधा २ बांट पिता के घरमें रहने लगे। दुष्टबुद्धि ने थोड़े ही दिनों में अपनी पचास अशर्फियां उड़ा दीं सो अब एक दिन वह चुपके से उस वृक्ष के नीचे गया और सब मुहरें खोद ले आया। अब

एक महीना बीत गया तो उसने धर्मबुद्धि से कहा कि चलो भाई उन अशर्फियों को खोदकर बांट लेवें क्योंकि मेरे पास अब खर्च करने को कुछ नहीं है। यह सुन धर्मबुद्धि भी सम्मत हुआ सो दोनों वहीं जाकर खोदने लगे जहां अशर्फियां गाड़ आये थे। खोदने पर जब अशर्फियां न मिलीं तब कपटी दुष्टबुद्धि धर्मबुद्धि से कहने लगा कि भाई आपही उन मुहरों को खोद ले गये हैं सो उनका आधा मुझे बांट दीजिये; उसने उत्तर दिया कि मैं क्या जानूं, मैं नहीं ले गया तू ले गया होगा। इसी प्रकार कहते सुनते दोनों में झगड़ा होने लगा; इतने में दुष्टबुद्धि ने एक पत्थर से धर्मबुद्धि को मारा और ऊपर से उसे न्यायालय में भी घसीट ले गया। वहां दोनों ने अपना २ पक्ष कह सुनाया पर यह अभियोग ऐसा पेचीला था कि राजपुरुष लोग कुछ निर्णय न कर सके अतः उन्होंने उन दोनों को हाजत में दिनभर बन्द कर रक्खा। तब दुष्टबुद्धि ने कहा कि हे धर्मावतारो! मेरी बात सुन ली जाय, एक काम किया जाय, चलकर हम वृक्षों से पूछ लीजिये जिसके नीचे हम दोनों दीनार गाड़ आये थे, देखिये वह कहता है कि नहीं कि उन दीनारों को इस धर्मबुद्धि ने ले लिया है। यह सुनते ही राजाधिकारियों को बड़ा आश्चर्य हुआ उन्होंने कहा "अच्छा कल सबेरे हम चलकर उस वृक्ष से पूछेंगे," इतना कह जमानत ले उन्होंने दोनों को छोड़ दिया और वे अपने २ घर चले गये।

दुष्टबुद्धि तो सचमुच दुष्टबुद्धि ही था, उसने अपने पिता को कुछ धन देकर एकान्त में यह समझा दिया कि बात ऐसी ऐसी है सो आप वृक्ष के खोड़रे में बैठकर साक्षी हो जावें। पिता के हां करने पर वह रातों रात उसे उस पेड़ के खोड़रे में पहुंचा आया और घर में चुपचाप सो रहा। प्रातःकाल होने पर दोनों भाइयों ने राजा के अधिकारियों के साथ जाकर उस वृक्ष से पूछा कि कहो तो यहां अशर्फियां कौन खोद ले गया? तब खोड़रे मेंसे उनका पिता स्पष्ट बोला "दीनारों को धर्मबुद्धि ले गया है।" इस असम्भव बात को सुनकर राजपुरुषों को बड़ा आश्चर्य हुआ, उन्होंने कहा कि दुष्टबुद्धि ने निश्चय किसी को इस पेड़ में बैठा दिया है। ऐसा कह उन्होंने उस के खोड़रे में धूआं कर दिया जिससे दुष्टबुद्धि का पिता व्याकुल हो निकल पड़ा और ठांवही पृथ्वी पर गिर के मर गया। यह देख राजा के न्यायकर्त्ताओं को विदित हो गया कि यथार्थता क्या है सो उन्होंने दुष्ट

द्धि से धर्मबुद्धि को मुहरें दिलवा दीं और दुष्टबुद्धि के दोनों हाथ और
टवाकर देश से निकलवा दिया। उसका जैसा नाम था वैसाही फल भी उस
मिला और धर्मबुद्धि का बड़ा नाम हुआ।

इतनी कथा सुनाय करकट दमनक से कहने लगा कि मित्र। इसीसे कहता
हूं कि जो काम अन्याय की बुद्धि से किया जाता है उससे अशुभ ही होता है भ
दापि नहीं होता. देखो कहाही है "नहिं विष-बेलि अमिय फल फरहीं।" इसी
लिये मेरा कहना है कि जो कुछ करे सो न्याययुक्त बुद्धि से करे, जैसे कि वह
ने सांप का (से) किया; सुनो यह कथा ऐसी है।

पूर्वकाल की बात है कि किसी बक के बच्चों को एक सर्प खा जाया करत
था, ज्यों बच्चे जन्में कि अवसर पाय वह सर्प आकर खा जावे। यह देख बकुले
बड़ा ही सन्ताप हुआ। वह विचारा अनेक उपाय सोचता पर कुछ बन न पड़
तब एक झष ने उसे उपदेश दिया कि भाई तुम एक उपाय करो, वह यह
नेवले के स्थान से लेके, सांप के बिल तक मछलियों का मांस बिखेर दो। उ
वैसाही किया। अब नेवला निकला और मांस के टुकड़े खाता २ वहीं पहुँचा
बिल के भीतर जाकर उसने बालबच्चे सहित सर्प का संहार कर डाला।

इतना कह करकट फिर बोला कि मित्र। इस प्रकार उपाय ही से काम
लता है, सुनो इसी विषय में तुम्हें एक और कथा सुनाता हूं—

प्राचीनकाल में कोई वणिक्पुत्र था, पिता बहुत कुछ सम्पत्ति छोड़ग
पर उसने थोड़ेही दिनों में सारी सम्पत्ति उड़ा दी, केवल (लोहे की) एक त
बच गयी। तब उसे बड़ी ग्लानि हुई सो परदेश जाकर धन कमाने की चिन्त
हज़ार पल लोहे की वह तुला एक बनिये को सौंप वह परदेश चला गया। ...
दिनों के बाद कमा के अपने घर लौटा तब उस बनिये के पास जाकर अप...
तराजू मांगा। उस वणिक् ने उत्तर दिया कि भाई कहां से दूं उस तुला को तो
मूसे खा गये। यह सुन मनमें हँसकर इसने कहा "क्या किया जाय, वह लोहाही
ऐसा सुस्वादु था इसीसे मूसे खा गये; अस्तु, जो हुआ सो हुआ अब मुझे आज कुछ
भोजन तो कराओ।" उसने उत्तर दिया कि हां, हां, इसमें क्या है यह तो तुम्हारा
घर है बैठो आनन्द से भो... उस बनिये के छोटे लड़के के हाथ

आंदने का पात्र रख उसे साथ ले स्नान करने को गया स्नान पर उस बालक
। एक मित्र के घर में रखकर वह श्रीमान् अकेलाही बनिये के घर आया
श्रेष्ठ ने पूछा कि बालक कहां है तो उत्तर दिया कि भाई क्या कहूं कुछ
हीं बनता, एक बाज़ झपटा और उस बच्चे को उठा ले गया। तब तो वह ब
ड़ा क्रुद्ध हुआ और बोला 'क्या चालाकी करते हो, बालक को कहीं छिपा आ
ौर बात बनाते हो अभी तुम्हें कचहरी ले चलता हूं", इतना कह वह उस
णिक्पुत्र को न्यायालय में ले गया, वहां भी उसने वही बात कही जो पहले कही
ी। यह सुन राजसभा के लोग अचम्भित हो कहने लगे कि यह कब हो सकता
है कि बालक को बाझ उठा ले जावे? तब उसने यह दोहा पढ़ सुनाया—

जहां लौहनिर्मित तुला, मूस खाहिं महिपाल ।
तहँ गयन्द कहँ ले उड़ै, श्येन कहा पुनि बाल ॥१॥

यह सुनकर राजकर्मचारियों को और भी आश्चर्य हुआ, सो उनके पूछने पर उसने सब वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया। तब तो न्यायकर्त्ताओं ने उसको तुला दिलवा दी और उस वणिक्पुत्र ने बालक को लाकर उसके हवाले कर दिया।

इतनी कथा सुनाय करकट दमनक से कहने लगा कि भाई इस प्रकार बुद्धिमान् लोग उपाय से अभीष्ट सिद्ध कर लेते हैं; सुनो, एक कहावत है "गाँव से गढ़ तोड़ना", सो मित्र ऐसाही करना उचित था सो न कर तुमने सहसा प्रभु को विपत्ति में ढकेल दिया। दमनक की इतनी बात सुन करकट मुस्कुराकर बोला, "मित्र! यह

पांचवां तरङ्ग।

इस प्रकार नाना कथा सुनाकर भी जब मन्त्रिप्रवर गोमुख ने देखा कि अबभी नरवाहनदत्त का मन शक्तियशा ही में लगा है तब वह चतुर मंत्री उनके मनबहलाव के हेतु पुनः कथा सुनाने लगा। गोमुख बोला "देव! मार्गों के विषय में आप कथा सुन चुके हैं अब मैं मूर्खों की कथा आपको सुनाता हूं।"

किसी बड़े धनवान् बनिये का बेटा गूढ़बुद्धि नामक था, एक समय वह बनिज करने के हेतु कटाह द्वीप को गया, उसके सौदों में बहुत सा अगुरु भी था। और सब सौदे तो वहां बिक गये पर अगुरु किसी ने भी न खरीदा क्योंकि वहां के निवासी यह नहीं जानते थे कि यह है क्या वस्तु। उसने देखा कि लोग लकड़िहारों से कोयले खरीद रहे हैं सो उस मूर्ख ने अपने कालागुरु को जलाकर कोयला कर डाला। उन अगुरुओं को कोयला कर कोयले के मूल्य से बेंच अपने घर लौट गया और वहां लोगों से अपनी बड़ाई करने लगा। यह सुन लोग उसका उपहास करने लगे।

इतनी कथा सुनाय गोमुख फिर बोला "महाराज! यह तो अगुरुदाही की कथा आपको सुनाई गयी अब तिलकर्षं की कथा सुनिये।"

कोई एक ग्रामीण कृषक था, उसने कभी भूने तिल खाये उन्हें खाकर वह सोचने लगा कि अब ऐसेही तिल बोऊॅ तो बहुत सा तिल हो जायगा सो उसने भुने तिलों को बोया। वे भुने तिल भला कब उगें, वे तो खेत ही में नष्ट हो गये और उसका मनोरथ निष्फल हो गया। इसपर लोग उसकी हंसी करने लगे।

इतना कह गोमुख बोला कि देव! यह आपने तिल के खेतिहर की कथा सुनी अब आपको जल में अग्नि फेंकनेवाले की कथा सुनाता हूं।

पूर्वकाल में एक बड़ा मूर्ख आदमी था, वह एक रात पड़ा २ यह सोच रहा था कि कल देवता की पूजा करूँगा मेरे पास स्नान और धूपादि के लिये जल और अग्नि हैही सो उन दोन [illegible] रख [illegible] खोज के एकत्र करने की दिक्कत न उठानी पड़े, [illegible] ना सोचकर वह [illegible] में अग्नि डाल [illegible] है [illegible] ग बुझ

गयी है और पानी भी नष्ट हो गया. कोयले से मलिन जल देखतेही उसका
भी वैसाही हो गया और लोग यह देखकर हँसने लगे।

अग्निक्षेपक की कथा सुनाय गोमुख नरवाहनदत्त से कहने लगा कि भद्र!
अब नासिकारोपण की कथा सुनिये।

किसी ग्राम में एक मूर्खचपाट रहता था, उसकी स्त्री की नाक चिपटी थी
तथा गुरु की नाक उठी थी। उसने सोचा कि गुरुजी की नाक काटकर पत्नी की
नाक में जोड़ दूं तो इसकी नाक अच्छी सुहावनी हो जाय। यह सोच उस मूढ़-
मति ने एक दिन सोते हुए गुरु की नाक उड़ाही तो डाली और लाकर अपनी
भार्य्या की चिपटी नाक काट के उसमें गुरुजी की नाक जोड़ने लगा पर वह वहां
न जमी। इस प्रकार उसने स्त्री और गुरु दोनों को नाकविहीन कर दिया।

तब गोमुख फिर बोला कि वयस्य। यह कथा तो हो चुकी अब वनवासी
पशुपाल की कथा सुनिये।

किसी वन में एक बड़ा धनवान् पशुपाल रहता था, वह बड़ाही गबद् था,
बहुतेरे धूर्त्त गुट कर आके उसके मित्र हो गये। उन्होंने उससे कहा कि नगर में
एक बड़ा धनवान् व्यक्ति रहता है, उसके एक कन्या है, सो हमलोगों ने उससे
वह कन्या तुम्हारे लिये मांगी, भाई अहोभाग्य। कि पिता ने उसका देना स्वी-
कार कर लिया। यह सुन वह बड़ाही प्रमुदित हुआ और अहमक ने बिना
विचारे ही उन धूर्त्तों को बहुत सा धन दे दिया। कुछ दिनों के उपरान्त वे वञ्चक
उसके पास फिर पहुँचे और बोले "भाई तुम्हारा विवाह हो गया।" अबकी वह
और भी सन्तुष्ट हुआ और पहिले से अधिक धन उसने उनको दिया। पुनः कुछ
दिन बीते उन धूर्त्तों ने उससे जाकर कहा कि भाई बधाई देते हैं, तुम्हारे पुत्र
हुआ है। अब तो उस मूर्ख के आनन्द की सीमा न रही, मारे उत्साह के उसने
उनको अपना सर्वस्व दे डाला और उनसे कहा कि मैं अपने पुत्र के देखने के लिये
अत्यन्त उत्कण्ठित हूं।" पर देखे किसको, जब न तो पुत्र थी तब तो यहां तो केवल
प्रवञ्चना थी। सो वह मूढ़मति दूसरे ही दिन मारे हाय हे रोने लगा। उसके रोने
पर सब लोग हंसने और यह कहने लगे कि भले धूर्त्तों के पाले पड़ा, लोगों ने इसे
अच्छा ऐसा मूड़ा, आखिर तो पशुओं के सङ्ग रहनेवाला, इसको बुद्धि तो न थी सो।

इतनी कथा सुनाय गोमुख फिर बोला "देव। अशुपाल की कथा तो अब चमत्कारत्मक की कथा भी सुनिये।

एक गंवार था, एक बार वह कहीं अपनी खेत खोद रहा था, खोदते २ बहुत से आभूषण मिल गये, उन गहनों को राजा के यहां से चुराकर चोर वहां गाड़ गये थे, भाग्यवश वे इसके हाथ लगे। इस मूढ़ ने कभी उत्तम २ आभूषण देखे तो थे ही नहीं क्या जाने कि कहां क्या पहिनाया जाता है; उन्हीं भूषणों से अपनी भार्या को भूषित किया। करधनी माथे पर बांध दी, और हार को कमर में; पायजेबों को हाथों में पहिना दिया और कानों में कङ्कण डाल दिये। इसकी मूर्खता देख लोग हंसने लगे और परस्पर कनफुसाते थे; धीरे २ यह बात राजा के कानों में पहुंची तो उन्होंने उससे समस्त आभरण छीन लिये और उसे पशुवत् मूर्ख समझ छोड़ दिया।

इतना कह गोमुख ने नरवाहनदत्त से कहा कि देव! यह तो चमत्कारवान् की कथा आपसे कही गयी अब तूलिक की कथा कहता हूं, सुनिये।

कोई मूर्ख धुनिया बाजार में रूई बेचने गया पर कोई भी उससे रूई न लेता वे कहते थे कि रूई शुद्ध नहीं है (ठीक नहीं धुनी है), इससे बड़ी चिन्ता हुई, वह विचारने लगा कि अब क्या करूं, इतने में उसकी दृष्टि एक ओर पड़ी तो क्या देखता है कि एक सोनार ने सोने को आग में डालकर शुद्ध किया है और एक गाहक ने उसे मोल लिया है, बस उसको यह भावना हुई कि इस रूई को भी आग में डालकर शुद्ध कर लूं तो यह भी बिक जाय; यह सोच उस मूर्ख ने अग्नि दहका के उसमें रूई छोड़ दी, वह चट भस्म हो गयी, यह देख लोग हं-

पड़े, यह सोच उन गँवारों ने गांव के सब खजूर के पेड़ काट गिराये और म
[ख]जूरों को तोड़कर पीछे उन पेड़ों को वैसेही खड़ा कर दिया, भला वे अब कैं
[ल]ग सकते हैं ; तब वे सब खजूर बटोर कर राजा के यहां ले गये, पर आदर औ
पहार की बात कौन चलावे, जब राजा को यह ज्ञात हुआ कि सब पेड़ का
[ग]राये गये तब उन्होंने उन्हें कठिन दण्ड दिया।

इतना सुनाय गोमुख ने कहा "देव ! यह तो आपने खजूर तोड़नेवालों क
[क]ी सुनी, अब उसकी कथा सुनाता हूं जो धरती का गड़ा धन बतला देता था

किसी राजा के राज्य में एक निधानदर्शी * रहता था, जब राजा को उसक
बात विदित हुई तो उन्होंने उसको अपने यहां पकड़वाय मँगाया और मन्त्री
पूछा कि क्या उपाय किया जाय कि यह यहां से कहीं चला न जा सके। मन्त्
भी बुद्धि का शत्रु था बोला "महाराज ! इसकी क्या चिन्ता है, इसकी दोनों आं
निकलवा ली जावे फिर यह कैसे जा सकेगा।" इस प्रकार उस कुमन्त्री को म
न्त्रणा से राजा ने उस निधानदर्शी के नेत्र कढ़वा लिये । अब तो उसकी श
रही सो तो चलीही गई वह अब क्योंकर बतलावे कि अमुक स्थान में धन है, अ
उसका जाना और रहना एक सा हुआ। उसे अन्धा देख सब लोग उस मूर्ख मन्त्
का उपहास करने लगे।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज ! यह तो आपने निधानदर्श
की कथा सुनी अब लवणाशन की कथा सुनिये।

किसी गांव में एक बड़ा भारी जड़ मनुष्य रहता था, एक बार उसका को
नगरवासी मित्र नेवता देकर उसे अपने घर ले गया, वहां उसने उसे उत्तमोत्त
नमकीन व्यञ्जन भोजन करवाये। ऐसे उत्तम स्वादिष्ट पदार्थ खाकर उस गवइ
अपने मित्र से पूछा "कहो मित्र ! इस अन्न में ऐसा स्वाद कहां से आया ?" उस
मित्र ने उत्तर दिया कि भाई निमक एक ऐसा पदार्थ है कि उससे अन्न का स्वा
दही कुछ और हो जाता है। यह सुन उस जड़मति ने विचारा कि तब उसी क
न

जिससे ओठ मुंह और मोंछ सर्वत्र चूर्ण भर गया और उसका मुंह सफेद २ हे गया; सब लोग हंसने लगे।

इसके उपरान्त गोमुख पुनः कहने लगा कि देव। यह तो आपने निमक खानेवाले की कथा सुनी अब गौदोहक की कथा सुनिये—

किसी गांव में एक मनुष्य रहता था, वह बड़ा मूर्ख था; उसके एक गौ थी, जो प्रतिदिन सौ पल दूध देती थी। उसके घर कोई उत्सव होनेवाला था सो उसने कहा कि जिस दिन उत्सव होगा उसी दिन सब दूध दूह लेऊँगा। ऐसा सोच उस मूर्ख ने एक मास पर्य्यन्त उस गौ को नहीं दूहा। जिस दिन उत्सव था उस दिन वह मूढ़ उस गौ को दूहने लगा पर अब दूध कहां। यह देख लोग हँसने लगे।

गोमुख बोला "देव। यह तो आपने गोदोहक की कथा सुनी अब सुनिये मूर्खों की कथा कहता हूं"—

किसी स्थान में एक गंजा रहता था, उसकी खोपड़ी ऐसी चिकनी थी जैसे तांबे का गगरा। एक समय की बात है कि वह पेड़ की जड़ पर बैठा हुआ था उसी समय एक युवा पुरुष अत्यन्त भूखा कैथ बटोरे उसी मार्ग से आ निकला गंजे को देखकर उसको कौतुक हुआ सो उसने एक कैथ फेंककर उसके माथे मारा पर वह गंजा कैथ की चोट सह गया और कुछ न बोला। तब उस दुष्ट एक एक करके सब कैथों से उसे मारा, यहां लौं कि उस विचारे का शिर [illegible] का छत्ता हो गया और घावों से लहू की धाराएँ बह निकलीं पर वह तब भी चुपही रहा। अन्त में वह मूर्ख युवा सब कैथों को कौतुक से उस गंजे के शिर पर फेंक उसे चकनाचूर कर जैसे का तैसा भूखा ही अपना सा मुंह लिये चला गया इधर वह खल्वाट भी, जिसके शिर से लहू बह रहा था यह कहता हुआ अपने घर गया कि भला ऐसे स्वादिष्ट कपित्थों की चोट मैं क्यों न सहूं। तब बहते हुए रक्त पर पगड़ी बांधे हुए उस मूर्खाधिराज को देखकर ऐसा कौन होगा जो न हँसेगा? जो कोई उसे देखता सोही अपनी हँसी न रोक सकता।

इस प्रकार मूर्खों की कथा सुनाय गोमुख ने नरवाहनदत्त से कहा कि देव इसी भांति निर्बुद्धि लोग जगत् में अपनी हँसी कराते हैं और अपना कार्य्य सिद्ध [illegible] ... लोग बुद्धिमान् होते [illegible]

इस प्रकार गोमुख की कही मन बहलानेवाली कहानियां सुनकर नरवाहनदत्त अति प्रसन्न हुए, और सभाविसर्जन कर सन्ध्यावन्दनादि आह्निक कर्म में प्रवृत्त हुए।

जब रात्रि में सब कामों से सुचित्त हो बैठे तो उन्होंने बड़ी उत्कण्ठा से गोमुख को आज्ञा दी "सखे! फिर कुछ सुनाओ।" नरवाहनदत्त की इतनी बात सुन गोमुख बोला "बहुत अच्छा"। इतना कह वह बुद्धिमानों की कथा उठाकर यह कहानी कहने लगा।

किसी वन में एक बड़ा भारी सेमर का पेड़ था, उसमें लघुपाती नामक एक वायस रहता था। एक समय की बात है कि वह अपने खोते में बैठा था, ज्योंही उसकी दृष्टि पेड़ के नीचे पड़ी देखता क्या है कि एक महाभयङ्कर पुरुष हाथ में जाल और डण्डा लिये आया है, वह देखता ही रहा कि इतने में वह पुरुष धरती पर जाल फैला उसपर चावल छींट चुपचाप छिपके बैठ रहा।

इसी अवसर में चित्रग्रीव नामक कबूतरों का राजा सैकड़ों कपोतों के साथ आकाश में उड़ता हुआ यहीं आ पड़ा। जाल पर चावल तो छींटे ही थे सो वह कपोतराज खाने की इच्छा से अपने परिकर को लिये उतरा और सबों के साथ जाल में फँस गया। यह दशा देख चित्रग्रीव ने अपने अनुचरों से कहा कि भाइयो अब यही उपाय करो कि सबके सब अपनी २ चोंच से जाल को पकड़ो और बड़े वेग से एकदम उड़ चलो। "बहुत अच्छा" कह वे सब कबूतर जाल लेकर बड़े वेग से आकाशमार्ग से उड़ चले। वह लुब्धक भी उठकर ऊपर गिर उठा कुछ दूर लों निरखता चला अन्त में निराश हो लौट गया।

अब चित्रग्रीव निर्भय हो गया और अपने अनुचरों से कहने लगा कि कुछ भय नहीं है अब चले चलो मेरे मित्र हिरण्यक नामक मूषक के पास, वह हमारे बन्धनों को काटकर हमें निर्मुक्त कर देगा।

इस प्रकार अपने अनुचरों से कह कपोतराज उड़ता २ जाल लेकर उड़ने-वाले उन कबूतरों के साथ मूसे के बिलद्वार पर पहुंचा और आकाश से उतरकर बोला "भाई हिरण्यक! बाहर आओ, मैं चित्रग्रीव आया हूं"। मूसा सौ द्वार का बिल बनाकर रहता था, वह अपने मित्र का शब्द पहिचान, बिल के द्वार पर आया देखता क्या है कि सचमुच उसका सुहृद आया है, उसे देखते ही वह झट

बाहर निकल आया और उसके पास जाकर कुशल प्रश्न पूछने लगा। जब अपने मित्र को अनुचर सहित फँसा देख मूषक को बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने और कालातिपात न कर चटपट उन सभों के बन्धन काट उन्हें मुक्त कर दिया। बन्धन कट जाने पर दोनों मित्रों में परस्पर सुभाषित वार्तालाप हुआ। इसके अनन्तर चित्रग्रीव हिरण्यक से विदा हो अपने अनुचरों के साथ आकाश में उड़कर चला गया।

यह सब वृत्तान्त वह लघुपाती वायस देख रहा था क्योंकि वह भी उन कबूतरों के पीछे २ उड़ता आया था। जब मूसा अपने मित्र को विदा कर बिल में पैठ गया तब वह लघुपाती कौआ उसके बिलद्वार पर जाकर पुकार के कहने लगा "सखे। हिरण्यक मैं लघुपाती नामक वायस हूं, मैंने तुम्हारा सब चरित देखा, तुम बड़े मित्रवत्सल हो और विपत्ति से उद्धार करने में समर्थ भी हो सो मैं भी तुमसे मित्रता किया चाहता हूं।" उसकी ऐसी बात सुन, भीतरही से उस कौवे को देखकर मूषक ने कहा "जाओ जाओ भक्ष्यभक्षक की प्रीति कैसी?" यह सुन काक बोला 'मित्र। ऐसा न कहो, भला यदि मैं तुम्हें खा जाऊँगा तो मेरी क्षणभर की तृप्ति होगी, पर यदि तुम मित्र हो जाओगे तो सर्वदा मेरे प्राणों की रक्षा होगी।" इस प्रकार कह उस काक ने शपथ कर जब विश्वास उत्पन्न कराया तब मूसा बाहर निकला और कौवे ने उसके साथ मित्रता की। मूसा इधर उधर से मांस के टुकड़े और चावल ले आता और दोनों एक साथ खाके सुख से रहते।

एक समय उस कौवे ने अपने मित्र मूसे से कहा "मित्र। यहां से थोड़ी ही दूर पर बन के बीच एक नदी है, उसमें मन्थरक नामक एक कछुवा मेरा मित्र रहता है; मैं वहां उसी के निकट जाता (जाया चाहता) हूं। फिर एक बात और भी है कि वहां मांसादि खाद्य पदार्थ सुलभ हैं और यहां मुझको बड़ी कठिनता से भोजन मिलता है और सदा व्याधों का भय भी बना रहता है।" कौए की ऐसी बात सुन मूषक ने उससे कहा कि मित्र। जो मुझे भी वहीं ले चलो तो हम दोनों वहां एक साथ रहेंगे; यहां से मेरा चित्त भी ऊब गया है, इसका कारण वहीं चलकर तुमसे कहूंगा। इस प्रकार उसकी बात सुन लघुप

_ो चोंच में उठा उड़ चला और उड़ता २ उस बन की नदी के किनारे पहुँचा
_। कछुआ रहता था। मन्थरक ने अपने मित्र से मिलकर उसका आतिथ्य किया
_८ यह काक अपने सखा मूसे के साथ वहां बैठ गया। कुशलप्रश्नानन्तर कथा-
_ड़ से लघुपाती ने अपने मित्र कछुए से अपने आने का कारण तथा हिरण्यक
_किस प्रकार मैत्री हुई इत्यादि वृत्तान्त कह सुनाया। वायस से उस मूसे की
या सुन मन्थरक ने उससे भी मित्रता कर ली और उससे पूछा कि मित्र, तुमने
हस हेतु से खिन्न हो अपना देश त्यागा सो मुझे कह सुनाओ ? । मन्थरक का
ह प्रश्न सुन हिरण्यक उन दोनों से अपनी कथा कहने लगा।

नगर के समीप एक बड़े बिल में मैं रहता था, एक समय की बात है कि
रात्रि में मैं राजमहल से एक हार चुरा लाया और अपने बिल में उसे रक्खा; उसके
देखने से मेरी छाती दुगुनी रहती, पूर्वापेक्षा मेरा बल बहुत बढ़ गया। यह तो
आप जानतेही हैं कि जब धन होता है तो खानेवाले बहुत मिल जाते हैं, बस
अब क्या था बहुतेरे मूसे मुझे घेरे रहते। वे समझते थे कि यह बलवान् है, अन्न
खूब बटोर लावेगा, इसीसे वे सब हरदम मेरे निकट बने रहते थे। इसी अवसर
में एक साधु वहां आया और एक छोटा सा मठ * बनाकर रहने लगा, वह
भिक्षा मांगकर अपना जीवन निर्वाह करता था। दिनभर भीख मांगकर ले आता
और रात्रि में भोजन करता और जो कुछ बच रहता उसे उसी भिक्षापात्र में रख
कर एक खूंटी पर लटका देता कि सबेरे खाऊंगा। जब वह सो जाता तब भीतर
ही भीतर मैं वहां पहुँचता और एकही उछाल में उसकी सब रोटियां उठा ले
आता, यह मेरा प्रति रात का काम था।

किसी समय उसका एक मित्र दूसरा परिव्राजक आया, खा पीकर सुचित्त

बोला 'मित्र ! क्या कहूं; यहां एक मूसा मेरा शत्रु उत्पन्न हुआ है, वह उछलकर मेरा अन्न यहां से उठा ले जाता है, बस उसी के डेराने के लिये मैं बर्त्तन को ठोंककर हिला देता हूं।" उस परिव्राट् की ऐसी बात सुन वह परिव्राजक बोला "मित्र ! लोभ जन्तुओं का एक भारी दोष है, सुनो इसी वि में मैं एक कथा कहता हूं।"

एक समय की बात है कि मैं तीर्थयात्रा करता २ किसी नगर में पहुँचा, वा एक ब्राह्मण के घर में गया कि डेरा करूँ। जब मैं बैठ गया तो उस ब्राह्मण अपनी भार्या से कहा कि आज पर्व है सो ब्राह्मणों के लिये खीर बनाओ। इसपर पत्नी बोली कि तुम तो निर्धन हो भला तुम्हें इतना कहां मयस्सर है कि खीर पके ब्राह्मण बोला 'प्रिये ! यह क्या कहती हो, सञ्चय करके होगा क्या, ? मैं यह नहीं कहता कि सञ्चय करना ही नहीं, पर रात दिन उसी की चिन्ता में लगे रहना उचित नहीं है, बहुत संचय करने का फल अच्छा नहीं होता। सुनो इस विषय में तुमको एक कथा सुनाता हूं।"

किसी वन में आखेटी आखेट करने गया बहुतेरे पशुओं को मारकर, मांस बटोर वह चला तो सही पर धनुष पर बाण चढ़ायेही रहा कि कदाचित् कोई जन्तु आगे मिले तो उसे भी मार गिराऊँ। वह धनुष के छोर पर मांस लटकाये चला आता था कि अकस्मात् एक सूअर दीख पड़ा, वह सूअर के पीछे दौड़ा और उसपर भाला चलाया पर इधर भाले की मूठ धक्के से आकर उसके पेट में चुभ गयी जिस से उस व्याध की हो अँतड़ी चिथड़ गयी और वह वहीं गिरके यमपुर का पथिक हो गया। यह घटना दूर से एक सियार देख रहा था सो वह वहां पहुंचा, भूखा तो था ही और इतने मांस की ढेरी भी उसे मिली सो उसने विचारा कि यह सब मेरे लिये ही न है, अथवा खाऊँगा अब पहिले इस धनुष के छोर पर का मांस खाना चाहिये, यह सोच सूअर तथा व्याध के मांस में से उसने कुछ न खाया किन्तु वह धनुष पर का मांस खाने चला। झटका लगते ही धनुष पर का बाण छूट गया जिससे उस सियार का भी मरीचाल हो गया। इतनी कथा सुनाय ब्राह्मण फिर बोला 'प्रिये' सुना न तुमने, इसीसे मैं कहता हूं कि बहुत संचय न करना चाहिये, अति सञ्चय का फल ऐसाही भयानक होता है। देशी कहा भी है "मांस रहा सोय रहा भुसला के माईं। तोर मुंह मारके खान कोई गा।"

ण को इतनी बात सुन उसकी पत्नी उसके कथन पर सहमत हुई, और उसने सूखने के लिये घाम में तिल पसार दिये। जब वह किसी काम से ई कि एक कुत्ते ने आकर उस जूठार दिया, इससे कोई भी उसे नहीं मोल । इतना कह वह आगन्तुक साधु बोला कि मित्र! इस प्रकार लोभ से हीं प्रयुत झगड़ा होता है।

रण्यक बोला कि मित्रो! इतनी कथा सुनाय वह आगन्तुक परिव्राट् अपने से कहने लगा कि सखे! अच्छा एक फरसा हो तो मुझे देओ मैं एक ऐसा किये देता हूं कि फिर इस मूसे का उपद्रव हो न रहे। उसकी ऐसी बात ाठनिवासी साधु ने उसे कहीं से एक फरसा ला दिया। मैं छिपकर यह सब र देख रहा था, तदुपरान्त अपने बिल में पैठ गया। वह आगन्तुक परिव्रा फरसा लेकर उठा और मेरा बिल खोजकर खोदने लगा। मैं आगे २ भागता था और वह पीछे से खोदता चला आता था अन्त में वह वहां पहुँचा जहां हार तथा मेरा सर्वस्व था। तब उस आगन्तुक सन्यासी ने गृहस्वामी से कहा ा न मित्र! बस इसी हार के बल से वह चूहा इतना उछलता था, इसीसे ा बल ऐसा था।" उन दोनों की बात मैं सुन रहा था। तदनन्तर वे दोनों सर्वस्व ले हार को गले में पहिन प्रसन्नमन चले गये और आले में माला रख रहे। जब वे दोनों सो गये तो मैंने पुन: उस हार के चुरा लेने की चेष्टा की न्तु वह स्वामी सन्यासी जाग पड़ा और उसने ताक के एक डण्डा मेरे सिर पर ़ो तो जमाया। उससे मुझे तो चोट गहिरी लगी पर दैववश मरा नहीं और ल में म

इतनी कथा सुनाय हिरण्यक चूहा मन्थरक से कहने लगा कि हे कच्छपश्रेष्ठ! ऐसा तो मेरा हत्तान्त है, इस प्रकार उद्विग्न हो मैं वहां रहता था, फिर लघुपाती से मेरी मित्रता हुई सो इनको पाकर अब मैं तुम्हारे पास आया हूं।

हिरण्यक की इतनी बात सुन मन्थरक कछुवा बोला कि भाई हिरण्यक कुछ चिन्ता नहीं यह तुम्हाराही स्थान है तुम किसी बात की चिन्ता न करो, धैर्य रक्खो। देखो जो गुणी होता है उसके लिये क्या देश क्या विदेश, दोनों एक समान हैं, और जो सन्तुष्ट रहता है उसे किसी प्रकार का असुख नहीं होता। और विपत्ति में भी धैर्य नहीं छोड़ता मानों उसपर विपत्ति पड़ी ही नहीं और जो व्यवसायी होता है उसे कुछ असाध्य नहीं होता।

कछुवा इस प्रकार कह ही रहा था कि चित्राङ्गद नामक मृग व्याधों का डराया हुआ बड़ी दूर से भागा २ भूखा प्यासा उसी वन में चला आया। पीछे व्याध को न आया देख कूर्म इत्यादिकों ने उसे आश्वासन दे उसके साथ भी मित्रता कर ली। तदुपरान्त काक कूर्म मृग और मूसा परस्पर मित्रभाव को प्राप्त हो एक साथ सुख से रहने लगे।

एक समय की बात है कि चित्राङ्गद कहीं चरने गया था उसके आने की बेला टल गयी और वह न आया तब लघुपाती कौवा एक वृक्ष पर चढ़कर वनमें चतुर्दिक् देखने लगा तो क्या देखता है कि नदी किनारे एक जाल में फँसा चित्राङ्गद पड़ा है। यह देख कौवे ने उतरकर मूसे और कछुवे से उसका
तब मन्त्रणा कर लघुपाती हिरण्यक को अपनी चोंच में उठाकर
ले गया; हिरण्यक ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझा
करो मैं अभी तुम्हें छोड़ाये देता हूं। इतना कह
कुतर डाला और मृग को निर्बन्ध कर दिया। इतने
ही भीतर मन्थरक भी वहीं जा पहुँचा और किनारे
में पाश फैलानेवाला वह व्याध भी कहीं से आ
ही भाग गये पर कछुवा न भाग सका सो व्याध
मृग के निकल जाने से वह लुब्धक खिन्न तो होही
भीतर रखकर ले चला। यह देख दूरदर्शी कौए ने

निकालकर एक पेड़ में कसके बांध दिया कि प्रात:काल देवी के सान्हने इसे बलि चढ़ाऊँगा। इसके उपरान्त वह दुष्ट भिल्ल खा पीके उसीके सान्हने उसकी स्त्री से आनन्दपूर्वक रमण कर सो रहा और वह बिचारा टुकुर २ यह सब चरित्र देख रहा था।

जब दोनों को नींद आ गयी तब इधर वह पेड़ में बँधा हुआ डाही अपने मन में बड़ी चिन्ता करने लगा कि हाय अब मेरा क्या होगा। हाय म हो मारा जाऊँगा इत्यादि विविध विलाप कर अन्त में उसे ज्ञान हुआ सो व जगदम्बा दुर्गतिनाशिनी श्रीदुर्गाजी की स्तुति करने लगा। जगज्जननी के हृदय में करुणा उठी सो उसके समक्ष आ उपस्थित हुईं और बोलीं "पुत्र। भय मत कर तेरे बन्धन अभी कट जाते हैं, इसी के खड्ग से इस दुष्ट का शिर काटकर निःशङ्क हो तू अपने घर चला जा।" भगवती महामाया की कृपा से उसके ब गये, सो उसने उस भिल्लही के खड्ग से उसका शिर काट डाला। वह तो था उसे कहां सूझे कि मेरी पत्नी ऐसी दुष्टा है सो उसने उसे जगाया और कि प्रिये। उठो चलो, मैंने इस पापिष्ट को मार डाला; वह कसक के उठी और उस भिल्ल का शिर छिपाकर लेके अपने पति के साथ चल पड़ी। जब प्रात:काल एक नगर मिला तो वह व्यभिचारिणी वहीं फिसल गई और भिल्ल का शिर दिखा२ फूट २ रोने लगी और पति की ओर दिखा २ यह कहती कि इसी दुष्ट ने मेरे पति को मार डाला है। पुलिस ने झट उसे पकड़ा और उस स्त्री के साथ राजा के समक्ष उपस्थित किया। राजा के पूछने पर वह ईर्ष्यालु आद्योपान्त सब वृत्तान्त कह गया। राजा ने अनुसन्धान लगाया तो उसकी बात पक्की ठहरी तब तो महीपति ने उस कुलटा के दोनों कान और नाक कटवा डाले और उसके पति को छोड़ दिया। वह कुवनितारूपी ग्रह से छुटकारा पा अपने घर चला गया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव। ईर्ष्यापूर्वक जिस स्त्री की रखवाली की जाती है उसका फल ऐसाही होता है, फिर ईर्ष्याही स्त्रियों को अन्य पुरुष का प्रसङ्ग सिखलाती है, अत: बुद्धिमान् को चाहिये कि स्त्री की इस प्रकार से रक्षा करे कि उसकी यथार्थ रक्षा हो और ईर्ष्या भी प्रगट न हो। फिर जो पुरुष अपना कल्याण चाहे उसे उचित है कि अपना रहस्य (गुप्तभेद) स्त्री को कदापि न बतलावे, सुनिये इसी विषय में आपको एक कथा सुनाता हूं।

इधर उसका पति कुछ दिनों के उपरान्त परदेश से लौटा, दासी तो सिखाई पढ़ाई थी ही झूठमूठ मुंह बना आंसू बहा रोने लगी और बोली कि क्या कहूं बड़ा गजब हुआ, आपकी भार्य्या तो मर गई, आप तो यहां थेही नहीं किसी प्रकार से उसका अग्निसंस्कार करवा दिया, इतना कह वह उस मूर्ख को श्मशान पर ले गई और किसी चिता की जली बली हड्डियां दिखाके बोली देखिये येही आपकी स्त्री की हड्डियां हैं। वह मूर्ख तो महाजपाट था उन हड्डियों को बटोरकर रोने लगा फिर तीर्थस्थान में जाके उसे तिलाञ्जलि दी और उसकी हड्डियां वहीं प्रवाह कर घर आकर अपनी पत्नी का श्राद्ध करने लगा। अब श्राद्ध में कोई ब्राह्मण चा हिये सो वह दुष्टा दासी उसी की पत्नी के उपपति को बुला लाई और उस मूर्ख ने उसी को श्राद्ध का ब्राह्मण बनाया। उसकी पत्नी भी बड़े सज धज से बन ठ कर उस जार के साथ आती और मासिक श्राद्ध में मिष्टान्न भोजन करती। दा ने उस मूर्ख को समझा दिया कि प्रभो! आइये और देखिये, यह आपकी ' है, सती धर्म्म का ऐसा प्रभाव है कि वह इस ब्राह्मण के साथ आती और आ अन्न भोजन करती है। वह जपाट दासी की बात सत्य मानता और यही सम रहा कि सचमुच मेरी भार्य्या मर गयी है और प्रतिमास आकर श्राद्ध का अ जाया करती है।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव। इसी प्रकार सीधे सादे लोग दु से ठगे जाते हैं। आपने इस मूर्ख हाड़वाले की कथा सुनी अब चाण्डाल या

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव ! कोई मित्र तो केवल उपकार ही जानता है पर सखा मित्र दूसराही होता है, देखिये स्नेह (१) दोनों में होता है पर तेल तेलही है और घी घीही है । इस प्रकार मूढ़ की कथा सुनाय गोमुख फिर भी मूर्खों ही की कथा सुनाने लगा ।

कोई मूर्ख परदेश को चला, मार्ग में उसे प्यास लगी और आगे एक जंगल पड़ा, प्यास के मारे एक पग चलना कठिन हो गया, ज्यों त्यों करता अरण्य पार हो एक नदी पर पहुंचा और पानी न पी किनारे खड़ा हो जल की ओर टकटकी लगाय देखने लगा । उसकी यह दशा देख एक मनुष्य ने उससे पूछा "भाई तुम प्यासे तो प्रतीत होते हो, कहो तो सही नदी साम्हने बह रही है मनमाना जल क्यों नहीं पी लेते हो ?" इस प्रश्न पर उस मन्दबुद्धि ने उत्तर दिया कि भाई इतना जल मैं कैसे पी सकता हूं । वह समझ गया कि यह बड़ा मूर्ख है, तब हँसकर बोला कि जो तुम सब जल न पी जाओगे तो क्या राजा तुम्हें दण्ड देंगे ! तिसपर भी उस मूर्ख जपाट ने जल न पीया ।

सो देव ! यह मूर्खों का स्वभाव है कि यदि कोई काम अपने से पूरा २ न हो सके तो यह न करेंगे कि जितना हो सके उतना ही सही, थोड़ा ही थोड़ाही सही, वे सदा यही चाहते हैं कि समस्त कार्य्य एक सा ही हो जाय ।

इतना कह गोमुख फिर बोला कि देव । यह आपने उस जलभीत (पानी से डरे हुए) की कथा सुनी अब आपको पुत्रघाती की कथा सुनाता हूं ।

कोई मनुष्य था जो मूर्ख होने के सिवाय बड़ा दरिद्र भी था, उसके कईएक पुत्र थे । दैवात् उसका एक लड़का मर गया सो उस मन्दमति ने अपने एक दूसरे पुत्र को यह कहकर मार डाला कि वह बालक छोटा है, ऐसे दूर मार्ग पर कैसे अकेला चलेगा यह उसका साथी रहे तो अच्छा होगा । उस मूर्खराज की ऐसी करनी देख सब लोग उसकी निन्दा करने लगे, जहां तहां उसका उपहास होने लगा यहांलों कि सब लोगों ने एका कर उस मूढ़ को देश से निकलवा दिया । ठीक है निर्विवेक मनुष्य और पशु दोनों एक समान होते हैं ।

(१) तेल और घृत　　　　मित्र पक्ष में प्रेम ।

गोमुख बोला महाराज ! यह तो आपने पुत्रघाती की कथा सुनी अच्छा अब भ्रातृभीत (दूसरे को भाई बनानेवाले) की कथा सुनिये ।

किसी समाज में बैठा हुआ एक मूर्ख वार्तालाप कर रहा था, इसी अवसर में दूरवर्त्ती एक धनीपात्र पर उसकी दृष्टि पड़ी तो क्या कहता है कि देखो वह जो है सो मेरे भाई लगते हैं इससे उनके धन का मैं अधिकारी हूं, जो कुछ धन होगा मैं लेऊँगा परन्तु उनको जो कुछ ऋण है सो तो मैं अपने माथे नहीं ले सकता क्योंकि मैं तो उनका कोई नहीं लगता। उस महामूढ़ की ऐसी बात सुन पत्थर भी हँस पड़ा। यह मूर्खों की मूर्खता है, फिर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मूर्ख केवल मूढ़ही नहीं प्रत्युत स्वार्थान्ध भी होता है।

इसके उपरान्त गोमुख पुनः कहने लगा कि देव ! यह भ्रातृभीत की कथा आपने सुनी अब मैं ब्रह्मचारी के पुत्र की कथा आपको सुनाता हूं।

एक समय की बात है कि एक महामूर्ख जन अपने मित्रों की मण्डली में बैठा बातचीत कर रहा था, इधर उधर की बात करते २ वह अपने पिता की प्रशंसा करने लगा, और आगा पीछा बिना सोचे विचारे बोला कि मेरे पिता पूर्ण ब्रह्मचारी हैं उनके समान कोई व्यक्ति इस लोक में नहीं है । उसकी ऐसी बात सुन उसके मित्रों ने हँसकर पूछा कि भाई तुम्हारे पिता तो ब्रह्मचारी हैं तो तुम कैसे होगे ? तब उस मूर्ख ने उत्तर दिया कि मैं तो उनका मानस पुत्र हूं, इससे सब मित्र उस मूर्खशिरोमणि का और भी उपहास करने लगे। सो देव ! यह मूर्खों का स्वभाव है कि व्यर्थ बहुत फौंकते और सबके साम्हने अपने को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं।

गोमुख ने कहा महाराज। यह ब्रह्मचारी के बेटे की कथा है अब आपको एक ज्योतिषी की कथा सुनाता हूं।

किसी गांव में एक ब्राह्मण रहता था, लोग उसे ज्योतिषीजी कहकर पुकारते पर यथार्थ में ज्ञानशून्य था। अपने देश में जब वह भली भांति कुटुम्ब के पेट पालने भर अन्न न कमा सका तब परदेश जाने पर उतारू हुआ और पुत्र तथा भार्य्या को लेकर विदेश चला गया। वहां उसने धूर्त्तता जमाई और दम्भ से धन कमाने का ढंग रचा । एक दिन की बात है कि वह सबके साम्हने अपने पुत्र को गले लगाय बिलख २ रोने लगा लोगों ने उसके रोने का कारण पूछा तो उस पापी

वृत्तांधिराज ने उत्तर दिया कि मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् तीनों काल की बात जानता हूं, मेरा यह प्यारा पुत्र आज से सातवें दिन मर जायगा बस यही सोच २ में रो रहा हूं। यह सुन लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। आगे जब सातवां दिन आया तो उस निर्दय मूर्खशिरोमणि ने बड़े तड़केही अपने सोते हुए पुत्र को किसी युक्ति से मार डाला। रोना पीटना मच गया, लोग इकट्ठे हुए कि क्या व्यापार है, देखें तो ज्योतिषी जी का पुत्र सचमुच मर गया है, यह देख लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ सो वे लोग समझने लगे कि यथार्थ में यह एक बड़े भारी ज्योतिषी ही नहीं प्रत्युत एक सिद्ध पुरुष भी हैं कि जो कहते हैं सो ही जाता है। बस अब क्या था अब तो अब धन का ठिकाना ही नहीं कि कितना आया, अहूँ और उसकी कीर्त्ति फैल गई, भली भांति पूजा होने लगी, अब क्या पूछना। जब बहुत कुछ सम्पत्ति इकट्ठी हुई तब एक दिन उस मूर्खराज ने चुपचाप अपने देश का मार्ग लिया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज। इस प्रकार अपना नाम बढ़ा के धन के लोभ से मूर्ख लोग पुत्र का भी वध कर डालते हैं। हा। धनागा ऐसी कठिन है। किन्तु देव। जो बुद्धिमान् होता है वह ऐसे २ धूर्त्तों की धूर्त्तता समझ लेता है और उनसे भूलकर भी संग नहीं करता। बुद्धिमानों को उचित है कि सदा ऐसों से बचे रहें। अच्छा, अब एक क्रोधी मूर्ख की कथा सुनिये।

किसी स्थान में बैठक के भीतर बैठे हुए दो चार जन इधर उधर की बातें कर रहे थे कि इतने में किसी व्यक्ति की प्रशंसा छिड़ गयी; भाग्यवश वह उसी क्षण वहां पहुँच गया और बाहर से ही अपनी प्रशंसा सुनने लगा। इतने में भीतर प्रशंसा करनेवाले की बात छेड़ दूसरे ने कहा कि भाई उसमें ये सब गुण हैं, वह बड़ा गुणवान् है पर उसमें दो भारी दोष भी हैं, एक तो यह कि वह बड़ाही साहसी है; दूसरे, बड़ा क्रोधी भी है। बस अब क्या वह बहिर्वर्त्ती जन जो कि अपना गुणाख्यान सुन रहा था, दोषाख्यान सुन आपे से बाहर हो गया, झटपट घर के भीतर घुस गया, और उसके गले में दुपट्टा लपेट बड़े क्रोध से तन हो कहने लगा "क्यों वे बतला तो सही मैंने क्या साहस (अन्धेर) किया है और मैं क्रोधी कैसे हुआ?' यह देख जितने लोग वहां थे हँस पड़े और बोले "अब भी क्या पूछना है? आप

गोमुख बोला महाराज ! यह तो आपने पुत्रघाती की कथा सुनी अच्छा भ्रातृभीत (दूसरे को भाई बनानेवाले) की कथा सुनिये।

किसी समाज में बैठा हुआ एक मूर्ख वार्तालाप कर रहा था, इसी अवसर दूरवर्त्ती एक धनीपात्र पर उसकी दृष्टि पड़ी तो क्या कहता है कि देखो वह हैं सो मेरे भाई लगते हैं इससे उनके धन का मैं अधिकारी हूं, जो कुछ धन हो मैं लेऊँगा परन्तु उनको जो कुछ ऋण है सो तो मैं अपने माथे नहीं ले सकता क्योंकि मैं तो उनका कोई नहीं लगता। उस महामूढ़ की ऐसी बात सुन भी हँस पड़ा। यह मूर्खों की मूर्खता है, फिर यह बड़े आश्चर्य की बात है कि मूर्ख केवल मूढ़ही नहीं प्रत्युत स्वार्थान्ध भी होता है।

इसके उपरान्त गोमुख पुनः कहने लगा कि देव ! यह भ्रातृभीत की कथा आपने सुनी अब मैं ब्रह्मचारी के पुत्र की कथा आपको सुनाता हूं।

एक समय की बात है कि एक महामूर्ख जन अपने मित्रों की मण्डली में बैठा बातचीत कर रहा था, इधर उधर की बात करते २ वह अपने पिता की प्रशंसा करने लगा, और आगा पीछा बिना सोचे विचारे बोला कि मेरे पिता पूर्ण ब्रह्मचारी हैं उनके समान कोई व्यक्ति इस लोक में नहीं है। उसकी ऐसी बात सुन उसके मित्रों ने हँसकर पूछा कि भाई तुम्हारे पिता तो ब्रह्मचारी हैं तो तुम कहाँ से? तब उस मूर्ख ने उत्तर दिया कि मैं तो उनका मानस पुत्र हूं, इसपर सब मित्र उस मूर्खशिरोमणि का और भी उपहास करने लगे। सो देव! यह मूर्खों का स्वभाव है कि व्यर्थ बहुत फौंकते और सबके साम्हने अपने को सर्वश्रेष्ठ बतलाते हैं।

गोमुख ने कहा महाराज ! यह ब्रह्मचारी के बेटे की कथा एक ज्योतिषी की कथा सुनाता हूं।

किसी गांव में एक ब्राह्मण रहता था, लोग उसे पर यथार्थ में ज्ञानशून्य था। अपने देश में जब वह भली भर धन न कमा सका तब परदेश जाने पर उतारू हुआ को लेकर विदेश चला गया। वहां उसने धूर्तता जमाई का ढंग रचा। एक दिन की बात है कि वह सबके लगाय बिलख.२ रोने लगा लोगों ने उसके रोने का

भार्या ने पूछा कि बकरया चला गया तुमसे कुछ ले तो नहीं गया ? उसने उत्तर दिया "आधा पण तो ले गया है ।" तब वह दश पण राहखर्च लेकर चला और चलते २ नदी किनारे पहुँचा वहां वह सेवक मिला, बस यह उससे आधा पण लेकर लौट आया और लोगों के साम्हने फौंकने लगा कि मैं ही था जो उससे आधा पण ले सका पर जो सुनता वही हँसी करता । इसी प्रकार मूर्ख लोग बहुत गँवाकर थोड़ा बचाते हैं और अपने को महा बुद्धिमान् समझते हैं ।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि प्रभो ! अब मैं आपको अभिज्ञानकर्ता (१) की कथा सुनाता हूं ।

कोई मूर्ख जहाज पर चढ़ा हुआ समुद्र में कहीं चला जा रहा था, अकस्मात् उसके हाथ से चांदी का एक पात्र सागर में गिर पड़ा सो उसने वहां के तरङ्गादिक का चिन्ह कर दिया और मनमें कहने लगा कि कुछ चिन्ता नहीं उधर से लौटूंगा तो गोता मारकर निकाल लूंगा । जब समुद्र के पार पहुँचा तो वहां भी वैसेही तरंग दीख पड़े उसने समझा कि यह वही स्थान है जहां मेरा पात्र गिर पड़ा था, तो वह वहीं गोते लगाने लगा। लोगों ने जब इसका कारण पूछा तो उसने अपना वृत्तान्त कह सुनाया, यह सुन सब लोग हँसने और उसे धिक्कारने लगे ।

गोमुख बोला कि अब आप उस राजा की कथा सुनिये जिसने मांस के पलटे मांस देने में अपनी मूर्खता प्रगट किई ।

एक राजा थे, एक समय वह अपने प्रासाद के कोठे पर बैठे थे, क्या देखते हैं कि दो जन जा रहे हैं उनमें से एक के हाथ में रसोई का कुछ चोराया हुआ मांस है । राजा ने झट उसे पकड़ मँगाया और उसके शरीर में से पांच पल मांस कट वाय लिया, वह बिचारा मांस कट जाने से धरती पर गिरके छटपटाने लगा, तब भी राजा को दया आई, उन्होंने प्रतीहार को आज्ञा दी कि पांच पल मांस काट लेने से इसे बहुत व्यथा हुई है अच्छा इसे पांच पल से अधिक मांस दे दो । प्रतीहार बोला "देव ! यदि किसी का सिर कटवा लिया जाय और फिर उसे सैकड़ों सिर दे दिये जावें तो क्या वह जी सकता है अच्छा दे दूंगा ।" इतना कह वह अपनी हँसी न रोक सका बाहर जाकर पेट भर हँसा । पश्चात् उन्होंने आश्वासन

(१) चीन्ह करनेवाला।

गयों से पूछा कि चकरया चला गया तुममें कुछ ले तो नहीं गया ? उसने उत्तर दिया "आधा पण तो ले गया है ।" तब वह दस पण राहखर्च लेकर चला और चलते २ नदी किनारे पहुँचा वहां वह सेवक मिला, बस यह उससे आधा पण लेकर लौट आया और लोगों के साम्हने फोंकने लगा कि मैं ही था जो उससे आधा पण ले सका पर जो सुनता वही हँसी करता। इसी प्रकार मूर्ख लोग बहुत गंवाकर थोड़ा बचाते हैं और अपने को महा बुद्धिमान् समझते हैं।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि प्रभो! अब मैं आपको अभिज्ञानकर्त्ता (१) की कथा सुनाता हूं।

कोई मूर्ख जहाज पर चढ़ा हुआ समुद्र में कहीं चला जा रहा था, अकस्मात् उसके हाथ से चांदी का एक पात्र सागर में गिर पड़ा सो उसने वहां के तरङ्गादिक पर चिह्न कर दिया और मनमें कहने लगा कि कुछ चिन्ता नहीं उधर से लौटूंगा तो गोता मारकर निकाल लूंगा । जब समुद्र के पार पहुँचा तो वहां भी वैसेही टेढ़ दीख पड़े उसने समझा कि यह वही स्थान है जहां मेरा पात्र गिर पड़ा था, सो वह वहीं गोते लगाने लगा। लोगों ने जब इसका कारण पूछा तो उसने अपना वृत्तान्त कह सुनाया, यह सुन सब लोग हँसने और उसे धिक्कारने लगे।

गोमुख बोला कि अब आप उस राजा की कथा सुनिये जिसने मांस के पलटे मांस देने में अपनी मूर्खता प्रगट किई।

एक राजा थे, एक समय वह अपने प्रासाद के कोठे पर बैठे थे, क्या देखते हैं कि दो जन जा रहे हैं उनमें से एक के हाथ में रसोई का कुछ चोराया हुआ मांस है। राजा ने झट उसे पकड़ मँगाया और उसके शरीर में से पांच पल मांस कट वाय लिया, वह विचारा मांस कट जाने से धरती पर गिरके छटपटाने लगा, तब तो राजा को दया आई, उन्होंने प्रतीहार को आज्ञा दी कि पांच पल मांस काट लेने से इसे बहुत व्यथा हुई है अच्छा इसे पांच पल से अधिक मांस दे दो। प्रतीहार बोला "देव! यदि किसी का सिर कटवा लिया जाय और फिर उसे सैकड़ों सिर दे दिये जावें तो क्या वह जी सकता है अच्छा दे दूंगा।" इतना कह वह अपनी हँसी न रोक सका बाहर जाकर पेट भर हँसा। पश्चात् उन्होंने आश्वासन

(१) चीन्ह करनेवाला।

है उस मांसकटे को वैद्यों के पास चिकित्सार्थ भेज दिया। इस प्रकार मूर्ख दण्ड देना जानते हैं अनुग्रह नहीं जानते।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव! अब मैं आपको उस मूर्खा स्त्री की कथा सुनाता हूं जो एक दूसरा पुत्र चाहती थी।

एक स्त्री के एकही पुत्र था, वह चाहती थी कि एक और पुत्र हो जाय, उसने एक तापसी से पूछा कि आप कुछ ऐसा उपाय कर देती कि मेरे एक और हो जाता। वह तापसी टोनियल थी सो वह पाखण्डा बोली "यह जो छोटा बालक है उसे मारकर देवता को बलि चढ़ा दे तो तेरे दूसरा पुत्र हो। उसकी ऐसी बात सुन ज्यों वह ऐसा दुस्साहस करने चली कि एक वृद्धा स्त्री उसका हाल जान आकर एकान्त में उसे समझाने लगी कि अरी तू यह क्या करने चली है, अरे पापे! जो पुत्र सामने है उसे मारकर अज्ञात पुत्र की कामना करती भला तुझे ऐसी कुमती कैसे सूझी? जो पुत्र न हुआ तो तू क्या करेगी तब यह बच्चा भी चला न जायगा। इस प्रकार समझाबुझाकर उस वृद्धा ने उस पापिनी को पाप से बचाया। इस भांति डाकिनियों की संगति से स्त्रियां कुमित में लगाई जाती हैं किन्तु वृद्ध के उपदेश से उनकी रक्षा होती है।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव! अब आंवला लानेवाले की कथा आपको सुनाता हूं।

किसी गृहस्थ के यहां एक सेवक था जो बड़ाही गबद्द था। गृहस्वामी को आंवले बहुत अच्छे लगते थे उसने एक दिन उस सेवक से कहा कि जाकर उद्यान से मीठे आंवले तोड़ ला। वह मूर्ख वहां गया और एक २ आंवला तोड़ २ चीखने लगा कि मीठा है कि नहीं, इस प्रकार चीख २ बहुत से आंवले तोड़कर अपने स्वामी के पास ले गया और बोला "प्रभो! देखिये मैं इन आंवलों को चीख कर लाया हूं ये सब मीठे हैं।" गृहस्थ ने देखा कि आधे आंवले जूठे कर दिये गये हैं तो उसने सब आंवले फेंकवा दिये और उस मूर्ख सेवक को भी छुट्टी दे दी। इस प्रकार मूर्ख जन अपने स्वामी का काम बिगाड़ते हैं और आपको अपनी भी हानि करते हैं।

"यह कथा तो आपने सुनी," गोमुख ने कहा, "अब आपको दो आदमी की कथा सुनाता हूं।

पाटलीपुत्र नामक नगर में दो भाई ब्राह्मण रहते थे, बड़े का नाम यज्ञसोम और छोटे का कीर्त्तिसोम था। उनके पिता के पास बहुत धन था जिसे उन दोनों ने बांट लिया था। कीर्तिसोम ने अपना भाग व्यवहार करके बढ़ाया परन्तु यज्ञसोम ने खा पी और दे देवाकर अपना हिस्सा उड़ा डाला। जब उसका सब माल नष्ट होने पर वह निर्धन हो गया तब अपनी भार्य्या से एक दिन कहने लगा "प्रिये! मैं तो धनी था अब निर्धन हो गया तो अब भाई बन्धुओं के बीच निर्धन होकर कैसे रहूं विचार होता है कि चलो कहीं परदेश चले चलें।" भार्य्या बोली कि राहखर्च भी तो है नहीं कहां चलें। पत्नी की ऐसी बात सुनकर भी जब वह अपने हठ से न टला तो उसकी भार्य्या फिर बोली कि अच्छा यदि चलना ही है तो अपने छोटे भाई कीर्तिसोम से जाकर कुछ पाथेय (राहखर्च) मांग लो। तब उसने जाकर अपने लघुभ्राता से कुछ पाथेय मांगा इसी अवसर में उसकी भाभी ने आकर अपने पति से कहा "इन्होंने तो अपना सब धन उड़ा डाला हम इन्हें कहां से दें और देवें भी तो कितना देवें, ऐसे देने लगें तो जोही दरिद्र होगा वही हमसे आकर मांगा करेगा।" यद्यपि कीर्तिसोम अपने भाई को प्यार करता था तथापि भार्य्या की ऐसी बात सुन उसने यज्ञसोम को शाक भी न देना चाहा। [illegible]

भाग। इस पात्र में मुझ अबला को कौन भिचा देगा, उसकी ऐसी बात सुन अज गर बोला "जिससे तुम भिचा मांगोगी और यदि वह न देगा, तो उसका सिर उसी क्षण टूक टूक हो जायगा सुनो मैं सच कहता हूं मेरी बात कदापि अन्यथा नहीं होगी"। अजगर की इतनी बात सुनते ही उस सती ब्राह्मणी ने कहा "यदि ऐसा ही है तो हे अजगर! मैं तुम्हीं से भर्त्तृभिचा मांगती हूं बस मेरा पति मुझे मिल जाय मेरी भिचा यही है।" उस पतिव्रता ब्राह्मणी की इतनी बात सुन उस अज गर ने अपने मुख से उस यज्ञसोम ब्राह्मण को अचत (१) और जीवित उगल दिया। उसे उगलकर वह अजगर दिव्यरूपधारी पुरुष हो गया और अति सन्तुष्ट और प्रसन्न हो उस दम्पती से कहने लगा "मैं विद्याधरों का राजा काञ्चनवेग हूं, गौतममुनि के शाप से अजगर हो गया था, जब मैंने बहुत विनति की तब मुनि ने मेरे शाप का उद्धार यों कर दिया कि जब किसी साध्वी से तुम्हारी बातचीत होगी तब तुम इस योनि से छूट जाओगे, सो आज तुम्हारे प्रताप से मेरे शाप का अन्त हो गया।" इतना कह विद्याधरेन्द्र ने उस स्वर्णपात्र को रत्नों से भर दिया, पश्चात् उन दोनों से विदा हो अत्यन्त प्रमुदित मन आकाश में उड़कर अपने लोक को चला गया और वे दोनों स्त्री पुरुष रत्नों की ढेरी पाय प्रसन्नहृदय अपने घर लौट आये। अचय धन पाकर यज्ञसोम अपनी भार्या के साथ सुखपूर्वक रहने लगा। सत्वानुरूप विधाता सबको सब कुछ देते हैं।

गोमुख बोला, "महाराज! अब मैं आपको उस मूर्ख की कहानी सुनाता हूं जिसने राजा को सन्तुष्ट करके उनसे उनके नापित को मांगा था।"

कर्णाटक देश के राजा के यहां एक शूर था किसी समय युद्ध में उसने ऐसा पराक्रम दिखाया कि राजा अति प्रसन्न हो बोले कि जो चाहो सो मांग लो। उस चुद्रहृदय ने राजा के नापित को ही मांग लिया। चाहे भला हो या बुरा, जिसको जो अच्छा लगता है वह वही मांगता है।

गोमुख ने कहा कि यह तो आपको मूर्ख नापित मांगनेवाले की कथा सुनाई अब उसकी कथा सुनिये जिसने "कुछ भी नहीं" मांगा।

एक मूर्ख कहीं चला जा रहा था, मार्ग में एक सम्माड़ मिला; सम्माड़ पर के

(१) तनिक भी चोट न लगी हो।

मनुष्य ने उससे कहा कि भाई तनिक मगड़वा तो सीधा कर देते । तब मूर्ख ने कहा कि जो मगाड़ सीधा कर देऊँगा तो क्या दोगे ? उसने उत्तर दिया 'कुछ भी नहीं'। तब उस मूर्ख ने सगाड़ सीधा कर दिया और सगड़वाले से बोला "कुछ भी नहीं" दीजिये। यह सुन वह हँसने लगा।

इस प्रकार मूर्खों की अनेक कथायें सुनाय गोमुख बोला "देव ! मूर्ख लोग इसी भांति अपनी मूर्खता के कारण सदैव हास्यभाजन और निन्द्य होते हैं और कभी २ विपत्ति में भी पड़ जाते हैं और सज्जन लोग सदा पूजे जाते हैं।

या भांति गोमुखमुखोक्त कथा समाजा (१)
रानी विषे (२) अकनि मंत्रिसमेत राजा।
विश्रामदायिनि जगत्त्रय की जो आही
निद्रा, गह्यो सुनरवाहनदत्त ताही ॥ १ ॥

छठवां तरङ्ग।

दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर सब कार्यों को कर नरवाहनदत्त अपनी पिता वत्सेश्वर के दर्शन करने उनके निकट गये, वहां उसी समय पद्मावतीदेवी के भाई मगध देश के राजपुत्र सिंहवर्म्मा भी आये, उनके आने पर आगत स्वागत की बात चली और उन्हीं के सत्कार आदि में दिन बीता और रात्रि आई तब ब्यालू कर नरवाहनदत्त अपने मन्दिर में शयन करने चले गये, पर मन तो इनका शक्तियशा में लगा था नींद आवे तो कैसे आवे। तब महाबुद्धिमान् गोमुख उनके मनोविनोदार्थ पुनः कथा कहने लगा। वह बोला राजन् !

किसी स्थान में एक बड़ा विशाल बड़ का वृक्ष था उसपर असंख्य पक्षी बसेरा करते, थे उन पक्षियों के कोलाहल से ऐसा भासता था मानो वह पथिकों को अपनी सघनशीतल छाया में विश्राम करने के हेतु बुलाता हो। उस वृक्ष पर कौओं का राजा मेघवर्ण रहता था, उसका शत्रु उल्लुओं का राजा अवमर्द था। एक समय की

(१) समूह। (२) समय में।

बात है कि अवमर्द रात्रि के समय उसपर चढ़ आया और बहुत से वायसों का संहार कर विजय का डंका बजाय वहां से चला गया। प्रातःकाल होतेही काकराज सभा में जा बैठा और उड्डीवी, आडीवी, संडीवी, प्रडीवी और चिरजीवी नामक अपने पांच मन्त्रियों से कहने लगा, "रात की बात तो तुम लोग जानतेही हो कि वह अवमर्दक किस प्रकार हमपर विजयी होकर चला गया; वह हमसे बलवान् तो हैही सो कदाचित् अवसर पाय दुबारा हमपर धावा करे तो क्या होगा, अब इसका कुछ प्रतीकार होना चाहिये।" वायसराज की ऐसी बात सुन उड्डीवी बोला "महाराज! शत्रु जब बलवान् हो तब दोही उपाय हैं, या तो दूसरे देश में चला जाय या अधीनता स्वीकार कर ले।" यह सुन आडीवी बोला "यह तो सभा बना कुछ हैही नहीं कि वह आजही फिर चढ़ आवे शत्रु का आशय और अपनी शक्ति देखके जैसा हो सकेगा किया जायगा। तब संडीवी ने कहा कि देव! मरना वरु अच्छा है परन्तु शत्रु के समक्ष झुकना अथवा विदेश में जाकर जीवन धारण करना अच्छा नहीं। हमें उचित है कि जिसने हमारा अपमान किया उस शत्रु से अवश्य युद्ध करें; जिस राजा के सहायक होते हैं और जो शूर होता है ऐसा राजा शत्रुओं को जीत लेता है। इसके उपरान्त प्रडीवी बोला 'वह बलवान् है, लड़ाई में जीता न जायगा तो अब ऐसा करना चाहिए कि इस समय तो उससे सन्धि कर ली जाय पश्चात् जब घात लगे तो उसे मार डालना।" तदनन्तर चिरजीवी बोला "क्या कहा? सन्धि! कैसी सन्धि? भला यह तो बतलाओ दूत कौन होगा? कौओं और उलुओं का बैर तो सृष्टि के आरम्भही से चला आ रहा है तो भला उनके पास जायगा कौन? हां एक बात है मन्त्र से जो कुछ हो जाय सो हो जाय क्योंकि मन्त्रही राज्य का मूल है।" चिरजीवी की ऐसी बात सुन काकराज उससे कहने लगा "भाई चिरजीविन्! तुम वृद्ध हो यदि यह जानते हो कि कौओं और उलुओं का बैर किस हेतु से हुआ तो बताओ, इसके पीछे मन्त्र बताना।" काकराज का ऐसा प्रश्न सुन चिरजीवी बोला "यह वचन (बोलने) का है, क्या आपने उस गदहे की कथा नहीं सुनी है, अच्छा सुनिये मैं सुनाता हूं।

सो धोबी का गदहा बड़ा दुर्बल था, वह चाहता था कि उसका गदहा किसी हो जाता, उसे कहीं से बाघ की खलरी मिल गई सो उसने अपने

...दहे को यही खाल ओढ़ाकर एक किसान के खेत में छोड़ दिया । [illegible]
प्रकार वह गदहा जाकर खेत चरता और लोग उसे बाघ समझ [illegible]
पाने से हिचकते । एक दिन कोई किसान धनुही लिये उसी खेत के [illegible]
अकस्मात् उस गदहे पर दृष्टि पड़ी तो बाघ समझ डर के छिपा रहा [illegible]
ना कम्बल ओढ़ निहुर के धीरे २ चलने लगा । उसे देख [illegible]
यह भी गदहा है, और वह दौड़ा गया कुछ दूर [illegible]
[illegible] ऊँचे स्वर से रेंकने लगा । अब तो वह किसान समझ गया कि [illegible]
है सो उसने धनुष चढ़ा ऐसा बाण मारा कि गदहा मरही गया । वह गदहा
नीही बोली से मारा गया ।

इतनी कथा सुनाय चिरजीवी बोला "महाराज, हम इसी कारण से उन
के साथ हमारा वैरभाव हुआ, इसलिये इसका हेतु भी आपको सुनाता हूं ।"

पूर्व समय की बात है कि पक्षियों के कोई राजा न था इन सभों ने सभा
करके यह स्थिर किया कि उलूक को राजा बनाना चाहिए किसी ने छत्र चामर,
सभी ने चामर, बस उसी के राज्याभिषेक का उपक्रम होने लगा । इसी अवसर
उड़ता २ कहीं से कौवा भी वहीं पहुंच गया, और राज्याभिषेक का समारम्भ
देखकर समस्त पक्षियों से कहने लगा 'अरे मूर्खो! यह तुम क्या करने लगे हो ।
क्या हंस कोयल आदि पक्षी तुम्हारे बीच में नहीं हैं कि इस क्रूर, पापी, कुरूप
उलूक को कि जिसके दर्शन से अमङ्गल होता है, राजा बनाने चले हो धिक् धिक्
भला यह तुम क्या अनर्थ कर रहे हो । राजा तो ऐसे को बनाना जो प्रतापशाली
हो जिसके नाममात्र से सब कामों में सिद्धि हो जाती है । मुझे इसी विषय में
तुम्हें एक कथा सुनाता हूं ।"

चन्द्रसर नामक एक बड़ा भारी तालाब है, उसके किनारे खरहों का राजा
शिलीमुख रहता था । एक समय बड़ा सूखा पड़ा जिससे सब जलाशय सूख गये पर
चन्द्रसर का जल न सूखा, सो चतुर्दन्त नामक गजेन्द्र अपने यूथ के साथ वहां पानी
पीने आया उसके पांवों के नीचे कितने खरहे दबकर पिचुड़ा हो गये । शिलीमुख
को इससे बड़ी चिन्ता हुई सो वह और सब खरहों के समक्ष विजय नामक शशक
से कहने लगा कि अब तो गजेन्द्र को चसका पड़ गया वह बार बार [illegible]

बात है कि अवमर्द रात्रि के समय हमपर चढ़ आया और
हार कर विजय का डंका बजाय वहां से चला गया। प्रातःकाल
सभा में आ बैठा और उज्जीवी, आडीवी, संडीवी, प्रडीवी और चिरजीवी
अपने पांच मन्त्रियों से कहने लगा, "रात की बात तो तुम लोग जानतेही हो।
यह अवमर्दक किस प्रकार हमपर विजयी होकर चला गया; यह इससे
तो हैही सो कदाचित् अवसर पाय दुबारा हमपर धावा करे तो क्या होगा,
इसका कुछ प्रतीकार होना चाहिये।" वायसराज की ऐसी बात सुन
बोला "महाराज। शत्रु जब बलवान् हो तब दोही उपाय हैं, या तो दूसरे दे
चला जाय या अधीनता स्वीकार कर ले।" यह सुन आडीवी बोला "यह तो
बना कुछ है हो नहीं कि वह आजही फिर चढ़ आवे शत्रु का आशय और
शक्ति देखके जैसा हो सकेगा किया जायगा। तब संडीवी ने कहा कि देव! सर
वह अच्छा है परन्तु शत्रु के समक्ष झुकना अथवा विदेश में जाकर जीवन
करना अच्छा नहीं। हमें उचित है कि जिसने हमारा अपमान किया उस श
से अवश्य युद्ध करें; जिस राजा के सहायक होते हैं और जो शूर होता है ऐसा
राजा शत्रुओं को जीत लेता है। इसके उपरान्त प्रडीवी बोला 'यह बलवान् है
लड़ाई में जीता न जायगा तो अब ऐसा करना चाहिए कि इस समय तो उस
सन्धि कर ली जाय पश्चात् जब घात लगे तो उसे मार डालना।" तदनन्तर चि
जीवी बोला "क्या कहा? सन्धि, कैसी सन्धि? भला यह तो बतलाओ दूत को
होगा? कौओं और उल्लुओं का बैर तो सृष्टि के आरम्भही से चला आ रहा है।
भला उनके पास जायगा कौन? हां एक बात है मन्त्र से जो कुछ हो जाय
हो जाय क्योंकि मन्त्रही राज्य का मूल है।" चिरजीवी की ऐसी बात सुन का
राज उससे कहने लगा "भाई चिरजीविन्! तुम वृद्ध हो यदि यह जानते हो
कौओं और उल्लुओं का बैर किस हेतु से हुआ सो बताओ, इसके पीछे
लाना।" काकराज का ऐसा प्रश्न सुन चिरजीवी बोला "यह
दोष है, क्या आपने उस गदहे की कथा नहीं सुनी है,

किसी धोबी का गदहा बड़ा दुर्बल था, वह
प्रकार से मोटा हो जाता, उसे कहीं से बाघ

.हे को यही खलडी घोढ़ाकर एक किसान के खेत में छोड़ दिया । अब इसी
.ार वह गदहा जाकर खेत चरता और लोग उसे व्याघ्र समझ उसके समीप
.ाने से हिचकते। एक दिन कोई खेतिहर धनुही लिये उसी मार्ग से आ रहा था
.कस्मात् उस गदहे पर दृष्टि पड़ी तो बाघ समझ भय से ठिठक गया और अ-
.ना कम्बल ओढ़ निहुर के धीरे २ चलने लगा । उसे देख उस गदहे ने सोचा
.ा यह भी गदहा है, और वह अब खा खा कुन्दा हो गयाही था सो मारे मोटाई
.े ऊँचे स्वर से रेंकने लगा। अब तो वह कृषक समझ गया कि अरे यह गदहा
.ै सो उसने धनुष चढ़ा ऐसा वाण मारा कि गदहा मरही गया। वह गर्दभ अप-
.ोही बोली से मारा गया।

इतनी कथा सुनाय चिरजीवी बोला "महाराज। बस इसी वाग्दोष से उलूकों
के साथ हमारा वैरभाव हुआ, सुनिये इसका हेतु भी आपको सुनाता हूं।"

पूर्व समय की बात है कि पक्षियों के कोई राजा न था, उन सभों ने सभा
करके यह स्थिर किया कि उलूक को राजा बनाना चाहिए किसी ने छत्र उठाया
किसी ने चामर; बस उसी के राज्याभिषेक का उपक्रम होने लगा। इसी अवसर
में उड़ता २ कहीं से कौआ भी वहीं पहुँच गया, और राज्याभिषेक का समारम्भ
देखकर समस्त पक्षियों से कहने लगा "अरे मूर्खों। यह तुम क्या करने चले हो?

इतनी कथा सुनाय कौआ पक्षियों से पुनः कहने लगा कि प्रभु ऐसा होना चाहिये, उसके नाम का यह प्रभाव है कि उसकी प्रजा में किसी को भी किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे, सो यह उल्लू भला कैसे राजा हो सकता है यह तो दिन के समय स्वयं अन्धा रहता है और फिर मुट्ठीभर का जीव है । इसे राजा बना कर अपनी रक्षा की क्या सम्भावना की जाय यह क्षुद्र जन्तु तो हैही फिर इसका विश्वास क्योंकर किया जाय ? सुनो इसी विषय में तुम्हें एक कथा सुनाता हूं ।

किसी समय की बात है कि कहीं एक वृक्ष पर मैं रहता था, उस वृक्ष के नीचे कपिञ्जल नामक एक पक्षी नीड़ बनाकर वास करता था । एक समय वह कहीं चला गया और बहुत दिनों लों नहीं लौटा । इतने अवसर में कहीं से एक खरहा आकर उसके खोते में बस गया । थोड़े दिनों के उपरान्त कपिञ्जल लौटा तब खरहा भीतर आनेही न दे कहे कि यह मेरा आवास है मैं इसमें रहता हूं तुम कहां के हो चलो दूर हो; और कपिञ्जल कहे कि अरे तू कहां से आय बसा, यह नीड़ तो मेरा है, मैंने इसे बनाया है यह तेरा कैसे हुआ, निकल, भाग यहां से । इस प्रकार दोनों में झगड़ा होने लगा । दोनों ने यह कहा कि इसका निर्णय कैसे हो कि यह किसका है, कोई न्यायकर्त्ता ठहराना चाहिये जो हम दोनों का विवाद निपटाय दे । इस बात पर दोनों सम्मत हुए और न्यायकर्त्ता की खोज में चले । मुझे भी इस न्याय के देखने का बड़ा कौतुक हुआ सो मैं छिपा छिपा उनके पीछे पीछे चला । वे थोड़ेही दूर गये थे कि एक तालाब के किनारे उन्हें एक बिड़ाल दीख पड़ा जो कि ध्यान लगाये अपनी आंखें आधी मूंदे बैठा था और जिसने झूठही हिंसा से परे रहने का व्रत धारण कर रक्खा था । उसे देख उन दोनों ने आपस में कहा कि यह भी एक सिद्ध महात्मा हैं इन्हीं से क्यों न न्याय करा लिया जाय । इतना कह उन दोनों ने उस बिड़ाल के पास जाकर उससे कहा "महाराज ! आप तपस्वी और धार्मिक हैं हम दोनों का ऐसा २ झगड़ा है सो आप चुका देवें ।" यह सुन बिड़ाल बड़े धीमे स्वर से बोला कि मैं तपस्या करते करते बड़ा दुर्बल हो गया हूं दूर की बात मुझे नहीं सुनाई पड़ती मेरे निकट आकर कहो तो सुनूं कि तुम दोनों क्या चाहते हो । दोनों की बात बिना अच्छी भांति सुने मैं क्या निर्णय कर सकता हूं, सुनो यह धर्म की बात है, धर्म का

करेगा और हमारा संहार कर डालेगा इसलिये अब कोई उपाय विचार
किये। उसके पास जाओ और देखो तुम्हारा कुछ उपाय बन सकता है क,
क्योंकि तुम कार्य और उपाय दोनों जानते हो और युक्ति से बोलना भी
आता है, देखो जहां जहां तुम गये वहां वहां भलाई हुआ।
ऐसी बात सुन वह विजय खरहा प्रसन्न होकर धीरे २ चला, चलते २ जाके
उसकी करीन्द्र से भेंट हो गयी तब वह खरहा इधर उधर का विचार करने
कि ऐसा कोई उपाय किया जाय कि इस गजराज से समागम हो; इतना वि
यह बुद्धिमान् खरहा एक टीले पर चढ़ गया और वहां से उस गजेन्द्र को
धन कर कहने लगा "हे यूथप! मैं भगवान् शशाङ्क का दूत हूं, उनका
लाया हूं; सुनो भगवान् कुमुदिनीनायक का यह सन्देश है—"यह जो
चन्द्रसर नामक सरोवर है वहां मेरा निवास है, वहां जो शशक रहते हैं
मैं राजा हूं, ये खरहे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं, इसी हेतु मैं शीतांशु कहलाता हूं
इसी कारण से मेरा नाम शशी भी पड़ा है, सो तुमने उस तड़ाग का
कर डाला और मेरे खरहों का संहार कर दिया; अब मैं तुम्हें चिताये देता हूं
कि फिर ऐसा किया तो चेत रखना मुझसे उसका फल पाओगे। दूत के मुख
यह सन्देश सुन गजेन्द्र भयभीत हो गया और मारे डर के कम्पित हो कहने
"दूत! मैं ऐसा फिर कभी न करूँगा, भगवान् शशाङ्क मेरे मान्य हैं

ा और आकर उससे उसी प्रकार कहने लगी कि भला कुत्ते को क्यों उठाये लिये रहे हैं, छोड़िये २, ब्राह्मण होकर आपको यह नहीं शोभता बस झटपट इसे ाग कीजिये। उनकी बात से ब्राह्मण के हृदय में कुछ संशय हुआ तथापि उसने स बकरे को नहीं त्यागा। वह देखता चला कि भला यह तो बकरा ही है ये ट सब इसे कुत्ता बताते हैं। इस प्रकार सोचता हुआ वह चला जा रहा था कि धर से तीन धूर्त उसे आ मिले और उसी प्रकार कहने लगे कि महाराज! जिस ान्धे पर जनेऊ उसीपर कुत्ता! भला इन दोनों का साथ कहां! बस जान गये ाप व्याध हैं, ब्राह्मण नहीं, ऐसा भासता है कि इसी कुत्ते से आप पशुओं का आ खेट किया करते हैं यह सुन वह ब्राह्मण अपने मनमें विचारने लगा कि मेरी दृष्टि नष्ट कर निश्चय करके किसी भूत ने मुझे भ्रमा दिया है; भला यह क्या कि मैं तो इसे छाग देखता हूं और लोग इसे कुत्ता बतलाते हैं; तो क्या ये सब झूठ बोल रहे हैं? अथवा, मेरीही दृष्टि में कुछ दोष है। इस प्रकार उस छाग को फेंक ब्राह्मण ने स्नान किया और शुद्ध हो वह विप्र अपने घर चला गया; इधर उन धूर्तों ने उस बकरे को लेकर मनमाना उसे खाकर आनन्द किया।

इतनी कथा सुनाय चिरजीवी उस वायसेश्वर से कहने लगा कि देव! इस प्रकार जो बहुत और बलवान् होते हैं वे जीते नहीं जा सकते। सो अब बलवन्त के विरोध में जो मैं कहता हूं सोही किया जाय; ऐसा करें कि मेरे कुछ पर नोच कर मुझे इसी पेड़ के नीचे छोड़कर आप सब चले जायें और जबलों मैं अपना काम कर न आ मिलूं उस पहाड़ पर ठहरे रहें। उस चिरजीवी की बात सुन काकराज ने कहा कि बहुत अच्छा, बस कुछ मिथ्या क्रोध प्रकाशित कर उसके पर नोच कर पेड़ के नीचे गिरा दिया पश्चात् काकराज ने अपने अनुचरों के साथ वहां से चले जाकर उस पहाड़ पर बसेरा किया, और इधर चिरजीवी उसी पेड़ के नीचे उसी दशा में पड़ा रहा।

इसके उपरान्त रात्रि के समय उलूकराज अवमर्द अपने अनुयायी वर्ग के साथ वहां आया तो क्या देखता है कि वृक्ष पर एक भी कौआ नहीं है। इतने में नीचे चिरजीवी धीरे धीरे कराहने लगा, यह सुन नीचे उतरकर उलूकराज ने उसे देखा और अति विस्मित हो उससे पूछा कि अरे तू कौन है तेरी दशा ऐसी क्यों हुई?

अवेश्य ऐसा है कि समिक चूका कि गया; उसका यथार्थ निर्णय न होने से लोक और परलोक दोनों बिगड़ जाते हैं। इस प्रकार की बातें कह कह उन दोनों का विश्वास बढ़ाया; सो ये दोनों उसकी बात का विश्वास कर चले गये और तब उस कपटी बिड़ाल ने एकही झपट में दोनों शश और कपिञ्जल को पकड़कर मार डाला।

इतनी कथा सुनाय कौआ पक्षियों से कहने लगा कि इसीसे मैं कहता हूं नीच काम करनेवाले दुर्जन का विश्वास कभी न करना, यह उल्लू अत्यन्तही दु है इस हेतु इसे राजा न बनाना चाहिये। वायस की इतनी बात सुन पक्षि ने कहा कि आपका कहना बहुत ठीक है, इतना कह उल्लू के अभिषेक का क्रम त्याग सब पक्षी वहां से इधर उधर उड़ गये। तब उल्लू क्रोधपूर्वक उस कौ से कहने लगा कि चेत रखना तुमने अच्छे घर बयाना दिया है बस आज से हम तुम्हारे बीच परम शत्रुता चली तुम हमारे और हम तुम्हारे बैरी हुए। इस प्रक कौवे से कहकर उल्लू क्रोध दिखाता चला गया। यद्यपि कौआ सोचता था मैंने क्या अनुचित किया, इससे चाहे उलूक प्रसन्न हो या अप्रसन्न; परन्तु उस मन उदास हो गया क्योंकि वचनमात्र से उसे व्यर्थ बैर बेसाहना पड़ा। ठीक है *वचनमात्र से जो बैर उत्पन्न हो जाय तो उससे भला किसे अनुताप न होगा।*

इतनी कथा सुनाय चिरजीवी कहने लगा कि सुना न आपने महाराज! ऐ हो ऐसे वाग्दोष से हमारे और उलूक के बीच बैर उत्पन्न होगया है। इतना कह त्रि

चोर दमका हुआ दिखाई पड़ा। बनिया बोला 'भाई चोर! तुम मेरे बड़ेही
कारी हुए, तुम्हारेही प्रताप से आज मेरा ऐसा सौभाग्य हुआ है, अब मैं तु-
रा प्रत्युपकार यही करता हूं कि अपने सेवकों से तुम्हें मरवा न डालूंगा।"
तना कह उसने रातभर उस चोर को रक्षित रक्खा और प्रातःकाल होने पर
शलपूर्वक उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री दीप्तनयन बोले कि, "देव! यह चिरजीवी हमारा
पकारक है इस हेतु मेरा तो यही सिद्धान्त है कि इसकी रक्षा की जाय।" इ-
ना कह वह सचिव चुप हो रहा।

तब उलूकों के राजा ने वक्रनास नामक एक दूसरे मन्त्री से पूछा कि, "कहिये
आपकी सम्मति क्या है?" इस विषय में क्या करना चाहिये?। वक्रनास ने उत्तर
दिया कि मेरी बुद्धि में तो यह आता है कि इसकी रक्षाही की जाय क्योंकि एक
तो यह हमारे शत्रुओं के मर्म से भली भांति विज्ञ है दूसरे अब इससे और काक-
राज से बैर हो गया है, सो स्वामी और मन्त्री का यह बैर हमारा कल्याणसाधक
होगा। सुनिये देव! इस विषय में आपको एक कथा सुनाता हूं:—

एक ग्राम में कोई ब्राह्मण रहता था, उसे कहीं से दान में दो गायें मिलीं; उन
गौओं को देखकर एक चोर का मन ललचा, सो वह उपाय सोचने लगा कि किसी
प्रकार इसकी गायें चोरा लेनी चाहिये; वह इसी चिन्ता में था कि उसकी भेंट एक
राक्षस से हो गई जो उस ब्राह्मण को भक्षण किया चाहता था। चलो अब एक से
दो हुए, दोनों अपने २ घात पर कटिबद्ध हुए। अब रात के समय दोनों अपना २
कार्य्य एक दूसरे से कह उस ब्राह्मण के घर को चले। चोर ने राक्षस से कहा कि
भाई! ऐसा करना कि पहिले मैं गौओं को चुरा लूं तब तुम ब्राह्मण को पकड़ना,
नहीं तो जो तुम पहिले उसे पकड़ोगे तो कहीं वह सोते से जाग जाय तो मेरे
गोहरण में बाधा पड़ जायगी सो देखना पहिले तुम उसे न थमना। राक्षस बोला,
"वाह तुमही बड़े चतुर हो, भला ऐसा कब होने को, अधर तुम गौओं को छोड़ने
लगे और कहीं उनके खुरों की आहट से उस ब्राह्मण की नींद खुल गयी तो मेरा
सब प्रयासही मट्टी में मिल गया तब तो व्यर्थही मुझे इतना परिश्रम उठाना
[illegible] सो भाई मैं तो ऐसा कभी न करने दूंगा।" ब्राह्मण की नींद टूट गयी वह

तब चिरजीवी ऐसे धीमे स्वर से बोला जैसे कोई रोगी बोले -"महाराज ! वायसराज का मन्त्री चिरजीवी हूं, उनके मन्त्रियों ने उन्हें सम्मति दी कि आप पर चढ़ाई करें उस अवसर पर मैंने उनके मन्त्रियों को तथा अन्यान्य लूमों को डांटकर वायसराज से कहा कि देव ! यदि मुझसे पूछते हैं और बात मानते हैं तो मैं यही कहूंगा कि उलूकराज से युद्ध न ठाना जाय वह है हम निर्बल, निर्बल को बलवान् से न भिड़ना चाहिये, यदि आप मानें तो ऐसे अवस्था में नीति यही है कि उनसे अनुनय ही किया जाय। महाराज! इतना कहना ही मेरे लिये विष हुआ, बस मेरी बात सुनतेही उन्हें तथा उनके मित्रों को बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने कहा मारो इसे यह दुष्ट शत्रु से मिला है, बस महाराज! उन मूर्खों ने मारपीट कर मुझे इस दशा को पहुँचा दिया, पुनः मुझे इस वृक्ष के नीचे ढकेल काकराज अपने अनुचरों के साथ न जाने कहां चले गये, यह तो उपदेश देने का फल है।" इतना कह चिरजीवी नीचे मुंह कर लम्बी २ सांसें भरने लगा।

चिरजीवी की ऐसी बातें सुनकर उलूकराज ने अपने मन्त्रियों से पूछा कि चिरजीवी के साथ क्या (कैसा बर्त्ताव) करना चाहिये। राजा का ऐसा प्रश्न सुन दीप्तनयन नामक मन्त्री बोला "महाराज! इसकी रक्षा करनी चाहिये, देखिये चोर की रक्षा तो कोई नहीं करता है न, फिर वही चोर जो उपकारी हो तो सज्जन लोग उसकी रक्षा करते हैं। सुनिये इसी विषय में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं"—

पूर्व समय में कोई एक वणिक् था वह बड़ाही धनवान् था; कुछ धन देकर उसने अपनी बुढ़ौती में भी एक बनिये की कन्या से विवाह कर लिया। भला इस वृद्ध से उसका मन कब मानता, जिस प्रकार फूल के समय निकल जाने पर भौंरी उस वृक्ष की ओर कभी भूल के भी नहीं जाती उसी प्रकार वह भी सदा इससे मुंह फेरकर सोया करती। एक समय की बात है कि दोनों पलङ्ग पर सोये थे कि इसी अवसर में एक चोर घर में पैठा उसे देखतेही वह बाला भय के मारे अपने पति से लपट गई। इस अद्भुत परिवर्त्तन से उसने अपना अहोभाग्य समझा ... के निर्णयार्थ इधर उधर जो दृष्टि फेरी तो कोने में

ा का विश्वासही न करे। अन्त में बहुत कहते सुनते उसका मन कुछ फिरा उसने कहा कि, "अच्छा मैं अब इसका पता लगाऊँ कि बात क्या है।" उसने एक दिन अपनी भार्या से कहा कि प्रिये! राजा की आज्ञा से किसी म के लिये मैं बहुत दूर जा रहा हूं सो सत्तू इत्यादि कुछ पाथेय * बांध देना। ने भी चट गठरी मोटरी बांध दी और वह परदेश जाने के लिये घर से नि- ला। परदेश जाने का तो केवल बहाना भर था यहां तो बातही दूसरी थी, सो छ कालोपरान्त वह इधर उधर घूमघाम कर अपने घर लौट आया और साथ अपने एक शिष्य को भी लेता आया, और शिष्य सहित चुपके से घर में घुस- र अपनी प्रियतमा प्राणवल्लभा के पलङ्ग के नीचे दबक कर बैठ रहा। उधर उस लटा ने विचारा कि अब क्या, पति तो परदेश गये, अब यार के संग आनन्द ड़ाऊँ सो उसने अपने यार को बुला भेजा। रात्रि समय दोनों निर्द्वन्द विहार रने लगे। उस पापिष्टा ने रमण के समय आनन्द में मग्न हो जो पांव पसारे उसके पति के शिर में धक्का लगा, बस वह झट ताड़ गई कि ओ:! धोखा आ; पर थी परम धूर्त्ता, झट त्रियाचरित्र कर बात बनाय बैठी। इतने में उसे वहार से विरत देख यार ने पूछा "प्रिये! ऐसा वैराग्य क्यों हो गया? कहो तो ात क्या है? प्यारी एक बात पूछता हूं उसका उत्तर दे देओ, बतलाओ मैं तुम्हें धिक प्यारा लगता हूं कि पति?" यह सुन वह कूटकुशला बोली, "यह तुम सी बात कह रहे हो, भला मेरे पति मुझे जितने प्रिय होंगे उतने तुम कब हो सकते हो; सुनो मैं अपने प्राणेश्वर को ऐसा प्यार करती हूं कि उनके लिये अपने प्राणों को न्योछावर कर देऊँ।" त्रियाचरित्र यही कहलाता है, स्त्रियों की चपलता प्रसिद्धही है; गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा ही है।

चौ०— विधिहु न नारि हृदयगति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥
पुनः चौ०—नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥
साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया॥

सो जहां प्राकृत नारियों का ऐसा वर्णन किया गया है और उनके ऐसे ऐसे प्राकृतिक दोष दर्शाये गये हैं तो कुलटाओं की बातही क्या, वे तो जो न कर सकें और जो न गढ़ सकें वही परम आश्चर्य। किया क्या जाय स्त्रियों का स्वभावही

---

* पथ के लिये भोजन।

जाग पड़ा और हाथ में तलवार लेकर राक्षस को नाश करने का मन्त्र जपने लगा बस राक्षस और चोर दोनों वहां से खसक कर भाग गये।

इतनी कथा सुनाय वक्रनास बोला कि देव ! इस प्रकार जैसे उन ... चोर का भेद ब्राह्मण का हितसाधक हुआ वैसेही काकेन्द्र और इस चिरजीवी के भेद से हमारा भलाही होगा।

वक्रनास की ऐसी बात सुन उलूकराज ने प्राकारकर्ण नामक अपने मन्त्री से पूछा कि इस विषय में आपकी क्या सम्मति है ? वह बोला महाराज चिरजीवी विपत्ति में पड़ा है और हमारी शरण में आया है, अतः इस पर दया करनी चाहिये; शरणागत की रक्षा अवश्य करनी चाहिये; उसके त्याग करने से बड़ा पाप लगता है। देखिये राजा शिवि ने शरणागत की रक्षाही के हेतु अपना मांस काटकर दे दिया।

प्राकारकर्ण की इतनी बात सुन उलूकराज ने अपने मन्त्री क्रूरलोचन से पूछा परन्तु उसने भी वैसाही उत्तर दिया। तब उसने रक्ताक्ष नामक सचिव से वैसाही प्रश्न किया परन्तु उसने कुछ औरही उत्तर दिया, वह तो बुद्धिमान् तथा नीतिज्ञ था अतएव उसने नीति का भी अवलम्बन किया उसने कहा, "देव! आपके मंत्री नीति का मर्म कुछ नहीं जानते; इन सभों ने तो ऐसी सम्मति दी जिससे आपका नाश हो जाय, सुनिये जो नीतिज्ञ होते हैं वे बैरी का कदापि विश्वास नहीं करते भला यह बात क्या बुद्धि में समा सकती है कि जिसकी हम दशा करें वह उसे भूल जाय और हमारा भला करे, कदापि नहीं, यह बात उसके हृदय में बाण के समान चुभती रहेगी और वह ऐसा अवसर ढूंढ़ता रहेगा कब घात लगे और पलटा चुका लूं।" सो महाराज आप चेत रखिये बैरियों का विश्वास कदापि न करना। उसको तो मूर्खाधिराज समझना चाहिये जो आंख से अपराध देखकर भी चापलूसी की बातें सुनकर प्रसन्न हो जाता है सुनिये इसी विषय में आप को एक कथा सुनाता हूं।

प्राचीनकाल में एक बढ़ई था, वह अपनी स्त्री को अपने प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। किन्तु उसकी भार्या व्यभिचारिणी थी। प्रायःलोग उस बढ़ई से कहते भी थे पर वह प्रेम के कारण ऐसा अन्धा हो गया था कि किसी

न का विश्वासही न करे। अन्त में बहुत कहते सुनते उसका मन कुछ फिरा उसने कहा कि, "अच्छा मैं अब इसका पता लगाऊँ कि बात क्या है।" उसने एक दिन अपनी भार्य्या से कहा कि प्रिये! राजा की आज्ञा से किसी काम के लिये मैं बहुत दूर जा रहा हूं सो सत्तू इत्यादि कुछ पाथेय * बांध देना। उसने भी चट गठरी मोटरी बांध दी और वह परदेश जाने के लिये घर से निकला। परदेश जाने का तो केवल बहाना भर था यहां तो बातही दूसरी थी, सो कुछ कालोपरान्त वह इधर उधर घूमघाम कर अपने घर लौट आया और साथ अपने एक शिष्य को भी लेता आया, और शिष्य सहित चुपके से घर में घुसकर अपनी प्रियतमा प्राणवल्लभा के पलङ्ग के नीचे दबक कर बैठ रहा। उधर उस कुलटा ने विचारा कि अब क्या, पति तो परदेश गये, अब यार के संग आनन्द उड़ाऊँ सो उसने अपने यार को बुला भेजा। रात्रि समय दोनों निर्द्वन्द्व विहार करने लगे। उस पापिष्टा ने रमण के समय आनन्द में मग्न हो जो पांव पसारे तो उसके पति के शिर में धक्का लगा, बस वह झट ताड़ गई कि ओः! धोखा हुआ; पर थी परम धूर्त्ता, झट त्रियाचरित्र कर बात बनाय बैठी। इतने में उसे विहार से विरत देख यार ने पूछा "प्रिये! ऐसा वैराग्य क्यों हो गया? कहो तो बात क्या है? प्यारी एक बात पूछता हूं उसका उत्तर दे देओ, बतलाओ मैं तुम्हें अधिक प्यारा लगता हूं कि पति?" यह सुन वह कूटकुशला बोली, "यह तुम कैसी बात कह रहे हो, भला मेरे पति मुझे जितने प्रिय होंगे उतने तुम कब हो सकते हो; सुनो मैं अपने प्राणेश्वर को ऐसा प्यार करती हूं कि उनके लिये अपने प्राणों को न्योछावर कर देऊँ।" त्रियाचरित्र यही कहलाता है, स्त्रियों की चपलता प्रसिद्धही है; गोस्वामी तुलसीदासजी ने कहा ही है।

चौ०— विधिहु न नारि हृदयगति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥

पुनःचौ०—नारि सुभाउ सत्य कवि कहहीं। अवगुन आठ सदा उर रहहीं॥

साहस अनृत चपलता माया। भय अविवेक अशौच अदाया॥

सो जहां प्राकृत नारियों का ऐसा वर्णन किया गया है और उनके ऐसे ऐसे प्राकृतिक दोष दर्शाये गये हैं तो कुलटाओं की बातही क्या, वे तो जो न कर सकें और जो न गढ़ सकें वही परम आश्चर्य। किया क्या जाय स्त्रियों का स्वभावही

* पथ के लिये भोजन।

जब उलूकराज ने इस प्रकार बहुत कुछ समझा बुझाकर चिरजीवी को आ-श्वासित किया तब वह अवसर पाय उस उलूकराज से कहने लगा "देव! मैं जिस अवस्था में पड़ा हूं उससे तो मरना ही अच्छा है, मेरे जीने से क्या प्रयोजन, सो चिता चुनवा दीजिये कि मैं जलकर इस कष्ट से मुक्त हो जाऊं। जलते समय मैं हुताशन देव से यही प्रार्थना करूंगा कि अब जो मेरा जन्म होतो इसी उलूकयोनि में हो जिससे कि मैं वायसराज से पलटा चुका लूं, जैसा उन्होंने मेरे साथ किया है उसका उनको प्रतिफल अवश्य दूंगा।" चिरजीवी की ऐसी बात सुन रक्ताक्ष मु स्कुराकर बोला "भाई चिरजीविन्। अब तुम्हें किस बात की चिन्ता है, हमारे प्रभु तो तुमपर द्रवीभूत हैं ही फिर क्या। तुम निश्चिन्त होकर आनन्द से रहो अग्नि में प्रवेश कर क्या करोगे अब तो तुम्हारे हौ पौ बारह हैं। सुनो भाई जब-लौं तुम्हारी काकयोनि लिखी है तबलौं तुम किसी प्रकार से उलूकयोनि में नहीं जन्म ले सकते विधाता ने जिसको जैसा बनाय दिया है उसको वैसाही रहना पड़ता है; चाहे कारण विशेष से कुछ परिवर्त्तन हो जाय पर अन्ततोगत्वा उसी में पचना पड़ता है। सुनो इस विषय में तुम्हें एक कथा सुनाता हूं।"

ऐसा अधम होता है, कहते हैं कि, "मास न हो तो क्रियां विरा या कदापित एकान्त सत्य है।

यह मूढ़ बढ़ई तो अपनी भार्य्या को परम साध्वी पहिले ही से इतना सुनना तो उसके लिये अमृत हो गया। अपनी प्राणप्रिया का कुलटा का) ऐसा कृत्रिम वचन सुनकर वह फूला न समाया; मारे प पलङ्ग तले से उछल पड़ा और अपने शिष्य से कहने लगा "देखा न साक्षी रहना, यह मेरी ऐसी भक्ता है; तुम सुनही चुके हो कि यह मेरे प्राण भी दे देने पर उतारू है; व्यर्थ ही लोग इस पर दोष लगाते हैं, ही पतिव्रता है सो मैं तो इसे माथे पर उठा लूंगा।" इतना कह व अपनी भार्य्या का पलङ्ग, जिस पर वह दुष्टा अपने यार के साथ बैठी नाचने लगा; उस मूढ़ का शिष्य भी वैसाही जड़ था वह भी अपने गु में साझी हुआ।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री रक्ताक्ष उलूकराज से कहने लगा कि कार प्रत्यक्ष दोष देखकर भी कपट की सान्त्वना से जो सन्तुष्ट हो जात मूर्ख और निर्विवेक होता है, मूढ़ और विवेकशून्य के अतिरिक्त ऐस कर सकता है? फिर उसका परिणाम यही होता है कि लोग उस का उपहास करने लगते हैं। इसीसे कहता हूं कि देव! इस चिरजी कदापि नहीं करनी चाहिये, यह शत्रु की ओर का है; शत्रुपक्षी को समझना चाहिये उसकी उपेक्षा हुई कि नाश हुआ। इससे देव! इ का विश्वास आप न करें।

रक्ताक्ष की इतनी बात सुन उलूकराज बोला "भाई तुम जो क यह भी तो सोचो कि हमारी भलाई ही के कारण इसकी यह दशा इसकी रक्षा क्यों न की जाय। देखो कहाही है—"शरणागत कहँ तजहिँ विलोकत पाप।" फिर यह भी तो एक बात विचारणीय अकेला ही न है, अकेला क्या कर सकता है इससे तुम्हारे भय की कुछ वना नहीं है।" इस प्रकार की बातें कह उलूकराज ने अपने मन्त्री उपदेश का निराकरण किया और उस चिरजीवी वायस को विवि सान्त्वना दे सन्तुष्ट किया।

लूकराज के यहां एक यही नीतिज्ञ है और सब तो निरे मूर्ख चपाट हैं । इस नीतिकुशल की बात उलूकराज ने जो नहीं मानी तो इससे मेरे कार्य्य की सिद्धि के लक्षण दीख पड़ते हैं। इस प्रकार चिरजीवी सोच रहा था और उलूकराज अयमर्द रक्ताक्ष की बातों की उपेक्षा कर चिरजीवी को लेकर अपने स्थान को चला गया; उलूकराज को पूरा विश्वास था कि चिरजीवी हमारा सहायक हो गया अब हमें कौओं से किसी प्रकार का भय न रहा इसी कारण से वह कुछ गर्वित भी हो गया था । अब चिरजीवी उलूकराज के दिये मांसादि भोजन कर थोड़ेही दिनों में हृष्टपुष्ट हो गया और उसके पर भी जो नोचे गये थे सब जम आये, पक्षों की शोभा से वह मयूर की भांति प्रतीयमान होने लगा । इस प्रकार यह धूर्त्त चिरजीवी उलूकराज से पोषण पाय आनन्दपूर्वक उसके साथ रहने लगा पर घात की प्रतीक्षा में सदा सचेत बना रहता था।

एक दिन चिरजीवी ने उलूकराट् से कहा कि देव। आपकी छाया में रहते२ बहुत दिन बीत गये अब इसकी प्रतिक्रिया करनी चाहिये सो अब मैं आपसे छुट्टी मांगता हूं आप आज्ञा देवें तो जाकर उस दुष्ट काकराज को फोड़फाड़ के उसके अवस्थान में ला बसाऊँ बस रात के समय आप सब उसपर टूट पड़ें और सपरिच्छद उसका नाश कर डालें और मैं भी आपका कार्य्य कर अपने ऋण से मुक्त हो जाऊँ। आप सब एक काम करें कि उन सभों का आगमन तो दिन के समय होवेहीगा, रात में तो वे निर्बल रहतेही हैं और कहीं जा भी नहीं सकते सो जब आवेंगे दिन में ही आवेंगे और मैं भरसक आजही लेकर लौट आऊँगा सो दिन भर तो आप अपने सहचरों को बोल देवें कि सब अपने २ खोंते के भीतरही घुसे रहें और आप भी नीड़ के अभ्यन्तर विराजें और नीड़ों के मुंह तिनकों से भर दिये जावें, इससे होगा क्या कि उन सभों को और भी निश्चय हो जायगा कि उलू सब जीव लेकर भाग गये; बस रात में आप अपना घात कर बैठियेगा सो दिन के समय आप सब भली भांति नीड़ों के भीतर रक्षित बैठे रहें । इस प्रकार समझाबुझाकर चिरजीवी ने उन उलुओं को उनके खोंतो के भीतर बैठा दिया और सभों के द्वार तिनकों और पत्तों से ढँक दिये; अब चिरजीवी अपने प्रभु काकराज के समीप चला । वहां पहुँच उसने काकराज से कहा कि स्वामिन् !

है, वह मुझसे बलवत्तर है, क्योंकि वह मुझे क्षणभर में ढांप लेता है और हम
छिप जाने से अपना प्रकाश नहीं फैलाय सकता, कहिये तब मैं कैसे बलव
हो सकता हूं। आप इस कन्या का विवाह मेघ से कर दीजिये।" मार्तण्ड
इतनी बात सुन मुनि ने उनका विसर्जन कर मेघ का आह्वान किया
उससे भी वैसाही कहा। मेघ ने उत्तर दिया कि महात्मन्! यदि ऐसाही है
इस कन्या का विवाह आप वायु से कर देवें, पवनदेव मुझसे अधिक बलिष्ठ
देखिये उनके आगमनमात्र से मैं छितिर बितिर हो जाता हूं। मेघ की ऐसी बा
सुन महामुनि ने पवनदेव को बुलाकर उनसे भी वैसाही अपना अभीष्ट
सुनाया। मुनि का ऐसा कथन सुन मरुत् बोले "महर्षे! मेरा कहना भी
लिया जाय, सुनिये, मुझसे बली तो वे न ठहरे जिन्हें मैं हिला डोला न सकूं
अद्रि ऐसे अचल हैं कि जिन्हें मैं तनिक भी नहीं डिगा सकता। वे मुझसे ब
वत्तर हैं अतः आप इस कन्या का विवाह उन्हीं में से किसी के साथ कर दीजि
वायु की इतनी बात सुन मुनि ने शैलेन्द्र (हिमालय) को बुलाया और उसी
कर उस कन्या के विवाह की बात कह गये। यह सुन अद्रिराज बोले कि मह
राज! मुझसे तो बलवान् मूसे होते हैं जो मुझ में भी छेद (बिल) कर डालते है
इस प्रकार क्रमानुसार उन ज्ञानवान् देवनों की उक्तियां सुनकर अन्त में मुनि
एक बनैले मूषक को बुलाया और उससे कहा कि इस कन्या के साथ विवाह क
लो। तब वह मूसा बोला "महाराज! आपकी आज्ञा शिरमाथे, पर मेरी विन
यह है कि कृपाकर यह बतला दिया जाय कि यह मेरे बिल में क्योंकर
केगी।" "बहुत अच्छा, तेराही कहना सही, यह पूर्ववत् मूषिकाही
इतना कह मुनि ने उसे पुनः मूषिका बनाकर उसका विवाह उस म
कर दिया।

इतनी कथा सुनाय रक्ताक्ष काग मंत्री से पुनः कहने लगा कि हे
इस प्रकार कोई कितनीही दूर क्यों न पहुंच जावे पर जो जैसा
वह वैसाही हो जाता है सो तुम कितनेही उपाय क्यों न करो
न होयेगी।

रक्ताक्ष की ऐसी ऐसी बातें सुन चिरजीवी अपने मनमें

टूठे में डंस लिया और वह पञ्चत्व को प्राप्त हो गया, सो उसके पिता ने क्रोध में आकर मुझे शाप दे दिया कि रे दुष्ट। तूने मेरे बच्चे को डंस लिया इसका दण्ड तुझे यही मिलेगा कि आज से तू भेकों का वाहन हो जायगा, जिन्हें तू भक्षण करता था अब वेही तुझ पर सवारी करेंगे। सो हे मेढ़को! अब तुम सभों का खाना कहां। अब तो तुम्हीं को ढोना पड़ेगा।" इतना सुनतेही भेकराज को बड़ी उत्कण्ठा हुई कि सर्प की सवारी करूं, सो वह निर्भय हो बड़े आनन्द से जल में से उछला और उस सांप की पीठ पर जा बैठा, भेकराज के मन्त्री भी सवार हो गये और वह सर्प उन्हें ले इधर उधर कुछ काल लौं घूमता रहा। पश्चात् जब देखा कि भेकराज बड़ा प्रसन्न हो गया तो उस धूर्त्त ने अपना जाल फैलाया; थक जाने का बहाना कर मेढ़कों के राजा से बोला कि अब तो मैं आप सभों को ढोते ढोते थक गया और भूख भी लग गयी अब तो कुछ खाने को मिले नहीं तो प्राण गये; मैं यह पूछता हूं कि सेवक दिन भर काम करे तो उसको खाना दिया ही जाता है बिना भोजन पाये वह कैसे रह सकता है। तब तो भेकराज की चक्की चक्की भूल गयी अब खाने को क्या देवें, इधर सवारी की उत्कट अभिलाषा उधर भोजन की मांग सो वह बड़े असमञ्जस में पड़ा और भेकों को छोड़ वहां कुछ भोजन भी नहीं कि दिया जाय, अन्ततोगत्वा उसने यही निश्चय किया कि मेढ़कों में से ही इसे भोजन दिया जाय, सो उसने सांप से कहा कि कुछ मेढ़कों को खाकर तुम अपनी क्षुधा शान्त करो। बस अब क्या, विलम्ब तो केवल आज्ञामात्र का था अब लगा वह अहि मनमाना मेढ़कों को खाने और वाहन के अभिमान से अन्धीभूत वह भेकराज अपना यह कुलक्षय देखकर भी कुछ न बोले।

इतनी कथा सुनाय चिरजीवी काकराज से पुनः कहने लगा कि देव इसी प्रकार बुद्धिमान् बीच में पैठ मूर्खों को ठग लेता है सो महाराज इसी भांति मैंने आपके शत्रु उन उलूकों के मध्य प्रवेश पा उनका नाश कर डाला। इससे राजा को उचित है कि नीतिज्ञ और कार्यकुशल होकर अपनी आत्मा को वश में रक्खे। यदि राजा ऐसा न हुआ तो भृत्य लोग उस मूर्ख को चाट जाते हैं और क्या वह जड़ राजा शत्रुओं से मार डाला भी जाता है। हे देव! यह लक्ष्मीदेवी द्यूतक्रीड़ा सपूर्ण हैं, जल की लहर की नाईं चञ्चल तथा मदिरा की भांति

न्मत्त कर देनेवाली है, उनकी स्थिरता एक कठिन बात है पर जो रा
गुणज्ञ, व्यसनहीन, विनय विषयों का ज्ञाता तथा उत्साहयुक्त होता है उस
की लक्ष्मीदेवी इस प्रकार स्थिर हो बैठ जाती है मानों रस्सी से बंधी हो।
राजन् । इस समय आप सावधान तथा विद्वानों के वचनानुसार कार्यकर्ता
शत्रुओं के नष्ट हो जाने से सुखसम्पन्न हो गये हैं अतः अब निष्कण्टक रा
शासन करें आपको इस समय किसी प्रकार चिन्ता न करनी चाहिये।

सम्मन्त्री चिरजीवी की इस प्रकार नीतिभरी बातें सुन काकराज मेघवर्ण
प्रसन्न हुआ पश्चात् उस मन्त्री प्रवर का सम्यक् सत्कार कर उसी प्रकार
वचनानुसार राज्य करने लगा।

इस भांति नीतिपूर्ण कथा सुनाय मन्त्रीप्रवर गोमुख वत्सराज के पुत्र से
कहने लगा कि देव ! इस प्रकार बुद्धिबल से पशुपक्षी भी राज्य भोगते हैं,
जिनकी बुद्धि नहीं होती वे सदा दुःखी होते हैं और लोग उनका उपहास भी
करते हैं, सुनिये एक निर्बुद्धि की कथा आपको सुनाता हूं।

किसी महाराज का एक भृत्य बड़ाही मूर्ख था, जोही बात हो वह
हा बनता था, ऐसा कभी न कहे कि मैं यह नहीं जानता। एक समय
उससे गोड़ मिंजवा रहा था पर उस मूर्ख भृत्य को यह भी ज्ञात न था,
पने से मींजते २ उसने अपने स्वामी को बकोट लिया जिससे उस मह
के अङ्ग में बड़ी जलन होने लगी, इससे क्रोध में आकर स्वामी ने
धिराज को छोड़ा दिया, अब वह इधर उधर बिलबिलाने लगा।

तना कह गोमुख फिर बोला कि देव ! इससे उचित तो यही है कि
पने को न आवे उसमें हठपूर्वक अपने को अभिज्ञ न प्रगट करे
को बुद्धिमान् समझ हठपूर्वक कहता है कि मैं जानता हूं यह
निये इसी विषय में आपको एक कथा और सुनाता हूं।

में दो भाई ब्राह्मण रहते थे, उनका पिता जो कुछ धन छो
था, दोनों एकही साथ रहते थे, पर यह व्यापार बहुत
दोनों में विच्छेद हो गया और धन सम्पत्ति का बंटवारा
में होते २ दोनों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ, एक कहे

अधिक मिलता है मैं न्यून क्यों लूं", दूसरा कहे "भला यह कैसे होगा कि मैं कमती लेऊँ ।" इस प्रकार दोनों कड़ाई के साथ विवाद करने लगे, किसी प्रकार उनका झगड़ा निपटेही नहीं । अन्त वे दोनों लड़ते झगड़ते एक वैदिक उपाध्याय के पास जाकर बोले कि आप हम दोनों का झगड़ा निपटा देवें । उपाध्याय ने उन दोनों से कहा "जाओ जो २ वस्तु तुम्हारे यहां हों उन्हें आधेआध बराबर करके बांट लेओ । इस प्रकार करने से न्यूनाधिक्य का झगड़ा न होगा।" यह सुन वे दोनों मूर्ख अपने घर लौट आये और सब पदार्थों को बराबर २ आधा २ हिस्सा करने लगे । घर द्वार, वर्त्तन भांड़ा खटिया पलंग जो कुछ रहा सबका आधा २ हिस्सा कर बांट लिया, यहांलों कि पशुओं के भी आधे २ हिस्से कर डाले । उनके यहां एक चाकरानी थी सो उन मूर्खों ने उसके भी दो टुकड़े कर बांट लिये । अन्त में यह बात राजा के यहां पहुंची सो महीपति ने उनका सर्वस्व अपहरण कर लिया ।

इतनी कथा सुनाय गोमुख श्रीनरवाहनदत्त से कहने लगा कि देव ! इस प्रकार अप्रजन मूर्खों के उपदेश में आय अपने दोनों लोक बिगाड़ते हैं । इससे बुद्धिमान् को उचित है कि मूर्खों का सेवन न करे किन्तु पण्डितों की सेवा तन मन धन से करे । फिर हे महाराज ! सुनिये, मन में सन्तोष न हुआ तो यह भी एक बड़ा दोष समझना, इसी विषय में आपको एक कथा सुनाता हूं ।

किसी स्थान में कुछ प्रव्राजक रहते थे, भिक्षा करके जो कुछ पाते उसी में सन्तुष्ट रहते और निर्द्वन्द्व खा पीकर तकड़े बने रहते । उन्हें देखकर कुछ लोगों को ईर्षा हुई, वे सब आपस में कहने लगे कि ये सब तो भिक्षा मांगकर पेट पोसते हैं पर तोभी ऐसे हृष्टपुष्ट बने हैं यह बड़े आश्चर्य की बात है । उन मित्रों में से एक बोला "अच्छा मैं अब तुम लोगों को एक कौतुक दिखाता हूं ; देखना, ये सब पूर्ववत् भोजन करतेही रहेंगे पर मैं इनको दुर्बल कर दूंगा ।" इतना कह उसने प्रत्येक प्रव्राजक को प्रतिदिन नेवता देकर उन्हें षट्रस भोजन कराना आरम्भ कर दिया, इसी प्रकार वह क्रमानुसार सभों को एक २ दिन भोजन कराता गया । अब तो उन प्रव्राजकों को उत्तमोत्तम पक्वान्न का चसका लग गया अब सभी [illegible] बने रहते कि कोई आवे और निमन्त्रण देकर ले चले और पक्वान्न

किसी बटोही ने आठ पूरियां मोल लीं, छः पूरियां वह खा गया पर
तृप्ति न हुई किन्तु सातवीं खातेही उसका मन भर गया (तृप्ति हो गई)। तब
जड़मति चिल्लाकर कहने लगा कि ओः! मैं ठगा गया हूं, यदि मैं जानता
इसी पूरी से तृप्ति हो जायगी तो पहिले इसी का भक्षण करता और तो
सातों, वृथाही ये नष्ट हुईं, मेरे पैसे भी व्यर्थ गये। वह मूर्ख इस प्रकार
करता था पर यह नहीं जानता था कि तृप्ति क्योंकर हुई। अब जोही
सहनूति सुनता वही हंसे बिना न रहता, इस प्रकार वह मूढ़ दूसरों का
हद हुआ।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव। यह तो आपको पूरी खानेवाले
था सुनाई गयी अब दूकान के रखवाले की कथा सुनिये।

एक दूकानदार ने अपने सेवक से कहा कि दूकान देखते रहना मैं
र ही आऊँ, इतना कहकर वह बनियां घर चला गया और इधर एक नट
माशा हो रहा था सो वह मूर्ख नौकर दूकान के तख्ते कन्धे पर रखकर तमा
खने चला गया। इतने में दूकानदार लौट आया तो देखता है कि वह दू
हीं है; जब वह नौकर तमाशा देखकर लौटा तो मालिक ने पूछा क्यों बे क
ला गया था मैं तुझे दूकान न दिखा गया था, उसने उत्तर दिया कि इसीलि
वृते उठाता ले गया था तिस पर भी आप कहते हैं कि ऐसा नहीं हैं

से चाहें करें।" इतना कह जब वह महिषस्वामी चुप हुआ तब उन चोरों में से एक बड़ा महामूर्ख बोला 'दोहाई महाराज की यह झूठही दोष लगा रहा है, इस गांव में न तो तलावही है न तो कोई बड का पेड़ही है, झूठमूठ हमलोगों को तंग करने के लिये ढंग रच रहा है भला कहिये तो सही हमलोगों ने इसका भैंसा कहां मार खाया। इतना सुन भैंसे के स्वामी ने कहा भया यह तुम क्या कह रहे हो तुम्हारे गांव की उत्तर ओर क्या ताल ओर बड़ नहीं है ? वहीं पर तुम लोगों ने भैंसे को मार खाया,—हां भले स्मरण हुआ उस दिन अष्टमी तिथि भी थी। इतना सुन वह मूर्ख हठ फिर बोला कि महाराज, हमलोगों के ग्राम में न तो उत्तर दिशाही है और न अष्टमी तिथिही है। इतना सुनतेही राजा हँसने लगे और जिससे उस जड़मति का उत्साह और बढ़ जाय इस हेतु उन्होंने प्रश्न किया "अच्छा, माना हमने कि तुम सत्यवादी हो, कभी झूठ नहीं बोलते तो सच २ कहो तुम लोगों ने इसका भैंसा खाया है कि नहीं ?" महीपति का ऐसा प्रश्न सुन वह मूर्खचपाट बोला कि महाराज। मेरे पिता के मरे जब तीन वर्ष व्यतीत हो गये तब तो मेरा जन्म हुआ, इससे मेरी शिक्षा अच्छी न हो सकी यह तो उन्हीं के सिखाने का प्रभाव है कि मैं बोलने चालने में प्रवीण हूं सो महाराज। मैं झूठ तो कदापि नहीं बोलने का, हमलोगों ने इसका भैंसा तो अवश्य खाया है पर इसके अतिरिक्त जितनी बातें यह कह गया है सब मिथ्या है। इतना सुनतेही राजा तथा समस्त सभासद अपनी हँसी न रोक सके हंसते २ सबके पेट फूल गये। तदुपरान्त राजा ने उन लोगों के ऊपर यही दण्ड किया कि उस भैंसे का मूल्य उसके स्वामी को दिला दिया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख मन्त्री बोला कि देव! मूर्खों का यही लक्षण है विश्वास दिलाने के हेतु गुप्त बात प्रगट कर देते हैं और जो छिपाने योग्य विषय नहीं होता है उसे छिपाते हैं। अच्छा अब आपको उस मूर्ख की कथा सुनाता हूं जो अपनी भार्य्या के कारण चकवा बना था।

किसी मनुष्य की स्त्री बड़ीही कोपना थी, सदा सर्वदा उसकी नाक भौंहें चढ़ीही रहतीं। एक दिन उस चण्डी ने अपने पति से कहा कि सुनो जी काल मैं नैहर जाऊँगी नेवता आया है सो तुम मेरे लिये वहां एक कमल की माला ले आना, चेत रहेगा न ? सुनो जो माला न लाये तो मैं तुम्हारी भार्य्या नहीं और

तुम मेरे भर्त्ता नहीं। अब वह विचारा क्या करे बड़े सङ्कट में पड़ा; अस्तु किसी प्रकार दिन बीता और रात आई सो रात्रि के समय वह कमल लेने के लिये राजा के तलाव में पैठा, इतने में रखवाले जाग गये और बोल उठे कौन है? "मैं चकवा हूं" ऐसा उत्तर उस मूर्ख ने दिया। इतना सुन राजपुरुषों ने उसे पकड़कर रात भर बांध रक्खा। प्रातःकाल वे उसे राजा के साम्हने ले गये; राजा के पूछने पर वह चकवा की बोली बोलने लगा। राजा बुद्धिमान् थे समझ गये कि कुछ रहस्य है, सो उन्होंने उस मूर्ख को समझाबुझाकर फिर पूछा कि भाई सच २ बतलाओ बात क्या है? उस मूढ़मति ने यथार्थ बात कह सुनाई। इस पर राजा को दया आई सो उन्होंने उसे छोड़ दिया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव! अब आपको एक और कथा सुनाता हूं, सुनिये यह एक मूर्ख वैद्य की कथा बड़ीही मनोहर है।

किसी ग्राम में एक बड़ाही मूर्ख वैद्य था, उसके पास एक दिन एक ब्राह्मण आकर कहने लगा कि महाराज मेरा लड़का कुबड़ा है, कोई ऐसा उपाय कीजिये कि उसका कूबड़ बैठ जाय। वैद्य ने कहा "सुनो भाई इस कार्य्य के लिये मैं दश पण लूंगा पर हां जो अच्छा न कर सका तो दसगुना तुमको दूंगा" ऐसी प्रतिज्ञा दोनों में ठहर गयी और वैद्यराज ने दश पण उससे ले लिये और लगे उस कुबड़े की चिकित्सा करने। वैद्यजी ने स्वेदादिक अनेक उपाय किये पर कूबड़ न अच्छा हुआ अन्त में उसे दशगुने पण देने पड़े।

गोमुख बोला महाराज! कोई कितना भी उपाय करे पर क्या कूबड़ बैठ

सातवां तरङ्ग ।

दूसरे दिन प्रातःकाल में नरवाहनदत्त उठे उनका मन तो शक्तियशा में लीन था किसी प्रकार गोमुख की विविध कथाओं से कुछ विरहाग्नि का शमन हुआ इसी से रात्रि विशेष नींद आगई थी पर प्रातःकाल होतेही ज्योंही निद्रा टूटी कि उनके हृदय में शक्तियशा छाय गयी इससे फिर वैसाही विरहवेदना से वह अत्यन्त व्याकुल हो गये । विवाह की अवधि का शेष भाग उन्हें युग सा प्रतीत होने लगा, एक दिन युग समान भासता, उनका चित्त नवीन भार्या के समागम की लालसा से अति उत्कण्ठित था, सदा उधरही ध्यान, कहीं दूसरी ओर मन न रमै । गोमुख के द्वारा यह बात महाराज वत्सराज के कर्णकुहर में पड़ी इससे पुत्र के स्नेह से उन्हें भी बड़ी चिन्ता हुई सो उन्होंने अपने आत्मज के चित्तविनोदार्थ वसन्तक प्रभृति निज सचिवों को भेजा कि कदाचित् उनके साथ कथोपकथन से राजकुमार को कुछ शान्ति मिले । पिता के सचिवों के आगमन से उनके गौरव के कारण कामसन्तप्त राजकुमार नरवाहनदत्त को कुछ धैर्य्य हुआ इसी अवसान में परम प्रवीण सचिवप्रवर गोमुख वसन्तक से कहने लगा "आर्य वसन्तक ! आप तो अनेक विषयों के अभिज्ञ हैं, अच्छी २ कथायें भी जानते हैं सो ऐसी कोई विचित्र मनोहर और नवीन कथा कहिये कि राजकुमार का चित्तविनोद हो ।" गोमुख की ऐसी उक्ति सुन परमचतुर वसन्तक कथा कहने लगा कि—

मालवदेश में श्रीधर नामक कोई एक द्विजोत्तम रहता था उसके दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए थे जो देखने में एक समान थे तनिक भी विभेद उनमें नहीं पाया जाता था, उनमें से बड़े का नाम यशोधर और छोटे का लक्ष्मीधर था । जब दोनों युवा अवस्था को प्राप्त हुए तब पिता की अनुमति से विद्याध्ययनार्थ विदेश चले । चलते चलते एक घोर अटवी में पहुँचे जहां न कहीं पानी मिले न कुछ भोजन, जहां ऐसे वृक्ष भी नहीं कि जिनकी छाया में बैठकर विश्राम भी किया जाय, और नीचे जलती बालू । ऊपर से तो सूर्य्यनारायण की जलजलाती किरण नीचे प्रदीप्त कर चुका, फिर मार्ग का चलना, सो विचारे पिपासा से अत्यन्त व्याकुल हो गये, मार्ग की थकावट और घोर पियास से अब उनका एक पग चलना कठिन हो गया;

लते २ सायङ्काल में एक वृक्ष के नीचे पहुँचे, जहां

सघन छाया मिली और वृक्ष फलसम्पन्न भी था; जल का भी सुपास था क्योंकि उस तरु के मूलदेश में एक ओर एक झील भी थी जिसका जल शीतल और स्वच्छ तथा कमल के सुगन्ध से वासित था। दोनों भाइयों ने उसमें स्नान कर कुछ खाया और शीतल जल पान कर अपनी तृषा बुझाई तथा खाने पीने के उपरान्त दोनों एक चट्टान पर बैठ विश्राम करने लगे। जब सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुंचे तब उन दोनों सहोदरों ने सायंसन्ध्या की उपासना की और रात्रि के समय हिंस्र जन्तुओं का भय समझ यह सिद्धान्त किया कि इसी तरु पर चढ़कर रात बितानी चाहिये; ऐसा विचार दोनों उस वृक्ष पर चढ़ बैठ रहे।

रात्रि के समय वे दोनों भाई क्या देखते हैं कि नीचे उस झील के अन्तराभ्यन्तर से बहुतेरे पुरुष निकले हैं, उनमें से किसी ने पृथ्वी झाड़झूड़ परिष्कृत कर दी, किसी ने लीप कर ठहर लगा दिया, किसी ने वहीं ठहर में पांच वर्ण के फूल बिखेर दिये; किसी ने लाकर सोने का पलङ्ग बिछा दिया, किसी ने उसपर रुई का गुलगुल गद्दा फैला दिया जिसके ऊपर से एक चादरा डाल दिया। किसी २ ने नाना रंग के प्रसून अङ्गराग इत्यादि और उत्तमोत्तम खानपान के पदार्थ लाकर वृक्ष के नीचे एक अलंग रख दिये। सबके पीछे दिव्य आभरणों से विभूषित खड्गधारी पुरुष उस झील से निकला जिसके रूप के आगे साक्षात् मन्मथ भी हो जाता। उस पुरुष के उस सुखासन पर बैठने के उपरान्त वे सब परिक जुटकर आये, कोई माला पहिनाने लगा, कोई सुगन्ध लगाने लगा, इस सबके सब उसकी सेवा शुश्रूषा में लग गये। जब वे अपना २ कार्य्य सम्पन्न चुके तब सबके सब उसी झील में मग्न हो गये। इसके उपरान्त उस पुरुष ने [illegible]

जन किया, उधर वह पुरुष अपनी प्राणवल्लभा उस द्वितीया पत्नी को लेकर
लङ्ग पर पौढ़ रहा और आनन्दपूर्वक रतिक्रीड़ा का सुख भोग निद्रित हो गया
ौर वह सती पहिली भार्य्या अपने प्राणेश्वर के पांव दबाने लगी; पति तो नि-
द्रित हो गया पर उसकी द्वितीया पत्नी को नींद न आई।

यह सब चरित्र पेड पर बैठे २ दोनों ब्राह्मणकुमार देख रहे थे, सो वे दोनों
रस्पर बातचीत करने लगे कि यह तो जो कुछ हम देख रहे हैं अप्राकृत व्यापार
, यह पुरुष न जानें कौन है; कुछ समझ में नहीं आता इससे अब उतरकर इस
ांव दबानेवाली से पूछा जाय तो पता लगे। इस प्रकार परामर्श कर दोनों भाई
ड़ से उतरे और उसके पास ज्यों पहुँचे कि उस दूसरी पत्नी की दृष्टि यशोधर
र पड़ी सो वह चपला अपने पति को सोता छोड़ पलङ्ग से उठ खड़ी हुई और
स रूपवान् के पास जाकर बोली "प्यारे! मुझे ग्रहण करो, मेरा ताप बुझाओ"।
शोधर ने कहा "पापे। तू पराये की स्त्री है, मैं तेरे लिये परपुरुष हूं सो यह तू
या कह रही है", उसकी ऐसी भर्त्सना सुन वह दुराचारिणी पुनः बोली, "प्यारे
ुम्हीं उलटी बात कह रहे हो, परपुरुष उरुष मैं कुछ नहीं जानती, मैं तो तुम्हारे
समान सौ पुरुषों से गमन कर चुकी, तुम भय क्यों करते हो ? यदि तुम्हें विश्वास
न हो तो सौ अंगूठियां देखो न, जिन २ के साथ मैंने सम्भोग किया उन उनसे ये अं-
गूठियां मुझे मिली हैं, लो मैं तुम्हें दिखाये देती हूं।" इतना कह उस पापिष्ठा ने
अंचल से अंगूठियां खोल यशोधर को दिखा दीं। उस कुलटा की ऐसी बात सुन
वह ब्रह्मचारी यशोधर बोला "अरे तू सौ सहस्र अथवा लक्षों से व्यभिचार क्यों न
करे और करावे पर मैं ऐसा कदापि नहीं करने का, मैं तो परनारी को माता
समझता हूं।" कुलटाओं को तो अनेक ढंग आते हैं उन्हें झटपट मालूम कर बे-
ठते सङ्कोच नहीं लगता; सो उस दुष्टा ने जब यशोधर की ऐसी डपट सुनी तब
इस प्रकार तिरस्कृत होने से उसे ग्लानि तो न आई प्रत्युत प्रचण्डकोप ने उस पर
प्रभुता जमायी सो वह झट अपने पति को जगाकर उससे कहने लगी कि देखो न
यह दुष्ट न जानूं कहां से आया है, इस पापी ने बलात् मेरा धर्म भ्रष्ट कर डाला।
इतना सुनतेही पति जलजला उठा और खड्ग खींच उस ब्राह्मण को मारने चला,
इतने में उसकी वह सती साध्वी भार्य्या उसके पांव पकड़ बड़े विनय से विनोरी

करने लगी कि हाय ! यह क्या करने चले हो, मेरी बात भी तो सुन लो, सुं व्यर्थ पाप का पहाड़ माथे न उठाओ इसमें बात दूसरी ही है, प्राणनाथ ! सुं बात यह है, दोष इस पापिनी का ही है, यह इसे देखतेही तुमको सोता छोड़ उठी और लगी इस बिचारे को बहकाने और फुसलाने, इस साधु ने इसकी प्रार्थना न मानी प्रत्युत "तुम मेरी माता हो" इतना कहकर इससे पिण्ड छोड़ाना चाहा, इसीसे डाह में आय इस पापिनी ने तुम्हें जगाया और इस दोष के बखान तुम्हें उभाड़ा है । प्रभो ! इतनाही इसका दुश्चरित्र सुनकर तुमको सन्तुष्ट न होना चाहिये कुछ और भी सुनो; यह इसका प्रतिदिन का नियम है इसी प्रकार इसी पेड़ के नीचे इसने एक सौ बटोहियों से दुराचार कर एक सौ अंगूठियां बटोर रक्खी हैं । स्वामिन् ! मैं तुमसे इस भय से नहीं कहती थी कि कौन व्यर्थ हेव बिसाहे, पर जब आज तुम हत्या करने चले तब मैं कैसे चुप रह सकती थी, यह बात कहने की तो नहीं है पर करूं क्या अगत्या कहनी पड़ी । यदि तुमको मेरी बात का विश्वास न हो तो देख लो इसके अञ्चल में वे अंगूठियां बँधी हैं; यह सती स्त्री का धर्म्म नहीं है कि अपने प्राणेश्वर से झूठ बोले । सुनो नाथ ! सतीधर्म्म बड़ा टेढ़ा है, सती स्त्रियां सब कुछ कर सकती हैं यदि मेरे सतीत्व का प्रताप देखा चाहते हो तो मैं दिखाये देती हूं । इतना कह उसने ज्योंही उस पेड़ की ओर कोपदृष्टि किई कि वह तरु जलकर भस्म हो गया और पुन: जो प्रसन्न दृष्टि से उसे देखा तो वह वृक्ष पूर्व की अपेक्षा अधिक हराभरा हो गया । उस सती का ऐसा प्रभाव देख पति ने अति प्रसन्न हो उसे छाती से लगा लिया, और उस दूसरी व्यभिचारिणी पत्नी की नाक काट उसे निकाल बाहर किया और उसकी अर्जित वे सौ अंगूठियां उसके अञ्चल से खोल लीं ।

इसके उपरान्त वह पुरुष अपने उस व्यापार से बड़ा खिन्न हुआ कि उस निर्दोष ब्राह्मण को मारने चला था सो वह यशोधर से क्षमा की प्रार्थना कर कहने लगा, 'देव ! मैं इन दोनों भार्य्याओं को सदा अपने हृदय के भीतर इसी भय से कि कहीं बिगड़ न जांय, पर इस पापिनी को नहीं बचा ला बिजली किसी के किये स्थिर हो सकी है और चपला स्त्री की रक्षा कर सका है ? ठीकही कहा है "युवती शास्त्र नृपति वश [illegible] हो"

किसी के वश नहीं है, पर जो स्त्री सती साध्वी पतिव्रता होती है वह अपनी रक्षा आपही करती है। वह अपनी रक्षा तो करतीही है और साथही अपने पति को भी उभय लोक में रक्षित करती है जैसा कि आप अभी देखही चुके हैं कि इस साध्वी ने, जो कि शाप और वरदान में समर्थ है, मेरी रक्षा की है। इसी के प्रसाद से आज कुलटा का संग छूटा और एक महर्षि ब्राह्मण के बधरूपी पाप से भी मैं बचा।"

इस प्रकार यशोधर से कहकर उसने उसे बैठाया और उससे पूछा कि कहिये आप दोनों जन कहां से आये हैं? और कहां जा रहे हैं?। इस पर यशोधर ने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया, पश्चात् विश्वास पाय उससे इस प्रकार के प्रश्न किये क्योंकि उसे उसके व्यापार से बड़ा कुतूहल हुआ था और उन्हीं के वृत्तान्त जानने के हेतु वह अपने भाई सहित पेड़ से उतर वहां गया था सो उसने पूछा "महाभाग। यदि यह बात गोपनीय न हो तो बताइये तो सही कि ऐसे २ उत्तमोत्तम भोग विलास रहने पर भी आपका वास जल में क्योंकर हुआ?" उसका ऐसा प्रश्न सुन वह जलवासी पुरुष, "सुनो कहता हूं", कह अपना वृत्तान्त इस प्रकार वर्णन करने लगा।

हिमालय के दक्षिण में काश्मीर नामक एक देश है, वह प्रान्त ऐसा रमणीय और मनोहर है कि जिससे ऐसा भासता है मानों विधि ने मर्त्यलोकवासियों के हेतु एक स्वर्गलोक रच दिया हो जहां हरिहर, जो स्वयम्भू हैं अपने आनन्दमय आवास श्वेतद्वीप तथा कैलास को त्याग सो स्थानों (मन्दिरों) में विराजमान हैं, जहां वितस्ता नदी अपने जल से देश को पावन करती हुई बहती है; जहां बड़े बड़े शूर वीर और अशेष शास्त्रपारङ्गत द्विजगण वास करते हैं और जो देश ऐसा सुरक्षित है कि शत्रु कैसेही बलसम्पन्न क्यों न हों पर उस जीत नहीं सकते वहीं पूर्वजन्म में एक ग्राम में ब्राह्मण के घर में मेरा जन्म हुआ, मेरा नाम भवशर्मा पड़ा वहां मेरा एक सामान्य जीवन था, उस जन्म में मेरे दो स्त्रियां थीं। वहां कुछ भिक्षुक (१) रहते थे उन पर मेरी अत्यधिक श्रद्धा रहती थी सो धीरे २ उनसे प्रगाढ़ मैत्री हो गई; अब उनके सम्पर्क का ऐसा प्रभाव हो गया कि उनके शा

(१) बौद्ध संन्यासी।

स्त्रीक्ष उपोषण नामक व्रत नियम का अनुष्ठान मैं करने लगा । शुभकर्म में बाधा तो अवश्य पड़तीही है; यह तो सिद्धान्त है, सो मेरे उस उपोषण में भी पड़ गयी; मेरा नियम प्रायः समाप्त हो चला था कि एक भार्य्या हठपूर्वक मेरे पलङ्ग पर आ पौढ़ गई तब भी मैंने बहुत बचाया पर यह कब सम्भव है कि हार हो अन्ततोगत्वा रात के चौथ प्रहर में निद्रा के व्यामोह से मुझे उस व्रत का निषेवण बिसर गया और पास में वह चम्पकवदनी सोईही थी बस खोजना क्या मैं उस प्रिया के साथ रमण करने लगा । हा । दैव बड़ा प्रबल है । बस मेरा व्रत खण्डित हो गया उसीसे मुझे जलपुरुष हो यहां जल में वास करने के हेतु जन्म लेना पड़ा; वे दोनों भार्य्यायें यहां भी मेरी पत्नियां हुईं, इनमें से एक वही पापिनी कुल्टा हुई है, जिसने मेरा व्रत भङ्ग किया था और यह दूसरी पतिव्रता है। मेरा वह व्रत खण्डित हो गया तथापि यह उसी का प्रभाव है कि मैं अपने पूर्वजन्म की कथा स्मरण करता हूं और रात्रि के समय ऐसे २ उत्तमोत्तम भोग भोगता हूं और जो कहीं मेरा वह नियम खण्डित न हुआ होता तो मैं अब तक न जानूं क्या हो गया होता । सो व्रत का ऐसा प्रभाव होता है । इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय उस जलपुरुष ने उन दोनों अतिथियों का बड़ा सत्कार किया, उन्हें उत्तमोत्तम पक्वान्न खिलाये तथा दोनों भाइयों को दिव्य वस्त्रों से सुशोभित किया । तदनन्तर उस जलपुरुष की वह सती साध्वी भार्य्या अपने पूर्वजन्म का वृत्तान्त सुन, घुटना टेक पृथ्वी पर बैठ गई और चन्द्रमा की ओर दृष्टि उठा इस प्रकार कहने लगी, "हे लोकपालो । यदि मैं सच्ची साध्वी और पतिव्रता हूं तो मेरे यह पति जलवास से मुक्त होकर स्वर्गलोक को चले जावें । उस साध्वी के ...ना कहतेही स्वर्ग से एक विमान उतरा और दोनों पति पत्नी उसपर बैठ स्वर्ग ... गये । ठीकही है साध्वी स्त्रियों के लिये तीनों लोक में क्या असाध्य है। ...नों विप्र यह चरित्र देख अति आश्चर्यान्वित हुए।

इस प्रकार वह विचित्र चरित्र देख अति विस्मित हो वे दोनों ब्राह्मणसुत और लक्ष्मीधर शेष रात्रि वहीं बिताय प्रातःकाल होने पर वहां से आगे ... २ सायङ्काल में एक निर्जन अरण्य में पहुंचे और एक पेड़ के नीचे दिन भर ... [illegible]

वे जल पीने के लिये इधर उधर जलाशय निरखने लगे कि इतने में उस पेड़ पर से यह वाणी सुनाई दी "हे विप्रो ! टुक ठहरो, तुम मेरे घर आये हो, अतः मेरे अतिथि हो सो मैं स्नानजपानादि से तुम्हारा आतिथ्य करूँगा (किये देता हूं)।" इतना कह वह वाणी चुप हो गयी कि इतने में वहीं एक बावड़ी निकली और उसके किनारे पर विचित्र २ अन्न पान विद्यमान थे। यह देख उन दोनों द्विज पुत्रों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या बात है, अस्तु उन दोनों ने बावड़ी में स्नान कर भोजन और जलपान किया। तदुपरान्त सायंसन्ध्या की उपासना कर दोनों भाई उस वृक्ष के नीचे बैठे कि इसी अवसर में एक अति सुन्दर पुरुष उस वृक्ष से उतरा, उन ब्राह्मणों ने उसका अभिवादन किया और वह भी उनको स्वागत कर वहीं बैठ गया, ब्राह्मणों ने उससे पूछा कि आप कौन हैं ? तब वह पुरुष उनसे अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाने लगा—

पूर्व समय में मैं ब्राह्मण था मेरी दशा बड़ी हीन थी; दैवात् श्रमण (१) लोगों की मेरी संगति हो गयी; उनके उपदेश से मैं उपोषण व्रत करने लगा परन्तु व्रत समाप्त न होने पाया, किसी दुष्ट ने एक दिन सायङ्काल में बलात् मुझे भोजन करा दिया, बस मेरा व्रत खण्डित हो गया इसीसे मैं गुह्यक हुआ हूं, यदि कहीं मैं वह व्रत पूर्ण कर पाता तो स्वर्गलोक में देवता होता।

इतनी कथा सुनाय वह गुह्यक पुरुष बोला, "विप्रो ! यह तो मैंने अपना वृत्तान्त कह सुनाया अब यह बतलाओ तुम दोनों कहां से आये हो ? और इस मरुस्थल में क्योंकर आ पड़े हो ?" इतनी बात सुन द्विजोत्तम ने अपना वृत्तान्त आद्यन्त कह सुनाया। तब वह यक्ष उन ब्राह्मणपुत्रों से कहने लगा कि यदि यही बात है तो मैं अपने प्रभाव से तुम्हें विद्यायें देता हूं, तुम दोनों सर्वविद् होकर घर और जाओ विदेश में भ्रमण करने का कुछ प्रयोजन नहीं है। इतना कह उस यक्ष ने उन ब्राह्मणों को विद्यायें प्रदान कीं और उन द्विजकुमारों ने उसके प्रभावसे उन विद्याओं को ग्रहण किया। तब वह गुह्यक उनसे फिर कहने लगा, "हे ब्राह्मणपुत्रो ! अब मैं तुम्हारा गुरु हुआ मुझको तुमसे [illegible] सो तुम्हें उचित है कि मुझे कुछ गुरुदक्षिणा दो [illegible]

(१) बौद्ध सन्यासी।

दक्षिणा न मांगूंगा जो तुम न दे सको; अब अब तुम मुझे यही गुरुदक्षिणा दो कि मेरे निमित्त तुम दोनों यह उपोषण व्रत कर देना। इसका विधान यह है कि सत्य बोलना, ब्रह्मचर्य से रहना, देवता की प्रदक्षिणा करनी, भिक्षुओं की वेला भोजन करना मन का संयम रखना और क्षमा करनी, इन बातों का ध्यान रख इस व्रत का अनुष्ठान करना, उचित है। सो एक रात्रि यह व्रत करना और उस का फल मुझे अर्पण कर देना जिससे कि मेरा वह खण्डित व्रत पूर्ण हो जाय और उसके पूर्ण हो जाने से मैं स्वर्ग में चला जाकर दिव्य शरीरधारी हो जाऊं। उन ब्राह्मणों ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया कि हम ऐसाही कर देंगे, सो सिद्धार्थ हो वह यक्ष अन्तर्धान हो गया।

यक्ष से विदायें पाय दोनों भाई अत्यन्त हर्षित हुए और उसके चले जाने पर वे दोनों रात्रिभर वहीं रहे और जब प्रातःकाल हुआ तब वे अपने घर को लौटे। जब वे दोनों सिद्धार्थ हो घर पहुँचे तब उन्होंने अपने माता पिता से अपनी विद्याप्राप्ति का सारा वृत्तान्त कह सुनाया जिससे वे सातिशय प्रमुदित हुए। इसके उपरान्त उन्होंने उस उपोषण व्रत का अनुष्ठान किया और उसका पुण्य यक्ष को अर्पण किया जिसके प्रताप से उनका गुरु वह यक्ष विमान पर आरूढ़ हो वहीं उपस्थित हुआ और उनसे कहने लगा "ऐ बच्चो। तुम्हारे प्रसाद से मैं यक्षयोनि से छूट देवत्व को प्राप्त हुआ हूं, सो अब मैं तुम दोनों को यह सम्मति देता हूं कि तुम दोनों इस व्रत का अनुष्ठान अपने लिये भी करना जिससे इस देह के अन्त होने पर तुमको भी देवत्व की प्राप्ति होवे, मेरे वरदान के प्रभाव से तुम्हें धन की न्यूनता कदापि न होगी।" इतना कह वह कामचारी विमान पर बैठा हुआ स्वर्गलोक को चला गया।

इतनी कथा सुनाय महाराज वत्सेश्वर का मन्त्री वसन्तक श्रीयुत नरवाहनदत्त से पुनः कहने लगा कि राजकुमार इस प्रकार उन दोनों यशोधर और लक्ष्मीधर ब्राह्मणों ने उस यक्ष के उपदेश से उस उपोषण व्रत का अनुष्ठान किया और उसी के प्रभाव से विद्या और धन पाकर सुख से कालयापन करने लगे। सो देव! इस प्रकार जो लोग धर्मात्मा होते हैं और विपत्काल में भी अपना शील ... उनकी रक्षा देव लोग करते हैं।

इस प्रकार ब्रह्माण्ड का कथा आख्यान सुन नरवाहनदत्त का कुछ मनोविनोद हुआ परन्तु मदिरावती का ध्यान न छूटा, उसकी प्राप्ति की तृष्णा वैसीही लगातार बनी रही। इतने में भोजन का समय आ गया और महाराज वत्सराज ने उन्हें बुला भेजा सो नरवाहनदत्त अपने मन्त्रियों के साथ उनके समीप गये और यथेष्ट भोजन कर सायङ्काल में गोमुखादि के साथ अपने मन्दिर में जा विराजे।

अब पुनः गोमुख उनके विनोद की विवेचना कर उनसे कहने लगा कि देव! अच्छा सुनिये अब आपको दूसरा कथाक्रम सुनाता हूं।

महोदधि के किनारे उदुम्बर बन में वानरों का राजा बलीमुख रहता था, वह अपने यूथ से छूट (भटक) गया था। एक समय की बात है कि वह एक उदुम्बर (गूलर) के पेड़ पर बैठा निश्चिन्त उसके फलों को खा रहा था और नीचे समुद्र में एक घड़ियाल रहता था, उस वानर के हाथ से एक गूलर छूटा सो वह घड़ियाल खाय गया, उस गूलर का स्वाद उसे बहुत अच्छा लगा इससे वह आनन्द के मारे और प्राप्ति के अर्थ बड़ा कलरव मचाने लगा। कपि समझ गया कि यह फल उसे अच्छा लगा और कि वह अधिक मांग रहा है इससे उसने और बहुत से फल फेंके। अब यह नित्य का काम हो गया कि वह वानर जब उदुम्बर खाता तब वह घड़ियाल शब्द करने लगता अतः वानर उसके लिये भी कुछ गिरा देता। इस प्रकार होते २ उन दोनों में मित्रता हो गई, वह घड़ियाल समुद्र के किनारे नित्य दिनभर उस वानर के निकट बना रहता और सायङ्काल में अपने आवासस्थान को चला जाता।

अब घड़ियाल दिनभर तो वानर के यहां बना रहता सांझ को कहीं अपने घर जाता, इससे उसकी भार्य्या को बड़ी चिन्ता हुई कि बात क्या है, सो वह इस खोज में लगी, इधर उधर से पता लगाने, पर अन्त में उसको विदित हो गया कि किसी वानर से इसकी मित्रता हो गयी है उसीके साथ यह दिनभर रहता है। वह नहीं चाहती थी कि बन्दर की मित्रता बनी रहे, सो उसके विच्छेद की चिन्ता करने लगी। एक दिन वह ढोंग कर मांदी पड़ गयी; सायङ्काल में जब घड़ियाल आया तो उसे तादृश पड़ी देख बड़ [illegible] लत हुआ [illegible]र उससे पूछने लगा कि प्रिये

नहीं है, अच्छा कहो यह रोग किस औषधि से शान्त होगा ? इस प्रकार वा
घड़ियाल बड़ी आर्ति से बार २ पूछता पर वह कुछ उत्तर न देती; अब क्या ही
यह विचारा और भी घबड़ाया, पर करे क्या वह मानिनी कुछ उत्तर ही न देती
थी। अन्त में उसकी एक सखी, जो कि इस मर्म से अवगत थी; घड़ियाल से क
हने लगी, "सुनो जी यह एक ऐसी बात है जो तुम न करोगे और यह तुम्हारी
पत्नी भी नहीं चाहती कि तुम ऐसा करो, पर मैं तो यह मर्म जानती हूं, कैसे
छिपाऊँ, और छिपाना उचित भी नहीं है। सुनो तुम्हारी भार्य्या को एक भयङ्कर
रोग हो गया है, इसे असाध्यही समझना, क्योंकि इसकी औषधि भी एक अलभ्य
है; सो मैं बता तो अवश्य दूंगी आगे लाना न लाना तुम्हारे हाथ में है; सुनो वान
के हृत्पद्म (१) के जूस बिना यह रोग शान्त नहीं हो सकता, सो बन्दर के हृ
दय का जूस इसे दिया जाय तो यह अच्छी हो।" अपनी प्रिया की सखी का
ऐसा कथन सुन वह घड़ियाल सोचने लगा, "अहो ! यह बड़े कष्ट की बात है,
अब मैं वानर का हृत्पद्म कहां पाऊँ ! यदि अपने मित्र उस वानर से द्रोह करूं
तो क्या ऐसा करना मुझे उचित है ! अथवा उस मित्र से ही मेरा क्या करने का,
जो मेरी प्राणाधिक भार्य्या ही न रही।" इस प्रकार विचारकर वह अपनी पत्नी
से कहने लगा कि प्रिये ! दुःख न करो हृत्पद्म की क्या चिन्ता मैं तुम्हें एक समूचा
बन्दर ही ला देता हूं। इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर वह घड़ियाल उस कपि के
पास चला गया, और बातचीत करने लगा, इधर उधर की गप्प लड़ाते उसने
बीच में यह बात छेड़ दी कि मित्र ! इतने दिनों से मेरी और तुम्हारी मित्रता है
पर आज लौं तुमने न तो मेरा घरही देखा और न मेरी भार्य्याही से भेंट की, सो
लो आज मेरे ही घर विश्राम करो; जहां मित्रों का एक दूसरे के घर आना
ना, और परस्पर भोजनादिक का व्यवहार नहीं, स्त्रियों से भेंट नहीं, भला वह
कोई मित्रता है ? इस प्रकार प्रतारण की बातों से उसने वानर को अपने वश
र लिया और वह वानर उसकी बातों का विश्वास कर उस पेड़ पर से उतर
और घड़ियाल उसे अपनी पीठ पर उठा अपने घर की ओर चला। आज
यान कुछ चकित सा और घबड़ाया हुआ था, उसकी ऐसी अवस्था देख

ार के मन में आशङ्का हुई सो वह उससे पूछने लगा, "सखे! आज तुम्हारा भाव
र औरही दिखाता है, कहो तो सही क्या बात है?" इस प्रकार उसके आग्रह-
क पूछने पर वह महामूर्ख घड़ियाल अपने मनमें सोचने लगा कि अब तो यह
हाथ में है, अब जायगा कहां। इतना सोच वह बोला कि मित्र! मेरी भार्या
ज रुग्ण है, उसके पथ्य के लिये बन्दर का हृदय अपेक्षित है, इसी कारण आज
ा मन उदास है। उस घड़ियाल की ऐसी बात सुन वानर सोचने लगा, 'हाय
य। इसीलिये यह दुष्ट मुझे यहां ले आया है, अहो! स्त्री के व्यसन में पड़कर
ह मित्रद्रोह करने पर उद्यत हुआ है; ठीक है, क्या भूतग्रस्त अपने दांतोंही से
प: मांस नहीं नोच २ कर खाता।" इस प्रकार चिन्ता कर उस बुद्धिमान् व

को उपवास होने लगी तब औरों की कौन चलावे; मन्त्री गोमायु तो ... जूठन खाय २ रहता था उसे उपवास के कारण अधिक दुःख होने लगा सो सिंह से कहा कि हे प्रभो। घूम फिर के कुछ आहार नहीं लाते, आप तो भूख सहतेही हैं आपके साथ २ आपके आश्रित भी भूखों मर रहे हैं कहिये यह कैसे कष्ट की बात है; सो उठिये, निकलकर इधर उधर यथाशक्ति टोह लगाइये कुछ न कुछ मिलही जावेगा। सियार की ऐसी बात सुन सिंह ने उसे उत्तर दिया,— "सखे शृगाल। मेरे घाव ऐसे घोर हैं कि मैं तनिक टसक भी नहीं सकता घूमना फिरना तो दूर रहे; जो कहीं गदहे के कान और हृदय मुझे भक्षण करने को मिलें तो मेरे घाव अच्छे हो जावें और तब मैं अच्छा भी हो जाऊँगा, सो यदि हो सके तो जाकर किसी गर्दभ को लिवा लाओ।" सिंह का यह कथन सुन वह मंत्री सियार बोला, "महाराज। जो आज्ञा इसमें क्या, मैं अभी जाकर एक गदहे को लिवा लाता हूं", इतना कह वह वहां से चला और इतस्ततः किसी गर्दभ की खोज में घूमने लगा, इतने में किसी जलाशय के किनारे एक गदहे पर उसकी दृष्टि पड़ी सो वह धीरे से उसके पास चला गया और बड़ी प्रीति से उससे कहने लगा कि भाई। आजकल तुम इतने दुबले क्यों हो गये हो, क्या खाने पीने को भरपेट नहीं मिलता? वह बोला "भाई। क्या करूं सदा इस धोबी के बोझ ढोने पड़ते हैं, दुर्बल होऊं न तो क्या करूँ मेरा वशही क्या है।" उस गदहे की इतनी बात सुनतेही वह जम्बुक बोला "तो भाई क्यों यहां पड़े २ कष्ट उठाते हो, चलो न हमारे वन में रहो स्वर्ग का सा सुख अच्छी २ गदहियों के साथ भोगो।" गदहा तो था ही उसे बुद्धि कहां और फिर भोगविलास की लालसा। सो वह बोल उठा, "बहुत अच्छा भाई। चलो।" इतना कह वह उस जम्बुक के साथ चल पड़ा और सिंह के समक्ष जा पहुँचा। उसको देखतेही सिंह धीरे से उठा और पीछे से उस पर झपटा पर वह ऐसा दुर्बल था कि उसका पञ्जा कस के नहीं पड़ा और गदहा उसके देखतेही देखते वहां से निकल भागा; फिर न आया और सिंह इतनेही परिश्रम से हांफकर गिर पड़ा और कार्य में सफल न होने से लज्जित हो धीरे से अपनी मांद में जा बैठा। तब उसका मन्त्री धिक्कार कर उससे बोला "हे प्रभो! जब गदहे का वध आपसे ... तो हस्तिआदि पशुओं के वध की क्या

इलाई जावे" यह सुन सिंह बोला कि तुम भी समझो सोही सही, अच्छा फिर तो उसे एक बार फुसला के बुला लाओ, अबकी बार मैं सचित रहूंगा देखना क्या करूंगा, अबकी उसे मारे बिना न छोड़ूंगा । इस प्रकार कहकर सिंह से भेजा गया वह सियार फिर उस गदहे के पास गया और कहने लगा कि भाई तुम भाग क्यों आये? उसने उत्तर दिया कि किसी जन्तु ने मुझे मारा सो डरकर मैं भाग न आऊं तो क्या प्राण दूं। यह सुन वह धूर्त्त सियार हंसकर बोला, "यह तुम क्या कह रहे हो, यहां तो कोई जन्तु वन्तु नहीं है, यदि कोई होता तो कहो मैं ऐसा छोटा जीव होके यहां कैसे सुख से रह सकता, सो तुम्हें कुछ भ्रम हुआ होगा । अच्छा अबकी चलो तो सही देखा जाय क्या है, तुम सुख से मेरे साथ २ यहां रहना ।" मूर्ख गदहा उसकी भड़ी पट्टी में आ गया और फिर उसके साथ वहां चला गया । उसे देखतेही सिंह गुहा में से निकला और अबकी उसपर ऐसा झपटा कि गदहा भाग न जाय और शृगाल ने उसे पकड़ नखों से फाड़कर टुकड़े २ कर डाला । इसके उपरान्त सिंह उस जम्बुक को उस व्यापादित खर का रखवाला नियुक्त कर स्नान करने गया कि स्नान करने से थकावट दूर हो जायगी तो खाते अच्छा बनेगा । उधर सिंह तो चला गया, इधर सियार कई दिनों का भूखा तो थाही, तिसमें वह जाति का पक्का मायावी; सो उसने अपनी तृप्ति के अर्थ उस हत गदहे के हृदय और दोनों कान खा डाले । जब सिंह नहा कर आया तो क्या देखता है कि गदहे के हृदय और कान हैंही नहीं सो उसने सियार से पूछा कि इसके हृदय और कान क्या हुए? शृगाल ने उत्तर दिया,— "प्रभो! इसके हृदय और कान पहिलेही से न थे. यदि यह बात न होती तो क्या यह एक बार चला जाकर पुन: यहां आता ।" सिंह ने उसकी बात सच मान ली और गदहे का मांस भक्षण किया और जो बचा खोचा उसे खाकर सियार ने अपनी आग बुझाई ।

इतनी कथा सुनाय वानर बोला; "भाई घड़ियाल! बस अब तुम जाओ मैं अब नहीं जाने का, मैं उस गदहे के समान मूर्ख नहीं हूं कि एक बार मृत्यु के मुंह से बच

गया और अपने मनमें इस बात से बड़ा सन्तुष्ट होता कि पक्षी का वध हो
हुआ और एक अच्छा मित्र भी हाथ से निकल गया। जब उसकी भार्या को
बात विदित हो गयी कि दोनों का सख्य टूट गया तो वह स्वयं अच्छी हो गयी
उधर वह वन्दर भी समुद्रकिनारे सुखपूर्वक विचरने लगा।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज ! इस प्रकार बुद्धिमान् हो
दुर्जनों का विश्वास कदापि नहीं करते, उनका विश्वास किया कि मारा गया
दुर्जन और कृष्ण सर्प एक समान माने गये हैं, दोनों में किञ्चिन्मात्र भेद नहीं।
इनका विश्वास कर जो सुख चाहे उसके समान जगत् में कोई दूसरा मूर्खशिरो
है ही नहीं।

इसके उपरान्त नरवाहनदत्त के चित्तविनोदार्थ गोमुख ने फिर कहा कि हे
आपको क्रमानुसार फिर ऐसे २ हास्याकर मूढ़ों की कथा सुनाता हूं। अब पहिले
उस मूर्ख की कथा सुनिये जिसने अपने मीठे वचनों सेही एक गायक को प्रसन्न
कर समझा कि बड़ा भारी काम किया।

एक बार एक गायक किसी धनाढ्य महाजन के यहां गया और अपनी वीणा
कर लगा गाने, महाजन उसका गाना सुनकर अतिशय सन्तुष्ट हुआ और
पने कोशाध्यक्ष को बुलाकर उसने उसके समक्षही यह आज्ञा दी कि इस
वैये को दो सहस्र पण दे देओ। "बहुत अच्छा, दिये देता हूं", इतना कह वह
जाञ्ची चला गया। तब वह गवैया खजाञ्ची के पास जाके वे पण मांगने लगा
रन्तु उसने एक कौड़ी भी न दी। तब तो वीणावादक ने जाकर उस महाजन
कहा कि खजाञ्ची रुपये नहीं देता, आपने तो आज्ञा कर दी अब न जाने
देते क्यों मोह लगता है। सो सुन वह महाजन बोला "तू बड़ाही मूर्ख है, तू
भी नहीं समझता; तूने केवल वीणा सुनाकरही न मुझे प्रसन्न किया था,
मैंने भी पण दान के वचनों से तुझे सन्तुष्ट कर दिया, सो अब तू और क्या
है!" ऐसा कोरा उत्तर सुन यद्यपि वह गैविक हताश हो गया था तथापि
वहां से चला गया। भला मूढ़ों की ऐसी बातें सुन कर भी
आनन्द की तो बातही निराली है।

गोमुख बोला देव · यह तो आपको उस मूढ़ की कथा सुनाई गई अब एक
ह दो मित्रों की कथा

किसी गुरु महाशय के यहां दो शिष्य पढ़ते थे, दोनों में परस्पर बड़ाही द्वेष था; उनमेंसे एक तो गुरुदेव का दहिना पांव मींजता और धोता तथा दूसरा बांया पांव। एक दिन दहिना पांव मींजनेवाला वह शिष्य गुरु की आज्ञा से किसी काम के लिये एक गांव को गया था, और दूसरे ने रीत्यनुसार अपने हिस्से का बांया पांव दबाया; और धोया जब दबा चुका तो गुरु ने कहा कि आज वह बाहर गया है सो तू दहिना पांव भी मींजकर धो दे। यह सुनके वह मूर्ख शिष्य बोला, "गुरु जो वह मेरे प्रतिपक्षी का पांव है मैं तो उसे कदापि न मींजूंगा।" इसपर गुरु ने हठ किया तब उस महा मूर्ख ने विचारा कि अच्छा अवसर मिला है उससे वैर लेना चाहिये; इतना सोच उसने अपने गुरु के दक्षिण चरण पर एक भारी पत्थर दे मारा जिससे वह टूट गया। गुरु का आक्रन्दन सुन और सब शिष्य वहां बटुर आये और लगे उस शिष्य को कूटने; परन्तु गुरुदेव ने उसे छोड़ा दिया। दूसरे दिन जब वह शिष्य गांव से लौटा तब गुरु के पादभञ्जन की बात सुन क्रोध से जनजना उठा और बोला कि उस दुष्ट ने द्वेष से मेरे हिस्से का पांव तोड़ दिया है तो मैं उसके हिस्से का पांव क्यों न तोड़ डालूं, इतना कह उसने गुरु का वह दूसरा पांव भी तोड़ डाला। उसी प्रकार सब शिष्य इसे भी पीटने लगे किन्तु गुरुदेव के दोनों पांव तो अब मिलते (जुटते) नहीं, सो उन्होंने दया कर इसे भी छोड़ाय दिया। तब सब लोग उन दोनों शिष्यों का उपहास करने लगे और सब उनसे द्वेष भी करते इससे उनका रहना असाध्य हो गया सो वे दोनों वहां से अपने २ स्थान को चले गये और गुरुजी महाराज धीरे २ अच्छे हो गये, उनकी सहनशीलता और क्षमा का सौरभ चहुंदिशि छाय गया, जो सुनता वही उनकी प्रशंसा करता।

गोमुख ने कहा कि देव। इसी प्रकार मूर्ख लोग आपस में विरोध करके स्वार्थों का अर्थ तो बिगाड़तेही है प्रत्युत अपनी टांग में भी टांगा मारते हैं। अच्छा महाराज अब आपको दो शिरवाले सांप का इतान्त सुनाता हूं।

किसी सर्प के दो शिर थे, एक तो यथास्थान आगे की ओर और दूसरा पूंछ की ओर। आगेवाला शिर तो सदैव था किन्तु पूंछ की ओर के शिर में आंखें न थीं परन्तु उन शिरों में प्रधानता का झगड़ा बना रहता, एक कहै मैं मुख्य हूं

है पर यह नहीं जानता कि वह कौनकर छिपाया जाय। अब कुछ लड़कों की कथा आपको सुनाई जाती है।

कुछ लड़कों ने कहीं दुही जाती हुई गौ को देखकर अपने मनमें यह विचारा कि इसी प्रकार सब पशु दूहे जाते हैं, सो एक दिन वे सब किसी गदहे को पकड़ कर उसी प्रकार दूहने लगे, कोई दूहता था, कोई दोहनी पकड़े हुए था; वहां लो कि उनके मध्य इस बात का विवाद भी उठ गया कि कौन पहिले पीयेगा, पहिले सभी पीने चाहते थे। उनके दूहने में यद्यपि सभी ने बड़ा परिश्रम किया पर कुछ दूध उन्हें मिला नहीं, प्रत्युत लोग उनके खेलवाड़ पर हंसने लगे। ठीक है, व्यर्थ की बात में जो परिश्रम किया जाय वह व्यर्थ न होगा तो और क्या होगा; ऊपर से हंसी जो होती है सो मानो व्याज है।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव। अब आपको एक और मूर्ख की कथा सुनाता हूं।

किसी ब्राह्मण का पुत्र बड़ा मूर्ख था एक दिन उसके पिता ने सायङ्काल में उससे कहा कि हे पुत्र। कल प्रातःकाल तुमको उस गांव को जाना होगा। यह सुन वह रात्रि में तो सो रहा, बिहान होतेही उस गांव को चल पड़ा, उस मूर्ख ने अपने पिता से यह भी न पूछा कि उस गांव में जाकर क्या करना धरना होगा अथवा किससे क्या कहना होगा। सो वहां जाकर दिनभर व्यर्थही बिताकर सायङ्काल में वह अपने घर को लौट आया और अपने पिता से कहने लगा कि लीजिये पिता जी मैं आपकी आज्ञा से उस गांव से हो आया। पिता ने उत्तर दिया 'बच्चू। अच्छा किया तुम्हारा जाना न जाना बराबरही है क्योंकि तुम्हारे जाने से कुछ काम तो सिद्धही न हुआ।"

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव! इसी प्रकार व्यर्थ का कष्ट मूर्ख जन उठाता है, उससे कुछ कार्य्य तो होता नहीं प्रत्युत लोगों का हास्यास्पद वह होता है। प्रायः देखा गया है कि ये मूर्ख लोग शिक्षा दियेजाने पर भी उपकारी और हितकर बातों को नहीं मानते, अपनी अनूठी बुद्धि के आगे ये किसी को गिनतेही नहीं और सारे संसार को तुच्छ तथा अज्ञ समझते हैं। यदि ऐसा न होता तो सज्जनों के द्वारा सदुपदेश पाकर अनेक मूर्ख सुधर जाते। जो सच पूछिये

तो ये लोग ऊसरभूमि के समान हैं जिस पर सदुपदेश रूपी बीज कभी नहीं जमता और न जड़ पकड़ता है।

दोहा।

मंत्री गोमुख की कही, शिक्षाभरी कहानि।
सुनि बोले वत्सेशसुत, सुनो मीत सुखदानि॥
मन मेरो उरझ्यो उतै, शक्तियशा-दृगफंद।
कौन उबारे तेहिं अहो, बिन सहाय नँदनन्द॥
बीती रैन विशेष तब, पौढ़े राजकुमार।
ता पाछे मंत्री सबै, गवने भवन मँझार॥

८वां तरङ्ग ८वें भाग में देखो

आनन्दीबाई उपन्यास ।/)
अन्गुला का खून /)
अकबर उपन्यास प्रथम
भाग ॥)
अघोरपन्थी /)
अमलावृत्तान्तमाला ।॥)
बनकन्या ।/)
ईश्वरीलीला /)
उर्मिला /
कथासरित्सागर आठ
भाग ४)
किसान की बेटी १।)
कमलिनी उपन्यास ।)
अनूठी बेगम /)
तिब्बत वृत्तान्त /)
खोई हुई दुलहिन /)
लड्डाटापू /)
भयानकभूल /)
चन्द्रभागा उपन्यास १)
महेन्द्रमाधुरी ॥)
रजीया बेगम १।)
[illegible] ॥)
[illegible] /)
सरला उपन्यास /)
राबिन्सनक्रूसो ॥)

तारा उपन्यास तीनो
भाग १॥)
दुर्गेशनन्दिनीदोनोभाग ॥)
दीपनिर्व्वाण ॥)
दीनानाथ ।/
दलितकुसुम ।/)
नरेन्द्रमोहिनीदोनोभाग १)
नरपिशाच चारो भाग २)
प्रणयिनीपरिणय /)
पुलिसवृत्तान्तमाला ॥)
सुखशर्वरी ।)
पत्ताराज्यकाइतिहास /)
चन्द्रभागा उपन्यास १)
रक्षा उपन्यास १
बीरजयमल ॥)
वीरपत्नी ।/)
बनकन्या ।/)
बड़ा भाई ॥/)
प्रेममयी /)
प्रिन्सपुरण (अंग्रेजी में) ।)
प्रवीण पथिक १)
पति की स्त्री ।)
निराला नकाबपोश ।/)

सौन्दर्यमयी
संसारदर्पण
स्वर्णलता उपन्यास
सुवाईमाव
अवधकी बेगम
कुसुमदेवी
श्यसान का मुर्दा
हीराबाई
ठगवृत्तान्तमाला चा
भाग १
चांदी का महल
चम्पा
चन्द्रकला
गिरिजा
गंगागोबिन्दसिंह
कुंवरसिंह सेनापति
किसान की बेटी १
कपटी मित्र

रामकृष्णवर्म्मा
भारतजीवन कार्यालय
बनारस सिटी।

भाषा-कथासरित्सागर ।

का

आठवां भाग ।

भारतजीवनपत्र के अध्यक्ष

बाबू रामकृष्णवर्म्मा द्वारा प्रमथित ।

सवैया ।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालविनैवल पाई ।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा वसुधा मधँ छाई ॥
प्रेमसमेत पियै जो कोई वलवीर भनै वलि ईस दुहाई ।
पायहि सो जगदीस कृपा तें अनन्द अमन्द बड़ी विबुधाई ॥

॥ काशी ॥

भारतजीवन प्रेस से तरङ्गित ।

१९०५ ई०

प्रथम बार १०००]

[मूल्य ॥)

आठवां तरङ्ग।

दूसरे दिन रात्रिके समय राजकुमार नरवाहनदत्त अपने भवन में विराजमान थे, उसी अवसर पर सब मन्त्री भी आ गये, इधर उधर की बातें हो रही थीं पर उनका मन तो शशियशा के हेतु अत्यन्त उत्कण्ठित था किसी प्रकार चित्तविनोद होताही नहीं सो अति व्याकुल हो उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री और मित्र गोमुख से कहा कि मुझे कोई ऐसी बात छेड़ये कि चित्त को कुछ शान्ति होती। उनकी आज्ञा पाय परम प्रवीण गोमुख मन्त्री ने क्रमानुसार कथाओं का प्रारम्भ किया।

किसी नगर में देवशर्म्मा नामक ब्राह्मण रहता था, उसकी भार्य्या का नाम देवदत्ता, जो उसके समान कुल की थी। ब्राह्मणी कुछ कालोपरान्त गर्भिणी हुई और समय पर पुत्र जनी। देवशर्म्मा दरिद्र था, इस दुरवस्था में रहके भी पुत्र रत्न पाय वह अपने को धन्य समझने लगा, ऐसा प्रमुदित रहता मानों उसे निधि मिल गई हो। सूतोगृह से निकलने के उपरान्त एक दिन उसकी भार्य्या नदी में स्नान करने गयी और देवशर्म्मा घर में बालक की रखवाली करता रहा। ब्राह्मण पूजापाठ करके अपना जीवननिर्वाह किया करता था, उसी अवसर में राजा के अन्तःपुर से बुलावा लेकर एक चेरी आई। अब ब्राह्मण बड़े असमञ्जस में पड़ा कि बालक की रक्षा में किसको रख जाऊँ, यदि नहीं जाता तो दक्षिणा मारी जाती है। उसके घर में एक नेवला था जो कि बचपन से पला पोसा था सो ब्राह्मण ने सोचा कि इसेही रक्षक कर चलूं, अतः उसी बाल्यावस्थापोषित नकुल को बालक का रखवाला कर वह चला गया। उसके चले जाने पर अकस्मात् एक सांप उस बालक के समीप आ गया, सर्प को देखतेही स्वामिभक्त नेवले ने उसे मार डाला। इतने में देवशर्म्मा आ गया, उसे दूर से देखतेही नेवला अति प्रहृष्ट हो उसके आगे दौड़ आया, उसके मुंह में सर्प का लहू लगा था जिससे ब्राह्मण ने समझा कि निश्चय इस दुष्ट ने मेरे बालक पुत्र का वध कर डाला, ऐसा विचार कर एक पत्थर पटक उस नेवले को मार डाला। जब वह घर के भीतर गया तो क्या देखता है कि नेवले का मारा हुआ सांप पड़ा है और बालक जीता जागता खटोले पर लेटा है, यह देख उसे बड़ाही सन्ताप हुआ। इतने में उसकी भार्य्या

भी स्नान कर लौट आई, जब उसे ब्राह्मणी की अविमृश्यकारिता का वृत्तान्त वि-
दित हुआ तब वह उसे धिक्कारने लगी।

इतनी कथा सुनाय गोमुख फिर बोला कि देव! इसीसे कहा है—

कुण्डलिया।

बिना बिचारे जो करै सो पाछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो जगमें होत हँसाय॥
जगमें होत हँसाय चित्तमें चैन न पावै।
खानपान सनमान राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कबिराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है मनमाहिं कियो जो बिना बिचारे॥

सो देव! कोई काम हो सहसा न कर बैठे बुद्धिमानी इसी में है। जो सहसा कर बैठता है दोनों लोक से जाता है और फिर अविधिपूर्वक जो कार्य किया जाता है उसका फल भी विपरीतही होता है। सुनिये आपको इसी विषय में एक कथा सुनाता हूं।

किसी पुरुष को वायु रोग हो गया था, वह किसी वैद्य के यहां उसकी चि-कित्सा के हेतु गया, वैद्य ने उसे बस्तीकर्म की कुछ औषधि दी और उससे कहा कि घर चलकर इसे पिसवा रक्खो मैं अभी आता हूं सो इसके प्रयोग की विधि बता दूंगा। इतना कह वैद्य कहीं चला गया, उसके आने में कुछ विलम्ब हुआ तब वह मूर्ख औषधि पीसपास पानी में घोर पी गया। फल और का और हो गया लाभ कहां कुछ उलटे प्राणों का सङ्कट आ पड़ा, "आह मैया" "हाय दैया" करने लगा, इसी अवसर में वैद्य आ गया, देखि तो यह दशा सङ्कटित है, सो उसने झटपट वमन कराया और बड़े २ कष्ट से मरते २ उसे बचा लिया। वैद्य ने कहा अरे मूर्ख! बस्तीकर्म की औषध तो गुदा में डाला जाता है; कहीं पीया भी जाता है छिः! तू बड़ाही मूर्ख है; भला मेरे आने की प्रतीक्षा तो कर लेनी थी," इस प्रकार धिक्कार दे वैद्य चला गया।

इस प्रकार कथा सुनाय गोमुख बोला "महाराज! इस रीति से जो कार्य्य विधिपूर्वक किया जाता है उसका फल अनिष्टही होता है इससे बुद्धिमान् को उचित है कि विधि का त्याग कर कुछ भी काम न करे क्योंकि बिना विचारे जो कोई कुछ कार्य्य करता है वह नि भाजनही होता है। सुनिये इस विषय में आपको एक कथा और सुनाता हूं।

किसी ग्राम में एक बड़ा मूर्खचपाट रहता था। वह एक दिन परदेश को चला, उसका पुत्र भी उसके साथ लगा, जाते २ एक वन पड़ा, वहीं पर सब पथिक टिके, सभों ने डेरा किया, पिता पुत्र उन दोनों का भी डेरा पड़ा। सब लोगों के थक जाने पर उसका पुत्र वन में विहार करता कुछ दूर निकल गया, वहां ब न्दरों ने उसे बहुत दिक किया नोचनाच के उसे व्याकुल कर डाला किसी प्रकार वह जीता हुआ अपने पिता के पास भाग आया; उसके पिता ने पूछा कि यह क्या हुआ? वह तो ऋच्छ (१) के नाम से अपरिचित था सो कहने लगा कि वन में कुछ लोमश (२) फलभक्षी जन्तुओं ने मुझे बहुत दिक किया है। यह सुनतेही उसका पिता आग बबूला हो गया और तलवार खींचकर उस वन की ओर दौड़ा आगे जाकर क्या देखता है कि अनेक जटिल तपस्वी फल खा रहे हैं सो वह उन्हीं पर टूटा कि बस येही वे फलभक्षी लोमश जन्तु हैं जिन्होंने मेरे बेटे को नोचा ब-कोटा है। वहीं एक बटोही (विश्राम करता था उसने उसे रोका और कहा कि यह क्या अनर्थ कर रहा है, मैं तो देखताही रहा, तेरे पुत्र को ऋच्छों ने दिक किया है तू तपस्वियों का वध क्यों किया चाहता है? सो वह इस तापसवधरूपी महापाप से दैवात् बचकर अपने गोल में चला गया।

गोमुख बोला 'महाराज। इसीसे कहा है कि बिना भली भांति समझे बूझे

(१) यहां पहिले तो मर्कट शब्द आया है पश्चात् ऋच्छ इससे यह भी अर्थ निकलता है कि भालुओं ने उसे दिक किया था, पीछे जटाधारी तपस्वियों के दृष्टान्त से भी भालूही का अर्थ द्योतित होता है; पर पूर्व में मर्कट (वानर) शब्द के आने से हमने उसी का प्रतिपादन किया है। "भालू" शब्द का ग्रहण कर यदि अर्थ किया जाय तो वैपरीत्य न होगा।

(२) लोम = रोआंवाले = जटिल = जटाधारी।

रे किचकिचाता पर वन का पड़ता। इसी अवसर में उस मार्ग से एक अहीर निकला, स्त्री ने उससे कहा कि महाभाग। टुक इस वानर के हाथ पकड़े तो मैं अपना कपड़ा सम्भाल कर जूड़ा बांध लेती। उस दुष्ट ने कहा कि मेरे साथ ऐसा २ काम करना स्वीकार करो तो मैं इसके हाथ पकड़े रहूं। स्त्री ने कहा "बहुत अच्छा क्या चिन्ता है।" तब उस अहीर ने कपि के दोनों पकड़ लिये, इसी अवसर में स्त्री ने छूरी निकालकर उस बन्दर का शिर उड़ा, तब उस ग्वाल से कहा कि आओ चलें एकान्त में तब काम हो, इतना वह उस अहीर को बहुत दूर निकाल ले गयी आगे जाकर कुछ बनियों का मिल गया, सो वह चतुर नारी अपना धर्म्म बचाकर उन लोगों के साथ हो और कुशलपूर्वक अभीष्ट ग्राम में पहुँच भी गयी यों अपनी बुद्धि के प्रताप से दुष्ट के फन्दे से बच निकली।

इतना कह गोमुख फिर बोला कि देव। बस बुद्धिही प्रधान तत्व है, लोक में ह बिना कुछ कार्य्यही नहीं चलता, जिसके धन नहीं होता वह जीता है, अ- ा काम चला लेता है. पर जिसके बुद्धि नहीं रहती वह नहीं जीता, वह संसार अपना कार्य्य किसी प्रकार नहीं चला सकता। सुनिये महाराजकुमार। आपको क अद्भुत कथा सुनाता हूं।

किसी नगर में घट और कर्पर नामक दो चोर रहते थे, उनमें से कर्पर एक त सेन्ध देकर राजा की पुत्री के आवास-गृह में पैठा और घट को बाहरही छो- ता गया, वहां पहुँचकर एक कोने में बैठ रहा। राजकन्या की जो नींद टूटी ो उसपर दृष्टि पड़ी, देखतेही कामबाण से विद्ध हो गई और चुपचाप बुलाकर उससे रमण करने लगी और रमण के अनन्तर बहुत सा द्रव्य देकर राजकुमारी ने कर्पर से कहा कि जो ऐसेही फिर आओगे तो और धन तुमको दूँगी। तब कर्पर ो बाहर आय सब वृत्तान्त घट को कह सुनाया और प्राप्त धन सब उसे दे घर भेज दिया। घट को विदा कर कर्पर पुनः उसी वेश्म में पैठा; ठीक है, काम और लोभ के वश में पड़कर पाप की कौन चिन्ता करता है! वहां तो यही धुन रहती है कि अब क्या, ले लिया है। अस्तु कर्पर वहां गया और राजकुमारी के साथ सुखपूर्वक रमण करके श्रान्त हो गया और श्रमापनोदनार्थ मदिरा पानकर छका-

इधर घट भी कर्पर के कलेवर की खोज में लगा था, किसी प्रकार उसे पता
गया कि राजा ने ऐसा २ कठिन प्रबन्ध कर रक्खा है, सो वह राजपुत्री से
ने लगा "प्रिये ! मेरा साथी कर्पर मेरा परम प्रिय मित्र था; यह उसी का प्र-
है कि रत्नों की राशि को और तुम्हारी प्राप्ति हुई है सो जबलौं उसके स्नेह
चरण मैं न चुका लूं मेरे चित्त की शान्ति नहीं हो सकती। सो अब मैं जाता
यहां उसकी लोथ मिलेगी उसे लेकर भरपेट अश्रु मिटाऊंगा और उसके शव
अग्निसंस्कार कर हड्डियां किसी तीर्थस्थान में डाल आऊंगा । देखना तुम
से प्रकार का भय न करना मैं कर्पर के समान निर्बुद्धि नहीं हूं।"

इस प्रकार राजकुमारी को समझा बुझाकर उसने वहीं पर संन्यासी अवधूत
वेष बनाया और एक खपड़ी में (१) दही और चावल (२) लेकर प्रस्थान किया।
ते २ वहीं पहुंचा जहां कर्पर की लोथ टंगी थी और वहां पहुंचतेही फिसल
र गिर पड़ा, उसके हाथ से वह खपड़ी फूट गयी और वह "हा कर्पर ! अमृत-
ी।" (३) इस प्रकार कह २ विलाप करने लगा । जो रखवाले वहां थे उन्होंने
समझा कि बिचारे की खपड़ी फूट गयी है इसी से रो रहा है। थोड़ीही देर
घट ने घर जाकर राजपुत्री से सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

दूसरे दिन उसने दूसरा ढंग रचा, अपने एक सेवक को तो दुलहिन बनाया
ौर एक के सिर पर मिठाई का कुण्डा रक्खा उस मिठाई में धतूरा मिला रक्खा

(१) "हांडी' ऐसा अर्थ भी झलकता है। (२) मूल में "दध्योनम्" ऐसा पाठ
जिसका अर्थ "दधि चावल"; पर यहां "दूध और भात" अर्थात् "खीर" का
र्थ साधु प्रतीत होता है, क्योंकि प्रेत को खीर के पिण्ड दिये जाते हैं, यह लोक-
ति है। सो कर्पर के प्रेत को पिण्ड देनेके उद्देश्य से घट "दूधभात" अर्थात् खीर
गया था। इसने खीर ही का अर्थ ठीक है । ऊपर जो अर्थ किया गया है वह
ल का अक्षरार्थ है।

(३) कर्पर = हांडी = खपड़ी । यहां यथार्थ में घट अपने मित्र कर्पर का सम्बो-
न कर विलाप करता है, यथा "हा कर्पर मित्र ! अमृत स्वरूपिणी राजपुत्री के
देनेवाले और रत्नादि दिलाकर दरिद्र नाश करानेवाले ।" पर रखवालों ने
खपड़ी के लिये बिलख २ रोता है ऐसा समझा ।

करेगा और हमारा संहार कर डालेगा इसलिये अब कोई उपाय विचारना च
हिये। उसके पास जाओ और देखो तुम्हारा कुछ उपाय चल सकता है या, नहीं
क्योंकि तुम कार्य्य और उपाय दोनों जानते हो और युक्ति से बोलना भी तुमको
आता है, देखो जहां जहां तुम गये वहां वहां अच्छाही हुआ । शशकराज की
ऐसी बात सुन वह विजय खरहा प्रसन्न होकर धीरे २ चला, चलते २ मार्गही में
उसको करीन्द्र से भेट हो गयी तब वह खरहा इधर उधर का विचार करने लगा
कि ऐसा कोई उपाय किया जाय कि इस गजराज से समागम हो; इतना विचार
वह बुद्धिमान् खरहा एक टीले पर चढ़ गया और वहां से उस गजेन्द्र को सम्बो
धन कर कहने लगा "हे यूथप! मैं भगवान् शशाङ्क का दूत हूं, उनका सन्देशा
लाया हूं; सुनो भगवान् कुमुदिनीनायक का यह सन्देशा है—"यह जो शीत
चन्द्रसर नामक सरोवर है वहां मेरा निवास है, वहां जो शशक रहते हैं उनका
मैं राजा हूं, वे खरहे मेरे अत्यन्त प्रिय हैं, इसी हेतु मैं शीतांशु कहलाता हूं
इसी कारण से मेरा नाम शशी भी पड़ा है, सो तुमने उस तड़ाग का सत्यानाश
कर डाला और मेरे खरहों का संहार कर दिया; अब मैं तुम्हें चिताये देता हूं
कि फिर ऐसा किया तो चेत रखना मुझसे उसका फल पाओगे । दूत के मुख से
यह सन्देशा सुन गजेन्द्र भयभीत हो गया और मारे डर के कम्पित हो कहने लगा
"दूत! मैं ऐसा फिर कभी न करूँगा, भगवान् शशाङ्क मेरे मान्य हैं उनकी आज्ञा
शिरमाथे है।" गजराज की ऐसी बात सुन विजय सोचने लगा अब क्या अब तो
इसे चेला मूड़ लिया, इतना विचार वह बोला "अच्छा मेरे साथ २ आओ चलो मैं
तुम्हें भगवान् शशी के दर्शन कराये देता हूं तुम उनसे प्रार्थना करके अपना अप
राध क्षमा करा लो।" इतना कह वह उस नागेन्द्र को सरोवर के किनारे ले गया
और वहां उस धूर्त्त खरहे ने जल के भीतर चन्द्र का प्रतिबिम्ब नागेन्द्र को दिखा
कर कहा कि देखो यह हमारे राजा शशाङ्क विराजमान हैं । उन्हें देखतेही वह
गजेन्द्र भय के मारे थर २ कांपने लगा और प्रणाम कर चुपचाप वन में चला गय
और फिर वहां कभी नहीं आया । विजय खरहे की ऐसी प्रत्यक्ष करनी देखक
[illegible]ीमुख अति प्रसन्न हुए और उसका बड़ा सम्मान कर सुखपूर्वक व

इतनी कथा सुनाय कौवा पक्षियों से पुनः कहने लगा कि प्रभु ऐसा होना
हिये, उसके नाम का यह प्रभाव है कि उसकी प्रजा में किसी को भी किसी
ार की बाधा न पहुंचे सो यह उल्लू भला कैसे राजा हो सकता है यह तो दिन
समय स्वयं अन्धा रहता है और फिर मुट्ठीभर का जीव है । इसे राजा बना
र अपनी रक्षा की क्या सम्भावना की जाय यह क्षुद्र जन्तु तो हैही फिर इसका
ग्राम स्वीकार किया जाय ? सुनो इसी विषय में तुम्हें एक कथा सुनाता हूं।

किसी समय की बात है कि कहीं एक वृक्ष पर मैं रहता था, उस वृक्ष के
चे कपिञ्जल नामक एक पक्षी नीड़ बनाकर वास करता था । एक समय वह
हीं चला गया और बहुत दिनों लों नहीं लौटा । इतने अवसर में कहीं से एक
रहा आकर उसके खोते में बस गया । थोड़े दिनों के उपरान्त कपिञ्जल लौटा
ब खरहा भीतर आनेही न दे कहे कि यह मेरा आवास है मैं इसमें रहता हूं
म कहां के हो अभी दूर हो, और कपिञ्जल कहे कि अरे तू कहां से आय मरा,
ह नीड़ तो मेरा है, मैंने इसे बनाया है यह तेरा कैसे हुआ, निकल, भाग यहां
। इस प्रकार दोनों में झगड़ा होने लगा । दोनों ने यह कहा कि इसका निर्णय
ैसे हो कि यह किसका है, कोई न्यायकर्त्ता ठहराना चाहिये जो हम दोनों का
विवाद निपटाय दे । इस बात पर दोनों सम्मत हुए और न्यायकर्त्ता की खोज में
ले । मुझे भी इस न्याय के देखने का बड़ा कौतुक हुआ सो मैं छिपा छिपा उनके
ीछे पीछे चला । वे थोड़ेही दूर गये थे कि एक तालाब के किनारे उन्हें एक बि-
ड़ाल दीख पड़ा जो कि ध्यान लगाये अपनी आंखें आधी मूंदे बैठा था और जिसने
झूठही हिंसा से परे रहने का व्रत धारण कर रक्खा था । उसे देख उन दोनों ने
आपस में कहा कि यह तो एक सिद्ध महात्मा हैं इन्हीं से क्यों न न्याय करा लिया
जाय ? इतना कह उन दोनों ने उस बिडाल के पास जाकर उससे कहा "महा-
राज ! आप तपस्वी और धार्मिक हैं हम दोनों का ऐसा २ झगड़ा है सो आप
चुका देवें ।" यह सुन बिड़ाल बड़े धीमे स्वर से बोला कि मैं तपस्या करते करते
बड़ा दुर्बल हो गया हूं दूर की बात मुझे नहीं सुनाई पड़ती मेरे निकट आ-
कर कहो तो सुनूं कि तुम दोनों क्या चाहते हो । दोनों की बात बिना भली
भांति सुने मैं क्या निर्णय कर सकता हूं , सुनो यह धर्म्म की बात है. धर्म्म का

धूर्त्ताधिराज ने उत्तर दिया कि मैं भूत, वर्त्तमान और भविष्यत् तीनों काल की बात जानता हूं, मेरा यह प्यारा पुत्र आज से सातवें दिन मर जायगा बस यही सोच २ में रो रहा हूं। यह सुन लोगों को बड़ा विस्मय हुआ। आगे जब सातवां दिन आया तो उस निर्दय मूर्खशिरोमणि ने बड़े तड़केही अपने सोते हुए पुत्र को किसी युक्ति से मार डाला। रोना पीटना मच गया, लोग इकट्ठे हुए कि क्या व्यापार है, देखें तो ज्योतिषी जी का पुत्र सचमुच मर गया है, यह देख लोगों को अत्यन्त आश्चर्य हुआ सो वे लोग समझने लगे कि यथार्थ में यह एक बड़े भारी ज्योतिषी ही नहीं प्रत्युत एक सिद्ध पुरुष भी है कि जो कहते हैं सो हो जाता है। स अब क्या था अब तो अब धन का ठिकाना ही नहीं कि कितना आया, औ ौर उसकी कीर्त्ति फैल गई, भली भांति पूजा होने लगी, अब क्या पूछना। जब हुत कुछ सम्पत्ति इकट्ठी हुई तब एक दिन उस मूर्खराज ने चुपचाप अपने देश का मार्ग लिया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज! इस प्रकार अपना नाम बढ़ा के धन के लोभ से मूर्ख लोग पुत्र का भी वध कर डालते हैं। हा! धनाशा ऐसी कठिन है! किन्तु देव! जो बुद्धिमान् होता है वह ऐसे २ धूर्तों की धूर्त्तता समझ लेता है और उनसे भूलकर भी मेल नहीं करता। बुद्धिमानों को उचित है कि सदा ऐसों से बचे रहें। अच्छा, अब एक क्रोधी मूर्ख की कथा सुनिये।

किसी स्थान में बैठक के भीतर बैठे हुए दो चार जन इधर उधर की बातें कर । कि इतने में किसी व्यक्ति की प्रशंसा छिड़ गयी; भाग्यवश वह वहीं आन पहुंच गया और बाहर से ही अपनी प्रशंसा सुनने लगा। इतने में भीतर प्रशंसा वाले की बात छेड़ दूसरे ने कहा कि भाई उसमें जो सब गुण हैं, वह बड़ा ान् है पर उसमें दो भारी दोष भी हैं, एक तो यह कि वह बड़ाही साहसी है; , बड़ा क्रोधी भी है। बस अब क्या वह बहिर्वर्त्ती जन जो कि अपना गुणा- न सुन रहा था, दीवाल्दास सुन आपे से बाहर हो गया, झटपट घर के भीतर गया, और उसके गले में दुपट्टा लपेट बड़े क्रोध से तन हो कहने लगा "क्यों इनका ने कहा: मैंने क्या साहस (अन्धेर) किया है और मैं क्रोधी कैसे हुआ?"
है~ कोप हुआ है देख

जाना पड़ा तो वह अपनी भार्य्या को सासुरे भेजा, मार्ग में भारी भिल्लों का संकट पड़ता था अतः वह अपनी भार्य्या को एक परिचित ब्राह्मण के घर में रख के आगे बढ़ा। वह भी वहां रहती थी, उसी मार्ग से भिल्ल आया जाया करते थे, सो एक जवान भिल्ल से उसकी आंखें लड़ गयीं सो वह अपने ईर्षालु पति की लाज उस भिल्ल के साथ गई, जिस प्रकार से नदी पुल तोड़कर निकल जाय, निकल गई। इतने अवसर में उसका पति भी अपना काम कर परदेश से लौट आया और उस पास्य ब्राह्मण से अपनी भार्य्या को मांगने लगा, तब वह ब्राह्मण बोला "भाई। मैं नहीं जानता कि वह कहां चली गई पर हां इतना तो जानता हूं कि कुछ भिल्ल यहां आये थे, सम्भवतः उनके संग गये होंगे। उनका गांव यहां से निकट ही है, सो तुम वहां जाओ तो अपनी पत्नी को पाओगे, मेरी बात मानो देर न करो।" ब्राह्मण की ऐसी बात सुन वह विचारा वहां से रोता तथा अपनी बुद्धि की निन्दा करता हुआ भिल्लों के गांव में गया उसकी पत्नी वहां दीख पड़ी। वह दुष्टा स्त्री अपने पति को देखते ही डर गई, पर त्रियाचरित्र भी एक अद्भुत बात है, सो वह मुंह बनाकर अपने पति के पास जाकर कांपती हुई बोली,—"स्वामिन्! मेरा कुछ भी दोष नहीं मैं क्या करूं भिल्ल मुझे बलपूर्वक यहां पकड़ लाया।" उसका पति तो कामान्ध था वह कब इसकी धूर्त्तता पहिचान सके। वह बोला "प्रिये! अच्छा आओ हम दोनों झटपट चले चलें, शीघ्र चलो ऐसा न हो कि कोई देख लेवे"। उसकी ऐसी बात सुन वह कुलटा बोली, 'स्वामिन्! वह भिल्ल आखेट करने गया है अब उसके आने की बेला हो गयी है जो कहीं वह आ गया तो पीछा करके अवश्य पकड़कर तुमको और मुझको मार डालेगा। सो ऐसा करो, आओ अब इस गुफा में छिपकर बैठ रहो, जब वह रात्रि में सो जा- यगा तब उसे मारकर दोनों जने निर्द्वन्द भाग चलेंगे।" उस दुष्टा की बात सुन- कर वह कामान्ध उसकी बातों में आ गया और गुफा में घुसकर बैठ रहा। ठीक है कामी को विवेक कहां!

जब सायङ्काल में वह भिल्ल लौटा, तो उस कुलटा ने व्यसन के मारे वहां आये ए अपने पति को उसे दिखा दिया। एक तो भिल्ल स्वभावतः क्रूर होतेही हैं के [illegible] क्या पूछना उस दुष्ट भिल्ल ने उस विचारे को गुफा से

पांचवां तरङ्ग।

इस प्रकार नाना कथा सुनाकर भी जब मन्त्रिप्रवर गोमुख ने देखा कि चक्रवर्ती नरवाहनदत्त का मन शक्तियशा ही में लगा है तब वह चतुर मंत्री उनके मन-बहलाव के हेतु पुनः कथा सुनाने लगा। गोमुख बोला "देव! मार्गों के विषय में आप कथा सुन चुके हैं अब मैं मूर्खों की कथा आपको सुनाता हूं।"

किसी बड़े धनवान् बनिये का बेटा गूढ़बुद्धि नामक था, एक समय वह बनिज करने के हेतु कटाह द्वीप को गया, उसके सौदों में बहुत सा अगुरु भी था। और सब सौदे तो वहां बिक गये पर अगुरु किसी ने भी न खरीदा क्योंकि वहां के निवासी यह नहीं जानते थे कि यह है क्या वस्तु। उसने देखा कि लोग लकड़िहारों से कोयले खरीद रहे हैं सो उस मूर्ख ने अपने कालागुरु को जलाकर कोयला कर डाला। उन अगुरुओं को कोयला कर कोयले के मूल्य से बेंच अपने घर लौट गया और वहां लोगों से अपनी बड़ाई करने लगा। यह सुन लोग उसका उपहास करने लगे।

इतनी कथा सुनाय गोमुख फिर बोला "महाराज। यह तो अगुरुदाही की कथा आपको सुनाई गयी अब तिलकर्षी की कथा सुनिये।"

कोई एक ग्रामीण कृषक था, उसने कभी भूने तिल खाये उन्हें खाकर वह सोचने लगा कि अब ऐसेही तिल बोऊं तो बहुत सा तिल हो जायगा सो उसने भुने तिलों को बोया। वे भुने तिल भला कब उगें, वे तो खेत ही में नष्ट हो गये और उसका मनोरथ निष्फल हो गया। इसपर लोग उसकी हंसी करने लगे।

इतनी कथा सुनाय कौआ पक्षियों से पुनः कहने लगा कि प्रभु ऐसा होना चाहिये, उसके नाम का यह प्रभाव है कि उसकी प्रजा में किसी को भी किसी प्रकार की बाधा न पहुँचे सो यह उल्लू भला कैसे राजा हो सकता है यह तो दिन समय स्वयं अन्धा रहता है और फिर मुट्ठीभर का जीव है । इसे राजा बना कर अपनी रक्षा की क्या सम्भावना की जाय यह क्षुद्र जन्तु तो हैही फिर इसका विश्वास क्योंकर किया जाय ? सुनो इसी विषय में तुम्हें एक कथा सुनाता हूं।

किसी समय की बात है कि कहीं एक वृक्ष पर मैं रहता था, उस वृक्ष के नीचे कपिञ्जल नामक एक पक्षी नीड़ बनाकर वास करता था । एक समय वह कहीं चला गया और बहुत दिनों लों नहीं लौटा । इतने अवसर में कहीं से एक खरहा आकर उसके खोते में बस गया । थोड़े दिनों के उपरान्त कपिञ्जल लौटा तब खरहा भीतर आनेही न दे कहे कि यह मेरा आवास है मैं इसमें रहता हूं तुम कहां के हो चलो दूर हो, और कपिञ्जल कहे कि अरे तू कहां से आय बसा, यह नीड़ तो मेरा है, मैंने इसे बनाया है यह तेरा कैसे हुआ, निकल, भाग यहां से । इस प्रकार दोनों में झगड़ा होने लगा । दोनों ने यह कहा कि इसका निर्णय कैसे हो कि यह किसका है, कोई न्यायकर्त्ता ठहराना चाहिये जो हम दोनों का विवाद निपटाय दे । इस बात पर दोनों सम्मत हुए और न्यायकर्त्ता की खोज में चले । मुझे भी इस न्याय के देखने का बड़ा कौतुक हुआ सो मैं छिपा छिपा उनके पीछे पीछे चला । वे थोड़ेही दूर गये थे कि एक तालाव के किनारे उन्हें एक बिड़ाल दीख पड़ा जो कि ध्यान लगाये अपनी आंखें आधी मूंदे बैठा था और जिसने झूठही हिंसा से परे रहने का व्रत धारण कर रखा था । उसे देख उन दोनों ने आपस में कहा कि यह तो एक सिद्ध महात्मा है इन्हीं से क्यों न न्याय करा लिया जाय ? इतना कह उन दोनों ने उस बिड़ाल के पास जाकर उससे कहा "महाराज ! आप तपस्वी और धार्मिक हैं हम दोनों का ऐसा २ झगड़ा है सो आप चुका देवें ।" यह सुन बिड़ाल बड़े धीमे स्वर से बोला कि मैं तपस्या करते करते बड़ा दुर्बल हो गया हूं दूर की बात मुझे नहीं सुनाई पड़ती मेरे निकट आकर कहो तो सुनूं कि तुम दोनों का झगड़ा ...

... बिना अर्थ ...

... है धर्म का

..न और आकर, उससे उसी प्रकार कहने लगे कि भला कुत्ते को क्यों उठाये लिये जा रहे है, छोड़िये २. ब्राह्मण होकर आपको यह नहीं शोभता बस झटपट इसे त्याग कीजिये। उनकी बात से ब्राह्मण के हृदय में कुछ संशय हुआ तथापि उसने उस बकरे को नहीं त्यागा। वह देखता चला कि भला यह तो बकरा ही है ये दुष्ट सब इसे कुत्ता बताते है। इस प्रकार सोचता हुआ वह चला जा रहा था कि उधर से तीन धूर्त्त उसे आ मिले और उसी प्रकार कहने लगे कि महाराज! जिस कन्धे पर जनेऊ उसीपर कुत्ता। भला इन दोनों का साथ कहां! बस जान गये आप व्याध है, ब्राह्मण नहीं, ऐसा भासता है कि इसी कुत्ते से आप पशुओं का आखेट किया करते हैं यह सुन वह ब्राह्मण अपने मनमें विचारने लगा कि मेरी दृष्टि नष्ट कर निश्चय करके किसी भूत ने मुझे भ्रमा दिया है; भला यह क्या कि मैं तो इसे छाग देखता हूं और लोग इसे कुत्ता बतलाते हैं; तो क्या ये सब झूठ बोल रहे हैं? अथवा, मेरीही दृष्टि में कुछ दोष है। इस प्रकार उस छाग को फेंक ब्राह्मण ने स्नान किया और शुद्ध हो वह विप्र अपने घर चला गया, इधर उन धूर्त्तों ने उस बकरे को लेकर मनमाना उसे खाकर आनन्द किया।

इतनी कथा सुनाय चिरजीवी उस वायसेश्वर से कहने लगा कि देव! इस प्रकार जो बहुत और बलवान् होते हैं वे जीते नहीं जा सकते। सो अब बलवान के विरोध में जो मैं कहता हूं सोही किया जाय, ऐसा करें कि मेरे कुछ पर नोच कर मुझे इसी पेड़ के नीचे छोड़कर आप सब चले जावें और जबलों मैं अपना काम कर न आ मिलूं उस पहाड़ पर ठहरे रहें। उस चिरजीवी की बात सुन काकराज ने कहा कि बहुत अच्छा, बस कुछ मिथ्या क्रोध प्रकाशित कर उसके पर नोच कर पेड़ के नीचे गिरा दिया पश्चात् काकराज ने अपने अनुचरों के साथ वहां से चले जाकर उस पहाड़ पर बसेरा किया, और इधर चिरजीवी उसी पेड़ के नीचे उसी दशा में पड़ा रहा।

इसके उपरान्त रात्रि के समय उलूकराज अवमर्द अपने अनुयायी वर्ग के साथ वहां आया तो क्या देखता है कि इस पर एक भी कौवा नहीं है, इतने में नीचे चिरजीवी धीरे धीरे कराहने लगा, यह सुन नीचे उतरकर उलूकराज ने उसे देखा और अति विस्मित हो उससे पूछा कि अरे तू कौन है तेरी दशा ऐसी क्यों हुई?

तब चिरजीवी ऐसे धीमे स्वर से बोला जैसे कोई रोगी बोले "महाराज ! वायसराज का मन्त्री चिरजीवी हूं, उनके मन्त्रियों ने उन्हें सम्मति दी कि आप पर चढ़ाई करें उस अवसर पर मैंने उनके मन्त्रियों को तथा अन्यान्य मूर्खों को डांटकर वायसराज से कहा कि देव ! यदि मुझसे पूछते हैं और मेरी बात मानते हैं तो मैं यही कहूंगा कि उलूकराज से युद्ध न ठाना जाय वह बलवान् हैं हम निर्बल, निर्बल को बलवान् से न भिड़ना चाहिये, यदि आप मानें तो ऐसी अवस्था में नीति यही है कि उनसे अनुनय ही किया जाय। महाराज ! इतना कहना ही मेरे लिये विष हुआ, बस मेरी बात सुनतेही उन्हें तथा उनके मित्रों को बड़ा क्रोध हुआ, उन्होंने कहा मारो इसे यह दुष्ट शत्रु से मिला है, बस महाराज ! उन मूर्खों ने मारपीट कर मुझे इस दशा को पहुंचा दिया, पुनः मुझे इस वृक्ष के नीचे ढकेल काकराज अपने अनुचरों के साथ न जाने कहां चले गये, यह तो उपदेश देने का फल है।" इतना कह चिरजीवी नीचे मुंह कर लम्बी सांसें भरने लगा।

चिरजीवी की ऐसी बातें सुनकर उलूकराज ने अपने मन्त्रियों से पूछा कि चिरजीवी के साथ क्या (कैसा बर्ताव) करना चाहिये। राजा का ऐसा प्रश्न सुन दीप्तनयन नामक मन्त्री बोला "महाराज ! इसकी रक्षा करनी चाहिये, देखिये चोर की रक्षा तो कोई नहीं करता है न, फिर वही चोर जो उपकारी हो तो सज्जन लोग उसकी रक्षा करते हैं। सुनिये इसी विषय में मैं आपको एक कथा सुनाता हूं—

एक चोर दबका हुआ दिखाई पड़ा। बनिया बोला "भाई चोर! तुम मेरे बड़ेही उपकारी हुए, तुम्हारेही प्रताप से आज मेरा ऐसा सौभाग्य हुआ है, अब मैं तुम्हारा प्रत्युपकार यही करता हूं कि अपने सेवकों से तुम्हें मरवा न डालूंगा।" इतना कह उसने रातभर उस चोर को रक्षित रक्खा और प्रातःकाल होने पर कुशलपूर्वक उसे अपने घर से बाहर निकाल दिया।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री दीप्तनयन बोले कि, "देव! यह चिरजीवी हमारा उपकारक है इस हेतु मेरा तो यही सिद्धान्त है कि इसकी रक्षा की जाय।" इतना कह वह सचिव चुप हो रहा।

तब उल्लुओं के राजा ने वक्रनास नामक एक दूसरे मन्त्री से पूछा कि, "कहिये आपकी सम्मति क्या है?" इस विषय में क्या करना चाहिये?। वक्रनास ने उत्तर दिया कि मेरी बुद्धि में तो यह आता है कि इसकी रक्षाही की जाय क्योंकि एक तो यह हमारे शत्रुओं के मर्म्म से भली भांति विज्ञ है दूसरे अब इससे और काकराज से बैर हो गया है, सो स्वामी और मन्त्री का यह बैर हमारा कल्याणसाधक होगा। सुनिये देव। इस विषय में आपको एक कथा सुनाता हूं:—

एक ग्राम में कोई ब्राह्मण रहता था, उसे कहीं से दान में दो गायें मिलीं; उन गौओं को देखकर एक चोर का मन ललचा, सो वह उपाय सोचने लगा कि किसी प्रकार इसकी गायें चोरा लेनी चाहिये; वह इसी चिन्ता में था कि उसकी भेंट एक राक्षस से हो गई जो उस ब्राह्मण को भक्षण किया चाहता था। चलो अब एक से दो हुए, दोनों अपने २ घात पर कटिबद्ध हुए। अब रात के समय दोनों अपना २ कार्य्य एक दूसरे से कह उस ब्राह्मण के घर को चले। चोर ने राक्षस से कहा कि भाई! ऐसा करना कि पहिले मैं गौओं को चुरा लूं तब तुम ब्राह्मण को पकड़ना, नहीं तो जो तुम पहिले उसे पकड़ोगे तो कहीं वह सोते से जाग जाय तो मेरे गोहरण में बाधा पड़ जायगी सो देखना पहिले तुम उसे न दमना। राक्षस बोला, "वाह तुमही बड़े चतुर हो, भला ऐसा कब होने को, जबतक तुम गौओं को हांकने लगे और कहीं इनके खुरों की आहट से उस ब्राह्मण की नींद खुल गयी तो मेरा कष्ट उठानाही सही में मिल गया तब तो व्यर्थही मुझे इतना परिश्रम उठाना पड़ा, सो भाई मैं तो ऐसा कभी न करने दूंगा।" ब्राह्मण की नींद टूट गयी वह

जाग पड़ा और हाथ में तलवार लेकर राक्षस को नाश करने का यत्न करने लगा तब राक्षस और चोर दोनों वहां से खसक कर भाग गये।

इतनी कथा सुनाय वक्रनास बोला कि देव! इस प्रकार जैसे उन राक्षस और चोर का भेद ब्राह्मण का हितसाधक हुआ वैसेही काकेन्द्र और इस चिरजीवी के भेद से हमारा भलाही होगा।

वक्रनास की ऐसी बात सुन उलूकराज ने प्राकारकर्ण नामक अपने मन्त्री से पूछा कि इस विषय में आपकी क्या सम्मति है? वह बोला महाराज चिरजीवी विपत्ति में पड़ा है और हमारी शरण में आया है, अतः इस पर दया करनी चाहिये; शरणागत की रक्षा अवश्य करनी चाहिये; उसके त्याग करने से बड़ा दोष लगता है। देखिये राजा शिबि ने शरणागत की रक्षाही के हेतु अपना मांस काटकर दे दिया।

प्राकारकर्ण की इतनी बात सुन उलूकराज ने अपने मन्त्री क्रूरलोचन से पूछा परन्तु उसने भी वैसाही उत्तर दिया। तब उसने रक्ताक्ष नामक सचिव से भी वाही प्रश्न किया परन्तु उसने कुछ औरही उत्तर दिया, वह तो बुद्धिमान् और नीतिज्ञ था अतएव उसने नीति का भी अवलम्बन किया उसने कहा, "देव आपके मंत्री नीति का मर्म कुछ नहीं जानते; इन सभों ने तो ऐसी सम्मति दी जिससे आपका नाश हो जाय, सुनिये जो नीतिज्ञ होते हैं वे वैरी का कदापि विश्वास नहीं करते भला यह बात क्या बुद्धि में समा सकती है कि जिसको हम वश करें वह उसे भूल जाय और हमारा भला करे, कदापि नहीं, यह बात उसी हृदय में बाण के समान चुभती रहेगी और वह एसा अवसर ढूंढता रहेगा कि कब घात करूं और पलटा चुका लूं।" सो महाराज आप चेत रखिये वैरियों का विश्वास कदापि न करना। उनको तो सर्पाधिराज समझना चाहिये जो कि दोष से अपराध देखकर भी शत्रुओं की बातें सुनकर प्रसन्न हो जाता है सुनिये इसी विषय में आप को एक कथा सुनाता हूं।

। का विश्वासही न करे। अन्त में बहुत कहते सुनते उसका मन कुछ फिरा उसने कहा कि, "अच्छा मैं अब इसका पता लगाऊँ कि बात क्या है।" उसने एक दिन अपनी भार्य्या से कहा कि प्रिये। राजा की आज्ञा से किसी म के लिये मैं बहुत दूर जा रहा हूं सो सत्तू इत्यादि कुछ पाथेय * बांध देना। ने भी चट गठरी मोटरी बांध दी और वह परदेश जाने के लिये घर से नि- ना। परदेश जाने का तो केवल बहाना भर था यहां तो बातही दूसरी थी, सो कालोपरान्त वह इधर उधर घूमघाम कर अपने घर लौट आया और साथ अपने एक शिष्य को भी लेता आया, और शिष्य सहित चुपके से घर में घुस- र अपनी प्रियतमा प्राणवल्लभा के पलङ्ग के नीचे दबक कर बैठ रहा। उधर उस नटा ने विचारा कि अब क्या, पति तो परदेश गये, अब यार के संग आनन्द डाऊँ सो उसने अपने यार को बुला भेजा। रात्रि समय दोनों निर्द्वन्द्व विहार रने लगे। उस पापिष्टा ने रमण के समय आनन्द में मग्न हो जो पांव पसारे उसके पति के शिर में धक्का लगा, बस वह झट ताड़ गई कि ओः! धोखा था; पर थी परम धूर्त्ता, झट त्रियाचरित्र कर बात बनाय बैठी। इतने में उसे हार से विरत देख यार ने पूछा "प्रिये! ऐसा वैराग्य क्यों हो गया? कहो तो त क्या है? प्यारी एक बात पूछता हूं उसका उत्तर दे देओ, बतलाओ मैं तुम्हें धिक प्यारा लगता हूं कि पति?" यह सुन वह कूटकुशला बोली, "यह तुम सी बात कह रहे हो, भला मेरे पति मुझे जितने प्रिय होंगे उतने तुम कब हो सकते हो; सुनो मैं अपने प्राणेश्वर को ऐसा प्यार करती हूं कि उनके लिये अपने प्राणों को न्योछावर कर देऊँ।" त्रियाचरित्र इसी कहलाता है स्त्रियों को

ऐसा अवसर होता है, कहते हैं कि, 'नाक न हो तो क्रियां विष्टा खा लें।' सा
गालिय
कहावत एकान्त सत्य है।

वह मूढ़ बढ़ई तो अपनी भार्य्या को परम साध्वी पहिले ही से समझता था
इतना सुनना तो उसके लिये अमृत हो गया। अपनी प्राणप्रिया का (यथार्थ विना
कुलटा का) ऐसा छलिम वचन सुनकर वह फूला न समाया; मारे आनन्द के
पलङ्ग तले से उछल पड़ा और अपने शिष्य से कहने लगा 'देखा न! देखो, मैं
साक्षी रहना, यह मेरी ऐसी भक्ता है; तुम सुनही चुके हो कि यह मेरे लिये
प्राण भी दे देने पर उतारू है; व्यर्थही लोग इस पर दोष लगाते हैं. यह तो
ही पतिव्रता है सो मैं तो इसे माथे पर उठा लूंगा।" इतना कह वह मूर्ख
अपनी भार्य्या का पलङ्ग, जिस पर वह दुष्टा अपने यार के साथ बैठी थी, उठाकर
नाचने लगा; उस मूढ़ का शिष्य भी वैसाही जड़ था वह भी अपने गुरु के ध्यान
था।

ऐसा चपल होता है, कहते हैं कि, "नाक न हो तो स्त्रियां विष्टा खा लें।" यह कहावत एकान्त सत्य है।

वह मूढ़ बढ़ई तो अपनी भार्य्या को परम साध्वी पहिले ही से समझता था, इतना सुनना तो उसके लिये अमृत हो गया। अपनी प्राणप्रिया का (यथार्थ में कुलटा का) ऐसा कृत्रिम वचन सुनकर वह फूला न समाया; मारे आनन्द के झट पलङ्ग तले से उछल पड़ा और अपने शिष्य से कहने लगा "देखा न ? देखो तुम साची रहना, यह मेरी ऐसी भक्ता है; तुम सुनही चुके हो कि यह मेरे लिये अपने प्राण भी दे देने पर उतारू है; व्यर्थ ही लोग इस पर दोष लगाते हैं, यह तो बड़ी ही पतिव्रता है सो मैं तो इसे माथे पर उठा लूंगा।" इतना कह वह मूर्ख झपट अपनी भार्य्या का पलङ्ग, जिस पर वह दुष्टा अपने यार के साथ बैठी थी, उठाक नाचने लगा; उस मूढ़ का शिष्य भी वैसाही जड़ था वह भी अपने गुरु के व्यापा मे साझी हुआ।

इतनी कथा सुनाय मन्त्री रक्ताक्ष उलूकराज से कहने लगा कि देव। इस प्र कार प्रत्यक्ष दोष देखकर भी कपट की सान्त्वना से जो सन्तुष्ट हो जाता है वह परम मूर्ख और निर्विवेक होता है, मूढ़ और विवेकशून्य के अतिरिक्त ऐसा और कौन कर सकता है ? फिर उसका परिणाम यही होता है कि लोग उस मूर्खाधिराज का उपहास करने लगते हैं। इसीसे कहता हूं कि देव ! इस चिरजीवी की रक्षा कदापि नहीं करनी चाहिये, यह शत्रु की ओर का है; शत्रुपक्षी को भयङ्कर रोग समझना चाहिये उसकी उपेक्षा हुई कि नाश हुआ। इससे देव ! इस चिरजीवी का विश्वास आप न करें।

रक्ताक्ष की इतनी बात सुन उलूकराज बोला "भाई तुम जो चाहो कहो पर यह भी तो सोचो कि हमारी भलाई ही के कारण इसकी यह दशा हुई है सो इसकी रक्षा क्यों न की जाय। देखो कहाही है—"शरणागत कहँ जो तजै ताहिँ विलोकत पाप।" फिर यह भी तो एक बात विचारणीय है कि यह अकेला ही न है, अकेला क्या कर सकता है इससे तुम्हारे भय की कुछ भी सम्भावना नहीं है।" इस प्रकार की बातें कह उलूकराज ने अपने मन्त्री रक्ताक्ष के उपदेश का निराकरण किया और उस चिरजीवी वायस को विविध प्र से सान्त्वना दे सन्तुष्ट किया।

है, वह मुझसे बलवत्तर है, क्योंकि वह मुझे क्षणभर में ढांप लेता है और उसके छिप जाने से अपना प्रकाश नहीं फैलाय सकता, कहिये तब मैं कैसे बलवत्तम हो सकता हूं। आप इस कन्या का विवाह मेघ से कर दीजिये।" मार्त्तण्ड की इतनी बात सुन मुनि ने उनका विसर्जन कर मेघ का आह्वान किया और उनसे भी वैसाही कहा। मेघ ने उत्तर दिया कि महात्मन्! यदि ऐसाही है तो इस कन्या का विवाह आप वायु से कर देवें, पवनदेव मुझसे अधिक बलिष्ट हैं देखिये उनके आगमनमात्र से मैं छितिर बितिर हो जाता हूं। मेघ की ऐसी बातें सुन महामुनि ने पवनदेव को बुलाकर उनसे भी वैसाही अपना अभीष्ट कह सुनाया। मुनि का ऐसा कथन सुन मरुत् बोले "महर्षे! मेरा कहना भी सुन लिया जाय; सुनिये, मुझसे बली तो वे न ठहरे जिन्हें मैं हिला डोला न सकूं सो अद्रि ऐसे अचल हैं कि जिन्हें मैं तनिक भी नहीं डिगा सकता। वे मुझसे बलवत्तर हैं अतः आप इस कन्या का विवाह उन्हीं में से किसी के साथ कर दीजिये" वायु की इतनी बात सुन मुनि ने शैलेन्द्र (हिमालय) को बुलाया और उसी प्रकार उस कन्या के विवाह की बात कह गये। यह सुन अद्रिराज बोले कि महाराज! मुझसे तो बलवान् मूसे होते हैं जो मुझ में भी छेद (बिल) कर डालते हैं। इस प्रकार क्रमानुसार उन ज्ञानवान् देवतों की उक्तियां सुनकर अन्त में मुनिने एक बनैले मूषक को बुलाया और उससे कहा कि इस कन्या के साथ विवाह कर लो। तब वह मूसा बोला "महाराज! आपकी आज्ञा शिरमाथे, पर मेरी विनति यह है कि कृपाकर यह बतला दिया जाय कि यह मेरे बिल में क्योंकर पैठ सकेगी।" "बहुत अच्छा, तेराही कहना सही, यह पूर्ववत् मूषिकाही हो जावे," इतना कह मुनि ने उसे पुनः मूषिका बनाकर उसका विवाह उस मूसे के साथ कर दिया।

इतनी कथा सुनाय रक्ताक्ष काम मंत्री से पुनः कहने लगा कि हे चिरजीविन्! इस प्रकार कोई कितनीही दूर क्यों न पहुँच जावे पर जो जैसा रहता है अन्त में वह वैसाही हो जाता है सो तुम कितनेही उपाय क्यों न करो पर उलूक कदापि न होओगे।

[illegible] की ऐसी ऐसी बातें सुन चिरजीवी अपने मनमें सोचने लगा कि इस

कार्य्य सिद्ध हो गया अब चलकर शत्रुओं का संहार करना चाहिये; मैं सभी को उनके खोतों के भीतर बैठाकर उनके मुंह पर तिनके और पत्ते ठूंस आया हूं अब चिनगारीमात्र की देर है सो आप अब चलें जो चले सो चिता में से एक २ लुआठी लेता चले। बस सब वायस एक २ जलती लकड़ी अपनी २ चोंच में पकड़ वायसराज के साथ २ चले। दिन में तो उल्लू स्वभावतः अन्धे रहतेही हैं तिसपर भी खोतों के द्वार बन्द; उन्हें कुछ भी न सूझा न कुछ विदितही हुआ और आतेही सब कौओं ने उनके खोतों में आग लगा दी। इस प्रकार सबके खोतों में आग लगाय २ कौओं ने राजा सहित सब उल्लुओं को जलाकर भस्म कर डाला। यों चिरजीवी की सहायता से शत्रुओं का संहार कर वायसराज अति प्रसन्न हुआ और अपने सहचरवर्ग के साथ निजावास वटवृक्ष को लौट गया। वहां पहुंच जब सभा लगी तब चिरजीवी शत्रुओं के मध्य अपने रहने का वृत्तान्त सुनाकर काकेन्द्र मेघवर्ण से कहने लगा कि देव। आपके शत्रु उस उलूकराज अवमर्द के पास रक्ताक्षही एक सम्मन्त्री था और सब तो वस्तुतः उल्लूही थे; बस उसी रक्ताक्ष का कहना उस मदान्ध उलूकराज ने न माना इसीसे मैं उनके बीच रह सका; उस शठने अकारणही अपने श्रेष्ठ मंत्री की बात न मानी इसी कारण वह मूर्ख मेरी बातों में आ गया और परिच्छद सहित नष्ट हो गया। इसी प्रकार विश्वास उत्पादन कराय एक सर्प मण्डूकों को खा जाया करता था, सुनिये मैं उस सर्प की कथा आपको सुनाता हूं—!

एक सांप था जो वृद्धावस्था के कारण अति क्षीण होगया था; वह यह चाहता था कि परिश्रम न करना पड़े और सुखपूर्वक भोजन मिल जाया करे सो वह ढोंग रचकर एक तड़ाग के किनारे चुपचाप बैठ रहा; उस तड़ाग में मनुष्यों का आना जाना भी होता था और मेंढ़क भी बहुत थे पर वह किसी से कुछ छेड़ छाड़ न करे। उस सर्प का ऐसा वैराग्य देख मेंढकों ने दूरही से उससे पूछा कि अब आपको क्या होगया है कि पूर्ववत् हम सभोंको पकड़ २ कर न खाते; कहिये ऐसा वैराग्य क्यों होगया? मेंढकों का ऐसा प्रश्न सुन वह अपना कर्मभोग रोता 'सुनो भाइयो! इसमें वैराग्य की कुछ बात नहीं है यह अपना कर्मभोग है एक ब्राह्मणपुत्र किसी मेंढक के पीछे दौड़ता था, मैंने भ्रम से उसके पां

स्तजन मुर्गों के उपदेश से आप अपने दोनों लोक बिगाड़ते हैं । इससे
न् को उचित है कि मुर्गों का मिलन न करें किन्तु पण्डितों की सेवा सम
न से करें । फिर हे महाराज ! सुनिये, मन में सन्तोष न हुआ तो यह भी
ड़ा दोष लगाएगा, इसी विषय में आपको एक कथा सुनाता हूं ।

किसी स्थान में कुछ प्रव्राजक रहते थे, भिक्षा करके जो कुछ पाते उसी में
रहते और निर्द्वन्द्व खा पीकर तगड़े बने रहते । उन्हें देखकर कुछ लोगों को
हुई, वे सब आपस में कहने लगे कि ये सब तो भिक्षा मांगकर पेट पोसते
तोभी ऐसे हृष्टपुष्ट बने हैं यह बड़े आश्चर्य की बात है । उन मित्रों में से
बोला "अच्छा मैं अब तुम लोगों को एक कौतुक दिखाता हूं; देखना, ये
पूर्ववत् भोजन करतेही रहेंगे पर मैं इनको दुर्बल कर दूंगा ।" इतना कह
। प्रत्येक प्रव्राजक को प्रतिदिन नेवता देकर उसे षट्रस भोजन कराना आ-
कर दिया, इसी प्रकार वह क्रमानुसार सभी को एक २ दिन भोजन कराता
। अब तो उन प्रव्राजकों को उत्तमोत्तम पक्वान्न का चसका लग गया अब
चिन्ता बनी रहती कि कोई आवे और निमन्त्रण देकर ले चले और पक्वान्न

उन्मत्त कर देनेवाली है, उनकी स्थिरता एक कठिन बात है पर जो राजा सुमन्त्र, व्यसनहीन, विशेष विषयों का ज्ञाता तथा उत्साहयुक्त होता है उसके वहीं लक्ष्मीदेवी इस प्रकार स्थिर हो बैठ जाती हैं मानों रस्सी से बँधी हों। हे राजन्! इस समय आप सावधान तथा विद्वानों के वचनानुसार कार्यकर्त्ता तथा शत्रुओं के नष्ट हो जाने से सुखसम्पन्न हो गये हैं अतः अब निष्कण्टक शासन करें आपको इस समय किसी प्रकार चिन्ता न करनी चाहिये।

सन्मन्त्री चिरजीवी की इस प्रकार नीतिभरी बातें सुन काकराज मेघवर्ण अति प्रसन्न हुआ पश्चात् उस मन्त्री प्रवर का सम्यक् सत्कार कर उसी प्रकार उसके वचनानुसार राज्य करने लगा।

इस भांति नीतिपूर्ण कथा सुनाय मन्त्रीप्रवर गोमुख वत्सराज के पुत्र से पुनः कहने लगा कि देव! इस प्रकार बुद्धिबल से पशुपक्षी भी राज्य भोगते हैं, परन्तु जिनके बुद्धि नहीं होती वे सदा दुःखी होते हैं और लोग उनका उपहास भी करते हैं, सुनिये एक निर्बुद्धि की कथा आपको सुनाता हूं।

किसी महाजन का एक भृत्य बड़ाही मूर्ख था, जोही बात हो वह सभी में अभिज्ञ बनता था, ऐसा कभी न कहे कि मैं यह नहीं जानता। एक समय उसका स्वामी उससे गोड़ मिँजवा रहा था पर उस मूर्ख भृत्य को यह भी ज्ञात न था, सो उजड्डपने से मींजते २ उसने अपने स्वामी को नकोट लिया जिससे उस महाजन के कोमल अङ्ग में बड़ी जलन होने लगी, इससे क्रोध में आकर स्वामी ने उस मूर्खाधिराज को छोड़ा दिया, अब वह इधर उधर बिलबिलाने लगा।

इतना कह गोमुख फिर बोला कि देव! इसमें उचित तो यही है कि जो विषय अपने को न आवे उसमें हठपूर्वक अपने को अभिज्ञ न प्रगट करे क्योंकि जो अपने को बुद्धिमान् समझ हठपूर्वक कहता है कि मैं जानता हूं वह नष्ट हो जाता है। सुनिये इसी विषय में आपको एक कथा और सुनाता हूं।

मालव देश में दो भाई ब्राह्मण रहते थे, उनका पिता जो कुछ धन छोड़ गया था सो बँटा नहीं था, दोनों एकही साथ रहते थे, पर यह व्यापार बहुत दिन न चला, तब उन दोनों में विच्छेद हो गया और धन सम्पत्ति का बँटवारा होने लगा। दांट बखरे में होते २ दोनों में झगड़ा उठ खड़ा हुआ, एक कहै "तुमको

भोजन करावे, इसी प्रत्याशा में सभों ने भिक्षा का मांगना भी छोड़ दिया, इससे धीरे २ सबकी सब दुबले हो चले। जब वे परिव्राजक क्षीण हो गये तब एक दिन उस खिलानेवाले ने अपने मित्रों से कहा कि देखो भाई ये वेही परिव्राजक हैं जिनके विषय में हमलोग उस दिन बात करते थे, देखो अब इनकी कैसी दशा हो गयी है कि पेट पीठ से सट गया है। इसका कारण तुम लोगों ने कुछ समझा अच्छा सुनो, उस समय ये सब भिक्षा मांगकर उतनेही में सन्तुष्ट हो खा पी के निर्द्वन्द्व रहते थे इसीसे हट्टेकट्टे बने थे और अब इनमें असन्तोष का सञ्चार हुआ इससे दुःखित और दुर्बल हो गये। इससे जो बुद्धिमान् है वह सन्तोष का अवलम्ब करे, बिना सन्तोष सुख होताही नहीं। सन्तोष न हुआ तो जानना कि इस व्यक्ति को दोनों लोक के सुख न मिलेंगे प्रत्युत वह सदा सर्वदा छटपटाता दुःखीही बना रहेगा।

गोमुख इतनी कथा सुनाय बोला कि देव! इस प्रकार अपने मित्र का अनुशासन मान उन सब सुहृदों ने समस्त पापों के मूल असन्तोष का त्याग किया। ठीकही कहा है "को न सुसंग बड़प्पन पावा"।

इसके उपरान्त गोमुख फिर बोला कि राजन्! यह तो आपको असन्तोषियों की दुर्दशा की कथा सुनायी गयी अब और सुनिये मैं एक सुवर्णमुग्ध की कथा आपको सुनाता हूं।

एक युवा पुरुष किसी तड़ाग में जल पीने के लिये गया, वहां पेड़ पर सुवर्णवर्ण एक पक्षी बैठा था, उसका प्रतिबिम्ब उसे जल में दिखाई पड़ा, वह सोचने लगा कि यह सुवर्ण है, यह विचार वह मूर्ख उस पक्षी के ग्रहणार्थ जल में उतरा जब पानी हिल जाने से वह प्रतिबिम्ब लुप्त हो गया तब वह जल से निकल आय पुनः बड़े ध्यान से देखने लगा, पानी जब स्थिर हो गया तो फिर परछाईं दीख पड़ी सो वह मूर्ख पुनः तड़ाग में हला। इसी प्रकार वह मन्दमति बार २ तलाव में घुसे और निकल आवे पर उसे कुछ सुवर्णउवर्ण मिला नहीं। इतने में उसका पिता वहां आ गया उसने इस निकास पैठ का कारण पूछा। जब उसे ज्ञात हुआ तब उस मूर्ख को उसने उस पक्षी का प्रतिबिम्ब बताया और पक्षी को उड़ाय अपने पुत्र का अज्ञान दूर किया; तदुपरान्त उसे समझाबुझाकर वह अपने घर ले गया।

किसी बटोही ने आठ पूरियां मोल लीं, छः पूरियां वह खा गया पर उसकी तृप्ति न हुई किन्तु सातवीं खातेही उसका मन भर गया (तृप्ति हो गई)। तब वह जड़मति चिल्लाकर कहने लगा कि ओः! मैं ठगा गया हूं, यदि मैं जानता कि इसी पूरी से तृप्ति हो जायगी तो पहिले इसी का भक्षण करता और तो सब जातीं, वृथाही वे नष्ट हुईं, मेरे पैसे भी व्यर्थ गये। वह मूर्ख इस प्रकार प्रलाप करता था पर यह नहीं जानता था कि तृप्ति कौंकर हुई। अब जोही उसकी आहनूति सुनता वही हसे बिना न रहता, इस प्रकार वह मूढ़ दूसरों का हास्यास्पद हुआ।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव। यह तो आपको पूरी खानेवाले की कथा सुनाई गयी अब दूकान के रखवाले की कथा सुनिये।

एक दूकानदार ने अपने सेवक से कहा कि दूकान देखते रहना मैं तनिक घर हो आऊँ, इतना कहकर वह बनियां घर चला गया और इधर एक नट का तमाशा हो रहा था सो वह मूर्ख नौकर दूकान के तख्ते कन्धे पर रखकर तमाशा देखने चला गया। इतने में दूकानदार लौट आया तो देखता है कि वह दास नहीं है; जब वह नौकर तमाशा देखकर लौटा तो मालिक ने पूछा क्यों वे कहां चला गया था मैं तुझे दूकान न दिखा गया था, उसने उत्तर दिया कि इसीलिये तो मैं तख्ते उठाता ले गया था तिस पर भी आप कहते हैं कि ऐसा नहीं वैसा, अस इन्हीं का न भय था, सो हुआ क्या?

गोमुख बोला कि राजन्! इस प्रकार से मूर्ख लोग शब्दार्थ का ग्रहण करते हैं भावार्थ उनकी समझ में आताही नहीं। अच्छा महाराज यह तो आपने दूकान के रखवाले की कथा सुनी अब आपको मूर्ख महिषभक्षकों की कथा सुनाता हूं, यह कथा बहुतही अपूर्व है।

किसी गांव के कुछ लोग एक मनुष्य का भैंसा पकड़ ले गये और गांव के बाहर एक बाड़े में किसी वटवृक्ष के नीचे उसे मारकर बांटचोट खा गये। महिष-स्वामी ने राजद्वार में उनपर अभियोग चलाया, राजा ने उनको पकड़ मँगवाया। महिष के स्वामी ने उनके साम्हने राजा से कहा "धर्म्मावतार! येही लोग मेरा भैं[illegible] पकड़ ले गये और तलाव के किनारे बड़ के नीचे उसे मारकर खा गये [illegible] आपसे कुछ करते न बन[illegible] अब आपके हाथ में है और [illegible]

सातवां तरङ्ग।

दूसरे दिन प्रात:काल में नरवाहनदत्त उठे उनका मन तो शक्तियशा में लीन था किसी प्रकार गोमुख की विविध कथाओं से कुछ विरहाग्नि का शमन हुआ इसी से रात्रि विशेष नींद आगई थी पर प्रात:काल होतेही ज्योंही निद्रा टूटी कि उनके हृदय में शक्तियशा छाय गयी इससे फिर वैसीही विरहवेदना से वह अत्यन्त व्याकुल हो गये। विवाह की अवधि का शेष भाग उन्हें युग सा प्रतीत होने लगा, एक दिन युग समान भासता, उनका चित्त नवीन भार्या के समागम की लालसा से अति उत्कण्ठित था, सदा उधरही ध्यान, कहीं दूसरी ओर मन न रमै। गोमुख के द्वारा यह बात महाराज वत्सराज के कर्णकुहर में पड़ी इससे पुत्र के स्नेह से उन्हें भी बड़ी चिन्ता हुई सो उन्होंने अपने अङ्गज के चित्तविनोदार्थ वसन्तक प्रभृति निज सचिवों को भेजा कि कदाचित् उनके साथ कथोपकथन से राजकुमार को कुछ शान्ति मिले। पिता के मन्त्रियों के आगमन से उनके गौरव के कारण वत्सेश्वरात्मज राजकुमार नरवाहनदत्त को कुछ धैर्य हुआ इसी अवसान में परम प्रवीण मन्त्रिप्रवर गोमुख वसन्तक से कहने लगा "आर्य वसन्तक! आप तो अनेक विषयों के अभिज्ञ हैं, अच्छी २ कथायें भी जानते हैं सो ऐसी कोई विचित्र मनोहर और नवीन कथा कहिये कि राजकुमार का चित्तविनोद हो।" गोमुख की ऐसी उक्ति सुन परमचतुर वसन्तक कथा कहने लगा कि—

मालवदेश में श्रीधर नामक कोई एक द्विजोत्तम रहता था उसके दो यमज पुत्र उत्पन्न हुए थे जो देखने में एक समान थे तनिक भी विभेद उनमें नहीं पाया जाता था, उनमें से बड़े का नाम यशोधर और छोटे का लक्ष्मीधर था। जब दोनों युवा अवस्था को प्राप्त हुए तब पिता की अनुमति से विद्याध्ययनार्थ विदेश चले। चलते चलते एक घोर अटवी में पहुँचे जहां न कहीं पानी मिले न कुछ भोजन, जहां ऐसे वृक्ष भी नहीं कि जिनकी छाया में बैठकर विश्राम भी किया जाय, और नीचे जलती बालू। ऊपर से तो सूर्य्यनारायण की जलजलाती किरणे नीचे प्रदीप्त था सुका; फिर मार्ग का चलना, सो बिचारे पियासा से अत्यन्त व्याकुल हो गये, मार्ग की थकावट और घोर पियास से अब उनका एक पग चलना कठिन हो गया; अस्ततोगत्वा रोते खीभते चलते २ सायङ्काल में एक वृक्ष के नीचे पहुँचे, जहां

तुम मेरे भर्त्ता नहीं। अब यह विचारा क्या करे बड़े सङ्कट में पड़ा; परन्तु जिस प्रकार दिन बीता और रात आई सो रात्रि के समय वह कमल लेने के लिये राजा के तलाव में पैठा, इतने में रखवाले जाग गये और बोल उठे कौन है? "मैं चकवा हूं" ऐसा उत्तर उस मूर्ख ने दिया। इतना सुन राजपुरुषों ने उसे पकड़कर रात भर बांध रक्खा। प्रात:काल वे उसे राजा के साम्हने ले गये; राजा के पूछने पर वह चकवा की बोली बोलने लगा। राजा बुद्धिमान् थे समझ गये कि कुछ रहस्य है, सो उन्होंने उस मूर्ख को समझाबुझाकर फिर पूछा कि भाई सच २ बतलाओ बात क्या है? उस मूढ़मति ने यथार्थ बात कह सुनाई। इस पर राजा को दया आई सो उन्होंने उसे छोड़ दिया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव! अब आपको एक और कथा सुनाता हूं, सुनिये यह एक मूर्ख वैद्य की कथा बड़ीही मनोहर है।

किसी ग्राम में एक बड़ाही मूर्ख वैद्य था, उसके पास एक दिन एक ब्राह्मण आकर कहने लगा कि महाराज मेरा लड़का कुबड़ा है, कोई ऐसा उपाय कीजिये कि उसका कूबड़ बैठ जाय। वैद्य ने कहा "सुनो भाई इस कार्य्य के लिये मैं दश पण लूंगा पर हां जो अच्छा न कर सका तो दसगुना तुमको दूंगा" ऐसी प्रतिज्ञा दोनों में ठहर गयी और वैद्यराज ने दश पण उससे ले लिये और लगे उस कुबड़े की चिकित्सा करने। वैद्यजी ने स्वेदादिक अनेक उपाय किये पर कूबड़ न अच्छा हुआ अन्त में उसे दशगुने पण देने पड़े।

गोमुख बोला महाराज! कोई कितना भी उपाय करे पर क्या कूबड़ बैठ सकता है। सो जो मूर्ख ऐसे २ विकत्थन करते हैं वे हास्य के अतिरिक्त और क्या लाभ उठा सकते हैं। अत: देव! बुद्धिमान् को चाहिये कि ऐसे २ मूर्खों से सम्पर्क न रक्खे, मूर्खों के सम्पर्क से हानिही हानि है।

एहि भांति गोमुख की कही मूढ़नकथा क्षत्रीविषय।
सुनि भूपसुत नरवाहदत्त पायो अमित आनँद हृदय॥
यदि रहे शक्तियशा-समुत्सुक तदपि आनँद रँग रये।
समवयस मंत्रि समेत निज शयनीय पे निद्रित भये॥

भोजन किया, उधर वह पुरुष अपनी प्राणवल्लभा उस द्वितीया पत्नी को लेकर पलङ्ग पर पौढ़ रहा और आनन्दपूर्वक रतिक्रीड़ा का सुख भोग निद्रित हो गया और वह सती पहिली भार्य्या अपने प्राणेश्वर के पांव दबाने लगी; पति तो निद्रित हो गया पर उसकी द्वितीया पत्नी को नींद न आई।

यह सब चरित्र पेड़ पर बैठे २ दोनों ब्राह्मणकुमार देख रहे थे, सो वे दोनों परस्पर बातचीत करने लगे कि यह तो जो कुछ हम देख रहे हैं अप्राकृत व्यापार है, यह पुरुष न जानें कौन है; कुछ समझ में नहीं आता इससे अब उतरकर इस पांव दबानेवाली से पूछा जाय तो पता लगे। इस प्रकार परामर्श कर दोनों भाई पेड़ से उतरे और उसके पास ज्यों पहुँचे कि उस दूसरी पत्नी की दृष्टि यशोधर पर पड़ी सो वह चपला अपने पति को सोता छोड़ पलङ्ग से उठ खड़ी हुई और उस रूपवान् के पास जाकर बोली "प्यारे! मुझे ग्रहण करो, मेरा ताप बुझाओ"। यशोधर ने कहा "पापे! तू पराये की स्त्री है, मैं तेरे लिये परपुरुष हूं सो यह तू क्या कह रही है", उसकी ऐसी भर्त्सना सुन यह दुराचारिणी पुनः बोली, "प्यारे तुम्हीं उलटी बात कह रहे हो, परपुरुष उरुष मैं कुछ नहीं जानती, मैं तो तुम्हारे समान सौ पुरुषों से गमन कर चुकी, तुम भय क्यों करते हो ? यदि तुम्हें विश्वास न हो तो सौ अंगूठियां देखो न, जिन २ के साथ मैंने सम्भोग किया उन उनसे ये अंगूठियां मुझे मिली हैं, लो मैं तुम्हें दिखाये देती हूं।" इतना कह उस पापिष्ठा ने अंचल से अंगूठियां खोल यशोधर को दिखा दीं। उस कुलटा की ऐसी बात सुन वह ब्रह्मचारी यशोधर बोला "अरे तू सौ सहस्र अयश लक्षों से व्यभिचार क्यों न करे और करावे पर मैं ऐसा कदापि नहीं करने का, मैं तो परनारी को माता समझता हूं।" कुलटाओं को तो अनेक ढंग आते हैं उन्हें झटपट साहस कर बैठते सङ्कोच नहीं लगता, सो उस दुष्टा ने जब यशोधर की ऐसी डपट सुनी तब इस प्रकार तिरस्कृत होने से उसे ग्लानि तो न आई प्रत्युत्य प्रचण्डकोप ने उस पर प्रभुता जमायी सो वह झट अपने पति को जगाकर उससे कहने लगी कि देखो न यह दुष्ट न जानूं कहां से आया है, इस पापी ने बलात् मेरा धर्म नष्ट कर डाला। इतना सुनतेही पति जलजला उठा और खड्ग खींच उस ब्राह्मण को मारने चला, इतने में उसकी वह सती साध्वी भार्य्या उसके पांव पकड़ बड़े विनय से चिरौरी

सघन छाया मिली और वृक्ष फलसम्पन्न भी था; जल का भी सुपास था क्योंकि उस तरु के मूलदेश में एक ओर एक झील भी थी जिसका जल शीतल और स्वच्छ तथा कमल के सुगन्ध से वासित था। दोनों भाइयों ने उसमें स्नान कर कुछ फल और शीतल जल पान कर अपनी तृषा बुझाई तथा खाने पीने के उपरान्त दोनों एक चट्टान पर बैठ विश्राम करने लगे। जब सूर्यनारायण अस्ताचल पर पहुँचे तब उन दोनों सहोदरों ने सायंसन्ध्या की उपासना की और रात्रि के हिंसक जन्तुओं का भय समझ यह सिद्धान्त किया कि इसी तरु पर चढ़कर रात्रि बितानी चाहिये; ऐसा विचार दोनों उस वृक्ष पर चढ़ बैठ रहे।

रात्रि के समय वे दोनों भाई क्या देखते हैं कि नीचे उस झील के जलाशय में से बहुतेरे पुरुष निकले हैं, उनमें से किसी ने पृथ्वी झाड़झूड़ परिष्कृत कर दी, किसी ने भीय कर ठहर लगा दिया, किसी ने वहीं ठहर में पांच वर्ण के पुष्प बिखेर दिये; किसी ने लाकर सोने का पलङ्ग बिछा दिया, किसी ने उसपर रुई का गुलगुल गद्दा फैला दिया जिसके ऊपर से एक चादरा डाल दिया। किसी ने नाना रंग के प्रसून अङ्गराग इत्यादि और उत्तमोत्तम खानपान के पदार्थ लाकर उस के नीचे एक पलंग रख दिये। सबके पीछे दिव्य आभरणों से विभूषित एक खड्गधारी पुरुष उस झील से निकला जिसके रूप से मानो साक्षात् मकरध्वज झलकित हो जाता। उस पुरुष के उस सुखासन पर बैठने के उपरान्त वे सब परिचारक जुटकर आये, कोई माला पहिनाने लगा, कोई सुगन्ध लगाने लगा, इस प्रकार सबके सब उसकी सेवा शुश्रूषा में लग गये। जब वे अपना २ कार्य समाप्त कर चुके तब सबके सब उसी झील में मग्न हो गये। इसके उपरान्त उस पुरुष ने अपने मुंह से एक स्त्री निकाली जिसका रूप अति मनोहर, स्वभाव अति विनीत

हि किसी के वश नहीं हैं, पर जो स्त्री सती साध्वी पतिव्रता होती है वह अपनी रक्षा आपही करती है। वह अपनी रक्षा तो करतीही है और साथही अपने पति को भी उभय लोक में रक्षित करती है जैसा कि आप अभी देखही चुके हैं कि इस साध्वी ने, जो कि शाप और वरदान में समर्थ है, मेरी रक्षा की है। इसी के प्रसाद से आज कुलटा का संग छूटा और एक सच्चरित्र ब्राह्मण के वधरूपी पाप से भी मैं बचा।"

इस प्रकार यशोधर से कहकर उसने उसे बैठाया और उससे पूछा कि कहिये आप दोनों जन कहां से आये हैं ? और कहां जा रहे हैं ? । इस पर यशोधर ने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया, पश्चात् विश्राम पाय उससे इस प्रकार के प्रश्न किये क्योंकि उसे उनके व्यापार से बड़ा कुतूहल हुआ था और ...ों के वृत्तान्त जानने के हेतु वह अपने भाई सहित पेड़ से उतर वहां गया था ... उसने पूछा "महाभाग! यदि यह बात गोपनीय न हो तो बताइये तो सही ... ऐसे २ उत्तमोत्तम भोग विलास रहने पर भी आपका वास जल में क्योंकर ...था ?" उसका ऐसा प्रश्न सुन वह जलवासी पुरुष, "सुनो कहता हूं", कह ...पना वृत्तान्त इस प्रकार वर्णन करने लगा।

हिमालय के दक्षिण में कश्मीर नामक एक देश है, वह प्रान्त ऐसा रमणीय ...र मनोहर है कि जिससे ऐसा भासता है मानों विधि ने मर्त्यलोकवासियों के ...तु एक स्वर्गलोक रच दिया हो जहां हरिहर, जो स्वयम्भू हैं अपने आनन्दमय ...ावास श्वेतद्वीप तथा कैलास को त्याग सौ स्थानों (मन्दिरों) में विराजमान हैं, ...हां वितस्ता नदी अपने जल से देश को पावन करती हुई बहती है; जहां बड़े ...ड़े शूर वीर और अशेष शास्त्रपारङ्गत द्विजगण वास करते हैं और जो देश ऐसा ...रक्षित है कि शत्रु कैसेही बलसम्पन्न क्यों न हों पर उस जीत नहीं सकते वहीं ...र्वजन्म में एक ग्राम में ब्राह्मण के घर में मेरा जन्म हुआ, मेरा नाम भवशर्मा पड़ा ...हां मेरा एक सामान्य जीवन था, उस जन्म में मेरे दो स्त्रियां थीं। वहां कुछ ...भिक्षुक (१) रहते थे उन पर मेरी समधिक श्रद्धा रहती थी सो धीरे २ उनसे ...प्रगाढ़ मैत्री हो गई, अब उनके सम्पर्क का ऐसा प्रभाव हो गया कि उनके ग्रा...

(१) बौद्ध संन्यासी।

करने लगी कि नाथ ! यह क्या करने चले हो, मेरी बात भी तो सुन लो, सुनो
व्यर्थ पाप का पहाड़ माथे न उठाओ इसमें बात दूसरी ही है. प्राणनाथ ! सुनो
बात यह है, दोष इस पापिनी का ही है, यह इसे देखतेही तुमको सीता छोड़
उठी और लगी इस बिचारे को बहकाने और फुसलाने, इस साधु ने इसकी प्रा
र्थना न मानी प्रत्युत "तुम मेरी माता हो" इतना कहकर इससे पिण्ड छोड़ा
चाहा; इसीसे डाह में आय इस पापिनी ने तुम्हें जगाया और इस दीन के बध
तुम्हें उभाड़ा है। प्रभो। इतनाही इसका दुश्चरित्र सुनकर तुमको सन्तुष्ट न हो
चाहिये कुछ और भी सुनो; यह इसका प्रतिदिन का नियम है इसी प्रकार
पेड़ के नीचे इसने एक सौ बटोहियों से दुराचार कर एक सौ अंगूठियां
रक्खी हैं। स्वामिन्। मैं तुमसे इस भय से नहीं कहती थी कि कौन व्य
बिसाहे, पर जब आज तुम हत्या करने चले तब मैं कैसे चुप रह सकती थी
बात कहने की तो नहीं है पर करूं क्या अगत्या कहनी पड़ी। यदि तुम
बात का विश्वास न हो तो देख लो इसके अञ्चल में वे अंगूठियां बँधी हैं;
स्त्री का धर्म नहीं है कि अपने प्राणेश्वर से झूठ बोले। सुनो नाथ!
बड़ा टेढ़ा है, सती स्त्रियां सब कुछ कर सकती हैं यदि मेरे सतीत्व का प्र
चाहते हो तो मैं दिखाये देती हूं। इतना कह उसने ज्योंही उस पे
कोपदृष्टि किई कि वह तरु जलकर भस्म हो गया और पुनः जो प्र
उसे देखा तो वह वृक्ष पूर्व की अपेक्षा अधिक हराभरा हो गया। उ
ऐसा प्रभाव देख पति ने अति प्रसन्न हो उसे छाती से लगा लिया, औ
व्यभिचारिणी पत्नी की नाक काट उसे निकाल बाहर किया और उ
वे सौ अंगूठियां उसके अञ्चल से खोल लीं।

वे जल पीने के लिये इधर उधर जलाशय निरखने लगे कि इतने में उस पेड़ पर से यह वाणी सुनाई दी "हे विप्रो! टुक ठहरो, तुम मेरे घर आये हो, अतः मेरे अतिथि हो सो मैं स्नानादपानादि से तुम्हारा आतिथ्य करूंगा (किये देता हूं)।" इतना कह वह वाणी चुप हो गयी कि इतने में वहीं एक बावड़ी निकली और उसके किनारे पर विचित्र २ अन्न पान विद्यमान थे। यह देख उन दोनों द्विज पुत्रों को बड़ा आश्चर्य हुआ कि यह क्या बात है, परन्तु उन दोनों ने बावड़ी में स्नान कर भोजन और जलपान किया। तदुपरान्त सायंसन्ध्या की उपासना कर दोनों भाई उस वृक्ष के नीचे बैठे कि इसी अवसर में एक अति सुन्दर पुरुष उस वृक्ष से उतरा, उन ब्राह्मणों ने उसका अभिवादन किया और वह भी उनको स्वागत कर वहीं बैठ गया, ब्राह्मणों ने उससे पूछा कि आप कौन हैं? तब वह पुरुष उनसे अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाने लगा—

पूर्व समय में मैं ब्राह्मण था, मेरी दशा बड़ी हीन थी; दैवात् श्रमण (१) लोगों की मेरी संगति हो गयी; उनके उपदेश से मैं उपोषण व्रत करने लगा परन्तु व्रत समाप्त न होने पाया; किसी दुष्ट ने एक दिन सायङ्काल में बलात् मुझे भोजन करा दिया, बस मेरा व्रत खण्डित हो गया इसीसे मैं गुह्यक हुआ हूं, यदि कहीं मैं वह व्रत पूर्ण कर पाता तो स्वर्गलोक में देवता होता।

इतनी कथा सुनाय वह वृक्षवासी पुरुष बोला, 'विप्रो! यह तो मैंने अपना वृत्तान्त कह सुनाया अब यह बतलाओ तुम दोनों कहां से आते हो? और इस मरुस्थल में क्योंकर आ पड़े हो?" इतनी बात सुन यशोधर ने अपना वृत्तान्त आद्यन्त कह सुनाया। तब वह यक्ष उन ब्राह्मणतनुजों से कहने लगा कि यदि यही बात है तो लो मैं अपने प्रभाव से तुम्हें विद्यायें देता हूं; तुम दोनों कृतविद्य होकर घर लौट जाओ विदेशों में भ्रमण करने का कुछ प्रयोजन नहीं है। इतना कह उस यक्ष ने उन ब्राह्मणों को विद्यायें प्रदान कीं और उन द्विजातियों ने उसके प्रभावसे उन विद्याओं को ग्रहण किया, तब वह गुह्यक उनसे फिर कहने लगा, "हे ब्राह्मणपुत्रो! अब मैं तुम्हारा गुरु हुआ तुमने मुझसे विद्यायें सीखी हैं सो तुम्हें उचित है कि मुझे कुछ गुरुदक्षिणा दो, चिन्ता मत करो, मैं ऐसी गुरु

(१) बौद्ध संन्यासी।

स्तोक उपोषण नामक व्रत / नियम का अनुष्ठान मैं करने लगा । शुभकर्म मे
बाधा तो अवश्य पड़तीही है; यह तो सिद्धान्त है, सो मेरे उस उपोषण में भी बाधा
पड़ गयी; मेरा नियम प्रायः समाप्त हो चला था कि एक भार्य्या हठपूर्वक मेरे
पलङ्ग पर आ पौढ़ गई तब भी मैंने बहुत बचाया पर यह कब सम्भव है कि उ
हार हो अन्ततोगत्वा रात की चौथ प्रहर में निद्रा के व्यामोह से मुझे उस व्रत का
निषेवण बिसर गया और पास में वह चम्पकवदनी सोईही थी बस खोजना क्या
था मैं उस प्रिया के साथ रमण करने लगा। हा! दैव बड़ा प्रबल है । बस मेरा
व्रत खण्डित हो गया उसीसे मुझे जलपुरुष हो यहां जल में वास करने के हेतु
जन्म लेना पड़ा; वे दोनों भार्य्यायें यहां भी मेरी पत्नियां हुईं, इनमें से एक वही
पापिनी कुलटा हुई है, जिसने मेरा व्रत भङ्ग किया था और यह दूसरी पतिव्र
है। मेरा वह व्रत खण्डित हो गया तथापि यह उसी का प्रभाव है कि मैं अ
पूर्वजन्म की कथा स्मरण करता हूं और रात्रि के समय ऐसे २ उत्तमोत्तम भो
भोगता हूं और जो कहीं मेरा वह नियम खण्डित न हुआ होता तो मैं अब
न जानूं क्या हो गया होता । सो व्रत का ऐसा प्रभाव होता है । इस
अपना वृत्तान्त सुनाय उस जलपुरुष ने उन दोनों अतिथियों का बड़ा
किया, उन्हें उत्तमोत्तम पक्वान्न खिलाये तथा दोनों भार्य्यों को दिव्य वस्त्रों
शोभित किया। तदनन्तर उस जलपुरुष की वह सती साध्वी भार्य्या अपने
का वृत्तान्त सुन, घुटना टेक पृथ्वी पर बैठ गई और चन्द्रमा की ओर ह
इस प्रकार कहने लगी, "हे लोकपालो! यदि मैं सच्ची साध्वी और पतिव्र
मेरे यह पति जलवास से मुक्त होकर स्वर्गलोक को चले जावें । उस
इतना कहतेही स्वर्ग से एक विमान उतरा और दोनों पति पत्नी उसपर
को चले गये। ठीकही है साध्वी स्त्रियों के लिये तीनों लोक में क्या अ
वे दोनों विप्र यह चरित्र देख अति आश्चर्यान्वित हुए।

इस प्रकार वह विचित्र चरित्र देख अति विस्मित हो वे दोनों
यशोधर और लक्ष्मीधर शेष रात्रि वहीं बिताय प्रातःकाल होने पर
चले। चलते २ सायङ्काल में एक वि अरण्य में पहुंचे और एक
उतरे। वे दिन भर के थ

इस प्रकार वसन्तक का कथा व्याख्यान सुन नरवाहनदत्त का कुछ मनोविनोद हुआ परन्तु शक्तियशा का ध्यान न छूटा, उसकी प्राप्ति की उत्कण्ठा वैसीही जागरूक बनी रही। इतने में भोजन का समय आ गया और महाराज वत्सराज ने उन्हें बुला भेजा सो नरवाहनदत्त अपने मन्त्रियों के साथ उनके समीप गये और यथेष्ट भोजन कर सायङ्काल में गोमुखादि के साथ अपने मन्दिर में जा विराजे।

अब पुन: गोमुख उनके विनोद की विवेचना कर उनसे कहने लगा कि देव! अच्छा सुनिये अब आपको दूसरा कथाक्रम सुनाता हूं।

महोदधि के किनारे उदुम्बर वन में वानरों का राजा वलीमुख रहता था, वह अपने यूथ से छूट (भटक) गया था। एक समय की बात है कि वह एक उदुम्बर (गूलर) के पेड़ पर बैठा निश्चिन्त उसके फलों को खा रहा था और नीचे समुद्र में एक घड़ियाल रहता था; उस वानर के हाथ से एक गूलर छूटा सो वह घड़ियाल खाय गया, उस गूलर का स्वाद उसे बहुत अच्छा लगा इससे वह आनन्द के मारे और प्राप्ति के अर्थ बड़ा कलरव मचाने लगा। कपि समझ गया कि यह फल उसे अच्छा लगा और कि वह अधिक मांग रहा है इससे उसने और बहुत से फल फेंके। अब यह नित्य का काम ही गया कि वह वानर जब उदुम्बर खाता तब वह घड़ियाल शब्द करने लगता अत: वानर उसके लिये भी कुछ गिरा देता। इस प्रकार होते २ उन दोनों में मित्रता हो गई, वह घड़ियाल समुद्र के किनारे नित्य दिनभर उस वानर के निकट बना रहता और सायङ्काल में अपने आवासस्थान को चला जाता।

अब घड़ियाल दिनभर तो वानर के यहां बना रहता सांझ को कहीं अपने घर जाता, इससे उसकी भार्य्या को बड़ी चिन्ता हुई कि बात क्या है, सो वह इस खोज में लगी, इधर उधर से पता लगाने, पर अन्त में उसको विदित हो गया कि किसी वानर से इसकी मित्रता हो गयी है उसीके साथ यह दिनभर रहता है। वह नहीं चाहती थी कि बन्दर की मित्रता बनी रहे, सो उसके विच्छेद की चिन्ता करने लगी। एक दिन वह ढोंग कर मांदी पड़ गयी, सायङ्काल में जब घड़ियाल आया तो उसे ताद्दश दशा देख बड़ा ही विस्मित हुआ और उससे पूछने लगा कि प्रिये! कहो तो सही तुम्हें हुआ क्या है; क्या तुम्हारा जी अच्छा

वानर के मन में आशङ्का हुई सो वह उससे पूछने लगा, "सखे! आज तुम्हारा भाव कुछ औरही दिखाता है, कहो तो सही क्या बात है?" इस प्रकार उसके आग्रहपूर्वक पूछने पर वह महामूर्ख घड़ियाल अपने मनमें सोचने लगा कि अब तो यह मेरे हाथ में है, अब जायगा कहां। इतना सोच वह बोला कि मित्र! मेरी भार्या आज रुग्ण है, उसके पथ्य के लिये बन्दर का हृदय अपेक्षित है, इसी कारण आज मेरा मन उदास है। उस घड़ियाल की ऐसी बात सुन वानर सोचने लगा, 'हाय हाय! इसीलिये यह दुष्ट मुझे यहां ले आया है, अहो! स्त्री के व्यसन में पड़कर यह मित्रद्रोह करने पर उद्यत हुआ है; ठीक है, क्या भूतग्रस्त अपने दांतोंही से अपना मांस नहीं नोच २ कर खाता।" इस प्रकार चिन्ता कर उस बुद्धिमान् बन्दर ने घड़ियाल से कहा "सखे! यदि ऐसाही है तो तुमने मुझसे पहिलेही क्यों न कहा, जो तुम कहते तो मैं तुम्हारी स्त्री के लिये अपनाही हृदय लेता आता, वह तो अब मेरे आवास उस गूलर के पेड़ही पर छूट गया अब क्या किया जाय, जाऊँ तो ले आऊँ।" उसकी ऐसी बात सुन वह मूर्ख घड़ियाल बड़ी चिरौरी से कहने लगा कि मित्र! तो तुम जाकर उस गूलर के पेड़ पर से उसे ले आओ, इतना कह घड़ियाल पुन: उस कपि को समुद्र तट पर ले गया। अब वह वानर मानों मृत्यु के मुंह से छूटा, सो तट पर पहुंचतेही झट उछलकर उस गूलर के पेड़ पर चढ़ गया और वहां से उस घड़ियाल से बोला, "अरे मूर्ख! दूर हो। अरे कहीं हृदय देह से पृथक् होता है। अरे यह तो मैंने किसी प्रकार तुझसे अपना पिण्ड छुड़ा लिया है, चल अब मैं न आऊँगा (जाऊंगा)। अरे मूढ़ तूने क्या उस गदहे की कथा नहीं सुनी है? अच्छा अब सुन मैं तुझको उसकी कथा सुनाता हूं"।

किसी वन में एक सिंह रहता था, उसका मन्त्री एक शृगाल था एक समय की बात है कि जब वह जङ्गल में घूम रहा था कि उसी समय एक राजा आखेट करता हुआ वहां आ निकला, सिंह साम्हने आ पड़ा और राजा ने उस पर वाण चलाया, कई एक वाणों से वह आहत हुआ, कुशल यह हुआ कि मर्मस्थान में चोट नहीं पहुंची, पर वह घायल बहुत हुआ, किसी प्रकार भागकर बच निकला और बड़ी कठिनता से अपनी मांद में पहुँचा। अब उसमें इतनी शक्ति कहां कि निकले और पशुओं को मारकर खावे, अतो अनशन व्रत होने लगा; जब सिंहही

नहीं है, अच्छा कहो यह रोग किस औषधि से शान्त होगा ? इस प्रकार घड़ियाल बड़ी आर्ति से बार २ पूछता पर वह कुछ उत्तर न देती, अब का ही वह विचारा और भी घबड़ाया, पर करे क्या वह मानिनी कुछ उत्तर ही न देती थी। अन्त में उसकी एक सखी, जो कि इस मर्म से अवगत थी; घड़ियाल से कहने लगी, "सुनो जी यह एक ऐसी बात है जो तुम न करोगे और यह तुम्हारी पत्नी भी नहीं चाहती कि तुम ऐसा करो, पर मैं तो यह मर्म जानती हूं, कैसे छिपाऊँ, और छिपाना उचित भी नहीं है। सुनो तुम्हारी भार्या को एक भयङ्कर रोग हो गया है, इसे असाध्यही समझना, क्योंकि इसकी औषधि भी एक असम्भव है; सो मैं बता तो अवश्य दूंगी आगे लाना न लाना तुम्हारे हाथ में है; सुनो वानर के हृत्पद्म (१) के जूस बिना यह रोग शान्त नहीं हो सकता, सो बन्दर के हृदय का जूस इसे दिया जाय तो यह अच्छी हो।" अपनी प्रिया की सखी का ऐसा कथन सुन वह घड़ियाल सोचने लगा, "अहो ! यह बड़े कष्ट की बात है, अब मैं वानर का हृत्पद्म कहां पाऊँ। यदि अपने मित्र उस वानर से द्रोह करूं तो क्या ऐसा करना मुझे उचित है ! अथवा उस मित्र से ही मेरा क्या सरने का, जो मेरी प्राणाधिक भार्या ही न रही।" इस प्रकार विचारकर वह अपनी पत्नी से कहने लगा कि प्रिये ! दुःख न करो हृत्पद्म की क्या चिन्ता मैं तुम्हें एक समूचा बन्दर ही ला देता हूं। इस प्रकार उसे सान्त्वना देकर वह घड़ियाल उस कपि के पास चला गया, और बातचीत करने लगा, इधर उधर की गप्प लड़ाते उसने बीच में यह बात छेड़ दी कि मित्र ! इतने दिनों से मेरी और तुम्हारी मित्रता है पर आज लों तुमने न तो मेरा घरही देखा और न मेरी भार्याही से भेंट की, सो चलो आज मेरे ही घर विश्राम करो; जहां मित्रों का एक दूसरे के घर आना जाना, और परस्पर भोजनादिक का व्यवहार नहीं, स्त्रियों से भेंट नहीं, भला वह भी कोई मित्रता है ? इस प्रकार प्रतारण की बातों से उसने वानर को अपने वश में कर लिया और वह वानर उसकी बातों का विश्वास कर उस पेड़ पर से उतर पड़ा और घड़ियाल उसे अपनी पीठ पर उठा अपने घर की ओर चला। आज ... घड़ियाल कुछ चकित सा और घबड़ाया हुआ था, उसकी ऐसी अवस्था देख

चलाई जावे" यह सुन सिंह बोला कि तुम जो समझो सोई सही, अच्छा फिर तो उसे एक बार फुसला के बुला लाओ, अबकी बार मैं सज्जित रहूंगा. देखना क्या करूंगा, अबकी उसे मारे बिना न छोडूंगा । इस प्रकार कहकर सिंह से भेजा गया वह सियार फिर उस गदहे के पास गया और कहने लगा कि भाई तुम भाग क्यों आये? उसने उत्तर दिया कि किसी जन्तु ने मुझे मारा सो डरकर मैं भाग न आऊं तो क्या प्राण दूं। यह सुन वह धूर्त सियार हंसकर बोला, "यह तुम क्या कह रहे हो, वहां तो कोई जन्तु यन्तु नहीं है, यदि कोई होता तो कहो मैं ऐसा छोटा जीव होके वहां कैसे सुख से रह सकता, सो तुम्हें कुछ भ्रम हुआ होगा । अच्छा अबकी चलो तो सही देखा जाय क्या है, तुम सुख से मेरे साथ २ वहां रहना।" मूर्ख गदहा उसकी झड़ी पट्टी में आ गया और फिर उसके साथ वहां चला गया। उसे देखतेही सिंह गुहा में से निकला और अबकी उसपर ऐसा झपटा कि गदहा भाग न जाय और शृगाल ने उसे पकड़ नखों से फाड़कर टुकड़े २ कर डाला। इसके उपरान्त सिंह उस जम्बुक को उस व्यापादित खर का रखवाला नियुक्त कर स्नान करने गया कि स्नान करने से थकावट दूर हो जायगी तो खाते अच्छा बनेगा । उधर सिंह तो चला गया, इधर सियार कई दिनों का भूखा तो थाही, तिसमें वह जाति का पक्का मायावी; सो उसने अपनी वृत्ति के अर्थ उस हत गदहे के हृदय और दोनों कान खा डाले। जब सिंह नहा कर आया तो क्या देखता है कि गदहे के हृदय और कान हैही नहीं सो उसने सियार से पूछा कि इसके हृदय और कान क्या हुए? शृगाल ने उत्तर दिया,— "प्रभो! इसके हृदय और कान पहिलेही से न थे. यदि यह बात न होती तो क्या यह एक बार चला जाकर पुन: यहां आता।" सिंह ने उसकी बात सच मान ली और गदहे का मांस भक्षण किया और जो बचा खोचा उसे खाकर सियार ने अपनी आग बुझाई।

इतनी कथा सुनाय वानर बोला; "भाई घड़ियाल! बस अब तुम जाओ मैं अब नहीं जाने का, मैं उस गदहे के समान मूर्ख नहीं हूं कि एक बार मृत्यु के मुंह से बचकर फिर उसके वश में पड़ूं।"

उस कपि की ऐसी बात सुन अपना सा मुंह लिये वह घड़ियाल घर को चला

को उपवास होने लगे तब औरों की कौन चलावे; मन्त्री गोमायु तो सिंह की जूठन खाय २ रहता था उसे उपवास के कारण अधिक दुःख होने लगा सो इसने सिंह से कहा कि हे प्रभो ! घूम फिर के कुछ आहार नहीं लाते, आप भी तो अड़तंगी हैं आपके साथ २ आपके आश्रित भी भूखों मर रहे हैं कहिये यह कैसे कष्ट की बात है; सो उठिये, निकलकर इधर उधर यथाशक्ति टोह लगाइये तो कुछ न कुछ मिलही जायेगा। सियार की ऐसी बात सुन सिंह ने उसे उत्तर दिया— "अरे शृगाल ! मेरे घाव ऐसे घोर हैं कि मैं तनिक टसक भी नहीं सकता हूँ, फिरना तो दूर रहे, जो कहीं गदहे के कान और हृदय मुझे भक्षण करने को मिलें तो मेरे घाव अच्छे हो जावें और तब मैं अच्छा भी हो जाऊँगा, सो तू यहाँ तो आकर किसी गदहे को लिवा लाओ।" सिंह का यह वचन सुन वह धूर्त सियार बोला, "महाराज ! जो आज्ञा इसमें क्या, मैं अभी जाकर एक गदहे को लिवा लाता हूँ", इतना कह वह वहाँ से चला और इतस्ततः किसी गदहे की खोज में घूमने लगा इतने में किसी जलाशय के किनारे एक गदहे पर उसकी दृष्टि

किसी गुरु महाशय के यहां दो शिष्य पढ़ते थे, दोनों में परस्पर बड़ाही द्वेष था, उनमेंसे एक तो गुरुदेव का दहिना पांव मींजता और धोता तथा दूसरा बांया पांव। एक दिन दहिना पांव मींजनेवाला वह शिष्य गुरु की आज्ञा से किसी काम के लिये एक गांव को गया था, और दूसरे ने रीत्यनुसार अपने हिस्से का बांया पांव दबाया, और धोया जब दबा चुका तो गुरु ने कहा कि आज वह बाहर गया है सो तू दहिना पांव भी मींजकर धो दे। यह सुनके वह मूर्ख शिष्य बोला, "गुरु जो वह मेरे प्रतिपक्षी का पांव है मैं तो उसे कदापि न मींजूंगा।" इसपर गुरु ने हठ किया तब उस महा मूर्ख ने विचारा कि अच्छा अवसर मिला है उससे बैर लेना चाहिये; इतना सोच उसने अपने गुरु के दक्षिण चरण पर एक भारी पत्थर दे मारा जिससे वह टूट गया। गुरु का आक्रन्दन सुन और सब शिष्य वहां जुटर आये और लगे उस शिष्य को कूटने; परन्तु गुरुदेव ने उसे छोड़ा दिया। दूसरे दिन जब वह शिष्य गांव से लौटा तब गुरु के पादभञ्जन की बात सुन क्रोध से जलभला उठा और बोला कि उस दुष्ट ने द्वेष से मेरे हिस्से का पांव तोड़ दिया है तो मैं उसके हिस्से का पांव क्यों न तोड़ डालूं, इतना कह उसने गुरु का वह दूसरा पांव भी तोड़ डाला। इसी प्रकार सब शिष्य इसे भी पीटने लगे किन्तु गुरुदेव के दोनों पांव तो अब मिलते (जुटते) नहीं, सो उन्होंने दया कर इसे भी छोड़ाय दिया। तब सब लोग उन दोनों शिष्यों का उपहास करने लगे और सब उनसे द्वेष भी करते इससे उनका रहना असाध्य हो गया सो वे दोनों वहां से अपने २ स्थान को चले गये और गुरुजी महाराज धीरे २ अच्छे हो गये, उनकी सहनशीलता और क्षमा का सौरभ चहुँदिशि छाय गया, जो सुनता वही उनकी प्रशंसा करता।

गोमुख ने कहा कि देव! इसी प्रकार मूर्ख लोग आपस में विद्वेष करके स्वामी का अर्थ तो विगाड़तेही हैं प्रत्युत अपनी टांग में भी टांगा मारते हैं। अच्छा महाराज अब आपको दो शिरवाले सांप का वृत्तान्त सुनाता हूं।

किसी सर्प के दो शिर थे, एक तो यथास्थान आगे की ओर और दूसरा पूंछ की ओर। आगेवाला शिर तो सनेत्र था किन्तु पूंछ की ओर के शिर में आंखें न थीं परन्तु उन शिरों में प्रधानता का झगड़ा बना रहता, एक कहे मैं मुख्य हूं

गया और अपने मनमें इस बात से बड़ा सन्तुष्ट होता कि पत्नी का वध भी न हुआ और एक अच्छा मित्र भी हाथ से निकल गया। जब उसकी भार्य्या को यह बात विदित हो गयी कि दोनों का सख्य टूट गया तो वह स्वयं अच्छी हो गयी। उधर वह बन्दर भी समुद्रकिनारे सुखपूर्वक विचरने लगा।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज ! इस प्रकार बुद्धिमान् लोग दुर्जनों का विश्वास कदापि नहीं करते, उनका विश्वास किया कि मारा गया; दुर्जन और कृष्ण सर्प एक समान माने गये हैं. दोनों में किञ्चिन्मात्र भेद नहीं है, इनका विश्वास कर जो सुख चाहे उसके समान जगत् में कोई दूसरा मूर्खाधिराज हैही नहीं।

इसके उपरान्त नरवाहनदत्त के चित्तविनोदार्थ गोमुख ने फिर कहा कि देव! आपकी क्रमानुसार फिर ऐसे २ हास्यास्पद मूढ़ों की कथा सुनाता हूं। अब पहिले उस मूर्ख की कथा सुनिये जिसने अपने मीठे वचनों सेही एक गायक को सन्तुष्ट कर समझा कि बड़ा भारी काम किया।

एक बार एक गायक किसी धनाढ्य महाजन के यहां गया और अपनी वीणा बजाकर लगा गाने, महाजन उसका गाना सुनकर सातिशय सन्तुष्ट हुआ और अपने कोशाध्यक्ष को बुलाकर उसने उसके समक्षही यह आज्ञा दी कि इस गवैये को दो सहस्र पण दे देओ। "बहुत अच्छा, दिये देता हूं", इतना कह वह खजाञ्ची चला गया। तब वह गवैया खजाञ्ची के पास जाके वे पण मांगने लगा परन्तु उसने एक कौड़ी भी न दी। तब तो वीणावादक ने जाकर उस महाजन से कहा कि खजाञ्ची रुपये नहीं देता, आपने तो आज्ञा कर दी अब न जाने

है पर यह नहीं जानता कि वह क्योंकर छिपाया जाय । अब कुछ लड़कों की कथा आपको सुनाई जाती है।

कुछ लड़कों ने कहीं दुही जाती हुई गौ को देखकर अपने मनमें यह विचारा कि इसी प्रकार सब पशु दूहे जाते हैं, सो एक दिन वे सब किसी गदहे को पकड़ कर उसी प्रकार दूहने लगे, कोई दूहता था, कोई दोहनी पकड़े हुए था; यहां लों कि उनके मध्य इस बात का विवाद भी उठ गया कि कौन पहिले पीयेगा, पहिले सभी पीने चाहते थे । उनके दूहने में यद्यपि सभी ने बड़ा परिश्रम किया पर कुछ दूध रूध मिला नहीं, प्रत्युत लोग उनके खेलवाड़ पर हंसने लगे। ठीक है, व्यर्थ की बात में जो परिश्रम किया जाय वह व्यर्थ न होगा तो और क्या होगा; ऊपर से हंसी जो होती है सो मानों व्याज है।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला देव ! अब आपको एक और मूर्ख की कथा सुनाता हूं।

किसी ब्राह्मण का पुत्र महा मूर्ख था, एक दिन उसके पिता ने सायङ्काल में उससे कहा कि हे पुत्र ! कल प्रातःकाल तुमको उस गांव को जाना होगा। यह सुन वह रात्रि में तो सो रहा, बिहान होतेही उस गांव को चल पड़ा, उस मूर्ख ने अपने पिता से यह भी न पूछा कि उस गांव में जाकर क्या करना धरना होगा अथवा किससे क्या कहना होगा। सो वहां जाकर दिनभर व्यर्थही बिताकर सायङ्काल में वह अपने घर को लौट आया और अपने पिता से कहने लगा कि लीजिये पिता जी मैं आपकी आज्ञा से उस गांव से हो आया। पिता ने उत्तर दिया 'वत्स ! अच्छा किया तुम्हारा जाना न जाना बराबरही है क्योंकि तुम्हारे जाने से कुछ काम तो सिद्धही न हुआ।"

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव ! इसी प्रकार व्यर्थ का कष्ट मूर्ख जन उठाता है, उससे कुछ कार्य्य तो होता नहीं प्रत्युत लोगों का हास्यास्पद वह होता है। प्रायः देखा गया है कि ये मूर्ख लोग शिक्षा दियेजाने पर भी उपकारी और हितकर बातों को नहीं मानते, अपनी उलटी बुद्धि के आगे वे किसी को गिनतेही नहीं और सारे संसार को तुच्छ सदा तृण समझते हैं। यदि ऐसा न होता तो सज्जनों के द्वारा सदुपदेश पाकर अनेक मूर्ख सुधर जाते। सो अब सुनिये

दूसरा कहे मैं, इस प्रकार दोनों विवाद करते थे । सर्प अपने प्रकृत शिर
भरोसे चरता फिरता था, पूंछवाले शिर को कुछ चिन्ता भी न करता।
समय की बात है कि पूंछ की ओर का शिर कहीं किसी काठ में लग गया ह
बलपूर्वक वह उसी काठ में ऐसा लपट गया कि वह सांप तिल भर भी आगे व
टसक सका; अब तो सांप को अक्लो बक्लो ही भूल गयी, उसका कुछ चलैही न,
निदान उसने उसी शिर को बलवान् समझ विजयी माना। प्रथम शिर को उपेक्ष
कर अब वह उस अन्ध शिर के सहारेही से चरने लगा, परिणाम यह हुआ कि
दृष्टि के अभाव के कारण एक दिन धधकती आग में गिरकर भस्म हो गया।

इतनी कथा सुनाय सुप्रसिद्ध नीतिविशारद मन्त्री गोमुख बोला कि राजकु
मार जो मूर्ख इस प्रकार से गुणों का तारतम्य नहीं जानते वे हीनगुण के पाले
पड़ पराभवही पाते है । अब आप चावल फांकनेवाले एक मुग्ध की कथा सुनिये।

कोई एक बड़ा मुग्ध था, वह पहिले पहिल अपनी ससुराल गया। घर में आ
नन्दसागर उमड़ आया कि आज दामाद आये हैं, नाना प्रकार के पक्वान्नादि व
समारोह होने लगा, पुराने से पुराना चावल रींधने के लिये लाया गया; इस
दृष्टि जो ऐसे उज्वल और स्वच्छ चावल पर पड़ी तो इसका जी चल गया
एक फक्की मार लेनी चाहिये; सो ज्योंही कि सास किसी कार्य्य के लिये व
हटी कि आपने एक फक्की मार ली; उधर से सास भी तुरत आ गयी; अब
क्या करे, न तो चावल निगलही सके और न लाज के मारे उगिलही दे, विचा
बड़े सङ्कट में पड़ गया। मुंह में की फंकी गले में अँटक गयी थी इससे वह पूछ
पर कुछ उत्तर भी न दे सकता था, गला भी कुछ फूल गया था इससे सास
समझा कि इसके कोई रोग हो गया है सो उसने झटपट अपने प
कर उसको दशा दिखाई । वह भी दौड़ा गया और एक वैद्य को
वैद्य ने आकर देखा तो सचमुच गला फूला है सो उसने समझा
फोड़ा है; मुंह खोलकर उसे देखना चाहिये; अत: उसने मस्तक
दबाई तो मुंह खुल गया और भरभराकर चावल गिर पड़े; यह
लोग ठहठहाकर हँसने लगे।

गोमुख बोला कि इस प्रकार मूर्ख बिना विचारे कुछ

ाचे लिखे हुये नाटक और उपन्यास हमारे भारतजीवनकार्य्यालय काशी में मिलते हैं जो सब देखनेही योग्य हैं ।

नाटक ।

- ।निकौतुक रूपक =)
- ।ा हमी को सभ्यता कहते हैं ? /)
- ।स्यकुमारी नाटक ॥)
- ।पटोमुनि नाटक ।)
- ग्रामपाठशाला =)
- जयनारसिंह की /)
- दुःखिनीबाला /)॥
- द्रौपदीचीरहरणनाटक ।/)
- निस्सहायहिन्दू ।)
- नीलदेवी नाटक =)
- मन्दविदा नाटक ।)
- नाट्यसम्भव नाटक ।/)
- प्रताप नाटक ॥)
- पद्मावती नाटक ।=)
- बूढ़ेमुंहमुंहासे लोग देखें तमाशे =)
- भारतजननी /)
- भारतदुर्दशा =)
- भारतसौभाग्य ॥)
- महापन्थेनगरी नाटक ।)
- रणधीरप्रेममोहनीनाटक ॥
- विवाहविड़म्बन नाटक १)
- विद्यासुन्दर नाटक ।)
- वीरनारी ।/)
- वैदकी हिंसा हिंसा न भवति =)
- सती नाटक ॥)

उपन्यास ।

- कादिम्बरीवृत्तान्तमाला ॥)
- कनककुसुम ।)
- कान्तिमाला उपन्यास ।/)
- कुली-कहानी ।/
- कटे मूड़ की दो दो बातें ।/)
- कोमलकिशोर ॥)
- कुलटा कुतूहल /)
- किले की रानी ॥/)
- कुलटा /)
- कुसुमलता चार भाग २।)
- कुंवरसिंह ॥)
- कुसुमकुमारीचारभाग १)
- कुसुमकुमारी अर्थात् स्वर्गीय कुसुम ॥)
- काजल की कोठरी ॥/)
- कमलकुमारी उपन्यास चारो भाग २)
- चन्द्रकला ।)
- चन्द्रकान्ता चारो भाग (गुटका) १)
- चन्द्रकान्तासन्तति चौबीस हिस्सा १२)
- चपला चारो भाग २)
- चौपट चपेट =)
- मदनमिलाकौमुदीव्रत=)
- महेन्द्रकुमारचारभाग २।)
- रङ्गमहल दोनो भाग ॥)
- सप्तबहादुरचारोंभाग ४)

- पूना में हलचल ।/)
- परीक्षागुरु ॥)
- प्रेममयी =)
- परिमल उपन्यास ॥।)
- विलासवारकाघोड़ा =)
- भयानकभ्रमण ॥)
- भूतों का मकान ॥)
- मदनमोहिनी ॥)
- मधुमालती ॥)
- मरतापयामकरता /)
- मनोरमा ॥/)
- मायाविनी ।)
- मायावी १॥)
- राजकुमारी ॥।)
- लवङ्गलता ॥)
- लीलावती १।)
- लैलेमजनू /)
- वीरपत्नी ।/)
- वीरजयमल ॥)
- स्वर्णबाई ।/)
- सतीचरित्रसंग्रह १)
- सत्यवीर १॥)
- स्वतन्त्रबाला ।)
- वेनिस का बांका ॥।)
- सवासपना /)
- जहाज चम्पाकली /)
- जया उपन्यास ॥)
- जीवनसन्ध्या ॥।)
- नूरजहां ।)
- प्रमीला ॥/)

आनन्दीबाई उपन्यास ।✓)
अब्दुला का खून ✓)
अकबर उपन्यास प्रथम भाग ॥)
अघोरपन्थी ✓)
अमलाहृत्तान्तमाला ॥)
वनकन्या ।✓)
ईश्वरीलीला ✓)
उर्मिला ✓
कथासरित्सागर आठ भाग ४)
किसान की बेटी १।)
कमलिनी उपन्यास ।)
अनूठी बेगम ✓)
तिब्बत वृत्तान्त ✓)
खोई हुई दुलहिन ✓)
लड्डाटापू ✓)
भयानकभूल ✓)
चन्द्रभागा उपन्यास १)
महेन्द्रमाधुरी ॥)
रज़ीया बेगम १।)
स्वर्णलता ॥)
विद्याधरी ✓)
सरला उपन्यास ✓)
राबिन्सनक्रूसो ॥)

तारा उपन्यास तीनो भाग १॥)
दुर्गेशनन्दिनीदोनोभाग ॥)
दीपनिर्व्वाण ॥)
दीनानाथ ।
दलितकुसुम ।✓)
नरेन्द्रमोहिनीदोनोभाग १)
नरपिशाच चारो भाग २)
प्रणयिनीपरिणय ✓)
पुलिसवृत्तान्तमाला ॥)
मुखशर्वरी ।)
पञ्जाबराज्यकाइतिहास ✓)
चन्द्रभागा उपन्यास १)
रम्भा उपन्यास १
वीरजयमल ॥)
वीरपत्नी ।✓)
वनकन्या ।✓)
बड़ा भाई ॥✓)
प्रेममयी ✓)
पिल्ग्रिमपुरुष (अंग्रेजी में) १)
नवीन पथिक १)
पति की स्त्री ।)
मिराना मकाबपोश ।✓)

सौन्दर्यमयी
संसारदर्पण
स्वर्णलता उपन्यास
हवाईनाथ
अवधकी बेगम
कुसुमदेवी
श्याम का मुर्दा
हीराबाई
ठगवृत्तान्तमाला भाग
चांदी का महल
चम्पा
चन्द्रकला
गिरिजा
गंगागोविन्दसिंह
कुंवरसिंह सेनापति
किसान की बेटी १
कपटी मित्र

रामकृष्णवर्म्मा
भारतजीवन कार्यालय
बनारस सिटी।

भाषा-कथासरित्सागर।

का

आठवां भाग।

भारतजीवनपत्र के अध्यक्ष
बाबू रामकृष्णवर्म्मा द्वारा प्रमथित।

सवैया।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि वालविनैवल पाई।
शम्भुसुधार्णव ते निकसी या कथा की सुधा वसुधा महँ छाई॥
प्रेमसमेत पियै जो कोई बलवीर भनै वलि ईस दुहाई।
पावहि सो जगदीस कृपा तें अनन्द अमन्द बड़ी विबुधाई॥

॥ काशी ॥
भारतजीवन प्रेस से मुद्रित।

१८०५ ई०

प्रथम बार १०००] [मूल्य ॥)

आठवां तरङ्ग।

दूसरे दिन रात्रिके समय राजकुमार नरवाहनदत्त अपने भवन में विराजमान
, उसी अवसर पर सब मन्त्री भी आ गये, इधर उधर की बातें हो रही थीं पर
नका मन तो शक्तियशा के हेतु अत्यन्त उत्कण्ठित था किसी प्रकार चित्तविनोद
ोताही नहीं सो अति व्याकुल हो उन्होंने अपने प्रधान मन्त्री और मित्र गोमुख
कहा कि अजी कोई ऐसी बात छेड़ते कि चित्त को कुछ शान्ति होती। उनकी
ाज्ञा पाय परम प्रवीण गोमुख मन्त्री ने क्रमानुसार कथाओं का प्रारम्भ किया।

भी त्याग कर लौट आई, जब उसे ब्राह्मण की अविमृष्यकारिता का हाल वि-
दित हुआ तब वह उसे धिक्कारने लगी।

इतनी कथा सुनाय गोमुख फिर बोला कि देव! इसीसे कहा है—

कुण्डलिया।

विना विचारे जो करै सो पाछे पछिताय।
काम बिगारै आपनो जगमें होत हँसाय॥
जगमें होत हँसाय चित्तमें चैन न पावै।
खानपान सनमान राग रँग मनहिं न भावै॥
कह गिरिधर कविराय दुःख कछु टरत न टारे।
खटकत है मनमांहिं कियो जो विना विचारे॥

हे देव! कोई काम हो सहसा न कर बैठे बुद्धिमानी इसी में है। जो कोई सहसा कर बैठता है दोनों लोक से जाता है और फिर अविधिपूर्वक जो कार्य किया जाता है उसका फल भी विपरीतही होता है। सुनिये आपको इसी विषय में एक कथा सुनाता हूं।

किसी पुरुष को वायु रोग हो गया था, वह किसी वैद्य के यहां उसकी चि-कित्सा के हेतु गया, वैद्य ने उसे वस्तीकर्म की कुछ औषधि दी और उससे कहा कि घर चलकर इसे पिसवा रक्खो मैं अभी आता हूं तो इसके प्रयोग की विधि बतला देऊंगा। इतना कह वैद्य कहीं चला गया, उसके आने में कुछ विलम्ब हुआ तो वह मूर्ख औषधि पीसपास पानी में घोर पी गया। फल और का और हो गया कहां लाभ कहां कुछ उलटे प्राणों का सङ्कट आ पड़ा. "आह मैया" "हाय बप्पा" होने लगा, इसी अवसर में वैद्य आ गया, देखे तो यह दशा सङ्कटित है, सो उसने झटपट वमन कराया और बड़े २ कष्ट से मरते २ उसे बचा लिया। वैद्य ने कहा "अरे मूर्ख! वस्ती का औषध तो गुदा में डाला जाता है; कहीं पीया भी जाता है; भला मेरे आने की प्रतीक्षा तो कर लेनी थी" इस

है।

इस प्रकार कथा सुनाय गोमुख बोला "महाराज! इस रीति से जो कार्य्य विधिपूर्वक किया जाता है उसका फल अनिष्टही होता है इससे बुद्धिमान् को चित है कि विधि का त्याग कर कुछ भी कार्य न करे क्योंकि बिना विचारे जो कोई कुछ कार्य्य करता है वह नि[illegible] भाजनही होता है। सुनिये इस विषय में आपको एक कथा और सुनाता हूं।

किसी ग्राम में एक बड़ा मूर्खधराट रहता था। वह एक दिन परदेश को चला, उसका पुत्र भी उसके साथ लगा, आगे २ एक वन पड़ा, वहीं पर सब पथिक टिक गये, सभों ने डेरा किया, पिता पुत्र उन दोनों का भी डेरा पड़ा। सब लोगों के टिक जाने पर उसका पुत्र वन में विहार करता कुछ दूर निकल गया, वहां बन्दरों ने उसे बहुत दिक किया नोचनाच के उसे व्याकुल कर डाला किसी प्रकार वह जीता हुआ अपने पिता के पास भाग आया; उसके पिता ने पूछा कि यह क्या हुआ? वह तो कपि (१) के नाम से अपरिचित था सो कहने लगा कि वन में कुछ लोमश (२) फलभक्षी जन्तुओं ने मुझे बहुत दिक किया है। यह सुनतेही उसका पिता आग बबूला हो गया और तलवार खींचकर उस वन की ओर दौड़ा वहीं आकर क्या देखता है कि अनेक जटिल तपस्वी फल खा रहे हैं सो वह उन्हीं पर टूटा कि बस येही वे फलभक्षी लोमश जन्तु हैं जि[न्हों]ने मेरे बेटे को नोचा ख-सोटा है। वहीं एक बटोही (विश्राम करता [था] उसने उसे रोका और कहा कि यह क्या अनर्थ कर रहा है [मैं] तो देखताही रहा [तेरे] पुत्र को कपिओं ने दिक किया है तू तपस्वियों का बध क्यों किया चाहता है? सो वह इस तापसबधरूपी महापाप से दैवात् बचकर अपने गांव में चला गया।

गोमुख बोला महाराज! इसीसे कहा है कि बिना भली भांति समझे बूझे

(१) यहां पहिले तो मर्कट शब्द आया है पश्चात् कपि[illegible] इससे यह भी अर्थ निकलता है कि भालुओं ने उसे दिक किया था, पाछे जटाधारी तपस्वियों के दृष्टान्त से भी भालुओं का अर्थ द्योतित होता है, पर मूल में मर्कट (बानर) शब्द के आने से हमने कपी का प्रतिपादन किया है। "भालू" शब्द का ग्रहण कर यदि अर्थ किया जाय तो वैयर्थ्य न होगा।

(२) लोम = रोआंवाले = जटिल = जटाधारी।

उधर घट भी कर्पर के कलेवर की खोज में लगा था, किसी प्रकार उसे पता लग गया कि राजा ने ऐसा २ कठिन प्रबन्ध कर रक्खा है, सो वह राजपुत्री से कहने लगा "प्रिये ! मेरा साथी कर्पर मेरा परम प्रिय मित्र था; यह उसी का प्रसाद है कि रत्नों की राशि को और तुम्हारी प्राप्ति हुई है सो जबलों उसके स्नेह का ऋण मैं न चुका लूं मेरे चित्त की शान्ति नहीं हो सकती। सो अब मैं जाता हूं जहां उसकी लोथ मिलेगी उसे लेकर भरपेट धहक मिटाऊँगा और उसके शव का अग्निसंस्कार कर हड्डियां किसी तीर्थस्थान में डालि आऊंगा । देखना तुम किसी प्रकार का भय न करना मैं कर्पर के समान निर्बुद्धि नहीं हूं।"

इस प्रकार राजकुमारी को समझा बुझाकर उसने वहीं पर संन्यासी अवधूत का वेष बनाया और एक खपड़े में (१) दही और चावल (२) लेकर प्रस्थान किया। चलते २ वहीं पहुँचा जहां कर्पर की लोथ टंगी थी और वहां पहुँचतेही फिसल कर गिर पड़ा, उसके हाथ से वह खपड़ा फूट गया और वह "हा कर्पर ! अमृतपूर्ण !" (३) इस प्रकार कह २ विलाप करने लगा । जो रखवाले वहां थे उन्होंने यह समझा कि बिचारे की खपड़ी फूट गयी है इसी से रो रहा है। थोड़ीही देर में घट ने घर आकर राजपुत्री से सारा वृत्तान्त कह सुनाया ।

दूसरे दिन उसने दूसरा ढंग रचा, अपने एक सेवक को तो दुलहिन बनाया और एक के सिर पर मिठाई का झाबा रक्खा उस मिठाई में धतूरा मिला रक्खा

(१) "हांड़ी' ऐसा अर्थ भी झलकता है। (२) मूल में "दध्योदनम्" ऐसा पाठ है जिसका अर्थ "दधि चावल'; पर यहां "दूध और भात' अर्थात् "खीर" का अर्थ साधु प्रतीत होता है, क्योंकि प्रेत को खीर के पिण्ड दिये जाते हैं, यह लोकरीति है। सो कर्पर के प्रेत को पिण्ड देनेके उद्देश्य से घट "दूधभात" अर्थात् खीर ले गया था। हमने खीर ही का अर्थ ठीक है । ऊपर जो अर्थ किया गया है वह मूल का यथार्थ है।

(३) कर्पर = हांड़ी = खपड़ा। यहां यथार्थ में घट अपने मित्र कर्पर का सम्बोधन कर विलाप करता है, यथा "हा कर्पर मित्र ! अमृत स्वरूपिणी राजपुत्री के दिखानेवाले और रत्नादि दिखाकर दरिद्र नाश करानेवाले।" पर रखवालों ने खपड़े के लिये विलख २ रोता है ऐसा समझा।

छक हो उसी राजपुत्री को आलिङ्गन कर सो रहा, ऐसी सुख-नींद आई कि उसे यह भी न विदित हुआ कि रात बीती। प्रातःकाल नित्य देखकर रखवाले पैठे तो क्या देखते हैं कि यहां यह व्यापार है सो वे सब उसे पकड़ के बांधकर राजा के पास ले गये, राजा ने क्रोधान्ध हो उसके वध की आज्ञा दे दी। इस से राजभट लोग उसे वध्यस्थल को लिये आ रहे थे कि उधर से उसका सखा घट उसके न आने पर उसे ढूंढने चला, मार्ग में दोनों की चार दृष्टि हुई तो कर्पर ने उसे सङ्केत से समझा दिया कि राजपुत्री को घर ले जाकर रखना, घट ने भी संकेतही में स्वीकारवाचक उत्तर दिया। इसके उपरान्त वधिकों ने कर्पर को ले जाकर पेड़ पर लटका के मार डाला।

घट अपने मित्र कर्पर के मारे जाने से बड़ा शोकित हुआ और बिलपता कलपता घर चला गया। किसी २ प्रकार दिन बीता, रात हुई बस घट सुरंग खोद राजकुमारी के घर में पैठा, राजपुत्री भी वहां हथकड़ियों में जकड़ी पड़ी थी, सो उन्हें देख घट बोला "राजपुत्री तुम्हारे कारण जो कर्पर प्राण हत किया गया है उसका मित्र मैं घट हूं, सो उसी के स्नेह से मैं तुम्हें लेने आया हूं, सो अकेली तुम्हारे पिता तुम्हारा कुछ अनिष्ट नहीं करते तुम मेरे साथ चलो बस। राजपुत्री यह सुन अति प्रसन्न हुई और उसके साथ जाने पर प्रस्तुत हुई, तब घट ने उसकी बेड़ियां काट दी। तब वह घट चारु आमतमअंगधारिणी राजपुत्री को साथ ले उसी सुरंग के मार्ग से निकलकर अपने घर चला गया।

प्रातःकाल होने पर राजा को विदित हुआ कि राजकुमारी के घर में सुरंग खुदी है और वह भी नहीं है न जाने कौन उसे उड़ा ले गया; इस वृत्तान्त से राजा को बड़ा शोक हुआ, वह अपने मनमें चिन्ता करने लगे कि निश्चय उस दुष्ट का कोई संगी है, बस यह उसी का साहस है कि मेरी पुत्री को हर ले गया ऐसी चिन्ता कर राजा ने कर्पर के कलेवर पर पहरुए बैठाकर उनसे कहा कि जो कोई बिलपता और रोता आवे और इसका शरीर दाहादि संस्कार के लिये मांगे उसे तुम लोग पकड़ रखना। इसी प्रकार मैं कुलाङ्गारिणी को पा जाऊंगा। इस प्रकार महीपति की आज्ञा पाय रखवाले बैठकर रात दिन उस कर्पर के कलेवर की रखवाली करने लगे।

ोचर हैं इससे वे वहां रहने और ठहरने में बाधा न डालेंगे। सो उस प्रव्राजक
साथ घट वहां गया, वहां पहुंच दोनों बैठ गये, संन्यासी अपना मन्त्र जपने
गा और उसी जप के प्रभाव से रखवाले सब मोहित हो गये और उधर घट
पर की हड्डियां बटोरकर चलता हुआ और से जाकर हड्डियां गङ्गा में फेंक
ाया। इस प्रकार अपने मित्र की सद्गति कर घट ने आकर राजपुत्री से सारा
त्तान्त कह सुनाया। अब घट उस प्रव्राजक के संग मित्रता कर राजकुमारी के
ाथ अनेक भोग विलास करता सुख से रहने लगा।

जब राजा को यह वृत्तान्त भी विदित हुआ कि इस प्रकार से कर्पर की हड्डियां
ी कोई उठा ले गया तब उन्होंने यह निश्चय किया कि हो न हो यह किसी योगी
ा काम है, क्योंकि बिना योग के कैसे कोई मेरी पुत्री का हरण कर लेवे और
स चोर का अग्निसंस्कार इत्यादि जितने कार्य्य आज लों हुए हैं सब योगही के
ारा साध्य हैं। ऐसा विचार उन्होंने नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जिस
ोगी ने अपने योगबलसे मेरी कन्या के हरणादि व्यापार सिद्ध किये हैं वह यदि
पने को प्रगट कर देवें तो आधा राज्य अपना बांट देऊंगा। यह घोषणा सुन
ट ने चाहा कि प्रगट होकर आधा राज्य राजा से बंटवा लूं किन्तु राजपुत्री ने
सकी ऐसी चेष्टा जान उसे ऐसा करने से रोका और कहा "यह तुम क्या करने
ले हो; इस छली कपटी राजा का विश्वास कदापि न करना, इसी प्रकार छल
र यह राजा घात करा देता है सो तुम इसका विश्वास न करो नहीं तो व्यर्थही
मूल्य प्राण गँवा बैठोगे।"

अब घट को यह भय हुआ कि कहीं ऐसा न हो कि भेद खुल जाय तो बड़ा
नर्थ हो सो वह राजपुत्री को संग ले उस प्रव्राजक के साथ उस देश से निकल
भागा। मार्ग में जाते २ निराले में राजपुत्री ने उस प्रव्राजक से कहा कि "एक
दुष्ट ने तो मेरा सतीत्व भंग किया और इस पापी ने मुझे मट्टी में मिला छोड़ा कि
मैं इधर की रही न उधर की। वह दुष्ट चोर तो मर गया, अब यह घट जो है
इसे मैं प्यार नहीं करती, तुमसे वरन मेरा मन पटता है तुम मुझे बड़े प्रिय ल-
गते हो।" इस प्रकार उससे कह सुनकर राजकुमारी ने उस प्रव्राजक को भी जु-
ठारा और विष देकर घट को मार डाला।

था, और अपना रूप एक गँवैया पियक्कड़ सा बना लिया। आगे २ घट आप नसा चला, पीछे उसको यह कृत्रिम दुलहिन जिसके पीछे कुप्पा लिये हुए था चाकर। चलते २ सायङ्काल में तीनों वहीं आ पहुँचे जहां बैठे हुए रखवाले कर्पर की लोथ का पहरा दे रहे थे। पहरुओंने पूछा "भाई! तुम कौन हो? यह स्त्री तुम्हारी कौन है? कहां जाते हो?" इस प्रकार उनके पूछने पर लड़खड़ाती बोली से वह धूर्त्त बोला "भाई मैं तो एक गँवार व्यक्ति हूं, यह मेरी स्त्री है; मैं ससुराल जा रहा हूं वहीं के लिये कुप्पे में यह आसुर लिये जा रहा हूं; अब भाई तुम लोगों से बातचीत हो गई इससे तुम लोग भी मित्र हो गये सो इसमें से आधा तुम लोग भी लो बचा आधाही ले जाऊँगा।" इतना कह एक एक लड्डू एक एक रखवाले को दे दिया, उन सभों ने भी बड़े हर्ष से लेकर तुरत खा डाला; खातेही धतूरे का रस सभों के शरीर में व्याप गया और सबके सब अचेत हो गये, तब रात्रि के समय इन्धन बटोरके घट ने कर्पर की लोथ जलाकर भस्म कर डाली। इस प्रकार कर्पर का अग्निसंस्कार कर घट अपने अनुचरोंके साथ वहां से उठकर चला गया।

अब प्रातःकाल राजा को विदित हुआ कि उस चोर की लोथ तो जला दी गयी और रखवालों को अचेत कर यह कार्य्य किया गया है सो उन्होंने वहां से उन असावधान रखवालों को हटाकर दूसरों को उस कार्य्य पर नियुक्त किया और उन्हें सहेज दिया कि देखना अब हड्डी बटोरने कोई न कोई अवश्य आवेगा उसे पकड़ना। देखना रात दिन सजग रहना सावधानी से तनिक भी न चूकना और जो कोई कुछ खाने को देवे तो कदापि न खाना और न किसी से कुछ लेना। इस प्रकार राजा की आज्ञा पाय वे रखवाले वहां गये और बड़ी सावधानी से रात दिन कर्पर की हड्डियों की रखवाली करने लगे। यह बात घट को विदित हो गई।

अब घट इस उपाय में लगा कि किसी प्रकार से कर्पर की हड्डियां तीर्थस्थान में फेंकनी चाहिये। उसे भगवती चण्डिका का दिया मोहनमन्त्र आता था, सो उसने इस कार्य्य में किसी प्रव्राजक को अपना साथी बनाया; उद्देश्य यह था कि प्रव्राजक के देखने से उन रखवालों को विश्वास हो जायगा कि यह तो कोई

के वह निकट में रहता है।" इतनी चिन्ता कर टूटीफूटी शिला में कुछ बहाना
से वह विरक्त रुद्रसीम ब्राह्मण धनदेव के पास चला गया, और अपने सब
जो मित्र धनदेव से आद्यन्त सारा हत्तान्त कह गया और पश्चात् यह भी
हा कि भाई ऐसे घर में आग लगी, अब तो मैं भी तुम्हारे साथ वन में चलूंगा।
न प्रकार अपना हत्तान्त कह रुद्रसीम उसके साथ हो लिया सो वे दोनों वहां से
न को और चले।

दोनों चले जा रहे थे कि मार्ग में धनदेव का मित्र शशी नामक मिला, बहुत
दिनों पर भेंट हुई इससे इधर उधर की बातें चलीं, होते होते यह बात भी
निकल आई सो ब्राह्मण और वनिक् ने अपने २ गृह का चरित्र कह सुनाया।
इतनेही शशी के कान भी खड़े हो गये, क्योंकि वह भी बहुत दिनों पर परदेश
से लौटा था। परदेश जाते समय वह अपनी भार्या को भूगृह (१) में बन्द कर
गया था, वह कुछ दूरदर्शी भी था; पर अब इन दोनों का हत्तान्त सुन उसे भी
खटकने लगी कि कहीं वहां भी धूआ न उठता होवे। अस्तु, वह उन दोनों के
साथ साथ चला और सायंकाल में अपने घर के समीप पहुंचा; शशी चाहता था
कि उन दोनों को अपने घर ले जाकर उनकी पहुनई करे। घर के निकट पहुँच-
कर शशी क्या देखता है कि एक कोढ़ी बैठा है, कोढ़ से हाथ पांव गल गये हैं
परन्तु शृङ्गार का क्या पूछना, सजधज के सामने सब सुन्दर युवक भी पराभूत हैं,
ऊपर से वह आनन्द में मग्न हो आलाप भी कर रहा है। उसकी यह दशा देख
शशी को बड़ा आश्चर्य हुआ सो उसने उस कुष्ठी से पूछा कि भाई आप कौन हैं?
कोढ़ी ने उत्तर दिया "मैं कामदेव हूं।" "इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तुम
कामदेव हो, इसका प्रमाण तुम्हारे रूप की शोभा ही दिये देती है," शशी की
एतादृश उक्ति सुन वह कोढ़ी पुनः बोला, "भाई इतनेही से तुम चमक पड़े, सुनो
तुमको कुछ और भी सुनाता हूं। यहां शशी नामक एक पक्का धूर्त रहता है; वह
कहीं परदेश को जाने पर उतारू हुआ, सो वह धूर्त तो था ही अपने मनमें वि-
चारने लगा कि मैं तो परदेश चला कहीं यह मेरी भार्या दूसरा ढंग न रोप दे
इस भय से वह अपनी पत्नी को भूगेह में रखकर चला गया, उसकी रखवाली

(१) पृथ्वी के भीतर गुप्त स्थान, जहां गोप्य द्रव्यादि रखे जाते हैं, तहखाना।

ऐसा दुःसाहस कर राजकुमारी और प्रव्राजक भागे चले; जाते २ मार्ग में धनदेव नामक एक बनिया मिला। उसमें भी राजपुत्री का मन लग गया सो उस बनिये से कहने लगी कि यह कपाली मेरा कौन है, भला इससे मेरा क्या नाता, तुम मेरे परम प्रिय हो, तुमसे मेरा मन लग गया है; बस तुम मेरे और मैं तुम्हारी। इस प्रकार उस वणिक् से कहकर राजकुमारी उस प्रव्राजक को सोया छोड़ उस बनिये के साथ चली गयी। प्रातःकाल जब प्रव्राजक जगा तो राजकुमारी को न देखकर मनमें चिन्ता करने लगा, उसने कहा, "स्त्रियों में स्नेह तो नाममात्र नहीं न उनमें दाक्षिण्य का लेश होता है; बस उनमें जो कुछ है सो चञ्चलता; चञ्चलता के अतिरिक्त उनमें और कुछ होताही नहीं। देखो तो सही इस पापिनी ने मुझे कैसा विश्वास दिलाया, भलेही मुझे धोखा दिया और सर्वस धन भी साथ लेती गई। बड़ीभाग्य कि उसने घट के समान मेरे भी प्राण न ले लिये, मैं इतनेही से अपने को परम धन्य समझता हूं।" इस प्रकार चिन्ता करके वह परिव्राजक उठा और अपने देश को लौट गया।

इधर राजपुत्री उस वणिक् के साथ चलती २ उसके देश में पहुँची, वहां धनदेव अपने मनमें विचारने लगा कि इस कुलटा को कैसे घर में ले जाऊँ। इस प्रकार सोच विचार वह सायंकाल होने पर अपने नगर में पैठा और निज गृह न जाकर राजपुत्री सहित एक बुढ़िया के घर में गया। उसने बुढ़िया से पूछा कि बूढ़ा माई! धनदेव बनिये के घर की भी कुछ बात जानती हो? बुढ़ा उसे पहिचानती न थी, सो बोली, "बेटा उसके घर की क्या बात बताऊँ, उसकी स्त्री तो बड़ीही दुष्टा है, प्रतिदिन नये नये पुरुषों से रमण करती है। पुरुष के बुलाने का एक अद्भुत ढंग उसने रच रक्खा है, रात के समय रस्सी से बांधकर एक पेटारा खिड़की से लटका दिया जाता है, आधी रात में उस पेटारे में जो बैठ जाता है वही ऊपर खींच लिया जाता है, बस उसीके साथ रातभर आनन्द उड़ता है; जब रात बीतने को होती है तब उसी प्रकार वह पुरुष पेटारे में बैठाकर नीचे उतार दिया जाता है। उसकी पत्नी सदा मदमाती बनी रहती है, किसी प्रकार की चिन्ता नहीं, बस उत्तम २-भोजन करना, मद पीना और इसी प्रकार नवयुवकों करना, इनके अतिरिक्त उसको मानों और कुछ करना हो नहीं है।

ह वह निकट में रहता है।" इतनी चिन्ता कर टूटीफूटी जिह्वा से कुछ बहाना
के वह विरक्त रुद्रसोम ब्राह्मण धनदेव के पास चला गया, और अपने सम
ो मित्र धनदेव से आद्यन्त सारा वृत्तान्त कह गया और पश्चात् यह भी
ा कि भाई ऐसे घर में आग लगे, अब तो मैं भी तुम्हारे साथ वन में चलूंगा।
प्रकार अपना वृत्तान्त कह रुद्रसोम उसके साथ हो लिया सो वे दोनों वहां से
की ओर चले।

दोनों चले जा रहे थे कि मार्ग में धनदेव का मित्र शशी नामक मिला, बहुत
नों पर भेंट हुई इससे इधर उधर की बातें चलीं, होते होते यह बात भी
कल आई सो ब्राह्मण और वणिक् ने अपने २ गृह का चरित्र कह सुनाया।
ातेही शशी के कान भी खड़े हो गये, क्योंकि वह भी बहुत दिनों पर परदेश
लौटा था। परदेश जाते समय वह अपनी भार्या को भूगृह (१) में बन्द कर
ा था, वह कुछ दूरदर्शी भी था; पर अब इन दोनों का वृत्तान्त सुन उसे भी
टकन लगी कि कहीं वहां भी पूआ न पकता होवे। अस्तु, वह उन दोनों के
ाथ साथ चला और सायंकाल में अपने घर के समीप पहुँचा; शशी चाहता था
ि उन दोनों को अपने घर ले जाकर उनकी पहुनई करे। घर के निकट पहुँच-
र शशी क्या देखता है कि एक कोढ़ी बैठा है, कोढ़ से हाथ पांव गल गये हैं
रन्तु शृङ्गार का क्या पूछना, सजधज के साम्हने सब सुन्दर युवक भी पराभूत हैं,
ऊपर से वह आनन्द में मग्न हो आलाप भी कर रहा है। उसकी यह दशा देख
शशी को बड़ा आश्चर्य हुआ सो उसने उस कुष्ठी से पूछा कि भाई आप कौन हैं?
कोढ़ी ने उत्तर दिया "मैं कामदेव हूं।" "इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है, तुम
कामदेव हो, इसका प्रमाण तुम्हारे रूप की शोभा ही दिये देती है," शशी की
ऐसादृश उक्ति सुन वह कोढ़ी पुन: बोला, "भाई इतनेही से तुम चमक पड़े, सुनो
तुमको कुछ और भी सुनाता हूं। यहां शशी नामक एक बड़ा धूर्त्त रहता है; वह
कहीं परदेश को जाने पर उताद हुआ, सो वह धूर्त तो याही अपने मनमें वि-
चारने लगा कि मैं तो परदेश चला कहीं यह मेरी भार्या दूसरा टंग न रोप दे
इस भय से वह अपनी पत्नी को भूगेह में रखकर चला गया, उसकी रखवाली

(१) घरों के भीतर गुप्त स्थान, जहां गोप्य द्रव्यादि रखे जाते हैं, तहखाना।

गांव में पहुँचने पर ब्राह्मण ने अपने घर के समीपही नदी किनारे एक को बैठा देखा कि वह मद में मस्त हो आनन्द से तान छोड़ रहा है, सो रु सोम ने उससे हँसी से पूछा कि कहो भाई गोप। क्या किसी अनुरागवती तरु से तुम्हारा हेलमेल है कि इस प्रकार से जगत् को तृणवत् मानकर मदमाते आ नन्द से गाय रहे हो? ब्राह्मण का ऐसा प्रश्न सुन वह गोप हँसा और बोला "भाई! छिपाना क्या है, तुम इस गांव के स्वामी रुद्रसोम को जानते हो, इ इससे क्या जानो चाहे मत जानो, बात तो यह है कि वह बहुत दिनों से परदे गये हैं; उनकी पत्नी तरुणी है बस उसी से सदा मैं रमण करता हूं, उसकी दे आती है और मुझे स्त्री के भेष में नित्य ले जाती है; बस रातभर आनन्द लू हूं।" उस गोपाल से यह वृत्तान्त सुन ब्राह्मण को बड़ाही क्रोध हुआ पर अ अपना क्रोध ठांवहीं दबाया क्योंकि उसे तो तत्व का निर्णय करना था, क्रोध तो काम बिगड़ जाता । सो रुद्रसोम ने उस गोप से कहा, कि भाई मैं तो तुम्हारा अतिथि हूं, सो ऐसा करते कि अपना सा भेष मेरा भी बना देते तो भी आज जाकर आनन्द लूटता क्योंकि मेरे मनमें भी इस व्यापार के देखने बड़ा कौतुक हो रहा है। गोप बोला "क्या चिन्ता आज तुम्ही जाओ, लो यह काला कम्बल ओढ़ लो, और यह मेरा लट्ठ ले लो यहीं बैठो, उसकी दासी आ ही यहां आवेगी और मेरेही भेष से तुम्हें चुपके से बुलावेगी और स्त्री को दे देगी बस उसे पहिनकर तुम चले जाना, भाई आज तो मैं विश्राम करूँ। ग्वाल इतनी बात सुन रुद्रसोम ने उससे कम्बल और लट्ठ ले लिये, अब वह उसी गो वेष में बैठा हुआ दासी की प्रतीक्षा करने लगा और वह ग्वाल उस धनदेव के साथ कुछ दूर जा बैठा। यथा समय लौंड़ी आय पहुँची, अन्धकार में चुप वह बैठाही था, सो धीरे से "आओ" इतना कह वह लौंड़ी स्त्रीवेशधारी उस सोम को ले चली। जब वह ब्राह्मण वहां पहुँचा तो उसकी भार्य्या ने उठकर गोपाल समझ आलिङ्गन कर लिया तब तो वह विप्र अपने मनमें चिन्ता क लगा—"हा कष्टम्। दुष्टा स्त्रियों का कैसा स्वभाव होता है कि ऊँच नीच कुछ भी विचार नहीं करतीं, जोही पास में मिला उसी से, चाहे वह नीचही अनुरक्त हो गयीं देखो न यह पापिनी एक गोप से फँस गयी, इसका कारण य

इससे उसके मन में बड़ी ग्लानि हुई कि हाय ! स्त्रियों का स्वभाव ऐसा चंचल होता है हाय वे ऐसी नीचगा होती हैं; अरे मैंने इसे भूगृह में रखकर ही क्या किया कि अन्त में यह दूसरे से फसही तो गयी। नारियों का व्यापार ठीक नदियों का सा है कि सर्वदा नीचाही ताकती हैं, भला देखो न इसने उस कोढ़ी को चुना, हाय। हाय !। धिक्कार है ऐसी चंचलाओं को, स्त्रियां दूरही से मनोरम प्रतीत होती हैं पर यथार्थ में वे वैसी नहीं होतीं । अब इस कुलटा के साथ क्या रहना इससे तो वनवासही अच्छा है । इस घटना से उसके मन में वैराग्य हो गया सो जब उसकी स्त्री सो गयी तब यह गंव से उठा और चुपचाप धनदेव और रुद्रसोम के पास चला गया। वहां पहुंचकर उसने उन दोनों से अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया और फिर कहा कि भाई ऐसे घर से तो वनही अच्छा है, हा! धिक्। घर में ऐसे २ कूट भरे रहते हैं सो अब मैं भी तुम दोनों के साथ चलकर वन में ही वास करूँगा। इस प्रकार अपनी दशा सुनाय शशी अपने सम दुःखी उन दोनों मित्रों के साथ वहीं सो रहा ।

दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर वे तीनों एक साथ वन को चले, दिनभर चले गये सांझ को एक जलाशय मिला उसके किनारे एक वृक्ष भी था सो सभोंने विचारा कि अब यहीं टिक जाना चाहिये सो कुछ (फलफूल) खा पी कर वे तीनों उसी पेड़ पर चढ़ बैठ रहे । इतने में क्या देखते हैं कि एक बटोही भी आकर उसी पेड़ के नीचे सो रहा। थोड़ी देर में उन्होंने देखा कि उस सरोवर से एक दूसरा पुरुष निकला उसने अपने मुंह से एक स्त्री निकाली और एक पलङ्ग भी । उस नारी के साथ सानन्द रमण कर वह पुरुष उसी पलङ्ग पर सो गया और उस स्त्री ने पलङ्ग से उठ उस बटोही से रमण किया। रमण के अनन्तर उस पान्थ ने नारी से पूछा कि तुम दोनों कौन हो ? उस प्रमदा ने उत्तर दिया कि यह नाग है और मैं नागकन्या इसकी भार्य्या हूं, तुम कुछ भय मत करो, मैं निन्नानवे बटोहियों से इसी प्रकार रमण कर चुकी हूं तुमसे आज सौ का हिसाब पूरा हो गया। वह इस प्रकार बात करही रही थी कि दैवात् उस नाग की नींद टूट गयी, सो उसने अपने मुख से ज्वाला निकाल उन दोनों को क्षणभर में भस्म कर डाला।

यह घटना पेड़ के ऊपर से वे तीनों देख रहे थे सो अब नाग चला गया तब

तथा कामधन्धे के निमित्त एक परिचारिका को भी रख गया था, पर भाई
है न—'विधि का लिखा को मेटनहारा," भाग्य में जो लिखा रहता है उसे
मिटा नहीं सकता; सो एक दिन मेरी उसकी चार दृष्टि हो गयी बस
कामवाण से विद्ध हो वह मुझपर आसक्त हो गयी, अपना आत्मा उसने
मुझे अर्पण कर दिया। अब उसकी दासी प्रतिदिन आकर मुझे अपनी पीठ
लादकर ले जाती है और रातभर मैं उसके साथ रमण करके आनन्द लूटता
सो भाई मैं कामदेव क्यों नहीं हुआ, कहो तो सही; भला यह किसका भाग्य
कि दूसरे की स्त्री की प्राप्ति होवे, फिर जो व्यक्ति कि ऐसी चित्रिणी
भार्य्या का प्रेमपात्र हो उसके भाग्य की क्या बात है।"

उस कामदेवरूपी कुष्ठी की बातें सुनतेही गणी अवाक् हो गया उसके
पर भारी आघात पहुँचा; पर इसका निश्चय तो अवश्य कर्त्तव्य है, तन्निमित्त
पना भीषण दुःख भीतरही दबा वह उस कोढ़ी से फिर कहने लगा, "
तुम सचमुच कामदेव हो, अब तुमसे उसके सौन्दर्य का वर्णन सुन मेरे मन
कौतूहल उत्पन्न हुआ है कि टुक उस रतिस्वरूपा रमणी को मैं भी देखूं
यदि कृपा करते तो आज तुम्हारे वेश में मैं उसके पास जाता और तुम तो
दिन उसे पातेही हो तो इसमें तुम्हारी कुछ भी क्षति नहीं है।" गणी की
प्रार्थना सुन वह कोढ़ी बोला—"बहुत अच्छा इसमें क्या, लेओ ये मेरे क
तुम पहिन लो और अपने मुझे दे दो; मेरे समान हाथ पांव में कपड़े
यहीं बैठे रहो, ज्योंही कि अन्धकार की जम्हाई हुई कि उसकी दासी आ
वेगी और मुझेही समझ तुमको अपनी पीठ पर उठा ले जावेगी। देखना भुजा
भी हाथ पांव से काम न लेना मैं पङ्गुल हूं सो तुम भी सचे पङ्गुल के समान
जाना।" उस कुष्ठी की इतनी बात सुन गणी उसी के भेष में बन ठन के बैठ रहा
और उसके दोनों साथी तथा वह कोढ़ी वहां से टलकर कुछ दूर जा बैठे।

यथा समय दासी आ पहुँची और उसेही कुष्ठी समझ "आओ" इतना क
उसे पीठ पर लाद ले चली; अब दासी की पीठ पर लदा हुआ गणी उसी भुवन
में पहुँचा जहां उसकी पत्नी उस कुष्ठी जार की प्रतीक्षा में बैठी सोच रही थी।
... भार्य्या का ... कर गणी को निश्चय हो गया कि यह मेरीही पत्नी है

नवां तरङ्ग।

दूसरे दिन रात्रि के समय फिर जमावड़ा हुआ, यथापूर्व इधर उधर की बातें होने पर राजकुमार नरवाहनदत्त का मन शक्तियशा में लीन होने के कारण किसी प्रकार विनोद नहीं पाता था सो उनके चित्तविनोदार्थ अति प्रवीण कार्य्यकुशल गोमुख मन्त्री इस प्रकार कथा सुनाने लगा।

किसी नगर में बोधिसत्वांशसमुद्भव एक वणिक् था, वह एक धनाढ्य पिता का पुत्र था। माता उसकी मर गयी और पिता ने दूसरा विवाह किया; कहने की आवश्यकता नहीं कि जब पुरुष नयी स्त्री का मुंह देखता है तब पूर्वपत्नी के सन्तानों पर उसका प्रेम कैसा रह जाता है अथवा सौतेली माताओं का भाव सौतेले सन्तानों के प्रति कैसा हो जाता है। अस्तु वही दशा यहां भी संघटित हुई, पिता अपनी नवविवाहिता पत्नी के वश में पड़ नितान्त मोहान्ध हो गया उसीके कथन से उसने अपने उस पुत्र को भार्य्या सहित घर से निकाल दिया। अब वह बेचारा पत्नी के साथ निकलकर वन की ओर चला। उसी प्रकार पिता ने उसके छोटे भाई को भी निकाल बाहर किया; सो छोटा भाई भी बड़े के पीछे २ चला। उसका छोटा भाई अद्यनस्वभाव था अतः उसने उसको साथ रखना उचित न समझा; इसलिये गाँव से उसका संग छोड़ वह दूसरे मार्ग से चला गया।

स्त्री के सहित चलते २ वह एक मरुस्थल में पहुँचा जहां न कोई पेड़ न पालव न कहीं जलाशय, ऊपर से चण्डांशु की प्रचण्ड किरणों से भूमि उत्तप्त हो रही थी। ऐसे निदारुण मरुस्थल में उन दोनों को बराबर सात दिन चलना पड़ा, ऐसी दुरवस्था में वह पुरुष अपनी क्षुधातृषातुर पत्नी को अपना मांस काट काट खिलाता और अपना लहू पिलाता गया कि जिससे वह जीवित रहे और वह पापिनी अपने प्राणेश्वर के मांस लहू से अपना जीवन धारण करती रही। आठवें दिन जाकर उनको एक पहाड़ मिला जहां से एक नदी निकली थी, वहां सघन वृक्ष फलों से लदे थे, और हरी हरी घासें दृष्टि को आनन्द देती थीं। वहां उस पुरुष ने अपनी श्रान्त पत्नी को फलफूल खिलाकर जल पिलाया जिससे उसकी थकावट दूर हुई, इसके पश्चात् वह स्वयं नदी में स्नान करने को उतरा। वहां क्या

रात बिता वे पेड़ पर से उतरे और परस्पर कहने लगे कि जब देह के भीतर रखने पर भी स्त्री की रक्षा नहीं हो सकती तो घर में रहनेवाली उन स्त्रियों की तो बातही नहीं है। हा धिक्! वे ऐसी कुलटा निकलीं। अब शशि प्रभृति उन तीनों जनों के निर्वेद की और भी वृद्धि हुई सो वे लोग अति खिन्न हो वन में चले गये और वहां जाकर तपश्चर्या में लीन हुये, मन को सब ओर से निवृत्त कर, इन्द्रियों को नियमित कर शान्तभाव से दिन व्यतीत करने लगे; सब प्राणियों पर मैत्र दृष्टि रखते। चारों प्रकार की भावनाओं से (१) उनका मन शान्त और शुद्ध रहता और मैत्री के कारण उनकी तपश्चर्या में किसी प्रकार की बाधा न पड़ती। इस प्रकार तपस्या करते २ निरुपम आनन्दभूमि समाधि में उनको सिद्धि प्राप्त हो गयी जिससे उनके समस्त कर्मबन्धन छूट गये और उन तीनों का मोक्ष हो गया।

उन स्त्रियों की दशा क्या कही जाय, प्रगटही है कि ऐसी कुलकलङ्किनें भला कब सुख से रहती हैं; अपने २ पापों के फल अनेक दुःख वे सब भोगने लगीं, उनकी दशा अति शोचनीय हो गयी। थोड़ेही दिनों में वे दुष्टायें कौड़ी के तीन २ हो विनष्ट हो गयीं और उनके दोनों लोक बिगड़ गये।

सोरठा।

यहि विधि तिय अनुराग, करि को दुःख न पावही।
इन से करैं विराग, सोइ मोक्ष पद लहत हैं॥

चौपाई।

सुनि या भांति धेनुमुख बानी। वत्सराजसुत अतिमुदमानी।
शक्तियशामहँ मन लवलीना। कवनिहुं भांति सयन पुनि कीना।

---

(१) चार प्रकार की भावनायें—यथा (१) संसार के सब विषय क्षणिक और अस्थायी हैं। (२) संसार के सब विषय दुःखद और खेदद हैं। (३) परलोक में अपना साथी कोई नहीं है। (४) यावत् विषय निराधार हैं।

देखता है कि एक जन, जिसके चारों हाथ पांव कटे हैं, धारा में बहा जाता है, और अपनी प्राण की रक्षा के लिए छटपटा॰ उडुक बुडुक कर रहा है । इसकी ऐसी दशा देख इस महानुभाव के हृदय में दया आई, यद्यपि वह बहुत दिनों के उपवास से क्षीण भी हो गया था तथापि कुछ परवाह न कर धड़ाम से उस नदी में कूद पड़ा और पौड़कर उस पुरुष को किनारे पर खींच लाया । जब वह उस स्थल पर बैठकर स्वस्थ हुआ तब इस कारुणीक ने उससे पूछा कि भाई तुम्हारी ऐसी दुर्दशा किसने किई है ? तब उस रुण्ड ने उत्तर दिया, "भाई शत्रुओं ने मेरे हाथ पांव काटकर मुझे नदी में डाल दिया कि बड़े क्लेश से मेरे प्राण निकल जावें, सो भाई तुम करुणामय ने मेरा उद्धार किया ।" इस प्रकार उसका वचन सुन इस महासत्व ने उसके घावों पर पट्टियां बांधी और उसे फलफूल खिलाकर जल पिलाया तत्पश्चात् आप भी स्नान कर कुछ खाया पीया । इस प्रकार वह बोधिसत्वांश वणिक्पुत्र फल मूल का आहार कर अपना भार्या के साथ तप करने लगा।

एक समय वह बोधिसत्वांश वन में फल मूल लेने गया था इधर उसकी भार्या कामपीड़ित हो उस रुण्ड के साथ कि जिसके घाव अब भर आये थे, रमण करने लगी । उसका मन उस रुण्ड से ऐसा लग गया कि वह पापिनी उससे मन्त्रणा कर अपने पति के वध करने के विचार से ढोंग कर मांदी हो गयी । इतने में पति आया और अपनी स्त्री को रुग्ण देख बड़ा चिन्तित हुआ और उससे पूछने लगा, "प्रिये ! तुम्हें क्या हो गया, कहो क्या उपाय किया जाय कि तुम्हारा यह रोग छूटे।" उस दुष्टा ने नखड़े की लड़खड़ाती जीभ से उत्तर दिया, "प्राणनाथ ! क्या कहूं रोग तो मुझे भारी लग गया कुछ बुद्धि काम नहीं देती कि क्या किया जाय पर हां स्वप्न में एक देवता ने मुझे एक औषधि बतलाई है, यदि तुमसे हो सके करो, देखो उस नाले में वह जो ऐसी २ एक बूटी दीखती है उसे यदि किसी प्रकार ला सको तो मेरे प्राण बच जांय ।" अपनी पत्नी की इतनी बात सुन वह घासफूस की रस्सी बट, उसे एक पेड़ में बांध उसीके सहारे से उस नाले में उतरा; जब वह नाले में उतर गया तो इधर उस पापिनी ने वह रस्सी खोल फेंक दी जिससे वह ...धारा नदी में गिर पड़ा और तरङ्ग में पड़कर बह गया ।

...र्मो रक्षति धार्मिकम् ।" अर्थात् धार्मिक की रक्षा धर्म भग

जैसे को तैसा मिले, मिले नीच को नीच।
पानी में पानी मिले, मिले कीच में कीच॥

इस प्रकार महाराज स्त्रियोंके चित्तकी गति जानी नहीं जाती, इतना तो अवश्य कि उनकी प्रकृति नीचे की ओरही होती है सो जैसे दैव की गति अचिन्त्य है वैसेही स्त्रियों की भी गति कदापि ज्ञेय नहीं है। इसी प्रकार सम्पत्ति का भी स्वभाव चञ्चल है उसकी गति विदित है, जो लोग कदापि अपना शील त्याग नहीं करते, उत्साह से परे नहीं होते, क्रोध को जीत लेते हैं उनके समीप सब सम्पत्तियां आपसे आप बिना बुलाये चली जाती है मानों उन्हीं से उनका सन्तोष हो जाता है।

इतनी कथा सुनाय मन्त्रिप्रवर गोमुख नरवाहनदत्त को फिर भी इस प्रकार कथा सुनाने लगा।

किसी वन में बोधिसत्वांशसम्भूत एक जन कुटी बनाकर रहता था, उसका हृदय मानों करुणा का आगार था, वह महात्मा वहां तपस्या किया करता। जो कोई जीव जन्तु विपद्ग्रस्त होते उनको और क्या पिशाचों को भी अपने तपःप्रभाव से विपत्ति से उद्धार करता और अन्यान्य लोगों को अन्न जल से परितृप्त करता, उसकी तपश्चर्य्या का ऐसा प्रभाव था। एक दिन जब कि वह जीवों के उपकारार्थ वन में भ्रमण करता था उसको एक बड़ा भारी इनारा दिखाई पड़ा। वह उसमें झांकने लगा, इतने में उस कूएँ में से एक स्त्री उसे देख बड़े ऊँचे स्वर से पुकार उठी "हे महात्मन्। इस कूएँ में चार जीव पड़े हैं एक मैं स्त्री हूं, एक सिंह है, एक स्वर्णशिख पक्षी है और एक सर्प है, हम चारों रात्रि के समय इस महाकूप में गिर पड़े हैं सो अब कृपाकर इस क्लेश से हमारा उद्धार कीजिये" इतना सुनकर उस पुरुष ने प्रश्न किया कि अच्छा यह तो बतलाओ कि तुम तीनों तो अन्धकार के कारण इसमें गिर पड़े किन्तु यह पक्षी क्योंकर गिरा? उस स्त्री ने उत्तर दिया कि इसी प्रकार व्याध के जाल में फसकर यह पक्षी भी गिरा है। तदनन्तर वह बोधिसत्वांशजन्मा पुरुष अपने तप की शक्ति से उन चारों को निकालने चला परन्तु निकाल न सका प्रत्युत उसकी जो कुछ शक्ति रही सोभी जाती रही; तब तो वह बहुत घबड़ाया और अपने मनमें विचारने लगा कि यह स्त्री अवश्य पापिनी है, बस इसीके संग सम्भाषण करने का यह फल है कि मेरी शक्ति

कर इन्हें जिलाती हूं सो भीख मिले। इसी प्रकार गांव २ नगर २ भीख मांगते हुई उसी नगर में पहुँची जहां उसका पति राजासन पर अधिष्ठित होकर रा कर रहा था। वहां भी उसी प्रकार भीख मांगने लगी और लोग उसे व पतिव्रता समझते और बड़े सम्मान से उसको भिक्षा देते। होते २ यह बात रा के कानों में पड़ी; उन्होंने उसे राजसभा में बुलवाया, वह उसी प्रकार उस को पीठपर लादे राजा के समक्ष उपस्थित हुई। राजा तो झट उसे पहिचान गये कि यह वही दुष्टा मेरी पत्नी है तथापि सहसा न कह उन्होंने उससे यह प्रश्न कि "तू वही पतिव्रता है?" राजा तो उसे पहिचान गयेही थे, पर यह अपने प को न पहिचान सकी क्योंकि राजश्री का तेजही और होता है, इस समय वह राजश्री से दैदीप्यमान था सो वह क्योंकर पहिचान सकती इसीसे वह बोल उठी, "हां महाराज। मैं वही पतिव्रता हूं।" अब तो बोधिसत्वांश से न रहा गया, बोल उठे, "हे पतिव्रते। तेरा पातिव्रत मैं देख चुका हूं, तेरे पातिव्रत का ही फल है। तू मानुषी है कि राक्षसी? भला यह तो बता, मूले हाथ पैरवाला पति अपना रक्त मांस देकर भी तुझे वश न कर सका, तू उसका रक्त मांस खाकर अपना जीवन नहीं धारण करती थी? भलेही इस कण्ड ने तुझे वाहन बनाया है।!! अरी पापिष्ठे! कभी अपने उस पति को भी प्रकार ढोया था जिसको कि तूने नदी में गिरा दिया, हे पतिते! स्मरण रख उसी पातक का फल है कि तू इस कण्ड को ढो रही है।" इस प्रकार राजा के मुख से अपना वृत्तान्त सुन उसने पहिचान लिया कि यह तो मेरे पतिही हैं; तो वह मारे डर के थर २ कांपने लगी, मूर्छित हो चित्रलिखित सी हो गयी, काटो तो लोहू नहीं मानो मर गयी है। यह देख मन्त्रियों को बड़ा कौतुक हुआ उन्होंने राजा से नम्रतापूर्वक पूछा कि महाराज कहिये तो सही यह क्या बात है? उनका ऐसा प्रश्न सुन बोधिसत्वांश महीपति ने यथावत् सारा वृत्तान्त कह सुनाया तब मन्त्रियों को विदित हुआ कि यह भर्तृद्वेषिणी है तब उन्होंने उसके नाक कान कटवा, मस्तक पर उत्तप्त लोहे से दगवा देश से निकलवा दिया। विधि की [illegible] सहसंयोगिनी शक्ति का भी अच्छा प्रमाण मिल गया कि नकटी के साथ तो [illegible] [illegible] ठीकही है [illegible] दिया और बोधिसत्व को राजलक्ष्मी से संयुक्त

अपने शौर्य्य के मद से किसी को कुछ भी न समझे, सबसे वैर करता फिरे। पिता ने उसे बहुत कुछ समझाया बुझाया कि बेटा सबसे वैर करना अच्छा नहीं है, व्यर्थही तुम सबसे विरोध कर लेते हो इसका फल अच्छा नहीं दीख पड़ता किसी न किसी दिन तुमको नीचा देखना ही पड़ेगा । पिता ने बहुत समझाया पर उसने उसके उपदेश पर तनिक भी ध्यान न दिया। तब तो पिता को बड़ा क्रोध हुआ. उसने उसे शाप दिया "अरे दुष्ट तू मेरी बातों की उपेक्षा करता है इससे ले मैं अभी तुझे इस ढिठाई का फल दिये देता हूं ; तू अपने शौर्य्य का बड़ा घमंड रखता है सो जा तू सिंह हो जा।" अब वह विद्याधर जो कि पिता के शाप से ब्राह्मण के यहां जन्मा था सोही देवघोष फिर अपने जनक के शाप से इस वन में सिंहत्व को प्राप्त हुआ। सो हे महाराज् ! मैं वही सिंह हूं , रात्रि के समय भ्रमण करता हुआ दैवात् इस कूप में गिर पड़ा, सो आज आपने करुणा कर इस महा घोर कूएँ से मेरा उद्धार किया। अब तो मैं जाता हूं , जब कभी आप पर विपत्ति पड़े तो मुझको स्मरण करना उस समय में आपका उपकार करूँगा और अपने शाप से भी मुक्त हो जाऊंगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाकर जब सिंह चला गया तब बोधिसत्व ने उस स्वर्णशिख पक्षी से कहा कि अच्छा अब तुम अपनी कथा सुनाओ। तब वह पक्षी अपनी कहानी इस प्रकार सुनाने लगा।

हिमाचल पर विद्याधरों के अधीश वज्रदंष्ट्र नामक रहते हैं उनकी पत्नी के गर्भ से क्रमानुसार पांच कन्यायें जन्मीं। तब राजाने भगवान् भूतभावन की आराधना की, महाप्रभु का नाम तो आशुतोष है ही बस उनकी कृपा से राजा को महिषी पुत्र जन्मी विद्याधरेन्द्रने उस पुत्र का नाम रजतदंष्ट्र रक्खा, वे अपने तनय को प्राणों से भी अधिक प्यार करते थे। मारे स्नेह के पिता ने बाल्यावस्था ही में अपने पुत्रको सम्पूर्ण विद्यायें सिखा दीं। अब वह रजतदंष्ट्र अपने बान्धवों के नयनों का आनन्दोत्सव बढ़ाता हुआ बड़ा हुआ।

एक समय की बात है कि उसकी बड़ी बहिन सोमप्रभा गौरी देवी के समक्ष पिञ्जरक (१) बजा रही थी कि उसे देख रजतदंष्ट्रने उससे बड़ी विनती किया कि बड़ी

(१) एक प्रकार का बाजा।

नष्ट हो गयी; अच्छा क्या हुआ इनका निकालना तो अवश्यही है तो एक दूसरा उपाय अब किया जाय। इतना सोच विचार उसने तिनकों की रस्सी बटी और उसीके द्वारा उन चारों को उस कूप से निकाला, वे चारों उस महात्मा की बड़ी स्तुति करने लगे। जब वे सब ऊपर आये और स्तुति करने लगे तब तो उसे बड़ा ही आश्चर्य हुआ सो उस महापुरुष ने सिंह, पक्षी और सर्प से पूछा कि तुम लोगों की बोली तो बड़ी स्पष्ट है, यह बात क्या है अपना २ वृत्तान्त तो कह सुनाओ। इसपर सिंह ने उत्तर दिया कि हम सबों की बोली बहुत व्यक्त है क्योंकि हम जातिस्मर (१) हैं हमारा परस्पर बड़ा विरोध है, अच्छा सुनिये हम अपना २ वृत्तान्त कह सुनाते हैं। इतना कह सिंह अपना वृत्तान्त इस प्रकार सुनाने लगा।

तुषाराद्रि पर (२) वैदूर्यशृङ्ग नामक एक बड़ा उत्तम नगर है, तहां विद्याधरों के अधीश्वर पद्मवेग नामक (राज्य करते, हैं, इनके एक पुत्र हुआ जिसका नाम वज्रवेग पड़ा। वज्रवेग बड़ा अहङ्कारी था, जिस समय कि वह विद्याधरलोक में वास करता था तब जिस किसी से हो लड़ बैठता था, सबसे विरोधही बेसाहता था। पिता बहुत मना करता पर वह उसकी बात पर कुछ ध्यान ही न देता, इससे पिता को बड़ा क्रोध आया, उसने शाप दे दिया कि जा तू मर्त्यलोक में गिर जा। अब तो वज्रवेग की सब विद्यायें ही जाती रहीं जिससे उसका मारा मद उतर गया और वह रो रोकर अपने पिता से चिरौरी करने लगा। तब तो उसका पिता क्षणभर ध्यानकर बोला "अच्छा सुन मेरे शाप से तुझे मर्त्यलोक में जाना तो अवश्य पड़ेहीगा सो तू वहां जाकर पहिले ब्राह्मण के घर में जन्म लेगा वहां भी तू दिमागी सदाम्भ रहेगा; तब तेरा पिता तुझे शाप देगा और उसी शाप के प्रभाव से तू सिंह होगा और कूप में गिरेगा तब एक महानुभाव उपाकर तेरा वहां से उद्धार करेंगे। विपत्ति के समय उस महानुभाव का प्रत्युपकार कर तू इस शाप से मुक्त हो जावेगा" इस प्रकार उसके पिता ने उसके शाप का अन्त ठहरा दिया।

इसके उपरान्त वह वज्रवेग मालवदेश में [illegible] नामक ब्राह्मण के घर में उत्पन्न हुआ तहां उसका नाम देवघोष पड़ा। वहां भी उसको वही मान, [illegible]

[illegible] जिसे पहिले जन्म की बातें स्मरण हों।

[illegible]

[इ]तना कह वह मेरा मित्र चला गया और मैं तत्क्षण सर्प हुआ आज आपने इस [अ]न्धकूप से मेरा उद्धार किया; सो जब कभी आपको काम पड़े तो मुझे स्मरण [क]ीजियेगा उस समय आपका प्रत्युपकार कर मैं अपने शाप से मुक्त हो जाऊंगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय वह भुजंग जब चला गया तब वह स्त्री अ-[प]ना वृत्तान्त इस प्रकार वर्णन करने लगी।

मैं राजा के सेवक एक शूर क्षत्री की भार्य्या हूं, मेरा पति बड़ा रूपवान् युवा और मानमर्य्यादाशाली है। मुझे पापिष्ठाने अन्य पुरुष से कुकर्म कराया, यह बात मेरे पति को विदित होगयी तब उन्होंने मुझे दण्ड देने का विचार किया। मन्त्री के मुख से यह बात सुन रात्रि के समय में भाग निकली और इस कूप में गिर पड़ी अब आपने मुझे निकाला। अब आपके प्रसाद से मेरे प्राण बचे सो कहीं जाकर जीवन निर्वाह करूंगी; ईश्वर करे कि वह दिन आवे कि मैं आपका प्रत्युपकार करूं। इतना बोधिसत्त्व से कहकर वह कुलटा वहां से चली गयी और गोवर्द्धन राजा के नगर में जाकर वहां के राजपरिवारस्थ लोगों से परिचय कर, कराके राजा की पटरानी की दासी हो रहने लगी।

इस प्रकार उस कुलटा के साथ सम्भाषण करने से उस बोधिसत्त्व की सिद्धि जाती रही अतःउसे वन में मूल फलादिक कुछ भी न मिलता; भूख प्यास से व्याकुल हो वह बड़ा दुःखी हुआ; सो पहिले उसने सिंह का स्मरण किया। स्मरण करतेही सिंह आ पहुंचा और मृगों के मांस से उसकी जीविका करने लगा। इस प्रकार जब कुछ दिनों में मांस खाते २ वह हृष्ट पुष्ट हुआ तब सिंह ने उससे कहा कि अब तो मेरा वह शाप क्षीण हो गया अब मैं जाता हूं। इतना कह सिंह शरीर त्याग तुरत विद्याधर के रूप में हो गया और उससे विदा हो अपने स्थान को चला गया।

अब बोधिसत्त्व को पुनः उपवास होने लगे तब उसने उस स्वर्णशिख पक्षी को स्मरण किया; स्मृतमात्र में वह खग आ पहुंचा। उसके आने पर इसने अपनी विपत्ति कह सुनाई। गगनचर ने क्षण भर में ही रत्न और आभरणों से भरा एक डब्बा उसे लादिया और कहा कि इतने धन से तुम्हारा काम आजीवन भलीभांति चल जायगा; और अब मेरे शाप का अन्त हुआ; तुम्हारा कल्याण हो

बहिन मुझे भी पिञ्जर दो मैंभी बजाऊँ; इस प्रकार कह २ यह मचल गया प
बहिन ने बाजा न दिया। तब तो चपलता के कारण वह बालक अपनी बहिन
बाजा छीन कर पक्षी के समान आकाश में उड़ गया। इस पर उसकी बहि
क्रोध में आकर शाप दे दिया कि अरे दुष्ट! तू हठपूर्वक मेरा पिञ्जरक ले उड़ा
है सो जा तू स्वर्णचूल पक्षी हो जायगा। यह सुनकर उसने लौट कर बहिन
चरणों पर गिर के बड़ी विनती किया तब उसने शाप का अन्त इस प्रकार ठहरा
दिया, "हे मूढ़! तू जब पक्षी होकर किसी अन्धकूप में गिरेगा तब कोई दय
लावरुणालय तुझे उस कूए से निकालेगा सो जब तू उसका प्रत्युपकार कर देगा
तब इस शाप से मुक्ति पावेगा।" इस प्रकार बहिन की बात सुन वह रजतदं
स्वर्णशिख पक्षी होकर जन्मा। सो वह स्वर्णचूल पक्षी मैं ही हूं, रात्रि के समय इस
अन्धकूप में गिर पड़ा अब आपने मेरा उद्धार किया; सो अब मैं जाता हूं जिस
समय आप पर कोई बिपत्ति पड़े उस समय मुझे स्मरण करियेगा तो आपका
उपकार कर अपने शाप से मुक्ति पाऊंगा। इतना कह वह पक्षी भी चला गया।

तब बोधिसत्त्वने उस भुजङ्ग से कहा कि अच्छा अब तुम अपना वृत्तान्त सु
नाओ, इस पर वह सांप अपना वृत्तान्त इस प्रकार कहने लगा।

पूर्व समय में काश्यप ऋषि के आश्रम में कोई मुनिकुमार था वहां एक मुनिपु
मेरा वयस्य था। एक समय वह मेरा सखा सरोवर में स्नान करने के लिये पैठा
और मैं किनारे पर खड़ा रहा। इतने में तीन फण का एक सर्प आया। उस समय
मैंने अपने मन्त्रबल से उसी के सम्मुख उस सांप को रोक रक्खा कि जब वह नहा
के निकले तो सांप को देख डरजावे और तब एक कौतुक देखने में आवे। थोड़ी
देरमें मेरा मित्र स्नान कर तीरे आया और उस सांप को देखतेही त्रस्त होकर
च्छित हो गया। बहुत देर के उपरान्त वह चैतन्य हुआ। तब मैंने बहुत समझा
कर उसे शान्ति दी; परन्तु ध्यान से जान लिया कि यह त्रास मेरे द्वारा किय
या। सो उसने मुझे शाप दिया कि जा तू ऐसाही त्रिफण सर्प हो जा। त
से बड़ी विनती किई सो उस मुनिकुमार ने यह शापान्त ठहरा दिया
सांप होकर किसी अन्धकूप में गिरेगा तो कोई महात्मा तुझे उस
[illegible] प्रत्युपकार करेगा तब इस शाप से मुक्ति पावे

लपट जाता हूं; इस देखो न देखी ऐसनपनी मच जाती है। उस समय तुम भी वहां चला और कहना कि मैं राजा को इस सर्प से छुड़ाये देता हूं इतना कह तुम मुझसे कहना इस मैं राजा को छोड़ धीरे से रेंग जाऊंगा; मुझसे छूट कर राजा तुम्हें आधा राज्य बांट देगा।" इतना कह वह सांप जाकर राजा के समस्त शरीर में लपट गया और तीनों फण नरेश के मस्तक पर फैला झूमने लगा। हाहाकार मच गया सब लोग चिल्ला २ कहने लगे "अरे बड़ा अनर्थ हुआ, सर्प राजा को डँस लिया चाहता है। चारों ओर हड़बड़ी मच गयी। तब बोधिसत्वने रखवालों से कहा कि यदि कोई मुझे राजा के समक्ष ले चले तो मैं सर्प से उनका उद्धार कर दूंगा। इसपर सेवकोंने जाकर महीपति से वह बात कही, राजाने सुनतेही उसे बुला भेजा और उसके आने पर उससे कहा कि भाई जो तुम इस अहि से मेरे प्राण बचा दो तो मैं अपना आधा राज्य तुम्हें बांट दूंगा; ये मेरे मन्त्री जो यहां बैठे हैं मध्यस्थ हैं।" जब मन्त्रियोंने कहा "हां" तब बोधिसत्वने उस भुजंग से कहा कि इसी क्षण राजा को छोड़ दो। सर्प से मुक्त होकर राजाने अपना आधा राज्य बाँट कर बोधिसत्व को दे दिया। अब उसके दुःख दारिद्र्य भाग गये, वह सर्प अपने शाप से छूट कर तत्क्षण मुनिकुमार हो पड़ा और राजसभा में अपना वृत्तान्त सुनाय अपने आश्रम को चला गया।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला, "महाराज! आप समझ रक्खें कि जो भले हैं वे अन्त में शुभही शुभ प्राप्त करते हैं। अन्ततोगत्वा उनका कल्याण होताही है और कैसे बड़े से बड़े महात्मा क्यों न हों, तनिक भी अतिक्रम हुआ कि पतन हुआ। फिर स्त्रियों के स्वभाव का भी कैसा परिचय मिलता है, दृष्टान्तों से स्पष्ट है कि नारियों का विश्वास कदापि न करना, चाहे प्राणही क्यों न दिये जावें पर उनके हृदय की गति जानी नहीं जाती, तब और क्या उपाय चल सकता है।

वत्सराजपुत्र नरवाहनदत्त को इस प्रकार मनभावनी कथायें सुनाकर गोमुख फिर बोला कि देव! सुनिये अब आपको पुनः मूर्खों की कथायें सुनाता हूं।

किसी विहार (१) में एक मूर्ख श्रमण (२) रहता था। एक समय की बात है

(१) जैन संन्यासियों के रहने का स्थान; आश्रम।
(२) जैन संन्यासी श्रमण नाम से भी परिचित होते हैं; भिक्षुक भी कहलाते हैं।

में चला। इतना कह तत्क्षण वह विद्याधरकुमार के रूप में हो गया और आकाश मार्ग से अपने लोक को चला गया। पिता ने उसी क्षण उसे राज्य पद दे दिया और वह भलीभांति उसका निर्वाह करने लगा।

विद्याधर कुमार के चले जाने पर बोधिसत्व रत्न बेचने चला चलते २ उसी नगर में पहुंचा जहां वह स्त्री रहती थी जिसे उसने कूप से निकाला था। वहां किसी वृद्ध ब्राह्मणी के सूनसान घर में सब रत्न रख ज्योंही वह हाट की ओर चला त्योंही उस वन में कूप से निकाली हुई वह स्त्री सामने दीख पड़ी, उस नारीने भी उसे देखा। देखा देखी होतेही दोनों ने एक दूसरे को पहिचान लिया आपस में बात चीत करने लगे कथाप्रसङ्ग के बीच में स्त्रीने कह सुनाया कि मैं महारानी की यहां दासी हूं। स्त्रीने जब इसका वृत्तान्त पूछा तो इसने अपनी दुर्दशा और विपत्ति की बात और सिंहलत परित्याग कहकर यह भी कह सुनाया कि उस स्वर्णगिरि पक्षी ने बहुत से रत्न और आभरण ला दिये हैं, फिर ब्राह्मणी के घर उसे ले आकर सब रत्नाभरण दिखा भी दिये। यह बिचारा तो सीधासादा था वह क्या जाने कि किसके पेटमें क्या है। अस्तु, उस दुष्टा के उदर में यह बात कैसे पचे उसने जाकर अपनी स्वामिनी रानी से सब वृत्तान्त कह सुनाया। इस स्त्री के देखतेही वह स्वर्णचूल रानी के घर में से रत्नाभरणों का वह डब्बा उठा लेगया। जब रानी को उसी स्त्री से पता लगा कि वे रत्नाभरण नगर में आगये हैं तब उन्होंने राजा से यह वृत्तान्त कहा। राजाने भी उस स्त्री से दिखवाकर बोधिसत्व को रत्नाभरण सहित पकड़वा मंगाया। महीपति ने उससे पूछा कि तूने ये रत्नाभरण कहां पाये? उसने आद्यन्त उनकी प्राप्ति का वृत्तान्त कह सुनाया। इस पर यद्यपि राजा को विश्वास हुआ कि बात सत्य है तथापि उन्होंने उससे सब और आभरण छीन लिये और उसे बन्दीगृह में डाल दिया।

जब बन्दीगृह में पड़े हुए बोधिसत्व ने गुणिपुण्यसार उस भुजंगम को स्मरण किया त्योंही तत्क्षण वह फणी वहीं उपस्थित हुआ। उसे उस प्रकार जकड़ा देख कि अहो तो यहां तुम्हारी यह दुर्गति कैसे हुई तब उसने अपना वृत्तान्त कह सुनाया। उरगराज ने उस साधु से कहा "अच्छा कुछ चिन्ता मत करो उपाय करता हूं; पृथ्वी में जाकर राजा के प्यारी रानी

कि वह किसी गली में से चला जाता था, इतने में एक कुत्ते ने उसकी टांग में काट लिया। अस्तु वह अपने विहार को लौट आया और अपने मन में यही विचार करने लगा कि जोही देखेगा वही पूछेगा कि टांग में क्या हुआ; सो एक २ कर कबलों में सभों को उत्तर देता रहूंगा कोई ऐसा उपाय करूं कि एकही बार सभों को विदित हो जाय। इतना विचार वह मठ के ऊपर चढ़ गया और मुंगरी उठाय घंटा बजाने लगा। घंटे की ध्वनि सुन सब भिक्षुक एकत्रित हो गये और उससे पूछने लगे कि असमय में अकारण क्यों घंटा बजा रहा है? उसने उत्तर दिया दिया कि कुत्ते ने मेरी टांग में काट खाया है, सो एक २ के पूछने पर मैं कबलों सब का उत्तर दिया करता बस इसी से मैंने सब को एकत्रित किया है कि एकबारही कह देने से सब को विदित हो जाय। सो तुम लोग देखलो यह मेरी टांग है जिसमें कुत्ते ने काट खाया है, इतना कह उसने सब भिक्षुकों को अपनी टांग दिखा दी।

गोमुख बोला "देव! यह तो मूर्ख श्रमण की कथा हुई अब आपको एक मूर्ख टक (१) की कथा सुनाता हूं।

किसी नगर में एक मूर्ख टक रहता था वह जैसा बड़ा धनवान् था वैसाही कंजूस भी था। कंजूसी की पराकाष्ठा समझनी चाहिये क्योंकि वह और उसकी पत्नी बस दोही प्राणी तो थे परन्तु सत्तू खाकर दिन बिताते थे सोभी बिना निमक का, यहां लों कि दूसरे किसी अन्न का स्वाद भी नहीं जानते थे कि कैसा होता है। एक दिन दैव की प्रेरणा से उसने अपनी स्त्री से कहा कि आज खीर खाने की इच्छा है यदि आज खीर बनाती तो अच्छा होता। "बहुत अच्छा" कह उसकी स्त्री तो खीर पकाने की सामग्री जुटाने लगी और वह सूम घर के भीतर खटिया पर जा पड़ा बाहिर इस भय से न निकला कि कहीं कोई सुन न ले आज इसके यहां खीर पकी है तो देनी पड़े। वह विचारा तो इसी भय से लुका था कि इतने में उसका मित्र एक धूर्त टक पहुंचही तो गया। उस क ने उस सूम की स्त्री से पूछा कि तुम्हारे पति कहां हैं? इस प्रश्न का कुछ न देकर वह अपने पति के पास चली गयी। पत्नी से मित्र के आने का

(१) वाह्लीक देश के निवासी पुरुष टक नामसे भी परिचित होते हैं।

...क्त जान उसने अपनी भार्य्या से कहा कि सुन यहाँ बैठ कर मेरे पांव पकड़ ...ने लग और जब मित्र आकर पूछे तो कह देना कि मेरे पति मर गये, सो जब ... चला जायगा तब हम दोनों जने मजेमें खीर खायेंगे। इतना सुन ज्योंही वह ...ने लगी त्योंही यह सुहृद् भीतर चला आया और पूछने लगा "एं क्या हुआ? यह ... बात है?" स्त्रीने उत्तर दिया "देखो न मेरे पति मर गये," उसकी ऐसी बात ... वह अपने मनमें विचारने लगा कहां तो अभी ही मैंने इसे देखा कि सुख से ...ी खोर पका रही थी; कहां क्षण भर में ही इसका पति, बिना किसी रोग के ... गया; बस २ मैं समझ गया कि मुझ पाहुने को देखकर इन दोनोंने यह ढोंग ...ा है, अच्छा क्या हुआ मैं भी एकही हूं, मैं भी टलने का नहीं। इतना वि...ार यह धूर्त्तराट् वहीं बैठ गया और "हा मित्र। हा मित्र!" कह २ चिल्ला चिल्ला ...र रोने लगा। उसका आक्रन्दन सुन बन्धु बान्धव तथा पड़ोस के लोग बटुर आये ...ौर उसको श्मशान ले चलने का उपक्रम करने लगे। यह देख उसकी स्त्रीने झु...कर उसके कानमें कहा कि अब उठो नहीं तो ये बान्धव ले जा कर तुम्हें जला ...ेंगे। उस शठने भी धीरे से उत्तर दिया कि यह धूर्त मेरी खीर खाया चाहता है ...ो जबलों यह चला न जाय मैं उठने का नहीं, चाहे मरजाऊं तो मरजाऊं; अरे ...ापरे मेरी खीर खायगा, हमारे समान लोगों के पक्ष में एक मुट्ठी अन्न प्राण से ...भी भारी है सो मैं तो इसे खीर कदापि न खिलाऊंगा। तब उस कुस्त्रीने उसे बा...न्धवों के साथ लेजाकर उसकी दाहक्रिया कर दी और वह कदर्य्यशिरोमणि निश्चेष्ट जल मरा पर उसके मुंह से यह न निकला कि अच्छा खा लेना, जलाओ मत। इस प्रकार उस मूर्खने अपने प्राण दे दिये पर खीर न दियी अन्तमें उसका ऐसे कष्ट से कमाया धन दूसरोंने मजेमें उड़ाया और खाया।

इस प्रकार सूमड़े की कथा सुनाय गोमुख बोला "महाराज यह तो आपने सूमकी कथा सुनी अब आपको उन मूर्खों की कथा सुनाता हूं जो यह नहीं जानते थे कि बिल्ली कैसी होती है।

उज्जयिनी में किसी मठ में एक उपाध्याय रहता था, मूसों के उपद्रव से उसे रात्रि में भली भाँति नींद नहीं आती थी, सो अति दुःखित हो उसने अपने एक मित्र से मूसों के इस उपद्रव की बात कही। उसके मित्र ब्राह्मण ने उससे कहा कि

बिल्ली मूसों को खा जाती है सो लाकर एक बिल्ली पालों। उस उपाध्यायने पूछा कि मित्र बिल्ली कैसी होती है, टुक उसका वर्णन तो करो तो ज्ञात होवे कि ऐसी २ होती है क्योंकि हमने कभी उसे देखा नहीं है। उसके मित्र ने उत्तर "मित्र ! उसकी आंखें काली और चमकीली होती हैं, उसका रंग धूमर होता है, पीठपर गुलगुल रोंए होते हैं; गलियों में प्रायः घूमा करती है; सो हे मित्र। इन लक्षणों से मार्जार को पहिचनवा कर तुम मंगवा कर पालो बस तुम्हारा कष्ट दूर हो जायगा।" इतना कह उसका सुहृद् चला गया । तब उस मूर्ख उपाध्याय ने अपने शिष्यों से कहा कि तुम लोगों ने बिल्ली के सब लक्षण तो सुनही लिये, सो गलियों में से ढूंढ़ कर एक बिल्ली पकड़ लाओ। "जो आज्ञा," कह सब शिष्य बिल्ली की खोज में चले, पर ढूंढ़ने पर भी उन्हें बिल्ली न मिली।

अन्त में उन्होंने एक गली से निकलते एक वटु को (?) देखा, उसके नेत्र वैसेही कंजे और चमकीले, वर्ण धूमर, पीठ पर लोमश मृगचर्म बस सब लक्षण तो मिल गये सो उन्होंने उस वटुकोही मार्जार समझा और उसको रोक कर आपस में कहा कि हमलोगों से जैसे मार्जार के लक्षण बतलाये गये थे वैसाही मिल गया। अब उसे पकड़ कर उपाध्याय के पास ले गये। उपाध्यायजीने भी देखा कि बिल्ली

ते कि मनचक्कर ! भला कहां यह मनुष्य और कहां मार्जार ! ! ! मार्जार की तो पूंछ भी होती है ।" ब्राह्मण का ऐसा कथन सुनकर उन मूर्खों ने उस बटु को छोड़ दिया और कहा यह मार्जार नहीं है अच्छा तो हम दूसरे मार्जार को ढूंढ़ लावेंगे। उनकी ऐसी बात सुन जो लोग वहां बैठे थे हँस पड़े। भला मूर्खता से किसको हँसी नहीं होती।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव ! यह तो आपने उन मूर्खों की कथा सुनी जो बटु को मार्जार मान बैठे थे, अब आप को और २ मूर्खों की कथा सुनाता हूं।

किसी मठ में बहुत से मूर्ख रहते थे, उनका जो मुखिया था वह नामानुरूप था। एक दिन वह ऐसा स्थान में जा पहुंचा जहां कथा हो रही थी, उस दिन व्यासजी ने कथाप्रसङ्ग में यह सुनाया कि जो कोई यहां तलाव खुदवाता है उसे परलोक में बड़ा फल मिलता है । इस कथा के श्रवण करने से उसके मनमें भी तड़ाग बनवाने की इच्छा हुई। यह बात तो प्रत्यक्ष ही है कि मठधारियों के पास रुपयों की कमी नहीं रहती; बस अतिशीघ्र मठ के समीपही एक बड़ा भारी तलाव उसने खोदवा डाला।

एक दिन वह मूर्खाग्रणी अपना बनवाया तलाव देखने गया तो क्या देखता है कि तलाव की बालू बिखरी है । उसी प्रकार उसने दूसरे दिन जाकर देखा तो दूसरा किनारा उधेड़ा हुआ है; तब तो उसके मन में बड़ी चिन्ता हुई कि यह बात क्या है, किस जन्तु का यह काम है अच्छा कल मैं बड़े तड़केही आऊंगा और भोर से लेकर सायंकाल पर्य्यन्त यहीं बैठा रहूंगा, देखूंगा न कि यह किसका उत्पात है, इतना सोच वह चला गया। दूसरे दिन ज्योंही बड़े तड़के वहां पहुंचा तो क्या देखता है कि आकाश से एक वृषभ उतरा है और तलाव का किनारा खोदने में लगा है। इसने विचारा कि यह स्वर्गीय वृष है सो क्यों न मैं इसकी साथ स्वर्गलोक को चला जाऊं, इतना सोच झटपट वृष के समीप जाकर उसने कस कर उसकी पूंछ पकड़ ली । वह वृषभ भगवान् भी उसे लिये दिये ऊपर उठे और क्षण भर में अपने लोक कैलास धाम में पहुंच गये । वहां यह मूर्ख मठाधीश उत्तमोत्तम दिव्य लड्डू इत्यादि अनेक प्रकार के भक्ष्य भक्षण कर बड़े सुख से रहने लगा। इधर

वह वृषभ भगवान् भी प्रति दिन आया जाया करते थे, सो कुछ दिनों के
दैववश उस मुग्ध मठाधीश्वर ने विचारा कि अब इसी प्रकार वृष की पूंछ
कर अपने घर चलना चाहिये और बन्धुबान्धवों को देखभाल के फिर इसी
चला आऊंगा। अतः ऐसा विचार कर वह उन्हीं वृष भगवान् की पूंछ पकड़
प्रकार भूलोक में उतर आया। जब वह मठ में पहुंचा तब और सब दूसरे मठ
रहनेवाले उसके निकट घिर आये और उसे आलिङ्गन कर बड़े प्रेम से
लगे कि कहिये तो आप कहां चले गये थे, इतने दिन कहां रहे? इस प्रका
जाने पर उसने अपना वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया बस अब क्या था
सभों की इच्छा उन मोदकों के खाने की हुई सब उससे बड़ी चिरौरी करने
के हमें भी वहां ले चलिये और मोदक खिलाइये। इस पर वह बोला "
उम लोग भी चलो क्या चिन्ता है; ऐसा २ करना होगा जब वह बैल आवेगा
मैं उसकी पूंछ पकड़ लूंगा और तुम में से एक मेरी टांगें पकड़ लेना, उसकी
टांगें दूसरा पकड़ लेवे, बस इसी प्रकार एक दूसरे की टांगें पकड़ लेना
लोग उड़ चलेंगे। इस प्रकार युक्ति बतला कर वह सभों को तलाव के किना
ले गया और यथा समय वह वृष महाराज भी आय पहुंचे, बस महंतजी ने आगे
बढ़ कर उनकी पूंछ पकड़ ली, एक दूसरे ने महंतजी की टांगें पकड़ लीं, तीसरे
ने उसकी, इस प्रकार सभों ने एक दूसरे की टांगें पकड़ लीं जिस से एक बड़ी
भारी सिकड़ी बन गयी। इतने में वृष भगवान् वेग से उड़े और उनकी पूंछ में
वह मानव-सिकड़ी लटकी हुई थी; इसी अवसर में दैव के मारे एक ने महन्तजी
से पूछा कि अच्छा यह तो बतलाइये कि अनायास जो लड्डू आपको स्वर्ग में भी
न के लिये मिलते हैं वे कितने बड़े होते हैं। अब उस मुग्ध महन्त को भूल गया
हम लोग वृष की पूंछ में लटके हुए हैं सो उसने पूंछ छोड़ अपने दोनों हाथ
आकार बना कर दिखा के कहा कि इतने बड़े २ होते हैं, इतना करना था
के सब धड़ाम २ पृथ्वी पर गिर पड़े और गिरतेही ठंढे हो गये, इधर की
ने वाले लोग ठहाका मार २ हंसने लगे।

कथा सुनाय गोमुख बोला कि महाराज; इस प्रकार जो लोग बिना
काम कर बैठते हैं वे दुःखभागीही होते हैं और ऊपर से

हिमवान् की कुक्षि में कश्मीर नामक एक देश है जिसको धरातल का भू
मणि कहना चाहिये, विद्या और धर्म का तो मानो वह निकेतन है।
की बात है कि राजकुमार गेंद खेल रहे थे, उसी मार्ग से एक तापसी चली आ
थी सो उन्होंने छल से तापसी को गेंद से मार दिया। तापसी जितक्रोधा थीं
क्रोध न कर प्रत्युत हँस कर बोलीं "राजकुमार! जो तुम्हें अपने सौन्दर्यादि का
ऐसा घमण्ड है तो जो कहीं मृगाङ्कलेखा को भार्या पाओ तो कैसा हो? यह
सुन राजकुमार ने तापसी से अपना अपराध क्षमा कराया और बड़ी उत्कण्ठा से
पूछा कि भगवति कहिये तो सही यह मृगाङ्कलेखा कौन है।

राजपुत्र का ऐसा प्रश्न सुन तापसी बोलीं हिमालय पर शशितेजा नामक
एक महायश विद्याधरेन्द्र हैं, मृगाङ्कलेखा उन्हीं को पुत्री है; विधाता ने उसे
ऐसा सौन्दर्य दिया है कि जिसके लिये अनेक द्युचरेन्द्र रात २ भर जागते ही रह
जाते हैं पल भर के लिये भी नींद नहीं आती। सो जैसी ही वह सुन्दर है वैसे
तुम भी हो तुम्हारे लिये वही अनुरूप भार्या है और उसके लिये तुम्हीं उचित वर
हो। सिद्धा तापसी की ऐसी बात सुन हिरण्याक्ष बोले, "भगवति! यह भी तो
बता दो कि वह कैसे मुझे मिल सकती है।" इस पर योगीश्वरी ने उत्तर दिया,
"मैं जाकर उससे तुम्हारा वर्णन करूंगी और जो उसका मन मुझे पाऊंगी तो
आकर मैं ही तुम्हें उसके पास ले चलूंगी। यहां पर जो अमरेशाख्य देव हैं उन्हीं
के मन्दिर में कल प्रातःकाल आकर मुझ से भेंट करना क्योंकि मैं प्रति दिन उ
नकी पूजा करने आती हूं।

राजकुमार से इतना कह वह तापसी अपनी सिद्धि के बल से उड़ी और हिमा
लय पर मृगाङ्कलेखा के निकट पहुंच गयी। इधर उधर की बातें होने लगीं, और
बड़ी युक्ति से तापसी ने राजकुमार हिरण्याक्ष की बात छेड़ दी और उसके सौन्द
र्य गुणों का वर्णन इस प्रकार किया कि वह दिव्य कन्या तापसी से कहने
कि भगवति! यदि ऐसा पति मुझे न मिले तो मेरा जीवन निष्फल है, इससे
क्या काम। मृगाङ्कलेखा वार्तालाप मे लिप्त हो गयी थी पर अब राजकुमार
की कथा छोड़ और बातें अच्छी न लगीं, पर इसी प्रकार दिन
अत्युत्कण्ठा में बीता, रात हुई और मृगाङ्कलेखा तथा तापसी के

यह तो इधर की बात हुई उधर मृगाङ्कलेखा की चिन्ता से राजकुमार का हृदय व्याप्त हो गया, उन्हें कुछ भी न सुहावै; किसी प्रकार करते धरते दिवस बीता, रात आई पर हिरण्याक्ष की आंखों में नींद कहां ? बहुत विलम्ब के उपरान्त एक झपकी लगी तो स्वप्न में क्या देखते हैं कि रात्रि के अवसान के समय गौरी देवी आई हैं और कह रही हैं कि "हिरण्याक्ष ! तुम पूर्वजन्म में विद्याधर थे एक मुनि के शाप से तुम्हें मर्त्यशरीर धारण करना पड़ा है, इसी तापसी के करस्पर्श से तुम शाप से मुक्ति पाओगे और तब मृगाङ्कलेखा से तुम्हारा विवाह होगा; अब तुम कुछ चिन्ता न करो, मृगाङ्कलेखा पूर्वजन्म की तुम्हारी भार्य्या है सो इस जन्म में भी तुम दोनों का सम्बन्ध अवश्य होगा ।" स्वप्न में इतनी बात कह के देवी अन्तर्धान हो गयीं और प्रातःकाल उठ कर राजकुमार ने स्नानादिकार्य सम्पन्न किये पश्चात् जिस मन्दिर का संकेत उस तापसी ने बताया था उन्हीं अमरेश्वर के मन्दिर में जाकर हाथ जोड़ देवाधिदेव के समक्ष खड़े हो गये ।

उसी प्रकार भगवती गौरी ने मृगाङ्कलेखा को भी स्वप्न में दर्शन दिया और कहा कि इस तापसी के करस्पर्श से हिरण्याक्ष का शापान्त होने पर और वह विद्याधर हो जायगा तब तू उसे अपना पति करके प्राप्त करेगी, सो तू शोक मत कर। इतना कह देवी अन्तर्धान हो गयीं और मृगाङ्कलेखा की नींद भी टूट गयी उधर प्रातःकाल भी हो गया सो उसने जाग कर स्वप्न का वृत्तान्त तापसी से कह सुनाया ।

इतना सुन वह सिद्धतापसी भूलोक में उतर आई और अमरेश्वर के मन्दिर में स्थित हिरण्याक्ष से कहने लगी "आओ पुत्र विद्याधर लोक को चलो," इतना कह प्रणाम करते हुए हिरण्याक्ष को गोद में उठा कर तापसी आकाश में उड़ गयी । उस तापसी के स्पर्श से हिरण्याक्ष त्वरित विद्याधरेश्वर हो गये और शाप क्षय हो जाने से अपनी जाति का स्मरण कर तापसी से कहने लगे । "हिमाद्रि पर जो वज्रकूट नामक पुर है वहीं का मैं राजा था, उस जन्म में मैं विद्याधरों का अधीश्वर था तब मेरा नाम अमृततेजा था । मैंने एक समय मुनि की आज्ञा की उपेक्षा की थी सो मुनि ने क्रोध कर मुझे शाप दे दिया कि जा तू मर्त्यलोक में उत्पन्न हो, जब अमुक तापसी के कर का स्पर्श होगा तब तू इस शाप से छूट

कारा पावेगा। जब मुझे शाप मिला तब जो मेरी पत्नी थी उसने दुःख से अपना शरीर छोड़ दिया था वही मेरी पूर्वप्रिया अब यह मृगाङ्कलेखा हुई है। सो अब मैं आपकी साथ जाकर उसे प्राप्त करूंगा, हे भगवति! आपके करस्पर्श से आज मेरा वह शाप शान्त हो गया," इस प्रकार खचराधिप उस तापसी से आलाप करते हुए आकाशमार्ग से हिमाद्रि पर पहुंचे; वहां मृगाङ्कलेखा उद्यान में उन्हें दीख पड़ी और मृगाङ्कलेखा ने भी उन्हें देखा जिनका वर्णन वह तापसी पहिले कर चुकी थी। यह कैसा आश्चर्य है कि जिन दोनों का परस्पर श्रुतिपथ से मानस प्रवेश हुआ था उन्हीं का बिना निर्गमन अब पुनः चाक्षुष प्रवेश हुआ।

इस प्रकार जब दोनों का परस्पर दर्शन हो चुका तब उस प्रौढ़ा तापसी ने मृगाङ्कलेखा से कहा कि बेटी अब तुम जाकर अपने पिता से विवाह कर देने की बात चलाओ। मृगाङ्कलेखा ने लज्जा से अपना शिर नीचे कर लिया और जाकर एक सखी से अपने पिता को समस्त वृत्तान्त कह सुनवाया। उसके पिता को भी स्वप्न में अम्बिका देवी ने दर्शन दे कर ऐसाही आदेश कर दिया था सो उन्होंने अमृततेजा को बड़े सत्कार के साथ अपने यहां बुला मंगाया और विधि पूर्वक मृगाङ्कलेखा का विवाह उनसे कर दिया।

विवाह हो जाने के उपरान्त अमृततेजा अपनी प्रिया मृगाङ्कलेखा को लेकर अपने नगर वज्रकूट को गये और भार्य्या तथा राज्य की प्राप्ति से अति प्रमुदित हुए। अब उन्होंने उस सिद्धतापसी के द्वारा अपने पिता कनकाक्ष को मंगवाया और अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम भोगों से उनका सम्मान किया पश्चात् पुनः उन्हें मर्त्यलोक में भेज दिया। अब विद्याधरेश्वर अमृततेजा अपनी प्रियतमा मृगाङ्कलेखा के संग आनन्दपूर्वक राज्य भोग करने लगे।

दोहा।

उसे बहुत डांटा और मुझे छोड़ा दिया।" इतना सुन कर वह यक्ष मुस्कुरा के [कह]ता, "अहो! स्त्रियों की चेष्टा में इन्द्रजालही भरा है; भला फूल लगने से कहीं [को]ई मरा है और फिर यमराज के आलय से लौटना यह कैसा? ऐ मूढ़! तूने पाटलीपुत्र की स्त्री के वृत्तान्त का अनुकरण किया है। सुन, मैं उसकी कथा [सुन]ाता हूं।"

उस नगर में सिंहाक्ष नामक राजा है; उसकी महिषी, एक बार अपने साथ [की स्त्रि]यों, सेनापति पुरोहित तथा राजवैद्य की पत्नियों को लेकर शुक्ल पक्ष की अयो-[द]शी के दिन उस देश की अधिष्ठात्री सरस्वती देवी के दर्शन करने चली। मार्ग [में] उन्हें बहुतेरे कुबड़े अन्धे, पङ्गुल तथा रोगार्त्त लोग मिले जिन्होंने उनसे बिन्ती [क]ई कि हम दुखियों पर दया कीजिये हमें औषधि दीजिये कि हम रोग से [छूट] जावें। यह संसार, समुद्र की लहर के समान चंचल तथा बिजली की चमक [क]ी नाई क्षणभङ्गुर है और जैसे याचादि का उत्सव क्षण भर के लिये सुन्दर लगता [है] वैसेही यह संसार क्षणिक है; सो इस असार संसार में सार वस्तु यही है कि [द]ीनों पर दया करे, दीनों को दान देवे, गुणवान् कहां नहीं जीवित रहता है [अ]र्थात् जिसकी कीर्ति इस लोक में रहती है वह जीवितही रहता है। धनी को [द]ान देने से क्या, पेट भरे को क्या भोजन कराना, शीतात्तु को चन्दन से क्या [प्र]योजन! वैसेही हिमागम के उपरान्त घन की क्या आवश्यकता? सो हम रोगग्रस्त दु:खियों का उद्धार कीजिये।

इस प्रकार उन व्याधितों की बातें सुन राजमहिषी तथा उसके साथ की सब स्त्रियां बोलीं, "ये दीन कष्टग्रस्त जन ठीकही कह रहे हैं अत: अपना सर्वस्व देकर भी इनकी चिकित्सा करनी चाहिये।" इस प्रकार परस्पर आलाप कर उन सभों ने देवी की पूजा की, तदुपरान्त वे सब पृथक् २ रोगियों को अपने २ घर लिवा ले गयीं वहां अपने २ महानुभाव पतियों को प्रेरणा कर महौषधियों से उनकी चिकित्सा कराने लगीं और स्वयं उनकी परिचर्या में लगी रहतीं और उनके निकट से कभी न हटतीं।

इस प्रकार रातदिन उन रोगियों के समीप रहने से घनिष्ट सम्पर्क के कारण उन प्रमदाओं के मन में मन्मथ का प्रादुर्भाव हुआ कि अब संसारही उन्हें

इस प्रकार चिन्ता कर वह बड़े आक्षेप के साथ उस धार्मिक से बोला "धार्मिक ! बता तो सही यह तू अपने धर्म के विपरीत क्यों आचरण करता है। भला कहां तु धार्मिक मुमुक्षु और कहां इस प्रकार वादाविवाद के व्यस्त है, अरे तू वाद रूपी अभिमान-बन्धन के द्वारा संसार से मुक्त हुआ चाहता है ? अग्नि से उष्णता का शमन किया चाहता है ? और हिम से शीत का संहार करता है; हे मूढ़ ! पाषाण की नौका से महोदधि को पार किया चाहता है। अरे तू प्रज्वलित वह्नि को वात के द्वारा शान्त करने चला है ? सुन और इस पर ध्यान दे, ब्राह्मणों का स्वभाव क्षमा है; क्षत्रियों का कर्त्तव्य है कि विपत्ति में दुःखियों की रक्षा करें और मुमुक्षु लोगों का धर्म है कि शम रखें, कलह तथा विवाद करना तो राक्षसी व्यापार है । इससे मुमुक्षु को शान्त और दान्त होना चाहिये संसार के क्लेश से भीत हो कर उसे द्वन्द्वातीत होना चाहिये । अतएव मैं तुझे यह उपदेश देता हूं कि शमरूपी कुठार से भवरूपी पादप काट डाल, हेतुवाद के अभिमान रूपी जल से उसे सींच मत ।" इस प्रकार उसका उपदेश सुन वह धार्मिक अति सन्तुष्ट हुआ और "आप मेरे गुरु हैं," इतना कह उसे प्रणाम करके जहां से आया था वहां चला गया।

उस धार्मिक के चले जाने पर वह परिव्राट् वहां वृक्ष के नीचे बैठा हुआ विहस रहा था कि पेड़ के भीतर से भार्य्या से साथ क्रीड़ा करते हुए किसी के आलाप की आहट उसे सुन पड़ी, सो वह कान लगा कर सुनता है कि यक्ष ने हंसी २ में अपनी भार्य्या को माला इतनेही में वह झूठ मूठ मृतक के समान हो कर मूर्छित रोना पीटना मच गया लोग शिर पीट कर रोने और देर में उसने आंखें खोलीं मानो जीवन आ गया; तब पूछा कि प्रिये ! कहो तो, तुम ने क्या देखा ? तब बता कर दिया, "जब तुमने मुझे माला से मारा उसी काला भुजुण्ड पुरुष आया है; उसके हाथ में पाश था, खड़े २ केश, महाभयङ्कर आकार, उसकी छाया से हो गयीं। वह दुष्ट मुझे यमराज के मन्दिर में ले

किसकी शक्ति है। इतना स्थिर कर उन्होंने मन्त्री प्रभृति से जाकर यही बात कह सुनायी; वे भी पक्के सांचे के ढाले मूर्ख थे, उन्होंने भी समझा कि अच्युत भगवान् हमारी भार्य्याओं का उपभोग करते हैं; ऐसा समझ वे सब चुप हो बैठे।

इतना सुनाय वह यक्ष पुनः अपनी स्त्री से कहने लगा कि स्त्रियां इसी प्रकार असत्य रचना में बड़ी प्रवीण होती हैं; वे दुष्टायें ऐसी २ बातें बना कर मूर्खों को बहका देती हैं; मैं वैसा मूर्ख नहीं हूं कि तेरी भड़ी में आ जाऊं। इस प्रकार कह के यक्ष ने अपनी भार्य्या को चमड़ा दिया जिससे वह भकबका गयी और कुछ भी उत्तर न दे सकी।

ये सब बातें पेड़तले बैठा हुआ वह प्रव्राजक सुन रहा था सो उसने हाथ जोड़ कर यक्ष से निवेदन किया कि भगवन्। मैं आपके आश्रम में शरणागत उपस्थित हुआ हूं सो मैं आप से प्रार्थना करता हूं कि मेरा अपराध क्षमा किया जाय क्योंकि मैंने आपकी सब बातें सुन ली हैं। उसके ऐसे सत्यभाषण से यक्ष बड़ा सन्तुष्ट हुआ, उसने कहा, "मैं सर्वस्थानगत नामक यक्ष हूं, मैं तुझ से बड़ा सन्तुष्ट हुआ हूं सो तू मुझ से वर मांग ले। प्रव्राजक ने गुह्यक से कहा कि यदि आप मुझे वर दिया ही चाहते हैं तो यह वर देवें कि आप अपनी भार्य्या पर क्रोध न करें। तब यक्ष बोला, "तथास्तु; मैंने तुझे यह वर दिया, और मैं तेरे ऐसे वर मांगने से बड़ा ही प्रसन्न हुआ सो तू मुझ से अब एक दूसरा वर मांग ले।" तब सम्राट् ने उत्तर दिया कि यदि यही बात है तो आप मुझे दूसरा वर यह देवें कि आज से आप दोनों मुझे अपना पुत्र करके मानें। इतना सुनतेही वह यक्ष पत्नी सहित प्रसन्न हो कर बोला "पुत्र। बहुत अच्छा तू हमारा पुत्र हुआ, हमारे प्रसाद से तुझ पर विपत्ति कदापि न पड़ेगी और विवाद, कलह तथा द्यूत में तू सदा विजयी होगा।" इतना कहके यक्ष अन्तर्धान हो गया और सम्राट् ने उसे प्रणाम किया।

यक्ष के चले जाने पर रात वहीं बिताय दूसरे दिन प्रातःकाल के समय परि-व्राजक पाटलिपुत्र को प्रस्थानित हुआ। राजद्वार पर पहुंच कर दौवारिक से उसने राजा सिंहाक्ष के पास यह सन्देशा कहला भेजा कि मैं काश्मीर देश से एक शास्त्रार्थी आया हूं। सुनते ही राजा ने उसे सभा में बुला भेजा: सो सभा में प्रवेश

तन्मय दिखने लगा। कहां ये दीन हीन रोगी कहां वे नृप आदिक पति, ...
उनका मन मदन के बाणों से विद्ध होकर ऐसा अन्धा हो गया था कि
विभेद न कर सका। भला यह कब सम्भव था कि ऐसी कुलीन स्त्रियां ऐसे
रोगियों से संभोग करेंगी पर धन्य मन्मथ कि जिसके प्रताप से असम्भव भी सम्भव
हो जाता है। नीति में कहाही है :—

घृतकुम्भसमा नारी, तप्ताङ्गारसमः पुमान्।
तस्मात् घृतं च वह्निञ्च, नैकत्र स्थापयेद्बुधः॥ *

जब उन प्रमदाओं के पतियों ने उनके अङ्ग पर नख और दांतों के क्षत देखे
तब राजा मन्त्री सेनापतिप्रभृति के कान खड़े हो गये सो वे परस्पर बात करने लगे
कि लक्षण तो दुर्लक्षण दीख पड़ते हैं अब क्या करना चाहिये। तब राजा ने सभों
से कहा कि, "आप लोग ठहरें आज मैं युक्ति से अपनी भार्य्याही से पूछता हूं कि
ये चिन्ह कैसे हुए।" इस प्रकार कहके राजा ने उन्हें बिदा किया और अपने वास
स्थान में जाकर पहिले तो रानी से बड़ा स्नेह दिखाया और उन्हें बहुत प्यार किया
पश्चात् उनसे पूछा, "प्रिये! एक बात पूछता हूं सच २ बतलाना, झूठ न बोलना
सच-२ कह देनेही से तुम्हारा कल्याण है अन्यथा नहीं; भला कहो तो सही यह
तुम्हारा अधर किसने दांतों से काटा है और तुम्हारे स्तनों पर किसके नखों के
क्षत लगे हैं?" राजा के ऐसे प्रश्न सुन रानी बात बना के बोली, "मैं कैसी अभा-
गिनी हूं, यह एक ऐसा आश्चर्य है कि कुछ कहते नहीं बनता; सुनिये प्राणनाथ
भीतर जो चित्र उरेहा है, रात्रि के समय उसमें से चक्र और गदाधारी एक पुरुष
प्रति दिन निकलता है और मुझ से संभोग कर प्रातःकाल फिर उसी में लीन हो
जाता है। महाराज! मेरे जिस अंग को सूर्य और चन्द्र ने भी नहीं देखा है उस
की ऐसी अवस्था आपके रहते यह आकर कर कर जाता है।"

ऐसे वचन जो कातर हो रानी ने कहे तो राजा को विश्वास हो गया
ऐसे मूर्ख थे कि उन्होंने समझा कि यह वैष्णवी माया है नहीं तो अ...

* स्त्री घी के घड़े के समान है, और पुरुष तप्त अंगार के तुल्य है; इस लि...
...मान् को उचित है कि घृत और अग्नि का संयोग न होने देवे।

[illegible] की माता मर गयी, थोड़े ही दिनों में उसका एक पुत्र भी मर गया, उसके मरने के कुछ कालोपरान्त उसके भाई को सांप ने मार दिया जिससे वह भी पञ्चत्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार उसके जन्म के उपरान्त तीन जनों की मृत्यु हो गयी इस कारण उस कुटुम्बी ने उस कन्या का नाम त्रिमारिका रक्खा। कुछ कालोपरान्त वह त्रिमारिका वयस्का हुई; उसी गांव में एक धनवान् रहता था सो उसने त्रिमारिका को उसके पिता से मांगा; पिता ने भी विधिपूर्वक उत्सव करके इसका विवाह उस धनाढ्य व्यक्ति से कर दिया। उस पति के साथ त्रिमारिका थोड़े ही दिन भोग विलास कर सकी क्योंकि अल्पही काल में उसकी मृत्यु हो गयी। वह अबला बिना पुरुष के कैसे रह सके अतः उसने एक दूसरा भतार किया वह भी थोड़े ही दिनों में यमलोक को सिधारा। तब उस सुन्दरी ने तीसरे से सगाई किया परन्तु पतिघातिनी का वह पति भी पञ्चत्व को प्राप्त हो गया। इस प्रकार क्रमशः उसके दश पति हुए और दशों मर गये तब लोग हंसी करके उसे दशमारिका के नाम से पुकारने लगे (१)।

दश पतियों के साथ सम्भोग करके भी उस त्रिमारिका अर्थात् दशमारिका का सन्तोष न हुआ वह एक पति और किया चाहती थी परन्तु पिता उसके व्यापार से बहुत लज्जित होता था अतः वह उसे रोकता था और लोग उसे मना करते और समझाते थे सो वह किसी प्रकार मन मार अपने पिता के घर में रहने लगी।

एक समय कहीं से कोई बटोही उसके घर आया, वह एक रात वहां टिका चाहता था सो दशमारिका का पिता उसे टिका लेने पर सहमत हुआ बटोही उसके घर में टिक रहा। वह बड़ा सुन्दर तथा युवा था, दशमारिका उसे देखते ही मोहित हो गयी, और वह भी उसको देखकर उसकी प्राप्ति का अभिलाषी हुआ। दशमारिका तो मार की मार से सम्मोहित हो अपने को न सम्भाल सकी लाज उसको छप्पर पर जा बैठी सो उसने अपने पिता से कहा कि हे तात! मैं इस पथिक को एक पति और बनाया चाहती हूं जो कदाचित् यह भी मर गया तो व्रत धारण कर दिन काटूंगी। इस प्रकार उसका वचन सुन उसका पिता

(१) "यह डायन है, अपने भतार खानेवाली है," ऐसा भी लोग कहते थे। किसी पुस्तक में इतना अधिक पाठ है।

कर उस भक्षने पण्डितों को शास्त्रार्थ के लिये ललकारा। उसकी तो यह कह
दान याही सो विवाद में कोई भी उसे न जीत सका तब तो सर्वविजयी
उसने पुनः उन पण्डितों से ऐसा आक्षेप किया; हे पण्डितो मैं तुम से प्रश्न
करता हूं इसका उत्तर दो कहो तो सही इसका क्या अर्थ है कि, "भीत में
में से एक चक्र और गदाधारी पुरुष निकलता है और मेरे अधर अपने दांतों
काट, स्तनों पर नखों से क्षत करके मेरा उपभोग कर पुनः उसी भीत में समा
जाता है।" इतना सुन कर सभा के सब पण्डित चुप रह गये क्योंकि वे विचारे
परमार्थ से अनभिज्ञ थे सो उत्तरही क्या देवें अतः वे परस्पर एक दूसरे का मुं
देखने लगे। तब राजा सिंहाक्ष ने स्वयं उससे कहा कि, "भगवन्! आपने
कहा है इसका उत्तर आपही बतला देवें।" इसने तो यक्ष से रानी के
का वर्णन पहिलेही सुन रक्खा था सो राजा की महिषी का चरित्र
वर्णन कर गया, इतना सुनाय राजा से उसने फिर कहा कि महाराज! स्त्रि
का विश्वास कदापि न करना चाहिये उनका विश्वास कर उनमें लीन हु
गया। राजा उसकी बातों से बड़े प्रसन्न हुए और उसे अपना सारा राज्य देने
परन्तु परिव्राट् तो अपने देशका एकान्त भक्त था अतः उसने राज्य नहीं
किया; तब राजा ने बहुत से रत्नादि उपहार देकर उसका बड़ा सम्मान किया
और वह प्रव्राट रत्नादि लेकर अपने देश काश्मीर को लौट गया और यक्ष के

व क्यों कर जीविका निर्वाह कर सकूंगा। एक दिन उसके किसी सुहृद् ने उस
तिग्रीण देखा और पूछा कि मित्र कहो तो सही तुम्हारी यह क्या दशा हुई जा
रही है ? सो उसने उपवासादि की बात कहो २ भगवती विन्ध्यवासिनी के
वरदान की कथा भी कह सुनाई । वह सुहृद् बड़ाही चतुर था उसने कहा कि
रे मूढ़ ! भगवती जी ने जो कहा कि तेरे एकही बैल है उसी को बेच कर तू
जीवन निर्वाह करेगा; इसका तू ने अर्थही नहीं समझा, सुन तू उस बैल को बेच
कर अपने कुटुम्ब का काम चला, तब तेरे एक दूसरा बैल हो जायगा, तब तीसरा
ोगा, तब फिर एक हो जायगा इसी प्रकार एक बैल तेरे यहां बनाही रहेगा ।
पने मित्र की बात मान उस ग्रामीण ने उस बैल को बेंच डाला, और इस प्रकार
र २ बैल बेंच २ कर वह सुखपूर्वक अपने दिन बिताने लगा।

इतनी कथा सुनाय गोमुख बोला कि देव ! इस प्रकार सत्वानुरूप वि
फलदाता होते हैं इसलिये सत्त्ववान् होना उचित है क्योंकि जो पुरुष सत्त्व
है उसके पास लक्ष्मी कदापि नहीं आती । अच्छा महाराज ! अब मिथ्या
एक धूर्त की कथा सुनाता हूं।

दक्षिण देश के बीच किसी नगर में पृथ्वीपति नाम एक राजा थे, उनके रा
एक धूर्त रहता था जिसकी जीविका यही थी कि दूसरों को ठग लेना। उसक
हा महती थी, इसी से वह कभी संतुष्ट न होता, एक समय की बात
वह अपने मन में इस प्रकार की चिन्ता करने लगा, "मेरी इस धूर्तता से
प्रयोजन सिद्ध होता है बस इतनाही न कि पेट भरा जा रहा है तो अब
उपाय क्यों न किया जाय कि एकाएक बहुत सी लक्ष्मी प्राप्त हो जाय इतना
उसने एक अति उत्तम बनिये का वेश बनाया और राजद्वारपर आकर
ल से कहा कि महाराज से जाकर कहो कि एक साहूकार आया है। द्वार
संवाद पाय राजा ने उसे बुला भेजा सो उसने महीपति के समक्ष पहुंच
कर अभिवादन किया और उनसे कहा 'महाराज ! आप से एकान्त में
ना है।" राजा भी उसके वेश तथा अभिवादन से उसको मानी मैं पा
य और एकान्त में ले जाकर उससे पूछने लगे "कहो, क्या कहना है ?" तब
उस धूर्त ने उत्तर दिया " महाराज ! प्रतिदिन आप सभाभवन में से सब के

बटोही को सुनाता हुआ उससे कहने लगा. "पुत्रि । ऐसा तू मत कर, यह ब
लज्जा की बात है, देख तेरे दश पति मर चुके हैं और कहीं यह भी मर
तो बड़ी हंसी हंसारत होगी।" उसकी ऐसी उक्ति सुन वह पथिक भी लज्जा
बोल बैठा, 'मैं नहीं मरने का, क्रमानुसार मेरी भी दश भार्य्याएँ मर चुकी हैं
भगवान् शङ्कर के चरणों की शपथ कर कहता हूं कि हम दोनों समान हैं।"
पथिक की ऐसी बात सुन कौन ऐसा है जो अचम्भित न हुआ होगा। अतः
हत्तान्त सुन कर गांव के लोग बटुर आये और सभों की सम्मति से दशमरि
ने उस बटोही को अपना पति बनाय लिया। उस पति के साथ भी वह
ही दिन रही होगी कि वह भी शीत ज्वर से पीड़ित हो मर गया। तब
गांव के लोगों को कौन चलावे पाषाण भी उसके उपहास से न रुक सके। लो
ने उसका नाम एकादशमारिका रक्खा। तब तो एकादशमारिका को बड़ा
उद्वेग हुआ सो वह गङ्गातट पर जाकर तपस्या करने लगी।

इतनी कथा सुन कर वत्सराजपुत्र हँस पड़े तब गोमुख फिर बोला "
देव ! अब वृषजीवी की कथा सुनिये।"

किसी गांव में एक दरिद्र रहता था, विचारा दीन तो था ही ऊपर से उस
कुटुम्ब भी बड़ा था, उसके पास जो कुछ धन था सो एक मात्र बली बर्द था।
के लोग भोजन भाव से उपवास करते और वह भी उपवास करता तथापि
बस उस बैल को न बेचता। इस प्रकार उपवास करते २ जब वह अति क्षीण
गया तब उसके मन में यह आया कि अब चल कर किसी देवता की आराध
करनी चाहिये; यह विचार विन्ध्यक्षेत्र को चला गया और भगवती विन्ध्यवासि
समक्ष कुशासन पर बैठ अन्न जल त्याग कर धन की कामना से तपस्या क
। जगदम्बा ने स्वप्न में उसे दर्शन देकर कहा "उठ एक बली बर्द सदा
ना रहेगा उसी को बेच कर तू सदा सुख पूर्वक जीवन यात्रा निर्वाह करेगा
जगज्जननी का आदेश पाय वह प्रातःकाल में उठा और धारण क
चला गया।

बरदान पाकर घर तो लौट आया पर अधीरता के कारण बैल न
सोचता कि जब यह बैल बिक [illegible] मन में [illegible] हो जा

उठ कर एकान्त में चल कर क्षणभर मेरे साथ कुछ बातचीत कर लिया करें; प्रयास के हेतु मैं देव को प्रति दिन पांच सौ अशर्फियां दिया करूंगा और मैं आप से कुछ भी नहीं चाहता हूं।" उसकी ऐसी बात सुन राजा अपने मन में विचारने लगे कि इसमें क्या दोष है, यह मुझ से कुछ ले तो जाताही नहीं प्रति दिन अशर्फियां देगा तो हानिही क्या है; फिर यदि साधारण व्यक्ति से बात करने में कुछ लाज की बात हो तो यह साधारण व्यक्ति नहीं है, एक बड़ा साहूकार है फिर इसके साथ कथालाप में लज्जा कैसी," इस प्रकार सोच विचार प्रति उसकी प्रार्थना पर सहमत हो गये। बस राजा प्रति दिन उसके कथनानुसार सभा से उठ कर एकान्त में जाकर क्षणभर उससे बात करते और अपने वचनानुसार वह भी प्रति दिन पांच सौ अशर्फियां देता। यह व्यापार देख लोगों को निश्चय हो गया कि यह व्यक्ति महामन्त्री ठहराया गया है।

एक समय की बात है कि वह धूर्त जब कि राजा से बातें करता था उस समय सभा के एक अध्यक्ष के मुख की ओर बार २ देखता जाता था सो भी ऐसा मुंह बना लेता कि देखनेवाले को विश्वास हो जाय कि कोई भारी विषय की बात है। जब वह राजा से बात कर बाहर निकला तब वह सभाध्यक्ष भी धीरे से उसके पास आकर पूछने लगा कि कहो भाई आज क्या ऐसा गम्भीर विषय था और मेरी ओर क्यों बार २ देखते थे ? इस पर उस धूर्तराज ने उत्तर दिया भाई कुछ न पूछो, राजा को तुम्हारे ऊपर सन्देह हो गया है कि तुम देश में लूट मचाते हो इसी से वह तुम पर बड़ेही कुपित हैं; इसी कारण मैं तुम्हारे मुख की ओर देखता था; अच्छा तुम कुछ चिन्ता मत करो, मैं राजा का क्रोध शमन करा दूंगा। इस प्रकार उस अलीक मन्त्री की बात सुन वह अधिकारी बड़ा ही भयभीत हुआ और उसके घर जाकर चुपचाप उसे एक सहस्र दीनार दे आया। इसी प्रकार जब दूसरे दिन यह कपटी महीपति से बात कर निकला तब उस नियोगी ने आकर उससे पूछा कि कहो भाई मेरा क्या निबटेरा किया तब उस धूर्तराज ने उत्तर दिया, 'भाई ! धीरज रखो, किसी युक्ति से मैंने राजा को तुम पर प्रसन्न तो कर दिया, अब तुम किसी प्रकार की चिन्ता मत करो मैं तुम्हारी पीठ पर मैं हूं मैं सब प्रकार से तुम्हारी रक्षा करूंगा," इस प्रकार उसे भय से ... उसको विदा किया ... से लेकर वह अधिकारी उसके अधीन

एक समय की बात है कि राजपुत्री के आश्रम में कहीं से घूमती घामती एक परिव्राजिका आयी जो कौमारावस्थाही से ब्रह्मचारिणी थी। राजपुत्री ने उस की बड़ी अभ्यर्थना की और कथाप्रसङ्ग में उससे पूछा कि आपने बाल्यही से किस कारण से ब्रह्मचर्य्य धारण किया। इसके उत्तर में वह बालप्रव्राजिका बोली, "एक समय की बात है कि मैं अपने पिताजी के पांव दाबती थी, मुझे नींद आ रही थी इससे हाथ शिथिल हो गये थे; तब पिता ने यह कह कर कि 'क्यों री ऊंघती है,' मुझे लात से मारा, इससे मुझे बड़ी ग्लानि हुई सो मैं उनके गृह से निकल खड़ी हुई।" इस प्रकार उस प्रव्राजिका की कथा सुन राजकुमारी हेमप्रभा ने उसे अपने समान समदुःखिनी समझा और अपनी बनवाससखी बनाया।

एक दिन प्रातःकाल में राजकुमारी ने उस परिव्राजिका से कहा कि हे सखि! आज स्वप्न में मैंने देखा है कि एक मैं बड़ी भारी नदी पार हुई हूं, तदुपरान्त एक बड़े भारी वारणेन्द्र पर चढ़ी हूं तत्पश्चात् एक पर्वत पर; सो वहां आश्रम में भगवान् अम्बिका के पति दिख पड़े; उनके साम्हने मैं वीणा बजा कर गाने लगी। इतने में क्या देखती हूं कि एक दिव्याकृति पुरुष आया सो मैं उसके साथ आकाश में उड़ गयी; इतने में मेरी नींद टूट गयी और रात भी बीत गयी। राजकुमारी का ऐसा स्वप्न सुन वह सखी बोली 'हे कल्याणि हेमप्रभे! निश्चय तू कोई दिव्याङ्गना है और अब तेरे शाप का अन्त हो गया स्वप्न का यही फल प्रतीत होता है।' सखी का ऐसा वचन सुन राजकुमारी अति प्रमुदित हुई।

तदनन्तर जब कि जगद्दीप दिवाकर आकाश में बहुत ऊंचे उठे उसी समय तुरङ्गम पर आरूढ़ कोई राजपुत्र वहां आ विराजे, हेमप्रभा को तापसी के वेश में देखकर उनके हृदय में बड़ी प्रीति उत्पन्न हुई सो अश्व से उतर आगे जाय उन्होंने अभिवादन किया। हेमप्रभा ने भी उनका आतिथ्य कर आसन पर उन्हें बैठाया, उसके मन में भी प्रणय का अङ्कुर उग गया सो उसने पूछा "महात्मन्! आप कौन हैं?" राजपुत्र ने उत्तर दिया 'हे महाभागे! सुगृहीतनामानुकीर्तन प्रतापसेन नामक एक महीपति हैं, उनके पुत्र न था सो वह भूतभावन आशुतोष भगवान् शङ्कर की आराधना में तप करने लगे, उनकी आराधना से देवाधिदेव अति प्रसन्न हुए और प्रत्यक्ष दर्शन दे बोले, "राजन्! विद्याधर का अवतार तेरे एक पुत्र होगा

उन्होंने राजकुमारी को एक थप्पड़ लगा दिया। राजपुत्री को यह अपमान असह्य हो गया, उसको यह अभिलाषा हुई कि अब वन में जा रहिये सो एक बार विहार के बहाने से बाहिरी उपवन में गयी। जब सब नौकर चाकर मदिरा पीकर छकाछक हो अचेत हो गये तब राजकुमारी इधर उधर घूमती २ घने वृक्षों के बीच में चली गई और उनकी दृष्टि से लुप्त हो गयी। अब राजकुमारी चलती २ एक वन में पहुंची और वहां एक कुटीर बनाय तपश्चर्या में लीन हो गयी।

इधर राजा को भी विदित हुआ कि राजाकुमारी न जाने कहां चली गयी इस पर उन्होंने बहुत खोज की और कराई पर कहीं पता न लगा तब तो उनको बड़ाही सन्ताप हुआ। बहुत दिनों के उपरान्त उनका शोक कुछ शान्त हुआ तब एक दिन चित्तविनोदार्थ अहेर करने के लिये घर से निकले। भ्रमण करते २ दैवात् उसी वन में पहुंचे जहां उनकी कन्या हेमप्रभा बैठी तपस्या कर रही थी। वहां एक कुटीर देख महीपति बुद्धिप्रभ निःशङ्क उसके भीतर चले गये वहां देखते क्या हैं कि राजपुत्री हेमप्रभा तपश्चर्या कर रही है, तपस्या के कारण उसका शरीर अति क्षीण हो गया है। पिता को देखतेही राजपुत्री उठकर उनके चरणों में लिपट गयी, राजा ने भी आंखों में आंसू भर उसे गोद में बैठाय लिया। बहुत दिनों के अनन्तर दोनों की देखा देखी हुई इससे पिता पुत्री दोनों यों रोने लगे कि उनका रोना सुन पशु पक्षियों के नेत्रों में भी आंसू आ गये। तब कुछ काल पश्चात् आश्वासन पा राजा बोले, "पुत्रि [illegible]

कया सो अब वनवास छोड़ अपनी माता [illegible]

बोली, "हे तात! दैव ने मेरे [illegible]

मैं राजश्री के उपभोगार्थ घर न चलूंगी; तपःसुख का कभी त्याग न [illegible]।" इस प्रकार कह राजकुमारी अपने निश्चय पर अटल बनी रही जब राजा [illegible]क पुत्री अपने निश्चय से विचलित नहीं होती तब उन्होंने उसके लिये मन्दिर बनवाय दिया। इस प्रकार मन्दिर बनवाय राजा अपनी [illegible] चले आये और वहां से राजकुमारी के पास अतिथिपूजा के निर्वाहार्थ पक्वान्न तथा धन भेज दिया करते थे। राजकुमारी हेमप्रभा उस से तो अतिथियों का सत्कार करती और आप फल मूल खाकर

इतनेही में राजकुमार लक्ष्मीसेन तथा उनके मन्त्री कोभी अपनी जाति का स्मरण हो आया औ शापक्षय हो जाने से दोनों आकाश मार्ग से उड़ कर अपने लोक में जा विराजे। वहां हेमप्रभा अपनी भार्या को पाय वह अतिप्रमुदित हुए और उसके साथ पुनः वहीं लौटे जहां महाराज बुद्धिप्रभ बैठे विलख रहे थे, राजकुमार ने उन्हें बहुत कुछ समझा बुझा राजधानी को बिदा किया।

इसके उपरान्त लक्ष्मीसेन अपनी प्राण भार्या और मन्त्री के साथ अपने पिता प्रतापसेन के समीप पहुंचे जहां उन्होंने अपना सारा वृत्तान्त कह सुनाया। सुनतेही राजा ने अपना राज्यभार लक्ष्मीसेन के माथे धरा परन्तु वह यह राज्यभार अपने अनुज शूरसेन के हाथ में सौंप निज लोक विद्याधरपुर को चले गये। वहां अपनी प्रियतमा भार्या हेमप्रभा के साथ राजकुमार लक्ष्मीसेन विद्याधर के ऐश्वर्य का भोग करते हुए अपने मन्त्री के सहित सुखपूर्वक रहने लगे।

बसन्त तिलका।

या भांति गोमुख-कही सुनि कै कथायें,
पायो अनन्द नरवाहनदत्त देव।
आसन्नवर्त्ति नव शक्तियशाविवाह
उत्कण्ठितो क्षणमिव क्षणदा (१) वितायो॥ १॥
एवं विनोदि कतिपय दिन लौं सु आयो,
वा द्यौस, जा दिन विवाह सु होन को थो।
वत्सेश्वरात्मज लख्यो नभ सों उतरते,
दैदीप्यमान शुभ खेचर को समूह॥ २॥

छन्द।

तिहि मध्य दुहिता दान कारन सङ्ग लीने लखि परे।
विद्याधरेन्द्र स्फटिकयश अतिहित सुतन मन मुदभरे॥

(१) रात्रि।

सो तो शापक्षय हो जाने से अपने लोक को चला जावेगा परन्तु तेरे एक दूसरा पुत्र होगा जो मेरा वंशधर और उत्तराधिकारी होगा," भगवान् शम्भु की ऐसी बात सुन कर धरणीपति अति प्रमुदित हुए और उठ कर उन्होंने पारण किया। इस कालीपरात्मा राजा के एक पुत्र हुआ जिसका नाम लक्ष्मीसेन पड़ा तत्पश्चात् दूसरे समय जन्मा उसका नाम सूरसेन पड़ा। सो हे वरानने ! मैं वही लक्ष्मीसेन हूं, इस आखेट की निकला कि दासत्व यह मेरा घोड़ा मुझे यहां ले आया " इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय राजपुत्र ने हेमप्रभा से पूछा कि हे कल्याणि ! तुम अपनी कथा सुनाओ कि तुम कौन हो ? राजकुमार का ऐसा प्रश्न सुन राजकुमारी हेमप्रभा ने अपना वृत्तान्त आद्यन्त कह सुनाया।

इतने में राजकुमारी को अपनी जाति का स्मरण हो आया सो वह राजकुमार से पुन: इस प्रकार कहने लगी, "हे महाभाग ! आपके दर्शनमात्र से मुझे पूर्वजन्म का स्मरण हो आया तथा सब विद्यायें भी स्मृतिपथ में आ विराजीं; मैं विद्याधरी हूं और यह मेरी सखी है, हम दोनों शाप के कारण च्युत हो इस लोक में आई हैं। आप भी विद्याधर हैं और अपने मन्त्री के साथ शाप वश इस मर्त्यलोक में आ पड़े हैं; आप मेरे पति हैं और इस मेरी सखी के पति आपके सचिव हैं। अब मेरा और मेरी सहेली का शाप छूट गया सो अब हम लोगों का समागम पुन: विद्याधर लोक में होगा।"

इतना कहतेही राजकुमारी हेमप्रभा तथा उसकी सखी का दिव्य रूप हो गया सो वे दोनों आकाश में उड़ गयीं और बात की बात में अपने लोक में जा विराजीं।

राजकुमार लक्ष्मीसेन यह सब व्यापार खड़े निरख रहे थे, उनके आश्चर्य का तो ठिकाना न था इतने में उनका मन्त्री उन्हें ढूंढ़ता ढाढ़ता वहीं आ पहुंचा। राजकुमार अपने सखा को वह वृत्तान्त सुना ही रहे थे कि इसी अवसर में राजा बुद्धिप्रभ भी अपनी सुता को देखने वहां आ पहुंचे। राजकुमारी तो वहां न दीख पड़ी प्रत्युत लक्ष्मीसेन वहां दिखाई पड़े सो महीपति ने इनसे पूछा कि यहां एक तपस्विनी कन्या थी उसका वृत्तान्त आप कुछ जानते हैं ? राजकुमार ने जो कुछ देखा था आद्योपान्त कह सुनाया। अपनी पुत्री का ऐसा वृत्तान्त सुन राजा बुद्धिप्रभ बड़ेही विकल हुए।

॥ श्रीः ॥

कथासरित्सागर का भाषानुवाद ।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित ।

वेला-नामक ग्यारहवां लम्बक ।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालयिनैवल पाई ।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा वसुधा मँहँ छाई ॥
प्रेम-समेत पियै जो कोई बलवीर भनै बलि ईश दोहाई ।
पावहि सो जगदीश कृपा ते अमन्द अनन्द बड़ो बिबुधाई ॥

प्रथम तरङ्ग ।

अखिल विघ्न को वारण वारणमूंह ।
प्रणवौं सिद्धिसदन हर दुरित समूह ॥

इस प्रकार वत्सराजतनय नरवाहनदत्त शक्तियशा को पाय अपनी रत्नप्रभा प्रथम भार्य्याओं तथा पट्टरानी मदनमञ्चुका के साथ विहार करते अपने पिता के भवन में कौशाम्बी में निज सुन्दरी के संग आनन्दपूर्वक रहने लगे।

एक समय की बात है कि जब वह राजवाटिका में विहार कर रहे थे कि किसी देश से दो भाई राजपूत अकस्मात् उनके समक्ष आ विराजे। राजकुमार उनका आतिथ्य किया और उन दोनों ने बड़ी नम्रता से झुक कर उन्हें प्रणाम किया। इसके उपरान्त उनमें से एक इस प्रकार उनसे कहने लगा।

राजकुमार! विराटक नगर के राजा के हम दोनों विमात पुत्र हैं। मेरा नाम रविरदेव है और यह दूसरा चीतक है; मेरे पास अति शीघ्रगामिनी एक हथिनी

वत्सेश जाको प्रथम अर्घ्या कीन्ह अर्घादिक दियो।
तेहि शसुर वर अगवानि कर वत्सेशसुत पूजन कियो॥

शार्दूल विक्रीड़ित।

तत्पश्चात् द्युचरेन्द्र लाइ अपनी सिधी से नाना विधी।
रत्नादी वसनादि आत्म उचित वत्साङ्ग-जन्मै दयो॥
ता पाछे निजपुत्रि शक्तियश को ताकों समर्थ्यो मुदा।
जाको पूर्व कियो हुत्यो हरष सों वाग्दान तद्दान भी॥

दोहा।

अब नरवाहनदत्त जू शक्तियशा कों पाय।
शोभित भये सुपद्म जिमि तरणि-किरण विरमाय॥ १॥

छन्द।

विद्याधरेन्द्र स्फटिकयश निज लोक जब चलि के गये।
वत्सेशसुत कौशाम्बि महँ निज पितुभवन शोभित भये।
शक्तीयशा मुखकमल-सक्त दृगालिवत् नित बनि रहै।
इहि भांति नरवाहन जु दत्त हुलास नित नूतन लहै॥

इति शक्तियशा नामक दशवां लम्बक समाप्तः।

से वत्सेश्वरात्मज की प्रीति अधिक बढ़ी और वह बड़े कौतुक से भवनों की शोभा खने लगे जिसकी अनुपम छटा से उनका मन मुग्ध हो गया। वहां रुचिरदेव ना नाना प्रकार से आतिथ्य करने लगे, अनेक प्रकार के सत्कार उनके होते से वत्सराजसुत का मन प्रफुल्लित रहता।

इसी अवसर में नरवाहनदत्त की दृष्टि रुचिरदेव की भगिनी पर पड़ी जो कि तारी थी राजकुमारी की अद्भुत आकृति देख उनका मन लट्टू हो गया प्रवास का तथा स्वजनों का विरह वह एकाएक भूल गये अब तो सर्वतोभाव से वही जकुमारी उनके नेत्रों के सामने विराजती रहतीं । यह तो इधर की बात हुई उधर की दशा का भी कुछ वर्णन सुनिये। राजकुमारी, नरवाहनदत्त का लौकिक सौन्दर्य निरखतेही अपने वश में न रह सकी उसका मन पराये ग हो गया। उसने प्रफुल्ल नीलोत्पल की मालारूपिणी दृष्टि से मानो उन्हें स्वयं- र कर अपना वर चुन लिया । राजकुमारी का नाम जयेन्द्रसेना था, अब जयेन्द्र- ना में नरवाहनदत्त का मन ऐसा लौलीन था कि रात्रि के समय निद्रादेवी मानो नसे सौ कोस दूर पर जा विराजी थीं । इधर तो जयेन्द्रसेना की चिन्ता में उन्हें नींद न आयी उधर नगर की स्त्रियां भी इन्हीं की बातों में रात भर जागती रह यीं और प्रभात हो गया।

दूसरे दिन पोतक वायुवत् शीघ्रगामी अपने दोनों घोड़े लाये और रुचिरदेव अपनी हथिनी लाये । नरवाहनदत्त उस हथिनी पर आरूढ़ हुये रुचिरदेव वाह- विद्या में बड़ेही निपुण थे सो उन्होंने उस कुशलता से अपनी हथिनी चलायी कि पोतक के दोनों घोड़े प्रतिद्वन्द्विता में ठहर न सके; इस प्रकार पोतक के दोनों घोड़े जीत लिये।

रत्नदेव के दोनों घोड़े जीत लेने पर ज्योंही नरवाहनदत्त राजभवन में पैठते हैं कि इसी अवसर में उनके पिता के यहां से एक दूत उनके समीप आया और उनके चरणों पर गिर प्रणाम कर यह कहने लगा कि राजकुमार ! जब आपके पिता को परिवारवर्ग से यह विदित हुआ कि आप यहां चले आये तब उन्होंने मुझे भेजकर आपको यह सन्देशा कहलाया है, कि "आयुष्मन् ! तुम बिना हमलोगों से कहेही उद्यान से इतनी दूर क्यों चले गये। इससे हमलोगों का मन

और इसके पास दो घोड़े हैं। मैं कहता हूं कि हथिनी बड़े वेग से और इसका कथन है कि नहीं, दोनों घोड़े अतिशीघ्रगामी हैं, बस इसी हम दोनों का विवाद है। हम दोनों का पण यह हथिनी और दोनों घो जो हारे वह अपने पक्ष से हाथ धो बैठे। सो हे प्रभो! इन पशुओं के निर्णायक आपके अतिरिक्त कोई दूसरा दीख नहीं पड़ता, अतः आप चल कर इस बात की परीक्षा (जांच) कर देवें। आप इसमें हिचकिचावें न आप सब की प्रार्थना के स्वीकार कर लेने में कल्पतरु सम हैं बस यही हम दोनों का इतनी दूर आना हुआ है"

इस प्रकार रुचिरदेव की प्रार्थना सुन वत्सराजसूनु को उन हथिनी और के देखने की बड़ी उत्कण्ठा हुई क्योंकि वाहनों का उन्हें सविशेष कौतुक अतः वह उस राजपूत की अभ्यर्थना पर सम्मत हो गये। उनके लाये शीघ्रगामी घोड़ों से जुते रथ पर आरूढ़ हो नरवाहनदत्त प्रस्थानित हुए और करते उन दोनों के साथ वैशाखपुर में जा पहुंचे। जब आपका रथ नगर में चला तब नगर की कामिनियां अपनी अटारियों पर से उनका अनुपम रूप निर कहने लगी—"अहो यह कौन महानुभाव है जिनके संग कि उनकी पत्नी नहीं है, अथवा निष्कलङ्क दूसरे दिवाकर चन्द्रमा भी नहीं है; अथवा तरुणियों के हृदय रूपी काण्ड का समूल उन्मूलनकारी कामदेव का तो नहीं बनाया है।" इस प्रकार सब स्त्रियां अपने २ मन में नाना भांति की तर्कना करतीं करतीं थीं।

इतने में युवराज उस स्थान पर पहुंचे जहां म मन्दिर था। उस आनन्ददायी मन्दिर के भीतर की पूजा की और क्षणभर विश्राम कर ... हो रुचिरदेव का भवन था सो राजकुमार निकल कर रुचिरदेव के मन्दिर में गये बड़े २ उपक्रम हुए थे जहां नाना प्रकार स्थान शोभा दे रहे थे; जहां भवन तथा थी। भवन के भीतर प्रातिही ...

कन्या देवी दादिद्रारूण कर रही है । यद्यपि उसका कल्याणिनी का वेश था तथापि वह उसकी शोभा से एक निराली समझ पड़ती थी। उसके दर्शन मात्र से मेरे मन में एक भावना उदित हुई कि यह भी ठीक मेरी विद्या सी भासती है। यद्यपि मैंने उसे प्राप्त नहीं। पर मेरी भावना रही कि हो न हो यह मेरी दादिदादी है, इसके मैं दायिनी भेद के प्रसंग से और भी आह्लाद को अवसर मिल गया। तब मैंने धीरे से उससे पूछा—"हे तन्वि। तुम तो प्रासाद में रहने योग्य हो, भला कहो तो सही तुम इस पादर में कैसे आई और तुम हो कौन? इस प्रकार मेरे पूछने पर भी उसने कुछ उत्तर न दिया। तब तो मुझे भय हुआ कि यह मुझे शाप दे देवे, अथवा यह कुछ न बोले तो नहीं सही पर यह किसी मुनि का आश्रम है सो कहीं कोई मुनिही शाप न दे देवें, बस इसी भय से लता-गुल्म की आड़ में छिप कर मैं टकटकी लगाय उसे देखने लगा। जब वह पूजा कर चुकी तब उठ कर वहां से चली, पर उलट २ कर बड़े खेद से मुझे निरखती और मन में कुछ विचार करती जाती थी। इस प्रकार वह धीरे २ चली गयी। जब वह मेरी दृष्टि से बाहिर हो गयी उस समय मेरी जो दशा हुई उसका मैं क्या वर्णन करूं; मेरी आंखों के सामने अन्धकार छाय गया, प्रातः के समय चकवे की दशा के समान मेरी एक अद्भुत अवस्था हो गयी।

थोड़ीही देर में सत्तम मुनि की यमुना नाम्नी कन्या मेरे समक्ष निःशंक आन उपस्थित हुई; आहा उस तपस्विनी का मैं क्या वर्णन करूं तेज तो ऐसा मानों स्वयं भास्कर हो, बालब्रह्मचारिणी; कठोर तप से समस्त शरीर शुष्क हो गया था, दोनों नेत्र अति दिव्य; साक्षात् धैर्य की मूर्ति, जिसका दर्शन मानो कल्याण का द्वारा है। उन्होंने मुझ से कहा, "कुमार! धीरज धरो और मैं जो कहती हूं सो सुनो; इस द्वीप में शिखर नामक जो एक महाजन रहता है, उसके जब एक रूपवती कन्या उत्पन्न हुई तो जिन रक्षित नामक उसके एक स्वामी भिक्षुक मित्र ने उससे कहा कि, "हे मित्र तुम इस कन्या का दान मत करना क्योंकि इसकी माता कोई दूसरी है, जो तुम इसका दान करोगे तो तुम को दोष होगा, इसको ऐसाही लिखा है।" भिक्षुक की बात सुन उसके पिता ने यह ठहराया कि अच्छा इसका दान इसके मातामह के हाथ करा दूंगा; बस अब तुम ने समझा न

कि इसी अवसर में विद्युत्पात के समान यह उग्र बात सुनने में आई कि
की सुता जिस पोत से जाती थी वह पोत उदधि में डूब गया, एक भी प्राणी
पर का नहीं बचा। कहां तो मैं जहाज का उपक्रम कर रहा था कहां यह व
घात की बात सुन पड़ी; मेरा धैर्य जाता रहा और मैं सद्यः निरालम्ब शोकसागर
में मग्न हो गया । इन्होंने मुझे बहुत कुछ समझाया बुझाया तब मेरा मन कुछ
शान्त हुआ । आहा। आशा भी क्याही तत्व है; इसी के भरोसे मेरे मन में या
भावना उदय हुई कि जो होनहार रहा होगा सो तो हुआही पर चल कर पता
तो लगाना चाहिये कि क्या हुआ है; ऐसा विचार कर मैं उस द्वीप में जाने को
प्रस्तुत हुआ।

कहने की कुछ आवश्यकता नहीं है कि राजा मुझे कैसा मानते थे, पर उस
समय तो मेरा मन दूसरीही ओर लगा था, इससे किसी के समझाने बुझाने का
कुछ भी परिणाम न हुआ; अन्ततो गत्वा पोत पर आरूढ़ हो मैं चलो पड़ा।
मेरा जहाज चला जा रहा था कि अकस्मात् वारिद-तस्कर का उदय हुआ, और
गर्जन के साथ मूसलधार वृष्टि होने लगी । वायु प्रतिकूल बहता था, पहाड़ऐसे
उठते थे जिस से मेरा जहाज कभी ऊपर उछलता और कभी नीचे गिर पड़ता,
इस उछला उछली में पड़ कर मेरा जहाज टूक २ हो गया। हा! दैव कैसा प्रबल
है। मेरे धन और नौकर चाकर समुद्र के गर्भ में अन्तर्हित हो गए, भाग्यवश
मुझे एक पटरा मिल गया मानों विधाताने मेरी रक्षा के हेतु अपना बाहु बढ़ाया
। सो उसी के सहारे मैं बहता २ समुद्र के किनारे जा लगा, फिर ऊपर चढ़ बैठ
मैं अपने भाग्य को कोसने लगा । इतने में किनारे पड़ा हुआ सोने का एक
मुझे मिला, उसे पास के गांव में बेच कर मैंने कुछ खाने पीने की सामग्री
क्षुधा शान्त हुई तब जाकर मैंने एक जोड़ा कपड़ा मोल लिया, और
समुद्र में बहने की थकावट दूर हुई ।

मैं वहां से चला, मेरी प्रियासी के विरह से मेरा मन ऐसा व्याकुल
मैं यह नहीं जानता था कि कहां जा रहा हूं । इस प्रकार हो
एक ऐसे स्थान में पहुंचा जहां बालू के बहुत से शिवलिङ्ग बने थे,
. . . वहां विचर रही थीं, यहां क्या देखता हूं कि एक ओर

झटपट शाप देही तो डाला कि हे पापियो! तुम दोनों का वियोग हो जायगा। तब मेरी वेला महामुनि के चरण पकड़ गिड़गिड़ा २ कर विरौरी विनति करने लगी, इससे मुनि का कोप शान्त हुआ सो उन्होंने ,ध्यान करके हम दोनों का शापान्त इस प्रकार ठहराय दिया —"विद्याधरों के भावी अधीश्वर नरवाहनदत्त । करेणुवेग से भग्नदशयुगल जीतेंगे तब हे चन्द्रसार! तू वत्सेश्वरात्मज का दर्शन : से कर इस शाप से मुक्त हो अपनी इस भार्य्या को प्राप्त करेगा।" इतना कह ।नादि क्रिया सम्पन्न कर मतङ्ग ऋषि हरि भगवान् के दर्शन करने के हेतु आ- ।शमार्ग से श्वेतद्वीप को चले गये । इसके उपरान्त यमुना ने मुझसे और मेरी स्त्री से कहा कि पूर्व समय में भगवान् शङ्कर के चरण से जो जूता गिर पड़ा था से एक विद्याधर ने पाया था सो उससे भी छूटा तो मैंने बालकपन से उसे ले लिया सो सद्रत्न निश्चय वह जूता मैं तुम दोनों को देती हूं । इतना कह भगवती मुना भी वहीं चली गयीं।

अब जब मैं अपनी प्रियतमा को पा चुका तब वनवास से मेरा चित्त बड़ा ।द्विग्न हुआ, ऊपर से वियोग का शाप मिला इससे मेरी इच्छा हुई कि अब अपने देश को चला जाना चाहिए। इतना विचार मैं वहां से भार्य्या सहित प्रस्था नेत हुआ और समुद्र किनारे आया, इसी अवसर में किसी महाजन का जहाज भी वहां आ गया, बस मैंने पहिले अपनी भार्य्या को उस पर चढ़ाया और ज्योंही मैं चढ़ा चाहता था कि मुनि के शाप का सुहृद् प्रचण्ड समीरण आया और मेरा जहाज दूर उड़ा ले गया। उधर तो पोत मेरी भार्य्या को हर ले गया इधर अव- सर पाय मोह ने मेरी चेतना हर ली; अब मैं व्याकुल हो वहीं गिर पड़ा और मूर्छित हो गया। इतने में वहां एक ऋषि आ गये, मुझे मूर्छित देख उनके हृदय में बड़ी करुणा हुई, सो कृपापूर्वक मुझे अनेक प्रकार से शान्ति देकर धीरे धीरे अपने आश्रम को ले गये। ऋषि ने मुझसे मूर्छा का कारण पूछा तब मैंने आद्यन्त अपना वृत्तान्त कह सुनाया तब उन्होंने अपने तपोबल से देख लिया कि अब शाप की अवधि भी आ गयी है अत: समझा बुझाकर मुझे बहुत शान्ति दी।

इसके उपरान्त मेरा एक मित्र महाजन मुझे वहीं आ मिला, उसका जहाज भी टूट गया था, वह किसी प्रकार बचकर पार हो वहां आ लगा था, सो मैं

॥ श्रीः ॥

कथासरित्सागर का भाषानुवाद ।

श्रीरामकृष्णवर्म्मा-लिखित ।

शशाङ्कवती-नामक बारहवां लम्बक ।

—o—

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर वासुकि बालविनैबल पाई ।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा वसुधा महँ छाई ॥
प्रेम-समेत पियै जो कोई बलबीर भनै बलि ईश दोहाई ।
पावहि सो जगदीश कृपा ते अमन्द अनन्द बड़ो विबुधाई ॥

प्रथम तरङ्ग ।

दोहा ।

श्रीगणेश रक्षा करैं, विघनविदारनहार ॥
यहै जासु कीरति अहै, जो हैं परमउदार ॥ १ ॥
नृत्य करत आनन्द सों, शुण्डदण्ड फैलाय ॥
जापै भृङ्गावर अवलि, लीन सदा दरसाय ॥ २ ॥

सोरठा ।

स्वयं विषय तें हीन, विविध-विषय रचनाचतुर ॥
नव रचना परवीन, चित्रकार सम, हरहिं नम ॥ १ ॥
स्मरसर सकल जहान, जीत्यो यद्यपि पुष्पमय ॥
मम पाभाव महान, बज्रहु जाहिं कुण्ठित करहिं ॥ २ ॥

उसके साथ अपनी प्रिया की खोज में निकला। आशा तो बड़ी बलवती होती है फिर यहां तो शापक्षय की अवधि भी ठहरा दी गयी थी सो उसी आशा के फिर ऊपर से एक सहारा भी मिल गया, मैं अनेक देश देशान्तरों में बहुत दिन भटकता रहा। घूमताघामता वैशाखपुर में पहुँचा, यहां मैंने यह सुना कि राजवंश के मुक्तामणि आप यहां विराजमान हैं; और दूर से यह भी देखा हथिनी से आपने दो घोड़ों को जीत लिया है, बस मेरे शिर का शापरूपी बोझ उतर गया और मेरा अन्तरात्मा हलका हो गया। थोड़ेही कालोपरान्त क्या देखता हूं कि वे साधु वणिक् मेरी भार्या को लिये हुए अपने पोत सहित आ पहुँचे। यमुना का दिया हुआ वह सहस्र जूता मेरी प्रिया के साथही गया था; आपके प्रसाद से मेरी प्रियतमा वेला पुनः मुझे मिली और शापसमुद्र पार हुआ; सो हे वत्सराजतनय मैं आपको प्रणाम करने आया हूं। अब मेरा अन्तरात्मा अति प्रमुदित हुआ है, सो मैं अपनी भार्या के साथ अपने देश को जाता हूं।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय, चरितार्थ वह महाजन चन्द्रसार प्रणाम कर जब चला गया तब नरवाहनदत्त का ऐसा माहात्म्य देख रुचिरदेव अति हर्षित हुए और वत्सराज के पुत्र के प्रति अति नम्रभाव से प्रणत हुए। वह तो पहिलेही अपनी भगिनी का विवाह नरवाहनदत्त से किया चाहते थे और इसी हेतु मुनि उन्हें यहां लाये भी थे सो करेणु और दोनों घोड़ों के साथही साथ उन्होंने अपनी जयेन्द्रसेना का विवाह भी उनके साथ कर दिया।

दोहा।

तब नरवाहनदत्त जू, वधु, हय, करि
कौशाम्बी गवनत भये, मन महँ भ
वत्सेश्वर कहँ मुदित करि, नहिं न
मदनमञ्चुका आदि सँग, विहरत

लगी थी। कई दिनों से आकाश मेघाच्छन्न रहा, बराबर वृष्टि होती रही इससे
• सियारी अपनी माद में ही भूखी प्यासी पड़ी रही। जब आकाश निर्मल हुआ,
वह भोजन की खोज में निकली, इतने में अपनी हथिनी से बिछुड़ा हुआ एक
काला अकेला हाथी वहीं आ पहुंचा और उस सियारिन पर झपटा कि मार
दे। मुनि को यह देख दया आई अपने ज्ञान से वह समझ गये कि यह इसी
अपनी खोज में है सो उन्होंने उस सियारिन को हथिनी बना दोनों पर अपना
अनुग्रह दरसाया। उस हथिनी के देखतेही हाथी का विकार जाता रहा,
वह उसमें अनुरक्त हो गया और वह बिचारी मृगाक्षी भी मृत्यु के मुंह से
बची। अब ऐसा हुआ कि वह गजेन्द्र उस करेणुका के साथ इधर उधर घूमता
हुआ एक ऐसे सरोवर पर पहुंचा जहां शरत्काल होने के कारण कमल भखरा रहे
थे सो वह अपनी प्रिया के हेतु कमल लाने के लिये उस सरोवर में धंसा। तड़ाग
कीचड़ था सो वह बिचारा उस दलदल में फंस गया, अब वह हिल डोल भी न
सके; कुलिश से पंख कटे गिरे हुए पहाड़ के समान खड़ा रह गया। वह मृगाक्षी
रेणुका उस वारण को इस प्रकार विपन्न देख उसी क्षण किसी दूसरे वारणेन्द्र
पर मन कहीं चली गयी। इतने में उस गज की बिछुड़ी हुई वह निज करिणी
से खोजती खोजती दैवात् वहीं आ पहुंची, देखे तो पति पङ्क में मग्न खड़ा है।
वह बिचारी बड़ी भद्रजाति थी भला वह अपने पति को इस दुरवस्था में कब छोड़
सके अतः अनुमरण करने के लिये आप भी उस तड़ाग के कीचड़ में जा धंसी।
इसी समय ब्रह्मसिद्धि मुनि भी अपने शिष्यों के साथ उसी मार्ग से आ निकले,
उन दोनों को पङ्कमग्न देख मुनि के हृदय में करुणा आ गई सो महातपस्वी मुनि
ने अपने तप,प्रभाव से शिष्यों को शक्ति दी और उन्हींके द्वारा हथिनी और हाथी
को कीचड़ से निकलवा बाहर किया। तदनन्तर मुनि के चले जाने पर वे दोनों
करिणी और करी वियोग और मृत्यु से छुटकारा पाय यथाकाम विहार करने लगे।

इतनी कथा सुनाय नरवाहनदत्त पुनः बोले कि प्रिये! पशुओं में भी यह गुण
पाया जाता है कि जो उत्तम जाति के होते हैं वे अपने प्रभु अथवा मित्र को
त्याग नहीं करते प्रत्युत विपद् से उनका उद्धार करते हैं; किन्तु जो हीन जाति के
होते हैं उनका स्वभाव चञ्चल होता है, उनके हृदय में सद्भाव अथवा स्नेह छू भी
नहीं जाता।

छोड़ गयो सो छार, ताकी सोंहिं जातही ॥
जो भवसागर पार, होन चहसि तौ भजु शिवहिं ॥ ३ ॥

इस प्रकार वत्सेश्वरात्मज नरवाहनदत्त उस भार्य्या को भी पाकर आनन्द
कौशाम्बी में रहने लगे। यद्यपि उनके बहुत सी भार्य्यायें थीं तथापि वे पहिले
देवी मदनमञ्चुका को प्राणों से अधिक मानते थे जिस प्रकार भगवान् माधव
क्मिणी को (मानते थे) एक समय की बात है कि वह रात्रि के समय सोये
तो स्वप्न में क्या देखते हैं कि आकाश से एक दिव्य कन्या उतरी है और
लेकर उड़ गयी; जब जागे तो क्या देखते हैं कि एक बड़े पर्वत के ऊपर
घनी और शीतल छाया में तार्क्ष्यरत्न शिला पर बैठे हुए हैं और पास में
कन्या भी बैठी है जिसकी ज्योति से समस्त कानन प्रकाशमय हो रहा है;
कामदेव की विश्वसम्मोहनी औषधि है। उसको देखतेही उन्होंने समझ लिया
बस यही मुझको यहां उठा लायी है और अब लज्जा के वश में पड़ अपनी
दबाय पृथक् हो बैठी है; सो उन्होंने ऐसा दिखाया कि मानों घोर निद्रा में
हैं। गहिरी नींद में वह बया उठे, "प्यारी मदनमञ्चुका कहां हो, आओ
आलिङ्गन कर लो"। इतना सुनना कि उस कन्या की लज्जारूपी शृंखला टूट
और उसने झट उनकी प्रिया मदनमञ्चुका का रूप धारण कर उन्हें आलिङ्गन
लिया। तब उन्होंने नेत्र उघारे और उसे अपनी प्रिया के रूप में देख यह
समझ गया," इतना कह हँसकर उसे गले लगा लिया। अब तो
लज्जा पेड़ पर जा बैठी, अपना रूप प्रगट कर वह बोली, "आर्य्यपुत्र! मैंने
आपको अपना वर चुनकर ठहराया है सो अब आप मुझे ग्रहण करें।" इस
बातें सुन नरवाहनदत्त ने गान्धर्व विधि से उस कन्या का विवाह कर लि
प्रकार रातभर उसके साथ आनन्दपूर्वक बिताकर प्रातःकाल में उसके
के हेतु युक्ति से इस प्रकार कहने लगे,—"प्रिये! सुनो मैं तुमको
सुनाता हूं—

किसी तपोवन में ब्रह्मसिद्धि नामक कोई मुनि रहते थे, वे यथार्थ
ध्यान भी थे। उनके आश्रम के समीप गुफा में एक बूढ़ा

मे दिखाई जब दुह मे सबे पौर सब भैंसों के बीच बंधवा दिया, इतनेही
इस पापिनी को सन्तोष न हुआ ऊपर से उस महिषपान से नित्य उसे पिट
। भी करती थी ।

कुछ कालोपरान्त वहां पर एक महिष मोल लेने के अभिप्राय से घूमता
हुआ एक बनिया आया, सो उस कुरा ने तिर्यकत्व के कारण विवश हुए अपने
ति को उसके हाथ बेच दिया । वामदेव, एक तो भैंसा बना दिये जाने से यों
दुःखित था, ऊपर से अब बोझ लाद दिया गया अब तो उसके दुःख का थाहही
रहा । अस्तु, लादमूद के वह वणिक् उसे गङ्गा के तटवर्ती एक गांव में ले गया,
वामदेव सदा इसी बात की चिन्ता किया करता कि हाय मैं नारी का विश्वास
कर मारा गया, जिसका विश्वास स्त्री पर हो, और वह छिप २ कर दुराचार
करे तो उस पुरुष का कल्याण कब हो सकता है, वह भार्य्या नहीं किन्तु घर
अपना भुजङ्गी है । एक तो यह चिन्ता दूसरे ऊपर से भार ढोना, विचारा म
दिपरूप वामदत्त ऐसा सूख गया कि अङ्ग मे हड्डीही शेष रह गयी ।

वामदत्त इस अवस्था में पड़ अपना कर्मभोग भोग रहा था कि एक दिन
उसी योगिनी की दृष्टि उसपर पड़ गयी, वह अपने योगबल से समझ गयी
कि यह मनुष्य से भैंसा बना दिया गया है, इससे उसके हृदय मे दया का संचार
हुआ सो उसने जल अभिमन्त्रित कर उसपर छिड़का और महिषयोनि से उसे
मुक्त किया । जब वामदत्त अपना मनुष्य रूप पा चुका तब दयामयी योगिनी ने
अपने घर लेजाकर निज कन्या कान्तिमती का विवाह उससे करा दिया ।
विवाह हो जाने के उपरान्त योगिनी ने उससे कहा कि पुत्र ! लो मैं तुम्हें ये
अभिमन्त्रित सरसों देती हूं, इन्हें लेजाकर अपनी पहिली भार्य्या पर छिड़को
बस वह दुष्टा उसी क्षण घोड़ी हो जायगी । इतना कह योगिनी ने उसे अभि
मन्त्रित सरसों दे दिये ।

अब तो वामदत्त के आनन्द का ठिकानाही न रहा, वह सरसों तथा अपनी
नवीन भार्य्या कान्तिमती को लेकर अपने घर की ओर चला और थोड़ेही समय
के उपरान्त घर पहुँच गया । घर पहुँचतेही उसने पहिले महिषपाल को मार
डाला पश्चात् सरसों छिड़क अपनी भार्य्या को घोड़ी बनाय घोड़शाला में बांध

वत्सेश्वरात्मज से इस प्रकार सुनकर वह दिव्य कन्या बोली, "आर्यपु
तो ऐसीही है, इसमें किञ्चिन्मात्र सन्देह नहीं है। आपके कहने का अभि
मैं जान गयी, अब मुझसे भी एक कथा सुनिये।"

कन्नौज में शूरदत्त नामक एक ब्राह्मण रहता था, वहां के राजा बा
उसे बहुत मानते थे, और (जिनके प्रभाव से) वह विप्र सौ ग्रामों का स्वा
था। उसकी भार्य्या वसुमती नाम्नी थी जोकि अपने पति को देवता के तुल्य
नती थी। उस वसुमती से ब्राह्मण के एक पुत्र, अति सुन्दर, उत्पन्न हुआ जिस
नाम ब्राह्मण ने वामदत्त रक्खा। पिता का प्यारा वह वाम थोड़ेही समय में स
विद्याओं का पारङ्गत हो गया तब उसने शशिप्रभा नाम्नी एक कन्या से
विवाह किया। काल पाकर उसका पिता परलोक को सिधारा और उसकी मा
अपने पति की अनुगामिनी हुई। अब वामदत्त अपनी भार्य्या के साथ गार्ह
में प्रवृत्त हुआ। उसकी पत्नी उसके अनजानते स्वेच्छाचारिणी हो गयी, दै
किसी शाकिनी को सिद्ध कर उस कुलटा ने वर भी प्राप्त कर लिया।

एक समय की बात है जब कि वह राजसेवा वश सैन्य में अपने कार्य पर
युक्त था कि उसका चाचा घर से आया और एकान्त में उससे इस प्रकार क
लगा – "पुत्र! हमारा कुल तो नष्ट न हुआ, तेरी भार्य्या तेरेही मदिपपान के सा
असत् सम्बन्ध रखती है, यह व्यापार मैं अपनी आंखों देख आया हूं।" चाचा
ऐसी बात सुनतेही वामदत्त हाथ में खड्ग ले उठ खड़ा हुआ और उसे अपने
नियुक्त कर झटपट अपने घर आया और पुष्पवाटिका में छिप रहा कि छिपे
सब व्यापार देखें इतने में रात हुई और मदिपपानक आ पहुंचा। थोड़ीही दे
उसकी पत्नी उपपति से रति करने के हेतु नाना प्रकार के पकवान लेकर
। पहुंची। जब वह खा पी के मुदित हुआ तब वह कुलटा उसके संग पलंग प
इधर आनन्द करने लगी। यह देखतेही वामदत्त तलवार खींचकर यह कह
दौड़ा कि, "हे पापिष्ठो अब कहां जाते हो।" इतना सुनतेही उसकी स्त्रि
र देखे तो उसका पतिही है; झट वह बोल उठी "दूर हो कपटी
नता कह उस दुष्टा ने उसके मुंहपर धूलि फेंकी, तत्क्षणही वह
। गया; परन्तु वामदत्त को स्मृति तब भी

लाभ करो तुमको धैर्य का अवलम्बन करना चाहिये क्योंकि धैर्यही से सब कुछ मिलता है, इससे कहता हूं कि धीरज धरो । मृगाङ्कदत्त की कथा तो तुमने न सुनी होगी, चलो मेरे आश्रम पर मैं तुमको उसकी कथा सुनाऊँगा ।" इस प्रकार कहकर मुनि ने स्नान किया तदुपरान्त वह नरवाहनदत्त को अपने आश्रम में ले गये । वहां पहुंच कर महर्षि ने अति शीघ्र आह्निक क्रियायें कीं, तत्पश्चात् फल से नरवाहनदत्त का आतिथ्य किया और आप भी कुछ फल खाये । इस प्रकार सब क्रियाओं से सुचित्त हो पिशङ्गजट मुनि नरवाहनदत्त को कथा सुनाने लगे ।

तीनों भुवनों में उजागर अयोध्या नाम्नी एक नगरी है वहां पूर्वकाल में राजा अमरदत्त राज्य करते थे राजा बड़े तेजस्वी थे । जिस प्रकार वह्नि की भार्य्या स्वाहा वैसेही उनकी महिषी सुरतप्रभा थीं, रानी सदा अपने पति के अनुकूल रहतीं । उन्हीं रानी से राजा के एक पुत्र हुआ जिसका नाम मृगाङ्कदत्त पड़ा, राजकुमार अपने पिता के कोदण्ड (१) के समान नत हुए । जैसे कोदण्ड, कोटि (२) पर गुण के (३) पहुँच जाने से झुक जाता है वैसेही राजकुमार कोटि (४) गुण (५) प्राप्त कर नत (६) हो गये (७) । राजकुमार के निज दस मन्त्री थे; उनके

(१) धनुष ।

(२) धनुष की छोर "कोटि" कही जाती है ।

(३) धनुष की डोरी अथवा और कोई भी डोरी हो, वह "गुण" नाम से ख्यात है ।

(४) इस स्थल पर "कोटि" शब्द का अर्थ है "करोड़ ।"

५ इस स्थान पर "गुण" शब्द का अर्थ है "सद्गुण," अर्थात् उत्तमोत्तम मानव गुण ।

(६) नत = नम्र = शील सम्पन्न ।

(७) यहां श्लेषालङ्कार है । भावार्थ यह है कि जिस प्रकार प्रत्यञ्चा के चढ़ाने पर धनुष झुक जाता है उसी प्रकार करोड़ों अर्थात् अगणित सद्गुण प्राप्त कर राजकुमार नम्र हो गये । कहाही है "भवन्ति नम्रास्तरवः फलागमैः" अर्थात् वृक्ष जब फलों से लद जाते हैं तब झुक जाते हैं । ऐसेही गुण प्राप्त कर साधुजन नम्र हो जाते हैं । गुणवानों का लक्षण नम्रताही है ।

दूसरा तरङ्ग।

अब नरवाहनदत्त उस नवीन भार्य्या ललितलोचना को पाय, उस मलयाचल पर जहां कि वसन्त के प्रसार से अधिक अपूर्व्व ही छटा विद्यमान हो रही थी अपनी प्रिया के संग वनस्थानों में विहार करने लगे।

एक दिन की बात है कि उनकी प्रिया वन में फूल चुन रही थी, सो चुनते चुनते क्रमशः गहन जंगल में जा पड़ी और उनकी दृष्टि से बहिर्भूत हो गयी। इधर नरवाहनदत्त भी भ्रमण करते हुए एक सरोवर पर पहुंचे जिसका जल ऐसा निर्मल था, तीर के वृक्षों से जो फूल गिरे थे उनके द्वारा उसकी ऐसी शोभा थी जैसे तारागण से शोभायमान आकाश। नरवाहनदत्त उस उत्तम सरोवर को देख बड़े प्रहृष्ट हुए और अपने मनमें सोचने लगे कि जबलों मेरी प्रिया फूल चुनकर आवे इस बीच में मैं इस सरोवर में स्नान कर तीर पर बैठकर कुछ विश्राम करूं। इस प्रकार विचार कर उन्होंने स्नान किया तदुपरान्त सन्ध्यावन्दनादि तथा देवार्चन कर चन्दनतरु की शीतल छाया में एक शिला पर आसन लगाया।

जबकि वह शिला पर बैठे थे, उसी समय राजहंसिनियां वहां दीख पड़ीं, उधर आम की डालियों पर कोयलों की कुहुक सुन पड़ी, पुनः सामने हरिणियां आईं, इन दृश्यों से उन्हें हंसगामिनी, पिकबयनी, हरिणाक्षी प्यारी मदनमञ्चुका का स्मरण हो आया। प्रियतमा का बहुत दिनों से बिछोह हो गया था, तथा इतनी दूर पर आ पड़े हैं पुनः परवश पड़जाने से न जाने कब वहां आना हो। इतनी बातें तो एक ओर रहीं अब, प्रियतमा का जो स्मरण हुआ तो कामाग्नि धधक उठी इससे वह मूर्छित हो गये।

इसी अवसर में पिशङ्गजट नामक एक मुनिपुंगव वहां स्नान करने आये देखते हैं तो राजकुमार शिला पर मूर्छित पड़े हैं, यह देख उन्हें दया आयी सो उन्होंने उनपर चन्दनजल छिड़का, जिससे नरवाहनदत्त को प्रियास्पर्श का सा सुख बोध हुआ सो वह चैतन्य हो उठ बैठे, देखें तो सम्मुख मुनीश्वर खड़े हैं। देखतेही वह ऋषि के चरणों पर गिर पड़े। मुनि अपनी दिव्यदृष्टि से सब समझ गये; तब नरवाहनदत्त से इस प्रकार कहने लगे—"पुत्र [illegible] म कि तुम जानना चाहो

[बु]लाया और उन्हें सारी कथा सुना दी पश्चात् उनसे कहा कि सुनो, आज मैंने जो [ए]क स्वप्न देखा है।

मुझे ऐसा भासा कि हम सब लोग किसी घने जंगल में गये हैं, सो चलते २ [प्य]ास के मारे हम लोगों के कण्ठ सूख गये; बड़ी कठिनता से हम लोग एक जला[श]य पर पहुंचे, ज्योंही कि हम लोग पानी पीने चले है त्योंही उसमें से पांच श[स्त्र]धारी पुरुष निकले और हमें जल पीने से रोकने लगे। उन पांचों को मार कर [ह]म फिर पानी पीने चले, बस न तो वे पुरुषही दीख पड़े और न जलाशय; सब न [ज]ानें क्या हो गये। पिपासा से हम लोगों की दशा बड़ी ही बुरी हो गयी थी [ज]िसका वर्णन नहीं हो सकता। इतने में अकस्मात् शशाङ्कोज्ज्वल भगवान् शङ्कर [वृ]षभ पर चढ़े हमारे सम्मुख आ विराजे। हम लोगों ने झुक कर महेश्वर को [प्र]णाम किया, तब भगवान् ने अपने दक्षिण नेत्र से आंसू की एक बूंद पृथ्वी पर [ट]पका दी जिससे वहां एक समुद्र हो गया, उसमें से मोतियों की एक माला निकाल कर मैंने अपने गले में पहिन लियो और तदुपरान्त मनुष्य की खोपड़ी जिस में कि लहू लगा था। मैं वह समुद्र पी गया इतने ही में मेरी निद्रा टूट गयी [औ]र साथही विभावरी भी बीत गयी।

इस प्रकार मृगाङ्कदत्त जब अपना अद्भुत स्वप्न सुना चुके तब उस अनोखे स्वप्न के श्रवण से उनके समस्त मन्त्री बड़े प्रमुदित हुए उस समय उनका मन्त्री विमल[ब]ुद्धि बोला "देव! आप धन्य हैं, कि जिन पर भगवान् शङ्कर का ऐसा अनुग्रह है; स्वप्न में जो आपने मोतियों की माला पाई और अम्बुधि का पान किया उसका फल यह होगा कि शशाङ्कवती को प्राप्त कर आप पृथ्वी का भोग करेंगे, यह आप निश्चय जान रखिये और जो कुछ आपने देखा है उसका फल कुछ अनिष्ट है।" जब विमलबुद्धि इतना कह चुका तब मृगाङ्कदत्त ने फिर अपने सब सचिवों से कहा कि यद्यपि मेरे स्वप्न का वैसाही फल होगा जैसा भीमपराक्रम ने वेताल से सुना है तथापि कर्मसेन को अपने बल (१) और दुर्ग (२) का जो बड़ा अभिमान है सो मुझे उचित है कि उसकी कन्या शशाङ्कवती को अपने बुद्धिबल से प्राप्त

(१) सैन्य, (२) गढ़।

नाम प्रचण्डशक्ति, स्थूलबाहु, विक्रमकेशरी, दृढ़मुष्टि, मेघबल भीमपराक्रम, विमलबुद्धि, व्याघ्रसेन, गुणाकर और विचित्रकथ । ये दशों सत्कुल में जन्मे थे, सब युवा, शूर, पण्डित और अपने प्रभु के हितैषी थे। राजकुमार मृगाङ्कदत्त दशों मन्त्रियों के संग पिता के भवन में बड़े सुख से रहते थे, अवस्था उनकी हो गयी थी तथापि उन्हें सदृशी भार्य्या न मिली।

एक समय की बात है कि उनका भीमपराक्रम नामक एक मन्त्री एक उनसे कहने लगा कि देव ! आज रात मुझपर जो घटना घटी है सुनिये वृत्तान्त मैं आपको सुनाता हूं। आज मैं अटारी पर सोया था तो अकस्मात् नींद टूट गयी, क्या देखता हूं कि वयसमान उग्र नखवाला एक सिंह मुझ झपटा है; मैं एक छूरा ले के उठा तब तो वह भाग चला मैं भी उसके पीछे आगे एक नदी मिली उसे वह पार कर गया मैं भी उसी के पीछे २ पार जब वह नदी पार पहुंचा तब जीभ निकाल खड़ा हो गया; मैंने उसकी वह जीभ अपने छूरे से काट ली। उसकी पृथ्वी क्या थी एक पुल का काम करती थी, उसी पर बैठ कर ज्योंही मैं नदी में इस पार आने पर मालूम हुआ कि मैं वह सिंह एक महा विकराल पुरुष हो गया। तब मैंने उससे पूछा कि कौन है ? इस पर उस पुरुष ने उत्तर दिया "हे वीर मैं वेताल हूं, तुम्हारी वीरता से मैं बड़ाही सन्तुष्ट हुआ हूं।" इतना सुनतेही मैंने फिर उससे एक प्रश्न कि भाई यदि यह बात है तब तो तुम बहुत कुछ जानते होगे भला यह तो लाओ कि मेरे प्रभु मृगाङ्कदत्त की भार्य्या कौन होगी। मेरा ऐसा प्रश्न सुन वेताल बोला "उज्जयिनी में कर्मसेन नामक राजा हैं; उनकी एक कन्या है, जिसके ... के आगे अप्सराएँ भी झख मारती हैं। उसको देखकर मन में यह भाव होती है कि मानों विधिना ने उसे सौन्दर्य्यसृष्टिकी निधान भूमि बना ... नाम उस राजकुमारी का शशाङ्कवती है, बस वही तुम्हारे प्रभु की भा... तुम्हारे प्रभु उसको प्राप्त कर पृथ्वी भर का राज्य करेंगे। इतना कह ... अन्तर्धान हो गया और मैं अपने घर चला आया, सो देव ! यही ... घटना है।

... से इतनी बातें सुन कर मृगाङ्कदत्त ने ... मन्त्रियों

प्यारा महावत क्या देखता है कि सो उसका सर्वस्व लेकर न जाने कहां चली
टी, सो वह उसकी खोज कर रहा था, इतने में अवसर पाय योगीश्वर रूप सबी
अपने अनुचरों को उसके पास भेजा । ज्योंही वे उसके घर पर पहुंचे तो क्या
खते हैं कि स्त्री और धन के न मिलने से हताश हो वह दुखिया विष खा गया
तब उन्होंने अपनी विद्या से उसका विष उतार दिया और कहा" आओ हमारे
क जी महाराज के पास चलो, वह बड़े ज्ञानी हैं और सब कुछ जानते हैं, अवश्य
अपने योगबल से तुम्हारा दुःख दूर कर देंगे " इतना कह वे उसे सबी योगीश्वर
i निकट ले गये । महावत वहां पहुंच कर क्या देखता है कि योगिराज ऐसे वि
राजमान हैं मानों मूर्त्तिमान् योगही समाधिस्थ है, सो वह उनके चरणों पर गिर
हा और गिड़गिड़ा कर बोला "योगिराज ! मुझ दीन पर दया कीजिये और
इ बतलाइये कि मेरी भार्य्या कहां चली गयी है ।" हस्तिपक की इतनी बात
न सखी ने झूट मूठ ध्यान लगाया और कुछ कालोपरान्त उससे कहा कि सुनो
त्र । तुम्हारी भार्य्या को रात के समय कुछ लोग अमुक २ स्थान में ले गये हैं,
ो तुम झट पट उद्योग करो तो मिल जायगी, अभी वह उसी स्थान में है । तद
नर वह हस्तिपालक योगिराज को प्रणाम कर सीधे थाने को चला गया वहां
कुछ सिपाहियों को ले कर उसने जाकर वह स्थान घेर लिया । उन पर
ापहारियों को उसने मार डाला और सब आभूषण और धनसहित अपनी
भार्य्या को प्राप्त किया ।

अब दूसरे दिन बड़े तड़के ही वह महावत मुनीश्वर के आश्रम (डेरे) पर पहुंचा
और प्रणाम कर बैठ गया, कुछ कालोपरान्त बड़ी नम्रता से बोला कि योगी-
श्वर मैं निमन्त्रण देने आया हूं; यदि आप आज इस दास के घर पधार कर वहां
ठन डालते तो दास पर आपकी बड़ी कृपा होती । कपटी मुनि बोला—"बचा
म तो रमते योगी ठहरे, घर द्वार त्याग योग साधन करते हैं फिर तुम्हारे घर
कैसे जा सकते हैं, और दिन में तो हम भोजन करते नहीं, रात्रि में जो कुछ मिला
अपने राम को भोग लगा प्रसाद पाते हैं ।" इतना सुन महावत बोला "अच्छा
महाराज ! मैं आपके लिये हाथीशाला में प्रबन्ध करूंगा और रात्रिही के समय
ही, पर प्रभु का अनुग्रह मुझ पर होना चाहिये इतना कह उसने रात्रि के समय
ाथीशाला में सब सामग्री जुटाई । सखी का तो यह इष्टही था सो

तक्षशिला पुरी में भद्राक्ष नाम के राजा थे, उनके कोई पुत्र न था; सो पुत्र-प्राप्ति की कामना से राजा लक्ष्मी देवी की पूजा करने लगे; वह प्रति दिन एक सौ आठ श्वेतपद्म खड्ग पर रख कर भगवती पद्मा को चढ़ाते थे। एक दिन की बात है कि राजा पूजा कर रहे थे और चुप चाप मनही मन फूल गिनते जाते थे कि दैवात् एक कमल घट गया सो महीपति ने घट अपना हृत्पद्म निकाल कर चढ़ा दिया। इस पर देवी बहुत प्रसन्न हुई उन्होंने वर दिया कि राजन्! तेरे सार्वभौम पुत्र होगा। तदुपरान्त राजा का शरीर अक्षत (२) कर भगवती वहीं अन्तर्हान हो गयीं।

कुछ कालोपरान्त राजा की पटरानी के पुत्र हुआ। हृत्पुष्कर चढ़ाने के प्रताप से वह पुत्र उत्पन्न हुआ था अत: राजा न उसका नाम पुष्कराक्ष रखा, राजकुमार होनहार थे, उनके लक्षण सब सुलक्षण थे। क्रमानुसार जब राजपुत्र युवा हुए तब नरनाथ ने उन्हें सद्गुणसम्पन्न देख राजासन पर अभिषिक्त कर दिया और आप वन का आश्रय लिया।

इधर पुष्कराक्ष भी राज्य का भार प्राप्त कर नीतिपूर्वक प्रजा का शासन करने लगे, उनका भी यह नियम था कि प्रति दीन अम्बिकापति भगवान् शङ्कर की पूजा करते। एक समय की बात है कि उन्होंने पूजन के अवसान में देवाधिदेव महादेव से प्रार्थना की कि हे प्रभो मुझे अनुकूल भार्या मिले। इतने में आकाशवाणी हुई कि पुत्र! जो कुछ तू चाहता है तेरी अभिलाषा पूरी होगी। इस प्रकार आकाशवाणी सुन राजा बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें भरोसा हुआ कि अब मुझे सदृशी भार्या अवश्य प्राप्त होगी।

एक समय की बात है कि राजा पुष्कराक्ष आखेट करने अरण्य में गये, वहां जाकर क्या देखते हैं कि भुजंग मिथुन संभोगसंसक्त है, और एक ऊंट उस जोड़े के भक्षण करने पर उद्यत है, यह देख उनको बड़ा शोक हुआ सो उन्होंने उस ऊंट को मार गिराया। इतनेही में वह ऊंट अपना वह शरीर त्याग दिया। पर

(१) हृत्पद्म निकालने से जो घाव हो गया था उसे देवी ने छू कर अच्छा कर दिया अत: राजा के शरीर में घाव न रह गया।

भोजन करने गया तब मन्त्रबल से बांस की एक छड़ी में एक सांप भर लेता था
वहां पहुंच कर मंत्री ने अपने अनुचरों के साथ उत्तमोत्तम पक्वान्न भोजन किये।
जब हस्तिपाल चला गया और सब लोग सो गये तब मन्त्री ने बांस की वह छड़ी
सोते हुए भद्रदन्त नामक उस हस्ती के कान में डाल दी, रात बिता कर सवेरे
तो अपने अनुयायियों के साथ मगध की ओर चला और उधर वह हाथी सोता
रह गया । इस प्रकार राजा धर्मगोप का दर्प मानों, जब वह गजेन्द्र मार कर
मन्त्री लौट कर आ गया तब राजा भद्रबाहु बड़ेही आनन्दित हुए।

अब राजा भद्रबाहु ने वाराणसीश्वर धर्मगोप के पास एक दूत भेजा और
उनकी कन्या अनङ्गलीला की याचना की । राजा धर्मगोप का बल तो हाथी
के मर जाने से टूटही गया था, वह अब क्या कर सकते थे, अगत्या उन्होंने अपनी
कन्या अनङ्गलीला का विवाह मगधेश्वर भद्रबाहु से कर दिया। ठीकही है काल
चक्र के जाननेवाले राजा लोग कुसमय में बेतसी (१) वृत्ति का अवलम्बन कर
लेते हैं।

इतनी कथा सुनाय राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों से पुनः कहने लगे
कि सुना न, इस प्रकार मन्त्री मन्त्रगुप्त की प्रज्ञा के द्वारा महीपति भद्रबाहु ने
अनङ्गलीला को प्राप्त किया, उसी रीति से मैं भी अपनी बुद्धि के प्रभाव से शशा-
ङ्कवती को प्राप्त करूंगा। राजकुमार का ऐसा कथन सुन उनका मन्त्री विचित्र-
कथ बोला "देव ! स्वप्न में भगवान् शङ्कर ने जैसा अनुग्रह आप पर किया है
उसके प्रभाव से आपके सब कार्य्य सिद्ध हो जायेंगे; देवताओं का प्रसाद अमोघ होता
है भला उससे क्या नहीं सिद्ध हो सकता । सुनिये इसी विषय में आपको एक
कथा सुनाता हूं।

ी गया और अति प्रसन्न हो पुष्कराक्ष से कहने लगा "राजन्! आपने मेरा बड़ा पकार किया, सो अब जो मैं कहता हूं उसे आप ध्यान देकर सुनिये।"

रश्मिमाली नामका एक अति श्रेष्ठ विद्याधर है, उसका रूप निरख तारावली ाम एक विद्याधरकन्या मोहित हो गयी सो उसने उस तरुण को स्वयं अपना ति वरण कर लिया। इन दोनों का जो परस्पर निज इच्छा से विवाह हो गया स बात से तारावली के पिता बड़ेही कुपित हुए, उन्होंने चट शाप देही तो दिया ि तुम दोनों ने बिना मेरी सम्मति के जो विवाह कर लिया इससे कुछ काल र्यन्त तुम दोनों का वियोग रहेगा इसके उपरान्त तारावली और रश्मिमाली उन ापनी भूमियों में आनन्दपूर्वक विहार करने लगे।

एक समय को बात है कि उस शाप का प्रभाव आ पड़ा, और जब वे दोनों न विहार करते थे कि अकस्मात् देखतेही देखते एक दूसरे की दृष्टि से तिरो- हित हो गये और बहुत दूर बनान्तर में जा पड़े, इस प्रकार दम्पती का वियोग ो गया। तारावली अपने प्राणेश्वर का अन्वेषण करती बड़ी दूर पश्चिम समुद्र े उसपार एक बन में जा पहुंची जहां सिद्ध और महर्षियों के आश्रम थे। वहां र उसे फूला हुआ जामुन का एक विशाल पेड़ दिखाई पड़ा जिस पर भ्रमर ाधुर २ गुंज रहे थे, जिस से यह भावना हुई मानों वह वृक्ष प्रीति वश उसको ाश्वासन दे रहा है। तारावली थक तो गयी ही थी, विश्राम किया ही चाहती ी, इधर प्रसूनों का मधुर सौरभ मिला सो वह बटमुही का रूप धारण कर क कुसुम पर जा बैठी और मधुपान करने लगी। वह रसपान करही रही थी के थोड़ेही काल के उपरान्त उसका पति रश्मिमाली भी उसे ढूढ़ता ढांढ़ता वहीं ा पहुंचा। बहुत दिनों का बिछुड़ा पति जो दृष्टिगोचर हुआ इस से तारावली के र्ष को सीमा न रही; आनन्द के वेग से उसका वीर्य स्खलित हो गया और वह ुष्प पर गिर पड़ा। तारावली झट पट अपना भृङ्गीवपु त्याग अप- पति रश्मिमाली े आ मिली जैसे ज्योत्स्ना चन्द्र से मिले। तदनन्तर दोनों अति प्रफुल्लित हो आनन्द नाते अपने निकेत चले गये।

इधर तारावली का वीर्य जिस कुसुम पर गिरा था उससे एक फल हुआ, उस फल के भीतर काल योग से एक कन्या हो गयी। ठीक है, दिव्य लोगों का वीर्य

रहता था, उसकी पत्नी का नाम विद्युल्लेखा था जो बड़ी साध्वी थी । दैवात् एक रात उसके घर में चोर पैठे, शस्त्रों से उसे घोर रूप से आहत कर उसका सर्वस्व धन हर ले गये। वह दीन दुखिया अब क्या करे, पास में एक कौड़ी नहीं, शरीर आघातों से ऐसा जर्जरित और मर्मरित हुआ कि उठना बैठना कठिन, कुछ अर्जन करना भला कहां। अब वह अति दुःखित हो अपनी भार्य्या के साथ निकल खड़ा हुआ कि चलो कहीं आग में जल मरें। दोनों चले जा रहे थे तो क्या देखते हैं कि आकाश में हंस का एक अति सुन्दर जोड़ा उड़ा चला जा रहा है । उनका चित्त उन्हीं हंसों में लुभाय गया, उसी अवसर पर दोनों स्त्री पुरुष आग में जल कर मर गये। शास्त्र में कहा ही है कि मरते समय मनमें जो भावना होती है जन्मान्तर में वही भुगतनी पड़ती है, बस इसी कारण उन दोनों को हंसयोनि में जन्म लेना पड़ा वहां भी दोनों पति पत्नी हुए। किसी समय दोनों एक खजूर के पेड़ पर अपने नीड़ में बैठे थे, वर्षाऋतु थी, रात्रि का समय था कि प्रचण्ड वायु चला जिससे वह पेड़ जड़ से उखड़कर बड़ी दूर पर जा गिरा और उन दोनों का वियोग हो गया। प्रातःकाल जब अन्धड़ शान्त हुआ तब वह हंस अपनी हंसिनी की खोज मे निकला पर कहीं उसका पता न लगा। तब वह मानसरोवर की ओर चला क्योंकि हंसों का वहीं पक्का अड्डा है, उसे यह आशा थी कि कदाचित् मेरी प्रिया वहां मिल जाय । सो कामदेव से अति पीड़ित हो वह मानसरोवर को प्रस्थानित हुआ; मार्ग में उसे एक हंसी मिली उसने भरोसा दिलाया कि वहां जाने से तुम अवश्य उसे पाओगे। वहां उसने अपनी प्रिया को पाया और वर्षाकाल वहीं बिताया । इसके पश्चात् एक गिरिशृङ्ग पर गया कि उसके साथ वहां एकान्त में आनन्दपूर्वक निर्द्वन्द विहार करे। भाग्य की बात वहां किसी बहेलिये ने उसकी हंसिनी मार ली, यह देख उसके मनमें बड़ा शोक हुआ और भय भी व्यापा कि कहीं मेरे भी प्राण न जांय इससे वह ताबड़तोड़ वहां से उड़ भागा। अब वह लुब्धक उस मरी हंसी को लेकर चला, थोड़ीही दूर गया होगा कि दूर पर बहुत से शस्त्रधारी पुरुष दीख पड़े जो उसी ओर चले आ रहे थे । उन्हें देख बहेलिये ने अपने मनमें विचारा कि बस ये आकर मुझसे हंसी छीन लेंगे । ऐसा विचारकर उसने छुरी से कुछ घास काटी और उसके भीतर रखकर हंसी को छिपा

न था। वहां स्नान कर वह भगवती के मन्दिर में गये और जगज्जननी को दण्डवत कर स्तुति करने लगे। वहां कोई वीणा रख गया था उसे बड़े आदर से उतारकर बजाने और महामाया की स्तुति गाने लगे। इस प्रकार अम्बिका के समक्ष भजन कर वहीं मन्दिर में सो रहे, जगदम्बा उनके गाने बजाने से बड़ी सन्तुष्ट हुई सो उन्होंने अपने भूतगणों के द्वारा उन्हें सोतेही सोते समुद्र के उस पार पहुँचवा दिया। प्रातःकाल जब राजा पुष्कराक्ष जागे तो क्या देखते हैं कि समुद्र के किनारे वनान्तर में पड़े हैं। उनको इस बात से बड़ाही आश्चर्य हुआ कि मैं सोया तो था दुर्गाजी के मन्दिर में अब यहां वनमें कैसे आ गया। अस्तु महामाया की माया का पार नहीं ऐसा विचार वह उठे और अरण्य में विचरने लगे, घूमते घूमते एक आश्रम में पहुँचे जहां फलों से लदे वृक्ष ऐसे प्रतीत होते थे मानों बड़ी नम्रता से आतिथ्य कर रहे हैं; पत्तों के झंकार से ऐसी भावना होती थी मानों वे पादप स्वागत कर रहे हैं। महाराज पुष्कराक्ष आश्रम के भीतर गये, जाकर देखते हैं तो शिष्यमण्डली के मध्य मुनि विराजमान हैं। उनके समीप जाय राजा ने उनके चरण गह प्रणाम किया, मुनि तो सिद्ध पुरुष थे ही सब समझ गये; उनका आतिथ्य सत्कार कर बोले—"पुष्कराक्ष! जिसके हेतु तुम यहां आये हो वह विनयवती, अभी क्षण भर हुआ है कि समिधा लेने गई है सो तुम बैठकर थोड़ा विश्राम करो; राजन्! वह तुम्हारी पूर्वभार्या है सो तुम उसका विवाह आजही कर लो"। मुनि की ऐसी बात सुन महाराज पुष्कराक्ष विचारने लगे, "बड़े भाग्य की बात है, अरे! यह तो वही मुनि विजितासु हैं और वही वन भी है। मैंने ठीकही कहा कि महामाया की माया अपरम्पार है, बस अब मुझको निश्चय हो गया कि भगवतीने ही मुझे महासागर के पार किया। अब यहां एक और आश्चर्य की बात सुनने में आई; मुनि कहते हैं कि वह मेरी पूर्व भार्या है यह भी एक बड़ी विचित्र बात है।" इस प्रकार विचार कर उन्होंने महर्षि से पूछा, "भगवन्! यह जो आपने कहा कि यह तुम्हारी पूर्व भार्या है सो कैसे? कृपाकर इसका वृत्तान्त सुना मेरा कौतूहल शान्त कीजिये।" तब मुनि बोले, "यदि तुम्हें बड़ा कौतुक है तो सुनो मैं तुमको इसका वृत्तान्त सुनाता हूं।"

पूर्वकाल की बात है कि ताम्रलिप्ती नगरी में धर्मसेन नामक एक बनिया

रहता था, उसकी पत्नी का नाम विद्युन्प्रभा था जो बड़ी साध्वी थी । दैवात् एक रात उसके घर में चोर पैठे, शस्त्रों से उसे घोर रूप से आहत कर उसका सर्वस्व धन हर ले गये। वह दीन दुखिया अब क्या करे, पास में एक कौड़ी नहीं, शरीर आघातों से ऐसा जर्जरित और मर्मरित हुआ कि उठना बैठना कठिन, कुछ अर्जन करना भला कहां! अब वह अति दुःखित हो अपनी भार्य्या के साथ निकल खड़ा हुआ कि चलो कहीं आग में जल मरें। दोनों चले जा रहे थे तो क्या देखते हैं कि आकाश में हंस का एक अति सुन्दर जोड़ा उड़ा चला जा रहा है । उनका चित्त उन्हीं हंसों में लुभाय गया, उसी अवसर पर दोनों स्त्री पुरुष आग में जल कर मर गये। शास्त्र में कहा ही है कि मरते समय मनमें जो भावना होती है जन्मान्तर में वही भुगतनी पड़ती है, बस इसी कारण उन दोनों को हंसयोनि में जन्म लेना पड़ा वहां भी दोनों पति पत्नी हुए। किसी समय दोनों एक खजूर के पेड़ पर अपने नीड़ में बैठे थे, वर्षाऋतु थी, रात्रि का समय था कि प्रचण्ड वायु चला जिससे वह पेड़ जड़ से उखड़कर बड़ी दूर पर जा गिरा और उन दोनों का वियोग हो गया। प्रातःकाल जब अन्धड़ शान्त हुआ तब वह हंस अपनी हंसिनी की खोज में निकला पर कहीं उसका पता न लगा। तब वह मानसरोवर की ओर चला क्योंकि हंसों का वहीं पक्का अड्डा है, उसे यह आशा थी कि कदाचित् मेरी प्रिया वहां मिल जाय । सो कामदेव से अति पीड़ित हो वह मानसरोवर को प्रस्थानित हुआ; मार्ग में उसे एक हंसी मिली उसने भरोसा दिलाया कि वहां जाने से तुम अवश्य उसे पाओगे। वहां उसने अपनी प्रिया को पाया और वर्षा-काल वहीं बिताया । इसके पश्चात् एक गिरिशृङ्ग पर गया कि उसके साथ वहां एकान्त में आनन्दपूर्वक निर्द्वन्द्व विहार करे। भाग्य की बात वहां किसी बहेलिये ने उसकी हंसिनी मार ली, यह देख उसके मनमें बड़ा शोक हुआ और भय भी व्यापा कि कहीं मेरे भी प्राण न जांय इससे वह ताबड़तोड़ वहां से उड़ भागा। अब वह लुब्धक उस मरी हंसी को लेकर चला, थोड़ीही दूर गया होगा कि दूर पर बहुत से शस्त्रधारी पुरुष दीख पड़े जो उसी ओर चले आ रहे थे । उन्हें देख बहेलिये ने अपने मनमें विचारा कि बस ये आकर मुझसे हंसी छीन लेंगे । ऐसा विचारकर उसने छुरी से कुछ घास काटी और उसके भीतर रखकर हंसी को छिपा

ङ था। वहां स्नान कर वह भगवती के मन्दिर में गये और जगज्जननी की दण्डवत् कर स्तुति करने लगे। वहां कोई वीणा रख गया था उसे बड़े आदर से उतारकर बजाने और महामाया की स्तुति गाने लगे। इस प्रकार अम्बिका के समक्ष भजन कर वहीं मन्दिर में सो रहे, जगदम्बा उनके गाने बजाने से बड़ी सन्तुष्ट हुईं सो उन्होंने अपने भूतगणों के द्वारा उन्हें सोतेही सोते समुद्र के उस पार पहुँचवा दिया। प्रातःकाल जब राजा पुष्कराक्ष जागे तो क्या देखते हैं कि समुद्र के किनारे वनान्तर में पड़े हैं। उनको इस बात से बड़ाही आश्चर्य हुआ कि मैं सोया तो था दुर्गाजी के मन्दिर में अब यहां वनमें कैसे आ गया। अस्तु महामाया की माया का पार नहीं ऐसा विचार वह उठे और अरण्य में विचरने लगे, घूमते घूमते एक आश्रम में पहुँचे जहां फलों से लदे वृक्ष ऐसे प्रतीत होते थे मानों बड़ी नम्रता से आतिथ्य कर रहे हैं; पक्षों के झंकार से ऐसी भावना होती थी मानों वे आदर स्वागत कर रहे हैं। महाराज पुष्कराक्ष आश्रम के भीतर गये, जाकर देखते हैं तो शिष्यमण्डली के मध्य मुनि विराजमान हैं। उनके समीप जाय राजा ने उनके चरण गह प्रणाम किया, मुनि तो सिद्ध पुरुष थे ही सब समझ गये; उनका आतिथ्य सत्कार कर बोले—"पुष्कराक्ष! जिसके हेतु तुम यहां आये हो वह विनयवती अभी क्षण भर हुआ है कि समिधा लेने गई है सो तुम बैठकर थोड़ा विश्राम करो; राजन्! वह तुम्हारी पूर्वभार्या है सो तुम उसका विवाह आजही कर लो"। मुनि की ऐसी बात सुन महाराज पुष्कराक्ष विचारने लगे, "बड़े भाग्य की बात है, अरे! यह तो वही मुनि विजितासु हैं और वही वन भी है। मैंने ठीकही कहा कि महामाया की माया अपरम्पार है, बस अब मुझको निश्चय हो गया कि

करने लगे। इतने में वह दास भी माला लेकर हंसों के लोभ से वहां आया, जहां वह पुरुष अपनी माला की खोज कर रहा था। पुरुष ने देखा कि धीवर माला लिये है सो उसने डांट डपट के उससे अपनी माला ले ली और ऊपर से उसका दहिना हाथ भी अपनी खड्ग से काट डाला।

एक समय दोनों हंस मध्याह्नकाल में कमल के एक पत्ते का छाता लगाये आकाश में विचर रहे थे; कुछ काल में वे दोनों खग एक नदी के किनारे पहुंचे जहां बैठे हुए एक मुनि, भगवान् धूर्जटि की पूजा कर रहे थे। उसी समय उन दोनों पक्षियों को किसी व्याध ने एकही बाण से मार गिराया, विहङ्ग तो भूमि पर गिर पड़े परन्तु वह छत्र-कमल जो वे लिये जा रहे थे उस शिवलिङ्ग के मस्तक पर गिरा जिसकी पूजा वह मुनीश्वर कर रहे थे। व्याध ने उन दोनों पक्षियों को देख हंस को तो अपने लिये रख लिया और हंसी मुनि को दे दी मुनि ने भी उस हंसिनी को शिव पर चढ़ा दिया।

इतनी कथा सुनाय मुनि विजितासु बोले—"पुष्कराक्ष! तुम वही हंस हो, महादेवजी के मस्तक पर जो वह कमलपत्र गिरा उसी के प्रभाव से तुम इस जन्म में राजा के वंश में जन्मे, और यह जो विनयवती है सो वही हंसिनी है, यह जो विद्याधर की योनि में जन्मी इसमें विशेष कारण यह पड़ गया कि उस हंसी रूपी देह कमल से भगवान् शङ्कर की पूजा की गयी थी। सो इस प्रकार विनयवती तुम्हारी पूर्वभार्या है।"

मुनि का ऐसा कहना सुन राजा पुष्कराक्ष ने फिर प्रश्न किया कि भगवन्! कृपाकर मेरा यह संशय भी दूर कर दीजिये, अग्निदेव तो ऐसे हैं न कि सब प्रकार के पातक समुदाय भस्म कर डालते हैं, सो हम दोनों तो उसमें जल मरे सो हमारे सब पाप भी जल चुके फिर हमारा जन्म पक्षियोनि में कैसे हुआ? इस पर मुनि बोले,—"सुनो पुत्र, अन्त समय जिसकी मनमें जो भावना रहती है उसी के अनुसार उसका जन्म होता है। इस विषय में तुम्हें एक कथा सुनाता हूं।"

पूर्वकाल की बात है कि उज्जयिनी नगरी में मालवकमधारी नाम्नी एक भि-क्षिकी ब्रह्मचारिणी ब्राह्मणी रहती थी। एक समय उसकी दृष्टि [illegible] एक ब्राह्मणकुमार पर पड़ी, उस युवा को देख उसकी बुद्धि [illegible] और वह

दिया। जब सब पुरुष चले गये और वह व्याध आकर घास हटाने लगा तो देखतेही देखते वह हंसिनी आकाश में उड़ गयी, जो घास उसने काट के पर रक्खी थी उसमें कोई मृतसञ्जीवनी जड़ी थी जिसके रस से हंसी जी उठी, घास हटातेही उड़ गयी; विचारा बहेलिया अपना सा मुंह लिये रह गया।

उधर उसका पति हंस एक सरोवर पर जाकर वहांके हंसोंके बीच रहने लगा, उसे सदा अपनी भार्य्या की चिन्ता बनी रहती, रात दिन वह उसी के ध्यान में डूबा रहता। इतने में एक धीवर वहां आया देखे तो सरोवर के तट पर बहुत से हंस कलरव कर रहे हैं. सो उसने उनपर जाल फेंककर सभों को फँसा लिया। जब सब हंस जाल में पड़ गये तब वह मछुआ किनारे बैठकर अपना भोजन करने लगा। इसी अवसर में वह हंसी अपने पति को खोजती हुई वहीं आ पहुंची, देखे तो प्राणेश्वर जाल में पड़े हैं, यह देखतेही विचारी अति विकल हो चहुँओर विलोकने लगी। उसी समय उसकी दृष्टि एक ओर पड़ी कि एक पुरुष अपने कपड़े उतार तीर पर रख उनके ऊपर अपनी रत्नमाला धर सरोवर में जाकर स्नान कर रहा है। बस चुपके से माला चोंच से उठाय धीवर को दिखाती वह हंसी धीरे उड़ चली। अब वह दास भी माला के लोभ में पड़ अपनी लकुटी उठाय हंसी के पीछे दौड़ा, उसे पूरा भरोसा था कि हंस तो जाल में फँसही चुके हैं अब जांयगे कहां, सो उनकी कुछ चिन्ता न कर अब वह माला लेने चला। हंसिनी बड़ी बुद्धिमती थी, वह ऐसे वेग से भी न उड़ती थी कि दृष्टि के बाहर हो जाय और न ऐसी धीमी थी कि धीवर चटपट लाठी मार पकड़ ही ले। हंसी उड़ती उड़ती एक बड़े ऊंचे पहाड़ पर चढ़ गयी और वहां एक टीले पर उसने वह माला रख दी। धीवर देखताही रहा कि हंसिनीने माला कहां रक्खी है सो वह उसके लोभ से पहाड़ पर चढ़ने लगा। इधर हंसी अति शीघ्र वहां आ पहुंची जहां उसका पति जाल में फँसा था। वहां इक्ष पर एक वानर सो रहा था हंसी ने आकर धीरे से उसकी आंख में चोंच मार दी बस वह कपि घबड़ा के उठा और हंसों के जाल पर टूट पड़ा और स्वभाववश उसने जाल छिन्नभिन्न कर डाला इससे सब ह .निकल भागे। अब दोनों पति पत्नी मिले, दोनों ने अपना २ वृत्तान्त कह सुनाया, इसके उपरान्त वे दोनों प्रहृष्ट मन हो यथा-काम विहार

लगी। इतने में वह दास भी माला लेकर इंसों के लोभ से वहां आया, जहां पुरुष अपनी माला की खोज कर रहा था। पुरुष ने देखा कि धीवर माला है सो उसने डांट डपेट के उससे अपनी माला ले ली और ऊपर से उसका ना हाथ भी अपने खड्ग से काट डाला।

एक समय दोनों हंस मध्याह्नकाल में कमल के एक पत्ते का छाता लगाये काश में विचर रहे थे; कुछ काल में वे दोनों खग एक नदी के किनारे पहुँचे हां बैठे हुए एक मुनि, भगवान् धूर्जटि की पूजा कर रहे थे। उसी समय उन नों पक्षियों को किसी व्याध ने एकही बाण से मार गिराया, विहङ्ग तो भूमि गिर पड़े परन्तु वह छत्र-कमल जो वे लिये जा रहे थे उस शिवलिङ्ग के मस्तक गिरा जिसकी पूजा वह मुनीश्वर कर रहे थे। व्याध ने उन दोनों पक्षियों को ह हंस को तो अपने लिये रख लिया और हंसी मुनि को दे दी मुनि ने भी उस सिनी को शिव पर चढ़ा दिया।

इतनी कथा सुनाय मुनि विजितासु बोले—"पुष्कराक्ष! तुम वही हंस हो, हादेवजी के मस्तक पर जो वह कमलपत्र गिरा उसी के प्रभाव से तुम इस जन्म राजा के वंश में जन्मे, और यह जो विनयवती है सो वही हंसिनी है, यह जो वद्याधर की योनि में जन्मी इसमें विशेष कारण यह पड़ गया कि उस हंसी रूपी वेत कमल से भगवान् शङ्कर की पूजा की गयी थी। सो इस प्रकार विनयवती तुम्हारी पूर्वभार्या है।"

कामाग्नि से जलने लगी। उधर अपना नियम भी न तोड़ सके इधर असह्य वेदना सही न जाय, इससे उसी ब्राह्मण युवा के ध्यान में गन्धवती के तीर स्थान में जाकर उसने अपना जीवन त्याग दिया। उसकी भावना तो भोग की थी इसीसे एकलव्या नाम्नी नगरी में रूपवती नाम्नी अति सुन्दरी वेश्या होके जन्मी। तीर्थ तथा व्रत के प्रभाव से उसको पूर्वजन्म की स्मृति नष्ट न हुई, सो एक समय प्रसङ्ग पड़ने से उसने चौडकर्ण नामक एक जापक द्विजन्मा को अपने पूर्व जन्म का वृत्तान्त कह सुनाया। वह ब्राह्मण भी परम निष्ठावान् जापक था, जप के प्रभाव से अपना चित्त उसने अपने वश में कर लिया था और इसी से भरोसे वह संसारबन्धन से मुक्त हुआ चाहता था। अस्तु वही उपदेश उस विप्र ने उस वेश्या को भी दिया, उसने भी शुद्ध मन से वैसाही किया इससे सद्गति प्राप्त की।

इतनी कथा सुनाय विजितासु मुनि बोले कि राजन्! इस प्रकार जो जिस भावना में प्राण त्याग करता है उसी में जाकर उसको जन्म लेना पड़ता है।

इसके उपरान्त विचित्रकथ बोला कि राजकुमार! तत्पश्चात् मुनि विजितासु ने राजा पुष्कराक्ष को स्नानादि की आज्ञा दी और आप भी मध्याह्नकालिक स्नानादि कार्य सम्पन्न किये।

उधर राजा पुष्कराक्ष वन नदी के किनारे गये तो देखते क्या हैं कि विनयवती फूल चुन रही है, उसके शरीर की ऐसी कान्ति है मानों प्रभाकर की प्रभा, जो कि इस अदृष्टपूर्व गहन वन में कौतुक के अर्थ आयी हो। यह इधर अपने मन में तर्क कररहे थे कि भगवान् यह कौन है कि इसी अवसर में वह बैठकर अपनी विश्वस्त सखी से इस प्रकार कहने लगी—"हे सखी! जो विद्याधर कि मुझे पहले बलपूर्वक हरा चाहता था वह आज शापमुक्त होके यहां आया था और मुझ से कह गया है कि अब तुम अपने पति को पाओगी।" इस प्रकार उसका कहना सुन वह सखी बोली, "अरी यह बात सत्य है, आज प्रातःकाल की बात है कि मेरे साम्हनेही विजितासु मुनि ने मुञ्जकेश नामक अपने शिष्य को यह आज्ञा दी कि जाकर तारावली और रत्नमाली को झटपट यहां बुला ला, उनसे कहना कि तुम्हारी दुहिता विनयवती का विवाह आज राजा पुष्कराक्ष से यहां होगा, सो तुम दोनों झटपट चलो। गुरु की ऐसी आज्ञा पाय, "बहुत अच्छा," इतना कह

मुञ्जकेश चला गया। सो आओ आली ! हम भी अब आश्रम को चलें। इस प्रकार उसकी बात सुन विनयवती उसके साथ चली गयी। पुष्कराक्ष दूर से छिपे हुए सब सुन रहे थे। कामाग्निसन्ताप से जल तो रहेही थे सो स्नान कर वह भी विजितासु मुनि के आश्रम को लौट आये।

उधर से तारावली और रङ्कुमाली भी आ पहुँचे, राजा ने उन्हें प्रणाम किया, उन्होंने उनको आशीर्वाद दिया। सब तपस्वी वहां एकत्रित हो गये; वेदी निर्मित की गयी, जिस पर मूर्त्तिमान् वह्निस्वरूप स्वयं मुनि विजितासु विराजमान हुए। तत्पश्चात् रंकुमाली ने विधिपूर्वक विनयवती का दान राजा पुष्कराक्ष के हाथ में कर दिया, यौतुक में उन्होंने आकाशगामी एक दिव्य रथ दिया। विजितासु महा मुनि ने उन्हें आशीर्वाद दिया कि राजन्! तुम इस विनयवती के साथ चतुःसमुद्रान्त पृथ्वी का शासन करो। इसके उपरान्त राजा महामुनि की आज्ञा से अपनी नववधू विनयवती के साथ उस गगनगामी दिव्य रथ पर आरूढ़ हुए और वह विमान एक क्षण में समुद्र के इस पार आ गया; राजा पुष्कराक्ष बात की बात में अपने नगर में आ विराजे; नवीन चन्द्रतुल्य उनको देखकर प्रजाओं के नेत्र प्रफुल्लित हुए।

सोरठा।

तिहि रथ के परभाव, जीति धरनि साम्राज्य लहि।
विनयवती सँग राव, विविध भोग भोगन लगे ॥

वसन्ततिलक।

या भांति कैसहु सुदुष्कर कार्य्य होवे।
देवप्रसाद करि शीघ्रहिँ सिद्ध होवे ॥
सो, स्वप्न दृष्ट गिरिजापति के प्रसादात्। (१)
ह्वैहै सुसिद्ध तुम्हरो अभिलाष देव ॥ १ ॥
इत्थं (२) विचित्रकथ वर्णित (३) अद्भुताख्या। (४)

(१) प्रसाद से, प्रभाव से।　　(२) इस प्रकार।
(३) विचित्रकथ नामक मन्त्री से वर्णन की गई।

श्रुत्वा (५) शशाङ्कवतिलाभ विषै समुत्सुक ॥
निश्चय नृपात्मज कियो जु मृगाङ्कदत्त ।
जानौ अमात्यसंग उज्जयिनीपुरी में ॥ २ ॥

तीसरा तरङ्ग।

इस प्रकार मृगाङ्कदत्त बेताल से वर्णित कर्मसेन की दुहिता शशाङ्कवती प्राप्ति की इच्छा से मन्त्रियों से मन्त्रणा करते रहे अन्त में यह स्थिर हुआ योगी संन्यासी तथा कापालिक के भेष में चुपचाप नगर से निकलकर उज्जयि को चलना। इस प्रकार जब विचार पक्का हो गया तब राजपुत्र ने अपने म भीमपराक्रम को यह आदेश दिया कि जाओ तुम सोंटा कपाल इत्यादि साम जुटाओ। स्वामी की आज्ञा पाय भीमपराक्रम ने अपने घर में सब सामग्री इक किया, यह बात भेदिये के द्वारा मृगाङ्कदत्त के पिता के प्रधान मन्त्री को विदि हो गयी। उसी समय एक और घटना हो गयी कि मृगाङ्कदत्त अपने प्रासाद टहल रहे थे सो उन्होंने पान की पीक फेंकी, दैवात् नीचे उसी मार्ग से उन पिता के वही प्रधान मन्त्री चले जा रहे थे सो वह पीक उनके सिर पर जा पड़ उन्होंने जान लिया कि मृगाङ्कदत्त ने मुझ पर पीक फेंकी है, इससे उनके हृद में क्रोध का समावेश हो गया; उस समय तो उन्होंने कोप दबा रक्खा और जाव स्नान कर डाला पर हृदय से वह न गया, उन्होंने स्थिर कर रक्खा कि कभी कभी इसका पलटा अवश्य लेऊँगा।

अब ऐसा हुआ कि मृगाङ्कदत्त के पिता राजा अमरदत्त को दूसरेही दि दैवात् विशूचिका रोग हो गया, बस प्रधान मन्त्री को अवसर मिल गया, उन्हों एकान्त में महाराज से कहा कि यदि आप मुझे अभय दान दें तो मैं कुछ निवे दन करूँ; अभय पाकर उन्होंने निवेदन किया कि देव! आपके कुमार मृगाङ्कदत्त

(४) अद्भुत = विचित्र, आख्या = कथा, विचित्र कथा।
(५) सुनकर।

। आपही के विरुद्ध भीमपराक्रम के घर में अभिचार करना आरम्भ कर दिया है इस उसी से महाराज पीड़ित हो गये हैं। मैंने चार के मुख से यह बात सुनी है, फिर इसका फल तो प्रत्यक्षही दृष्टिगोचर हो रहा है, और इस से बढ़कर क्या नाश हो सकता है। अब आप उन्हें देह के रोग के समान देश से निकाल बाहर कीजिये। इतना सुनतेही महाराज का चित्त उद्भ्रान्त हो गया, उन्होंने उसी क्षण यह सब व्यापार देखने के हेतु अपने सेनापति को भीमपराक्रम के घर भेजा। सेनापति जाके देखे तो सचमुच केशकपालादि वहां विद्यमान हैं सो उसने लाकर सब महाराज को दिखा दिये। देखतेही महाराज क्रोध से जलजला उठे उन्होंने कहा कि यह मेरा पुत्र राज्य के लोभ से मेरेही विरुद्ध आचरण कर रहा है सो इस द्रोही को उसके मन्त्रियों के साथ आजही अभी निकाल बाहर करो। उन्होंने बिना विचारे क्रोध में आकर सेनापति को ऐसी आज्ञा दे दी और इसका टुक भी विचार न किया कि इसमें यथार्थ बात क्या है। ठीकही है जो प्रभु अपने मन्त्रियों का पूर्ण विश्वास करता है वह उनकी कुटिल गति नहीं समझ सकता। अस्तु सेनापति ने आकर मृगाङ्कदत्त को राजाज्ञा कह सुनाई और उन्हें मन्त्री सहित नगर से बाहर निकलवाय दिया।

मृगाङ्कदत्त की राजलक्ष्मी छिन गयी इससे उन्हें कुछ भी विषाद न हुआ, वह प्रसन्न चित्त से विघ्नविदारण विनायक का अर्चन कर तथा मनही मन माता पिता को प्रणाम कर अयोध्या से निकल पड़े। जब कुछ दूर चले गये तब उन्होंने प्रचण्ड शक्ति प्रभृति अपने सहगामी दश मन्त्रियों से कहा कि किरातों का महान् अधीश्वर जो शक्तिरक्षित नामक है, वह ब्रह्मचारी तथा सब विद्याओं में कुशल है और वह मेरा बालपन का मित्र भी है। एक समय उसका पिता युद्ध में बन्दी किया गया तब उसने अपने पलटे अपने पुत्र शक्तिरक्षित को अपना प्रतिनिधि करके मेरे पिता को सौंप दिया था। जब शक्तिरक्षित का पिता मर गया तब उसके गोतियों ने सिर उठाया उस समय पिता से कह सुनकर मैंने उसे उसके राज्यासन पर अभिषिक्त करवा दिया था और अपनी सेना के द्वारा उसका आधिपत्य स्थापित करा दिया था, सो हमलोग पहिले उस मित्र के समीप चलें फिर वहां से शशाङ्कवती के लिये उज्जयिनी चलेंगे। ऐसा उनका कथन सुन मन्त्रियों ने कहा, "जो हां वहीं चलना चाहिये।"

श्रुत्वा (५) शशाङ्कवतिलाभ विषे समुत्सुक ॥
निश्चय नृपात्मज कियो जु मृगाङ्कदत्त ।
जानो अमात्यसंग उज्जयिनीपुरी में ॥ २१

तीसरा तरङ्ग।

इस प्रकार मृगाङ्कदत्त बेताल से वर्णित कर्मसेन की दुहिता शशाङ्कवती प्राप्ति की इच्छा से मन्त्रियों से मन्त्रणा करते रहे अन्त में यह स्थिर हुआ योगी संन्यासी तथा कापालिक के भेष में चुपचाप नगर से निकलकर उज्जयिनी को चलना। इस प्रकार जब विचार पक्का हो गया तब राजपुत्र ने अपने भीमपराक्रम को यह आदेश दिया कि जाओ तुम सोंटा कपाल इत्यादि सामग्री जुटाओ। स्वामी की आज्ञा पाय भीमपराक्रम ने अपने घर में सब सामग्री इकट्ठा कियो, यह बात भेदिये के द्वारा मृगाङ्कदत्त के पिता के प्रधान मन्त्री को विदित हो गयी। उसी समय एक और घटना हो गयी कि मृगाङ्कदत्त अपने प्रासाद पर टहल रहे थे सो उन्होंने पान की पीक फेंकी, दैवात् नीचे उसी मार्ग से पिता के वही प्रधान मन्त्री चले जा रहे थे सो वह पीक उनके सिर पर पड़ी। उन्होंने जान लिया कि मृगाङ्कदत्त ने मुझ पर पीक फेंकी है, इससे उनके मन में क्रोध का समावेश हो गया; उस समय तो उन्होंने कोप दबा लिया और स्नान कर डाला पर हृदय से वह न गया, उन्होंने स्थिर किया कि कभी इसका पलटा अवश्य लेऊँगा।

अब ऐसा हुआ कि मृगाङ्कदत्त के पिता राजा ... को दैवात् विशूचिका रोग हो गया, बस प्रधान मन्त्री को ... एकान्त में महाराज से कहा कि यदि आप मुझे अभय दान ... दन करूँ; अभय पाकर उन्होंने निवेदन किया कि देव!

(४) बहुत = विचित्र, आख्या = कथा, विचित्र कथा।
(५) सुनकर।

सो उन्होंने शाप दिया कि जा मूर्ख! तू बहाना कर काठ के समान पड़ा है इससे तू इसी सरोवर के तट पर ठूंठा पेड़ हो जा। उजेली रात में तुझमें फूल फल लगेंगे तब किसी समय तू अतिथियों को तृप्त करेगा, तब इस शाप से छूटेगा। इस प्रकार पिता का शाप पाकर मैं उसी क्षण एक शुष्क पादप होगया; आप लोगों ने आज मेरा फल खाया है इससे बहुत काल के उपरान्त आज मैं इस शाप से मुक्त हुआ हूं।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय श्रुतधि ने मृगाङ्कदत्त से उनका वृत्तान्त पूछा तब उन्होंने अपना वृत्तान्त आद्यन्त कह सुनाया। इसके उपरान्त श्रुतधि फिर बोला कि राजकुमार! मेरे आगे पीछे कोई ऐसो नहीं सो यदि आप मुझे अपने संग ले चलते तो बहुत अच्छा होता। ब्राह्मण नीति में बड़ा कुशल था सो मृगाङ्कदत्त ने उसकी प्रार्थना स्वीकार कर ली।

जब रात बीती और प्रभात हुआ तब मृगाङ्कदत्त अपने सचिवों तथा श्रुतधि ब्राह्मण के साथ वहां से चले। चलते २ सब लोग करिमण्डित नामक बनमें पहुँचे. वहां उन्हें लम्बे २ केशवाले बड़े भयङ्कर पांच पुरुष मिले, उन्हें देख सब लोगों को बड़ाही आश्चर्य्य हुआ। इतने में पांचो जन मृगाङ्कदत्त के सम्मुख आकर इस प्रकार कहने लगे—

राजन्! हमलोगोंका जन्म काशीपुरी में हुआ, हमलोग ब्राह्मण हैं पर व्यापार हमलोगों का धेनुओं के द्वारा होता है; अर्थात् हमलोग दूध बेचकर अपनी जीविका चलाते हैं। एक समय अनावृष्टि हुई इससे चारे का बड़ा टोटा पड़ा, सो हमलोग अपना देश छोड़ अपनी गौओं को लेकर इस वन में चले आये यहां तृण का बड़ा सुभीता है। यहां हमलोगों को एक बावड़ी मिली है जिसका जल बड़ा रसायन है, कारण यह है कि इसके किनारे त्रिफले (१) के पेड़ लगे हैं, उनके फल उसमें गिरते हैं। हमलोग गौओं का दूध और इस सरोवर का रसायन जल पीते हैं; सो इस निर्जन वन में रहते हमलोगों को पांच सौ वर्ष हो गये, इसीसे हमलोग ऐसे बने हुए हैं। दैवात् आज आप लोग हमारे यहां अतिथि प्राप्त हुए सो देव! चलिये हमारा आश्रम पावन कीजिये।

(१) आंवला, हर्रा और बहेरा, इन तीनों का समुदाय त्रिफला कहलाता है।

. अब मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों के साथ चलते चलते एक महा ... में पहुँचे जहां न पेड़ न पालय न कोई जलाशय; इतने में सन्ध्या का आगमन हो चला; अब लौं ऐसा स्थल या जलाशय न मिला जहां वे लोग उतरकर ... करते। बहुत दूर जाने पर बड़ी कठिनता से एक सरोवर मिला जिसके ... एक पेड़ लगा था सो भी ठूंठा था। अस्तु सब लोग वहीं उतरे, और सन्ध्यावन्दन ... कर उसी सरोवर का जल पीया, इसके उपरान्त सब लोग उसी ठूंठे वृक्ष के तले सो रहे। रात शुक्लपक्ष की थी, अब चन्द्रिका छिटकी और स्वच्छ प्रकाश चहुँओर हो गया अकस्मात् मृगाङ्कदत्त की निद्रा टूट गयी तो क्या देखते हैं कि वह ठूंठा हरा भरा हो गया है, पत्ते लग आये हैं उनके उपरान्त फूल भी लगे हैं तथा फलों से वह वृक्ष लद गया। फल लगे और तुरन्त ही पककर टपकने भी लगे ... अद्भुत व्यापार देखकर राजकुमार मृगाङ्कदत्त को बड़ा ही आश्चर्य हुआ तो उन्होंने अपने मन्त्रियों को भी जगाकर वह कौतुक दिखाया। वे सब भी देखकर ... विस्मित हुए, भूखे तो थे ही सभी ने उस वृक्ष के मीठे मीठे फल पेट भर खाये जब वे लोग फल खा पी कर शान्त हो गये तब उनके देखते ही देखते वह वृक्ष ... भर में एक विप्रकुमार हो गया; यह देख उनके विस्मय का पार न रहा; तब मृ... गाङ्कदत्त ने उस ब्राह्मणतनय से पूछा कि कहिये तो सही यह व्यापार क्या है? आप कौन हैं? सब समझा के कहिये। इस प्रकार पूछा जाकर वह ब्राह्मण कुमार अपना वृत्तान्त सुनाने लगा।

अयोध्यापुरी में दमधि नामक कोई एक द्विजोत्तम रहते थे, उन्हीं ... पुत्र हूं नाम मेरा श्रुतधि है। एक समय की बात है कि उस देश ... अकाल पड़ा, उसी समय दैवात् मेरी माता का देहान्त हो गया ... का चित्त और भी उद्विग्न हुआ तो वह मुझे ले वहां से निकल ... यहां पहुँचे। भूख प्यास से हम दोनों अस्तव्यस्त हो गये थे, ... आकर मेरे पिता को पांच फल दिये; पिता ने तीन फल तो ... अपने लिये रख छोड़े। जब वह सरोवर में नहाने गये तब ... खा गया और चुपचाप बनावटी नींद कर सो गया। जब वह आये ... क्या देखते हैं कि मैं सो रहा हूं। पिता समझ गये कि यह मेरा

एक महान् भवन है, कि मध्याह्न के समय वहां का जल चार्द्र भूमि से प्रच्छन्न(१) दीख पड़ता है वहां हंस मिथुन और जलपक्षी क्रीड़ा करते रहते हैं। वहां पारा वताख्य श्रेष्ठ नाग रहता है जो बड़ा बलवान् है, देवासुरसंग्राम में उसे एक अति उत्तम खड्ग मिल गया था जिसका नाम वैदूर्यकान्ति है। जो मनुष्य वह खड्ग पा जावे वह सिद्धों का अधिपति हो जावे और उसका प्रभाव ऐसा है कि वह मनुष्य जहां कहीं चाहे विचरण करता रहे उसका पराभव कहीं होवेही नहीं । फिर एक बात यह है कि जब वीरों की सहायता मिले तो वह खड्ग पाया जा सकता है। जब वह बालक इतना कह चुका तब मैंने उस पर से आवेश उतार लिया और उसे विदा किया। सो राजन्। मैं और सब कामों से विमुख हो गया, अब मेरी यही इच्छा हुई कि किसी न किसी प्रकार वह खड्ग प्राप्त करना, बस मैं सहायकों की खोज में निकला और पृथ्वीतल पर घूमता फिरा पर कोई भी सहायक न मिला, सो इसीसे खिन्न हो मैं यहां मरने आया हूं। उस तापस से इतना सुन मृगाङ्कदत्त बोले "महाराज। आप चिन्ता न करें, अपने मन्त्रियों के सहित मैं आपका सहायक हूं।" मृगाङ्कदत्त का ऐसा कहना सुन वह तापस अति आनन्दित हुआ।

अब नागराज पर आक्रमण करने का उपक्रम होने लगा; तापस ने एक ऐसा लेप प्रस्तुत किया कि जिसे तलवे में लगाकर जहां चाहे तहां क्षण मात्र में पहुंच जावे। सो सब लोग अपने तलवों में वह लेप लगाय वहां से चले और क्षण भर में वहां जा पहुंचे जहां नागराज का भवन था । बताये हुए चिन्हों से निश्चय हो गया कि पारावताख्य नागराज का यही भवन है। तब उस तापस ने मन्त्र से सब दिशायें बांध दीं और रात्रि के समय मृगाङ्कदत्तादिकों को मन्त्र से अभिमन्त्रित कर एक स्थान में बैठा दिया । इसके उपरान्त अभिमन्त्रित सरसों छींट धूल दूर कर जल प्रकट किया। तत्पश्चात् वह तपस्वी बैठकर नागदमन (२) मन्त्रों से होम करने लगा। इतने में मेघादि अनेक उत्पात होने लगे उन्हें वह अपने मन्त्रों से दूर करता गया । तत्पश्चात् उस शिंशिपा तरु से एक दिव्य स्त्री निकली जो

(१) ढंका हुआ। (२) जिन मन्त्रों से सांपों का दमन हो जाता है और वे विवश हो जाते हैं।

इस प्रकार उनकी अभ्यर्थना स्वीकार कर मृगाङ्कदत्त अपने अनुचरों के साथ उनके आश्रम को गये; वहां और भोजन कर सब लोगों ने वह दिन वहीं बिताया। दूसरे दिन प्रातःकाल होने पर सब लोग वहां से चले और अनेक प्रकार के कौतुक देखते २ किरातों के देश में पहुँचे, तब राजकुमार मृगाङ्कदत्त ने श्रुतधि को किरातराज शक्तिरक्षित के निकट अपने आगमन के सूचनार्थ भेजा। किरातराज यह सुनतेही उनकी अगवानी को चले और बड़ी नम्रता से उनका स्वागत कर मन्त्रियों के सहित मृगाङ्कदत्त को अपने नगर में ले गये। वहां पहुंच राजकुमार मृगाङ्कदत्त ने अपने आने का कारण कह सुनाया। किराताधिपति ने उनका बड़ा सत्कार किया। नित्य नये २ उपचार होते। इस प्रकार अपने मित्र से सत्कृत हो मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों सहित कुछ दिन वहां रहे। इसी अवसर में उन्होंने किरातराज शक्तिरक्षित से यह प्रबन्ध करा लिया कि जब आवश्यकता पड़े तब सहायता करें। किरातराज प्रस्तुत रहे कि जब काम पड़े मैं सहायार्थ उद्यत हूं। इसके उपरान्त किरातराज की आज्ञा लेकर मृगाङ्कदत्त अपने बारह साथियों सहित (१) वहां से शुभ मुहूर्त में उज्जयिनी की ओर चले क्योंकि उनका मन तो शशाङ्कवती में लगा था भला वह कब कहीं रुक सकते थे।

चलते २ वह अपने अनुयायिवर्ग के साथ एक सुनसान अटवी में पहुंचे, वहां क्या देखते हैं कि एक वृक्ष के नीचे भस्म रमाये जटा और अजिनधारी एक तपस्वी बैठे हैं। तब मृगाङ्कदत्त ने अपने अनुयायियों के साथ उनके समक्ष जाकर उनसे पूछा—"भगवन्! आप इस निर्जन वन में अकेले क्यों रहते हैं?" तपस्वी बोले—"राजकुमार! शुद्धकीर्त्ति नामक महागुरु का शिष्य हूं, मन्त्रों के ओघ (२) मुझे सिद्ध हैं। एक समय दैवात् एक क्षत्रियकुमार मिला, उसके लक्षण बड़े शुभ दीख पड़े तो मेरे मनमें यह आया कि इस पर आवेश कर कुछ प्रश्न करूं। सो मैंने उस पर आवेश किया और उससे पूछा। मेरे पूछने पर उस क्षत्रिय बालक ने नाना प्रकार के सिद्धौषधियों के भेदों का उल्लेख कर पश्चात् यह कहा कि यहां से उत्तर की ओर विन्ध्याटवी में एक शिंशिपा तरु (३) है जिसके नीचे नागराज का

(१) राजकुमार मृगाङ्कदत्त, दश मन्त्री एक श्रुतधि ब्राह्मण, ये बारह हुए।
(२) समूह, अनेक प्रकार। (३) शीशम वृक्ष।

क महान् भवन है, कि मध्याह्न के समय वहां का जल भार्द्र भूमि में प्रच्छन्न(१) होकर रहता है वहां हंस मिथुन और जलपक्षी क्रीड़ा करते रहते हैं। वहां पारावताख्य श्रेष्ठ नाग रहता है जो बड़ा बलवान् है, देवासुरसंग्राम में उसे एक अति उत्तम खड्ग मिल गया था जिसका नाम वैदूर्यकान्ति है। जो मनुष्य वह खड्ग पा जावे वह सिद्धों का अधिपति हो जावे और उसका प्रभाव ऐसा है कि वह मनुष्य जहां कहीं चाहे विचरण करता रहे उसका पराभव कहीं होवेही नहीं। फिर एक बात यह है कि जब वीरों की सहायता मिले तो वह खड्ग पाया जा सकता है। जब वह बालक इतना कह चुका तब मैंने उस पर से आवेश उतार लिया और उसे विदा किया। सो राजन्! मैं और सब कामों से विमुख हो गया, अब मेरी यही इच्छा हुई कि किसी न किसी प्रकार वह खड्ग प्राप्त करना, बस मैं सहायकों की खोज में निकला और पृथ्वीतल पर घूमता फिरा पर कोई भी सहायक न मिला, सो इसीसे खिन्न हो मैं यहां मरने आया हूं। उस तापस से इतना सुन मृगाङ्कदत्त बोले "महाराज! आप चिन्ता न करें, अपने मन्त्रियों के सहित मैं आपका सहायक हूं।" मृगाङ्कदत्त का ऐसा कहना सुन वह तापस अति आनन्दित हुआ।

अब नागराज पर आक्रमण करने का उपक्रम होने लगा, तापस ने एक ऐसा लेप प्रस्तुत किया कि जिसे तलवे में लगाकर जहां चाहे तहां क्षण मात्र में पहुँच जावे। सो सब लोग अपने तलवों में वह लेप लगाय वहां से चले और क्षण भर में वहां जा पहुंचे जहां नागराज का भवन था। बताये हुए चिन्हों से निश्चय हो गया कि पारावताख्य नागराज का यही भवन है। तब उस तापस ने मन्त्र से सब दिशायें बांध दीं और रात्रि के समय मृगाङ्कदत्तादिकों को मन्त्र से अभिमन्त्रित कर एक स्थान में बैठा दिया। इसके उपरान्त अभिमन्त्रित सरसों छींट धून दूर कर जल प्रकट किया। तत्पश्चात् वह तपस्वी बैठकर नागदमन (२) मन्त्रों से होम करने लगा। इतने में मेघादि अनेक उत्पात होने लगे उन्हें वह अपने मन्त्रों से दूर करता गया। तत्पश्चात् उस शिंशिपा तरु से एक दिव्य स्त्री निकली सो

(१) ढंका हुआ। (२) जिन मन्त्रों से सांपों का दमन हो जाता है और वे विवश हो जाते हैं।

मोहन मन्त्र पढ़ती जाती थी। यथास्थान उसके अङ्ग पर दिव्य आभरण अपूर्व शोभा दे रहे थे जिनके रव से किसका मन न मोहित हो जायगा। देखतेही देखते वह विधुवदनी उस तापस के समीप जा पहुंची, जिसके कटाक्ष से उस तपस्वी का मन चल हो गया। तपस्वी का धैर्य जाता रहा, इतनाही नहीं उस घटस्तनी ने चटपट आगे बढ़ उसे आलिङ्गन कर लिया इससे उसका रहा सहा जो मन्त्र था सो भी भूल गया। इसी अवसर में उस प्रमदारत्न ने उसके हाथ से होम का पात्र गिरा दिया। अब अन्तर पाय पारावताख्य नाग कल्पान्त मेघ के समान अपने भवन से निकला, इतने में वह दिव्य नारी लोप हो गयी। उस नागराज के नेत्रों से ऐसी जनजनाती घोर ज्वाला निकली और उसका गर्जन (१) ऐसा दारुण हुआ कि तापस का हृदय फट गया और वह ठांवही ठंढा हो गया। तापस के मर जाने उस पर उस नागराजका कोप कुछ शान्त हुआ, तब उसने उसके सहायक मृगाङ्कदत्त आदिकों को इस प्रकार शाप दिया—"तुम लोगों ने इसका साथ दे व्यर्थ मुझे दुःख पहुंचाया है इससे कुछ काल के लिये तुम लोगों का वियोग होगा।" इस प्रकार शाप देकर जब नागराज अन्तर्धान हो गये तब उसी क्षण उन लोगों के साम्हने अन्धकार छाय गया और ऐसी कुछ देवमाया व्याप गयी कि एक दूसरे को न देख ही सके न शब्द ही सुन सके। यों उस शाप के प्रभाव से सब लोग तितर बितर हो गये और एक दूसरे को ढूंढ़ते भटकते फिरने लगे। अब मृगाङ्कदत्त अपने मन्त्रियों से वियुक्त हो अरण्य में इधर उधर घूमते रहे इतने में वह मायारूपी रात्रि बीत गयी।

इस प्रकार भटकते फिरते दो तीन मास बीत गये, एक दिन अकस्मात् श्रुतधि विप्र खोजता खोजता मृगाङ्कदत्त को आ मिला। उन्होंने बड़ा आदर कर उससे अपने मन्त्रियों की वार्त्ता पूछी, इसपर वह उनके चरणों पर गिर पड़ा और आंखों में आंसू भर, उनको समाश्वासन दे इस प्रकार कहने लगा—"प्रभो! मैंने उन लोगों को देखा तो नहीं है, परन्तु इतना तो मैं जानता हूं कि वे उज्जयिनी को जायेंगे क्योंकि अब तो वहीं जाना है, सो महाराज! उसी ओर आप चलिये वहीं सबकी भेंट हो जावेगी।" इस प्रकार उसका वचन सुन मृगाङ्कदत्त ने साथ धीरे धीरे उज्जयिनी की ओर चले।

(१) चुङ्कार।

कुछ दिवस लों वे दोनों जन चले गये कि एक दिन मृगाङ्कदत्त का मन्त्री विमलबुद्धि अकस्मात् मिल गया, उसे देख उनके हर्ष का ठिकाना न रहा, आंखों में आंसू भर आये। मन्त्री विमलबुद्धि ने उन्हें प्रणाम किया, मृगाङ्कदत्त ने उसे गले लगाया; पश्चात् बैठाकर अपर मन्त्रियों का हत्तान्त पूछा। इस प्रकार भृत्यवत्सल राजकुमार मृगाङ्कदत्त का प्रश्न सुन विमलबुद्धि बोला "देव। नागराजके शाप से न जाने कौन कहां गया, परन्तु इतना तो मैं जानता हूं कि आप सभों को अवश्य पावेंगे; कहिये, क्यों, तो इसका मैं कारण बतलाता हूं, ध्यान देकर सुनिये।"

जब कि नाग का शाप हुआ उसी समय मैं आपसे अलग हो गया, मैं भटकता भटकता बड़ी दूर निकल गया; चलता चलता अरण्य के पूर्व भाग में जा रहा तहां मैं ऐसा थक गया था कि एक पग चलना कठिन हो गया। इतनेमें कोई साधु वहां आ निकले, मुझे क्लान्त देख उन्हें दया आई सो वह ब्रह्मदण्डी मुझे एक महर्षि के आश्रम में ले गये। महर्षि ने मुझे फलमूल खाने को दिये उन्हें खाकर जब मैंने जल पीया तब मानों मेरे प्राण बहुरे, सब थकावट दूर हो गयी। आश्रम से थोड़ीही दूर पर मैं टहल रहा था कि एक बड़ी भारी गुफा दृष्टि में आई, कौतुक ही से मैं उसके भीतर घुस गया, वहां जाकर क्या देखता हूं कि एक मणिमयमन्दिर है सो झरोखों से मैं झांकने लगा तो क्या देखता हूं कि भीतर बैठी हुई एक स्त्री एक चक्र चला रही है (१) जिस पर बहुत से भौंरे बैठे हैं; इतने में वे बैठे हुए भौंरे कुछ तो एक बैल बन गये और कुछ एक गदहा, ये दोनों दूध और लहू के फेन वमन करने लगे उन्हें चाटकर वे उन्हीं के रंग के अनुसार सित और असित (२) हो गये इसके उपरान्त हो वे मकड़े बन गये। तब उन दोरंगी मकड़ों ने अपनी विष्ठा से नाना प्रकार के जाल लगाये जिनमें कुछ में तो अति सुन्दर फल लगे और कुछ में विषैले। फिर उन्हीं जालों में वे सुखपूर्वक रहने लगे, इतने में एक श्वेत और एक कृष्ण मुख वाले सर्प ने आकर उन्हें डँस लिया। तब उस नारी ने उन्हें उठा उठा अनेक घड़ों में भर उनके मुंह बन्द कर बांध दिये परन्तु वे बन्धन काट २ फिर निकल आये और अपने अपने

(१) चरखा कात रही है—ऐसा अर्थ संगत प्रतीत होता है।
(२) श्वेत और कृष्ण।

मोहन मन्त्र पढ़ती जाती थी। यथास्थान उसके अङ्ग पर दिव्य आभरण शोभा दे रहे थे जिनके रूप से किसका मन न मोहित हो जायगा। ऐसी वह विधुवदनी उस तापस के समीप आ पहुंची, जिसके कटाक्ष से उस का मन चल हो गया। तपस्वी का धैर्य जाता रहा, इतना ही नहीं उस झट में चटपट आगे बढ़ उसे आलिङ्गन कर लिया इससे उसका रहा सहा जो सब सो भी भूल गया। इसी अवसर में उस प्रमदारत्न ने उसके हाथ से होम का गिरा दिया। अब अन्तर पाय पारावताख्य नाग कल्पान्त मेघ के समान भवन से निकला, इतने में वह दिव्य नारी लोप हो गयी। उस नागराज के से ऐसी जलजलाती घोर ज्वाला निकली और उसका गर्जन (१) ऐसा हुआ कि तापस का हृदय फट गया और वह ठांवही ठंढा हो गया। तापस के मर उस पर उस नागराज का कोप कुछ शान्त हुआ, तब उसने उसके सहायक इदत्त आदिकों को इस प्रकार शाप दिया—"तुम लोगों ने इसका साथ दे मुझे दुःख पहुंचाया है इससे कुछ काल के लिये तुम लोगों का वियोग होग इस प्रकार शाप देकर जब नागराज अन्तर्धान हो गये तब उसी क्षण उन लो सामने अन्धकार छाय गया और ऐसी कुछ देवमाया व्याप गयी कि एक दूसरे न देख ही सके न शब्द ही सुन सके। यों उस शाप के प्रभाव से सब लोग बिलग हो गये और एक दूसरे को ढूंढते फिरने लगे। अब मृगाङ्कदत्त

वहां जो स्त्री तुमने देखी सो तो माया है, जो चक्र वह घुमाती थी सो संसार चक्र है, और सब जीव जन्तु हैं । वृष और गर्दभ जो थे सो धर्म और अधर्म हैं, उनके पृथक् २ वमन जो दूध और लोहरूप थे सो पुण्य और पाप हैं । जिसका सेवन जिन्होंने किया उसी के अनुसार श्वेत और कल्मष (१) हुए, विष्ठा से जो जाल निर्माण देखा वह अपने वीर्य से सुसन्तान और दुःसन्तान की उत्पत्ति है, जिसके फल सुख और दुःख हैं जैसे तुमने सुपुष्प और विष पुष्प देखे थे । अपनी अपनी कामना के अनुसार जाल में पड़े हुए मकड़ों को जो वह दुमुंहा सर्प डंस गया सो करालकाल है जिसके मुख दो शुभ और अशुभ हैं । पुनः स्त्री ने जो अनेक घड़ों में उन्हें भरा इसका अर्थ यह है मायाकृत नाना योनि में उनके जन्म होते हैं और वे तुल्य २ श्वेत और कृष्ण आकृतियों में पड़ते हैं और पुत्र कलत्रादि बन्धनों में फंसकर पचते हैं । पश्चात् यह जो देखा कि कृष्ण मकड़े विषादित हो रोने लगे सो दुःखी जीव भगवान् को शरण पुकारते हैं, उनकी देखादेखी श्वेत मकड़े जो रोये सो सुखी जीवों को वैराग्य का प्रादुर्भाव है सो वे भी परमात्मा की शरण में पड़ उन्हीं को पुकार रहे हैं । तब तापस का जागना जो है सो ज्ञान का प्रादुर्भाव उसके उदय होतेही सब पाश (बन्धन) कट जाते हैं सोही उन जालों का जलना है । विद्रुमदण्ड (२) आदित्य मण्डल है, उसमें ऊपर गिरे पर जो ज्योति है सो ऊर्द्ध्वस्थान परमधाम है वहीं सब जीव अन्त में पहुँच जाते हैं । जब जीव परमपद को प्राप्त हो जाते हैं तब फिर इस संसार में आना कहां, और जब यहां आना ही नहीं तो फिर धर्म और अधर्म कैसे रहें सोही प्रकृति देवी संसाररूपी चक्र बटोर धर्म और अधर्म के साथ लुप्त हो गयीं, यही तो वह है जो स्त्री अपना चक्र ले वृषभ और गर्दभ के साथ न जाने कहां चली गयी । इस प्रकार शुक्ल और कृष्ण (३) जन्तु अपने अपने कर्मों के अनुसार संसार में भ्रमते रहते हैं अन्त में ईश्वर की आराधनाही से इस चक्र से उनको मुक्ति होती है ।

इस प्रकार आध्यात्मिक तत्वार्थ सुनाय मुनि फिर बोले कि पुत्र! यह ईश्वर ने

---

(१) काला = पाप, खोटाई इत्यादि ।

(२) मूंगे का डंडा । (३) उत्तम और निकृष्ट कर्म करनेवाले ।

तुम्हारे मोह के माहात्म्य तुम्हें दिखाया है। अच्छा सुनो अब तुमको इसका अ
बताता हूं जो कुछ कि तुमने नदी के जल में देखा है।

"सच पूछो तो यह मृगाङ्कदत्त का भावी अर्थ जल में प्रतिबिम्बित करके भग
वान् ने तुमको दिखाया है। मृगाङ्कदत्त जो हैं सो मृगेन्द्रपोत तुल्य हैं, उनके रा
ज इनके दर्शो मन्त्री हैं। वन जो है सो देश है, लुब्धक तुल्य इनके पिता हैं जि
न्होंने इन्हें देश से निकाल दिया। अन्य वन का अर्थ है अवन्तिदेश, तहां जो सिं
हनी सो शशाङ्कवती है तिसका शब्द (१) सुन यह चल पड़े। बीच में प्रचण्ड
पातरूपी नागपाश से मन्त्रिरूपी भुज कट के छिन्न भिन्न हो गये। तौन्दैल पुरु
ष विनायक हैं उन्होंने सब अमात्यों को मिलाकर उन्हें फिर जैसे का तैसा बना
देया। फिर यह बहुतेरे क्लेश उठाय सिंहीरूपिणी शशाङ्कवती को लेकर अपने
देश में आये। तब विद्युतआरातिवारण मृगाङ्कदत्तरूपी सिंह को भार्या समेत
समीप आया देख, लुब्धकरूपी उनके पिता वनरूपी स्वदेश और अपना सर्वस्व
उन्हें दे तपोवन को चले गये। जो यह भावीफल भगवान् ने तुम्हें दिखाया है; सो
तुम्हारे प्रभु तुम सभों को, और भार्य्या को प्राप्त कर अन्त में राज्य भी पावेंगे।

इस प्रकार अपना इष्ट वृत्तान्त सुनाय, विमलबुद्धि बोला—"देव! इतना जब
मैंने मुनिवर से सुना तब मुझको धैर्य हुआ, और मैं वहां से चला, और क्रमानु
सार यहां आपको आ मिला इससे मैं साहसपूर्वक कहता हूं कि आप प्रचण्डशक्ति
इत्यादि मन्त्रियों को अवश्य पावेंगे, और प्रस्थानकाल में आपने जो विघ्नेश्वर की
पूजा की थी उन्हीं के प्रभाव से आपका अभीष्ट भी निश्चय सिद्ध होगा।"

दोहा।

विमलबुद्धि वर्णित इती, सुनिके अद्भुत वात॥
छन, मृगाङ्कदत्त नृपतनय, भे अति हर्षित गात॥ १॥

सोरठा।

पुनि विचारि ता संग, अपर सचिव के लाभ हित॥
निजकारज परसंग, चले अवन्तीपुरि दिशैं॥ १॥

---

(१) उपाख्यान—वर्णन।

चौथा तरङ्ग।

इधर राजकुमार मृगाङ्कदत्त श्रुतधि और विमलबुद्धि के साथ मृगाङ्कवती के हेतु यिनी को चले जाते थे कि मार्ग में नर्मदा नदी पड़ी जिसके तरंग अति तरल थे, जो फेन के कारण पाण्डुर वर्ण दीख पड़ती थी। उस तरङ्गिणी का वेग ऐसा त था कि कुछ कहा नहीं जाता उससे यह भावना होती थी कि मानों वह, महा हर्ष से कि, मृगाङ्कदत्त अपने सखी से मिल गये, नृत्य करती हो। अस्तु, ाङ्कदत्त ने विचारा कि इस पुण्यसलिला सरिद्वरा में स्नान कर लेना चाहिये वह स्नान करने को उतरे; इसी अवसर में मायावटु नाम शबरों का अधिपति वहीं स्नान करने आया, ज्योंही कि वह नहाने के लिये नदी में हला कि उस एकसाथ तीन जलमानुषों ने निकलकर उस भिल्ल को पकड़ लिया, यह देखते उसके साथ के सब सेवक भय के मारे भाग गये। किन्तु दयामय मृगाङ्कदत्त तलवार खींच भीतर धँसे, उन्होंने उन जलमानुषों को मारकर बिचारे भिल्लेन्द्र छुड़ा लिया। भिल्लराज के प्राण बच गये, उन ग्राहों से छुटकारा पाय वह त के (से) बाहर आया और अपने प्राणदाता राजपुत्र के चरणों पर गिर से इस प्रकार पूछने लगा—"विधाता से मेरे प्राण बचाने के लिये आप यहां ये गये हैं, मुझसे कहो तो सही कि किस पुण्यात्मा पिता का वंश आपने लङ्कृत किया है? पुण्य का कटाक्ष किस २ देश पर हुआ है जहां जहां आप जा ो।" इस प्रकार उस शबरराज के प्रश्न सुन श्रुतधि ने मृगाङ्कदत्त का वृत्तान्त ाद्यन्त कह सुनाया। इस प्रकार उनका वृत्तान्त सुन वह शबरेन्द्र और भी प्रणत आ और पुनः बोला—"तो आपके इस अभिवाञ्छित अर्थ में, जो कि भगवान् से ारा निर्दिष्ट किया गया है, मैं आपका सहायक हूं, और मेरा सखा मातङ्गपति र्गविशाख इसमें मेरा साथ देगा। सो हे प्रभो! चलकर मुझ भृत्य का घर पावन ीजिये।" इस प्रकार प्रीतिपूर्वक वचनों से अनुनय कर शबरेन्द्र मृगाङ्कदत्त को पने गांव को ले गया। तहां पल्ली के समस्त लोगों ने राजकुमार की सविशेष ूजा की और भिल्लाधीश की ओर से इनके विविध उपचार होने लगे। उसी समय तङ्गराज भी वहां आया, जब उसे यह विदित हुआ कि इन्हीं के प्रताप से माया

वटु के प्राण बचे तब वह भी अति प्रसन्न हो अपने मित्र के प्राण बचानेहारे म गाङ्कदत्त के चरणों पर गिरा। तदुपरान्त भिल्लेन्द्र मायावटु के अनुरोध से मृगाङ्क दत्त कुछ दिन वहां रहे।

एक समय शबरेश्वर मृगाङ्कदत्त के समक्ष अपने प्रतीहार चण्डकेतु के साथ जूआ खेलने लगा, वह खेलही रहा था कि इतने में आकाश में मेघ घिर आये और घोर गर्जन होने लगा। उनका गर्जन सुन घर के मयूर नृत्य करने लगे उनके नृत्य दर्शनार्थ मायावटु खेल छोड़ उठ खड़ा हुआ। प्रतीहार तो बड़ा द्यूतरसिक था, उससे खेल कब छोड़ा जाय, सो उसने अपने राजा से कहा—"राजन्! इनका नृत्य देखकर क्या करेंगे, ये मयूर तो भली भांति ताण्डव (१) नहीं जानते हैं। मेरे घर में जो मयूर हैं वैसा मोर भूतल पर कहीं हैही नहीं, यदि आप उनका नृत्य देखा चाहें तो मैं कल प्रात:काल लाकर आपको उसका अनुपम ताण्डव दिखा दूंगा।" यह सुन शबरेश्वर बोला—"अच्छा तुम अवश्य मुझे उसका नाच दिखाओ।" इतना प्रतीहार से कहकर राजा ने जाकर अपना दिनकृत्य सम्पादन किया। मृगाङ्कदत्त भी यह सब सुन अपने मन्त्रियों के साथ वहां से उठे और जाकर सब लोगों ने स्नान भोजन आदि काम निपटाये।

जब रात हुई और घोर अन्धकार छाय गया तब राजकुमार उठे और समस्त शरीर में कस्तूरी लगाय, नीले कपड़े पहिन ओढ़, हाथ में खड्ग ले अनुगामियों को सोते छोड़कर घर से अकेले निकले कि चलें रात्रि में टुक घूमघाम कर देख सुन आवें कि इस नगर की क्या दशा है और यहां क्या विचित्रता है, और यदि अवसर मिल जाय तो वीरता का परिचय भी मिल जाय। इधर से यह चले जाते थे कि उधर से एक दूसरा पुरुष चला आया, अन्धकार में देखादेखी तो हुई नहीं बस दोनों के कन्धे टकरा गये। टक्कर लगतेही राजकुमार को बड़ा क्रोध आया उन्होंने उस पुरुष को ललकारा कि आ, यदि कुछ बल रखता हो तो मुझसे लड़ ले। वह एक प्रौढ़ पुरुष था, समयोचित बोला—"भाई! बिना विचारे क्यों लड़ाते हो? यदि विचार के देखो तो निशापति का दोष है कि उन्होंने रात्रि प्रकाशित न कीयी; अथवा विधाता का दोष है कि उन्होंने उन्हें पूर्ण अधिकार ही न

(१) मयूरों का नृत्य।

दिया जिससे इस प्रकार अन्धकार में अकारण बैर हो जाया करते हैं। इस नागरिक उक्ति से मृगाङ्कदत्त अति तुष्ट हुए, बोले भाई! तुम्हारा कहना ठीक है; अच्छा अब यह तो बताओ कि तुम हो कौन? उसने उत्तर दिया कि मैं चोर हूं, इसपर झूठमूठ वह बोल उठे—भाई हाथ दो, तुम तो मेरे साथी हो; चलो अच्छा साथ मिल गया।"

मृगाङ्कदत्त तो जिज्ञासु थे ही, सो वह उससे सख्य करके उसी के साथ चले। चलते चलते एक भगाड़ पर पहुँचे जिसका मुंह घास फूस से ढँका था। उस पुरुष के साथ वह उसमें पैठे और सुरंग से होते हुए उस मायावटु राजा के अन्तःपुर में जा पहुँचे। वहां दीपक के प्रकाश में उस पुरुष को देखकर वह पहिचान गये कि अरे यह तो वही चण्डकेतु प्रतीहार है, चोर ओर कुछ नहीं है, परन्तु प्रतीहार उन्हें न पहिचान सका क्योंकि एक तो वह एक कोने में चुपचाप जाकर छिपके बैठे रहे थे जहां प्रकाश की बड़ी न्यूनता थी, दूसरे इनका वेष कुछ वह न था जो उसने देखा था तीसरे वह स्वयं राजपत्नी का जार था सो भला क्यों किसी को पहिचान सकता है।

जिस समय कि वह उपपति पहुँचा राजमहिषी मञ्जुमती ने उठकर उसे गले लगा लिया पश्चात् पर्यङ्क पर बैठाकर उससे पूछा—"कहो प्यारे! यह तो आज एक नयी बात हुई है, आज किस पुरुष को साथ ले आये हो?" उसने उत्तर दिया—"प्यारी कुछ चिन्ता मत करो यह मेरा मित्र है, तुम विश्वास रक्खो कुछ भय नहीं है।" इस प्रकार प्रतीहार का कथन सुन बड़े उद्वेग से मञ्जुमती यों कहने लगी—"मुझ मन्दभागिनी को विश्वास करने का अवसर कहां है; मेरी चिन्ता क्या कभी दूर हो सकती है, देखो न यह निगोड़ा राजा मृत्यु के मुख में पड़कर भी मृगाङ्कदत्त के द्वारा बचा दिया गया।" यह सुन वह प्रतीहार बोला—"प्रिये! शोच मत करो, थोड़ेही दिनों में मैं राजा को और मृगाङ्कदत्त को मार डालूंगा, थोड़ा धीरज भी तो रक्खो, जो काम धीरे होता है उसका परिणाम अच्छा होता है, शीघ्रता से काम बिगड़ जाता है।" उसका ऐसा कथन सुन वह बोली—"चलो! मेरे सामने बहुत डींगें मत, तुम्हारा पुरुषार्थ जाना हुआ है; जब कि राजा को अकेला नदी में ग्राहों ने पकड़ा था, तब तुम कहां थे? क्या तुमने नहीं!

देखा कि पहिले मृगाङ्कदत्त ने इसे बचा लिया; तब तुमने क्यों नहीं इसे मार डाला, तब तो तुम अपना जी लेकर भाग आये, कुछ करते धरते तो बनता नहीं झूठे बोलने चला है ऐसे निठुर और डरपोक की बात का विश्वास क्या करूं। अब चुप रहो नहीं तो कोई सुन लेगा तो जाकर मृगाङ्कदत्त से कह देगा तो वह मन में समझ रक्खो कि, तुम्हारे प्राण न बचेंगे।" ऐसी ताना भरी बात रानी के मुंह से सुनकर वह क्रूर प्रतीहार सह न सका, बोला "अरी पापिनी तेरा भाव प्रगट हो गया, अब मैंने जान लिया कि तेरा मन मृगाङ्कदत्त पर लग गया है, अच्छा क्या हुआ, मैं भी एकही हूं तुझे इस अविवेक का फल अभी देता हूं।" इतना कह तलवार निकाल वह रानी को मारने चला, इतने में रानी की रक्षा-धारिणी एक दासी ने दौड़कर उसकी तलवार पकड़ ली, इसी अवसर में रानी मंजुमती वहां से निकल भागी और कहीं जाकर छिप रही। प्रतीहार ने दासी के हाथ से खड्ग छीन लिया, इसी छीनाछोरी में उस दासी की एक अंगुली भी कट गयी। इसके उपरान्त वह प्रतीहार जिस मार्ग से आया था उसी मार्ग से मृगाङ्क-दत्त के साथ चला गया राजकुमार को यह व्यापार देख बड़ा ही आश्चर्य हुआ।

जब वह अपने घर के समीप पहुंचा तब मृगाङ्कदत्त ने उससे कहा कि भाई अब तो तुम अपने घर पहुंचे अब मैं जाता हूं। अन्धकार का प्रबलप्रताप था इससे अबलों उसका पता उस प्रतीहार को न लगा। प्रतीहार ने उत्तर दिया "भाई थक तो गयेही होगे फिर उनींदे भी हो, चलो यहीं झटपट सो रहो" राजकुमार को तो किसी प्रकार की चिन्ता थोड़ी नहीं उन्होंने निर्भय होकर कहा "बहुत अच्छा," प्रतीहार को इस अपरिचित व्यक्ति का व्यापार देखना था इसी कारण वह उसे घर ले जाया चाहता था सो वह उसे (उन्हें) अपने घर ले गया, वहां उसने अपने एक भृत्य को बुलाकर कहा, "जहां वह मोर है तहीं इस पुरुष को ले जा और विश्राम करने के लिये इसे एक पलंग दे दे। "बहुत अच्छा," इतना कह वह चाकर मृगाङ्कदत्त को उसी घर में ले गया जहां वह मयूर था, एक दीजल रहा था; तहां उनके विश्राम के लिये एक शैय्या देकर बाहर से केवाड़ सिकड़ी लगा वह भृत्य वहां से चला गया।

अब मृगाङ्कदत्त को दृष्टि जो उधर गयी तो क्या [illegible] वह मयूर पिं-

जड़े में बन्द है, "यह वही मोर जान पड़ता है जिसकी बात प्रतीहार ने कही थी," इस प्रकार विचार कौतुक से उन्होंने मोर का पिंजड़ा खोल दिया। मयूर जब बाहर निकला तब बड़े ध्यान से उन्हें देख उनके चरणों पर गिर पड़ा और बार बार उनके पावों पर लोटने लगा। जब कि वह पावों पर लोट रहा था उस समय राजकुमार ने उसके गले में एक डोरा बँधा देखा, उसे देख उन्होंने विचारा कि इसीसे इसको पीड़ा हो रही है, ऐसा विचार उन्होंने उसके कण्ठ से डोरा खोल दिया। डोरे का खोलना था कि चट उनके देखते २ वह मयूर उनका मंत्री भीमपराक्रम हो गया। वह मृगाङ्कदत्त के चरणों पर गिर पड़ा उन्होंने उसे उठा कर कण्ठ में लगा लिया और बड़ी विस्मय से उससे पूछा "कहो मंत्रि! यह क्या बात है?" अति प्रसन्न हो भीमपराक्रम बोला, "देव। सुनिये मैं अपना वृत्तान्त जड़ से आपको सुनाता हूं।"

जब कि नागराज के शाप से आपका संग छूटा तब मैं अरण्य में घूमता २ एक शाल्मली के पेड़ के नीचे पहुंचा, उसमें गणेशजी की एक खुदी प्रतिमा मुझे दीख पड़ी, मैं थक तो गयाही था सो उन्हें प्रणाम कर उसी वृक्ष की जड़ पर बैठ गया और अपने मनमें चिन्ता करने लगा कि "धिक्कार है मुझको, वह पाप मेराही किया है कि रात में वेतालवाला वृत्तान्त स्वामी से कह दिया, सो मैं इस अपराधी पतित प्राण को रखकर क्या करूँगा इसका त्यागही श्रेय है। ऐसा विचार मैं वहीं देव के समक्ष निराहार बैठ गया कि भूखा रहकर प्राण त्याग दूं" इसी प्रकार जब कई दिन बीत गये तब एक दिन की बात है कि एक वृद्ध पथिक उसी मार्ग से आ निकला, वह भी उसी वृक्ष की छाया में बैठकर सुस्ताने लगा। वह पान्थ बड़ाही भद्र पुरुष था, मुझे उदासीन देखकर उसने पूछा—"पुत्र। इस निर्जन वन में म्लानमुख इस प्रकार क्यों बैठे हो?" मैंने पहिले तो कुछ न उत्तर दिया परन्तु जब वह बार बार हठ करके पूछने लगा तब मुझे अपना अपना वृत्तान्त कहना ही पड़ा। जब मैं अपना सारा वृत्तान्त सुना चुका तब वह वृद्ध पान्थ मुझे धीरज दे बहुत प्रकार से समझा बुझा [illegible] यों कहने लगा—"पुत्र। तुम तो वीर हो तो वीर होकर अपना [illegible] पर [illegible] हो? अथवा ऐसा भी [illegible] देखा जाता है कि [illegible] से अपने

धैर्य का त्याग नहीं करती हैं; सुनो इसी विषय में मैं तुमको एक कथा सुनाता हूं।

कोशलपुरी में विमलाकर नामक एक राजा राज्य करते थे, उनके कमलाकर संज्ञक एक पुत्र था, राजपुत्र अपने तेज, रूप तथा उदारतादि गुणों से ऐसे श्लाघ्य थे कि विधाता ने मानों स्कन्द, कन्दर्प और कल्पद्रुम के पराभव के हेतु उनकी सृष्टि की हो। राजकुमार की स्तुति दिग्दिगन्तर में बन्दीजन गाया करते थे। एक समय की बात है कि उनके एक परिचित बन्दी ने उनके समक्ष यह सोरठा गाय सुनाया—

पद्मासन हरषाय, सुखर हिजाली घिरि रहै।
विनु कमलाकर पाय, हंसावलि कहँ रति लहै॥ *

उस बन्दी का नाम मनोरथसिद्धि था, सो जब कभी वह राजकुमार को देखता तो यही सोरठा पढ़ सुनाता, इससे उन्हें बड़ा कौतुक हुआ कि यह मुझे देखतेही क्यों यह पद्य सुनाने लगता है, हो न हो इसमें कुछ रहस्य अवश्य है, सो उन्होंने एक दिन उससे पूछा कि कहो मनोरथ सिद्धि! तुम जो यह पद्य बार बार सुनाया करते हो इसका उद्देश्य क्या है? उसने उत्तर दिया कि राजकुमार सुनिये मैं इसका भेद आपको बताता हूं—

देव! मैं देशाटन कर रहा था, कि जाते जाते राजा मेघमाली की विदिशा नगरी में जा निकला, उस नगरी का मैं क्या वर्णन करूं मुझे तो ऐसी प्रतीत हुई मानों लक्ष्मीदेवी की लीलोद्यान भूमि है। मैं वहां दर्दुरक नामक गीताचार्य के † घर में टिका, एक दिन बातही बात में उसने मुझसे कहा, "यहां के राजा की कन्या हंसावली नृत्यविद्या में बड़ी प्रवीण है सो कल वह अपना नृत्य महीपति के समक्ष दिखावेंगी।" यह सुनतेही मुझे भी नाच देखने का बड़ा कौतुक हुआ और मैं एक युक्ति से उसके साथ राजसभा में जाकर रंगमण्डप में पहुंचा। वहां उस सुमध्यमा ‡ राजकन्या हंसावली ने पिता के सामने अपना नृत्य दिखाया; मैं भी

* यहां श्लेषालङ्कार है, आगे पढ़ने से इसका अर्थ आपही स्पष्ट हो जायगा।

† गानविद्या का आचार्य।

‡ सु = सुन्दर। मध्यम = बीच का भाग जिसका अर्थात् जिसकी कटि अति मनोहर है।

अहो भाग ! हम देख्यो आज । पटुम संग अंकित महराज ॥
श्रीविलास नारायणरूप । गुण-आकर कमलाकर-भूप ॥
अहो भाग !—इत्यादि ! इत्यादि ! !

इसी प्रकार गाय २ वह नाचता जाता, सो सुन राजदुलारी को बड़ा कौतुक हुआ, उन्होंने मुझसे पूछा –"कहो जी यह क्या गाय रहा है और भीत पर तुमने यह किसका चित्र उरेहा है ?" इस प्रकार जब वह बार बार हठ करके पूछने लगीं तब मैंने उनसे कहा—"हे राजपुत्रि ! रूप गौरव से मैंने जिस राजपुत्र का चित्र यह खींचा है, ऐसा प्रतीत होता है कि उन्हें इस पागल ने कभी देखा है—इसीसे उनका वर्णन कर गाता और नाचता है।" हे राजकुमार कमलाकर ! इस प्रकार कहकर मैंने उन्हें आपका नाम बताया और साथही आपके गुणों का वर्णन कर सुनाया। बस अब क्या था आपके प्रेमरूपी रस से आहत हंसावली के हृदय में एक नया स्मरद्रुम उत्पन्न हो गया। इतने में उनके पिता मेघमाली आ गये, सो उन्होंने क्रोध से उस नाचते हुए पागल को और मुझे भी निकाल बाहर करवाया, अब तो राजकुमारी का मन आप पर लग गया था, वह सदा आपही के लिये उत्कण्ठित बनी रहती; कृष्णपक्ष के चन्द्र की नाईं वह दिनों दिन क्षीण होने लगी, तथापि उनका लावण्य वैसाही बना रहा वह क्षीण न हुआ। उनका चित्त कहीं लगताही न था, होते होते उन्होंने एक युक्ति निकाली, झूठमूठ वह मांदी हो गयी; तब यह स्थिर हुआ कि भगवान् के किसी मन्दिर में अर्चा पूजा हो तो पाप दूर होकर कष्ट कटे; पिता को भी यह बात भायी, सो राजपुत्री एक विजन बन में जाकर भगवान् विष्णु के मन्दिर में रहकर उनकी अर्चा में लीन हुईं। राजकुमारी सदा आपकी चिन्ता में मग्न रहतीं, इससे उनकी निद्रा देवी पलायन कर गयीं, क्षण भर भी उन्हें नींद न आती; रात दिन का भेद भी न जानतीं कि कब रात बीती और कब दिन हुआ। एक दिन मैं उस मन्दिर में दर्शन करने गया तो राजकुमारी ने मुझे बुलाया और मेरा बड़ा आदर सत्कार किया तथा बहुतेरे वस्त्राभरण दिये। जब इस प्रकार पूजित हो मैं मन्दिर से निकला तो उ- दिये हुए एक वस्त्र के अञ्चल में एक पत्र गँठियाया हुआ मिला, जिस पर यह लिखा था, सो सुनिये मैं [illegible] हूं—

पद्मासन (१) हरषाइ, मुखर (२) द्विजाली (३) विदि रहै ॥
बिनु कमलाकर (४) पाय, हंसावलि (५) कहँ रति लहै ॥

इस प्रकार सोरठा दोहराई सुनाकर मनोरथसिद्धि पुनः कहने लगा कि देव! जब मैंने यह गाथा पढ़ी तब मुझको उनका निश्चित अर्थ ज्ञात हो गया सो मैं आपको जनाने के लिये यहां आया और आपके समक्ष वह सोरठा मैंने बार बार गाय सुनाया। देखिये यही वह वस्त्र है जिसमें उन्होंने वह सोरठा लिखके बांध दिया था।

इस प्रकार उस बन्दी का वचन सुन सोरठा देखके श्रोत्र और नेत्र के द्वारा हृदय में प्रविष्ट हुई हंसावली का ध्यान करते हुए राजकुमार कमलाकर अत्यन्त हर्षित हुए। अब वह इस बात के लिये बड़ेही उत्सुक हुए कि किस उपाय से प्रिया हंसावली की प्राप्ति हो।

अब एक दिन ऐसा हुआ कि उनके पिता ने उन्हें अपने पास बुलाया और उनसे कहा—"पुत्र! जो राजा आलसी होते हैं वे मन्त्रबद्ध उरग के समान नष्ट हो जाते हैं, सो अब मैं तुमसे पूछता हूं कहो तो सही जब वे नष्ट हो गये तो फिर क्योंकर उठ सकते हैं? तुम अब लों सुखही में पले हो, सुख छोड़ दुःख का नाम भी तुमने नहीं सुना, तुम अद्यावधि यह भी नहीं जानते कि जिगीषा (६) क्या वस्तु है; सो अबसों मैं जीता हूं तुम आलस त्याग उद्युक्त (७) हो जाओ। पहिले जाकर अङ्गाधिपति को जीतो क्योंकि वह मेरा प्रधान शत्रु है, और मैं सुनता हूं कि मेरे राज्य पर आक्रमण करने के हेतु वह अपने देश से निकल भी चुका है।" पिता का ऐसा वचन सुन कमलाकर बोले—"आपकी आज्ञा शिर माथे।" वह अपनी प्रिया की प्राप्ति के हेतु प्रस्थान किया ही चाहते थे बीचही में पिता की ऐसी आज्ञा मिल गयी अब किसी बात की रुकावट ही न रही। पिता के दिये हुए बल के (८) साथ राजकुमार कमलाकर विजय करने चले। उनका सैन्य ऐसा

---

(१) पद्मा = लक्ष्मी आसन = बैठने का उपकरण = जिस पर लक्ष्मी बैठती है अर्थात् कमल। (२) मुखर = पक्षी पक्ष में चहचहाते, शब्द करते। ब्राह्मण पक्ष में वेदध्वनि, आशीर्वचन उचरते। (३) पक्षियों का समूह, ब्राह्मणों का दल। (४) कमल सरोवर, राजकुमार कमलाकर। (५) हंसों की श्रेणी, राजकुमारी हंसावली। (६) जीतने की इच्छा। (७) प्रस्तुत, तैयार। (८) सैन्य।

चला कि पृथ्वी हिलने लगी और शत्रुओं के हृदय कांपने लगे। कईएक पड़ावों के उपरान्त वह वहां जा पहुँचे जहां अङ्गाधिपति का पड़ाव पड़ा था। कहां तो वह इनपर आक्रमण करने आ रहे थे कहां उन्हीं पर आक्रमण हो गया; दोनों में घोर संग्राम हुआ; जिस प्रकार अगस्त्य मुनि समुद्र को पी गये थे उसी प्रकार कमलाकर अंगराज की सेना का पान कर गये। अन्त में राजा अंगपति हारे और राजकुमार कमलाकर विजयी हुए। कमलाकर ने अंगाधिपति को जीते जी पकड़ लिया और बन्दी कर प्रधान प्रतीहार के हाथ सौंप पिता के पास भेज दिया और साथ में कईएक सिपाही कर दिये। उन्होंने उसी प्रतीहार के द्वारा पिता के पास यह सन्देशा भी कहला भेजा कि हे तात! अब मैं अन्यान्य शत्रुओं को जीतने जाता हूं। इस प्रकार क्रमानुसार शत्रुओं को जीतते हुए राजपुत्र कमलाकर विदिशापुरी के निकट पहुँचे।

विदिशापुरी की सीमा पर पहुँच कमलाकर ने हंसावली के पिता राजा मेघमाली के पास यह सन्देशा देकर एक दूत को भेज दिया कि अपनी कन्या हंसावली का विवाह मुझसे कर दीजिये। दूत के मुख से यह सन्देशा सुन राजा मेघमाली कुछ भी अप्रसन्न न हुए प्रत्युत बड़े हर्ष से उनके पास स्वयं चले आये और बड़े सम्मान से राजकुमार का आतिथ्य कर बोले "राजकुमार! यह काम तो आप घर बैठे दूत के द्वारा कर सकते थे तो इतना परिश्रम आपने क्यों उठाया। अस्तु, मेरा तो यह अभीष्ट ही था, सुनिये इसमें जो कारण है सो मैं आपको सुनाता हूं— यह हंसावली बाल्यावस्था ही से भगवान् अच्युत की अर्चना में तत्पर रहती है। शिरीषसुकुमाराङ्गी इस कन्या को देखकर मेरे मन में यह चिन्ता उदित हुई कि ऐसी गुणवती कन्या के सदृश कौन वर पाऊँ। मैंने बहुत दूर लों दृष्टि फैलाई पर कोई उपयुक्त वर न सूझा। रात दिन मेरे मन में यही चिन्ता बनी रहती इससे नींद भी जाती रही—इस कारण महाभयङ्कर ज्वर हो आया। उसकी शान्ति के लिये मैंने भगवान् नारायण की पूजा की और बड़ी आर्त्ति से उनसे विनति की। तब उस दिन रात्रि में झपकी आई। उसी में मुझे एक स्वप्न दीख पड़ा कि स्वयं भगवान् यह आदेश करते हैं—"हे पुत्र! जिसके कारण तुमको यह ज्वर हुआ है, हंसावली तुम्हें छू दे तो ज्वर शान्त हो जाय। मेरे पूजन के प्रभाव से यह

[प्र]बल हो गयी है, सो जिस किसी को यह हाथ से छू दे, उसका कैसा भी [अ]साध्य ज्वर हो तो उतर जाय इसमें किञ्चिन्मात्र संशय नहीं है । इसके विवाह [क]ी चिन्ता भी तुम मत करो क्योंकि इसका पति राजपुत्र कमलाकर होगा, परन्तु [ए]क बात है कि कुछ काल इसे किञ्चित् क्लेश उठाना पड़ेगा ।" सो राजकुमार ! [भ]गवान् शार्ङ्गधारी का ऐसा आदेश मुझको हुआ, जब रात बीती तब मैं जागा, [उ]स समय हंसावली ने मुझे अपने हाथ से छू दिया और उसी क्षण मेरा ज्वर जाता [र]हा। इस प्रकार तुम दोनों का सम्बन्ध तो भगवान् का ठहराया हुआ ही है मैं तो [हं]सावली को तम्हें देही चुका । यों कह, लग्नादि ठहराय राजा मेघमाली अपनी [र]ाजधानी को लौट गये ।

पिता के द्वारा यह सारा वृत्तान्त सुन राजकुमारी ने अपनी परम विश्वस्त [स]खी कनकमञ्जरी से कहा कि अरी आली तू जाकर देख आ कि यह राजपुत्र [व]ही हैं जिनका चित्र उस चित्रकार ने उरेहा था और चित्र के द्वारा जिन्होंने मेरा [म]न हर लिया है । कहीं ऐसा न हो कि कोई प्रबल राजा इसी नाम से चढ़ आये [ह]ों और भय के मारे मेरे पिता ने मेरे विवाह की प्रतिज्ञा कर दी हो । यदि ऐसा [ह]ुआ तब तो मैं मट्टी में मिल गयी सो सखी तू जाकर भली भांति जांच तो आ [ज]ब मेरा चित्त सुस्थिर हो । इस प्रकार कह सुन हंसावली ने कनकमंजरी को [व]हां भेजा ।

अब कनकमञ्जरी आडम्बर रचने लगी, अक्षसूत्र, अजिनचर्म और जटा धारण कर उसने तापसी का वेष बनाया । इस प्रकार आडम्बर कर वह राजकुमार कमलाकर के कटक में पहुंची; प्रतीहारों के द्वारा समाचार भेज वह उनके समक्ष जा विराजी । वहां पहुंचकर क्या देखती है कि कामदेव के अनसैव मोहनाथ के अधिदेवस्वरुप राजकुमार श्रीमाणमान हैं; उनका रूप निरखतेही उसका चित्त उनमें लीन हो गया और वह ठगी सी खड़ी रह गयी, मानों समाधि लग गई हो। अब वह अपना चित्त सम्हाल न सकी, कामशर से ऐसी बिद्ध हो गयी कि चहुं ओर कमलाकरही कमलाकर दीख पड़ते । वह विचारने लगी कि यदि ऐसे पुरुष के साथ मेरा समागम न हुआ तो मेरे जन्म को धिक्कार है; सो अब मैं एक उपाय करलोहूं देखूं जो लग जाय । इतना विचार वह आगे बढ़ी और राजकुमार

की आशीर्वाद और उपहारस्वरूप एक मणि देकर वहीं बैठ गयी; राजपुत्र ने उस
बड़े आदर से ग्रहण कर उस तापसी का बड़ा आदर सत्कार किया । तब
वह कपट तापसी उनसे इस प्रकार कहने लगी—"राजकुमार! मैं इस मणि की
परीक्षा कई बार कर चुकी हूं, इस उत्तम मणि का बड़ा प्रभाव है, जिसके पास
यह रहता है उसके ऊपर शत्रु का कोई भी अस्त्र नहीं चल सकता प्रत्युत उसका
उत्तम से उत्तम अस्त्र स्तब्ध हो जाता है। आपके गुणों से मेरे मन में बड़ा अनुराग
हुआ, इसी से मैंने यह तुमको दे दिया क्योंकि जैसा यह तुमको उपयोगी है वैसा
मुझको नहीं है।" उसकी ऐसी बात सुन राजकुमार कुछ कहा चाहते थे कि वह
निषेध कर फिर बोल उठी, "राजपुत्र। मैं तो भिक्षा मांग के जीवनयात्रानिर्वाह
करती हूं," इतना कह वहां से चली गयी।

अब वह तापसी का वेष त्याग मुंह बनाकर हंसावली के पास पहुंची और
पूछो जाकर झूठमूठ बात बना इस प्रकार कहने लगी—'राजकुमारी! राजा का
यह एक ऐसा रहस्य है कि उसका प्रकाश करना उचित नहीं है; परन्तु तुम पर
मेरा समधिक प्रेम है इससे कहे देती हूं—सुनो बात यह है। जब मैं यहां से ता
पसी का वेष बनाकर राजपुत्र के समीप गयी तो पहिले ज्योंही उनके कटक में
पहुंची एक पुरुष मेरे पास आया और मुझसे कहने लगा—"भगवति! भूत उता-
रने के कुछ मन्त्र तन्त्र तोटक आपको आते हैं?' देखतेही मैंने समझा कि यह
पुरुष उनका प्रतीहार है सो मैंने उससे कहा—"हां हां मैं भली भांति जानती हूं
भला यह तो मेरा कामही ठहरा।" सो देवि! वही मुझको कमलाकर के समच
ले गया, वहां जाकर मैंने देखा कि राजपुत्र भूत के आवेश से रोगी पड़े हैं, आस
पास में लोग उन्हें पकड़े बैठे हैं, अनेक प्रकार की ओषधियां तथा यन्त्र मन्त्र
तोटक तथा उत्तम मणि उनके शरीर पर बंधे हैं। मैं वहां पहुंचही गयी थी कुछ
तो अवश्य करना ही था, सो झूठमूठ मैंने भी कुछ फूंकफांक की और कहा कि
आज तो मैं जाती हूं अब कल आकर इनका भूत उतारही दूंगी। इस प्रकार अ
पना विघ्न छोड़ा मैं वहां से चली आई। इस अनिष्ट के दर्शन से मेरा चित्त बड़ा
व्यथित हुआ सो जो देखा सो तुमसे कहने आई हूं अब आगे जैसा तुम्हें अच्छा
लगे वैसा करो।

हंसावली तो सीधीसादी थी, वह उस दिठ का जाने सो ऐसा वज्रपात सम दारुण दुःसन्देश सुनके मूर्छित हो गयी, कुछ कालोपरान्त जब चेत हुआ तब उस सखी से कहने लगी—"सखि! विधाता बड़े मत्सरी हैं, वह अपनी गुणवती सृष्टि से भी मत्सर रखते हैं, कुछ न कुछ धब्बा अवश्य लगा देते हैं, देखो न चन्द्रमा को कैसा सौम्य बनाया तो भी उसमें कलङ्क लगा दिया, और इनमें ऐसा दोष भर दिया। अहो सो विधि धिक्कारने योग्य है न? फिर इन राजकुमार को मैं अपना पति वरण कर चुकी हूं अब मैं उन्हें देख भी नहीं सकती, तो इससे बढ़कर क्या और भी कुछ कष्ट हो सकता है, अब मेरे लिये यही श्रेय है कि या तो प्राणविसर्जन कर दूं अथवा कहीं गहन वन में चली जाऊं। सो सखि! अब तुम्ही बतायो ऐसी दशा में क्या कर्त्तव्य है?" इस प्रकार उस मुग्धा की बात सुन वह मायाविनी कनकमञ्जरी फिर बोली—"प्रिये हंसावलि! उसका विवाह तो निश्चय होवेहीगा, वह तो रुकता नहीं, फिर अब यह उपाय करना चाहिये कि वह भूतग्रस्त तुम्हारे माथे न पड़े, बस तुमको ही बचाना है। ऐसा किया जाय कि जब विवाह का समय आवे तो तुम्हारी कोई दासी बना ठना के भेज दी जाय, उस समय विवाह की धूमधाम में कौन पूछता है कि क्या होता जाता है, बस हम दोनों उसी समय कहीं चली जावेंगी।" उस कुसखी का ऐसा कथन सुन राजपुत्री बोली, "तो हे सखि! तुम्ही मेरा वेष बना उनसे अपना विवाह कर लो, तुमसे बढ़कर अब मेरी आप्त (१) सखी और कौन है।" राजपुत्री की ऐसी बात सुन उस पापिष्ठा ने कहा—"सखि! धीरज धरो ऐसाही करूँगी, इसमें भी एक युक्ति है किन्तु चेत रखो उस समय जैसा कहूंगी वैसाही करना नहीं तो काम बिगड़ जायगा।" राजपुत्री को इस प्रकार समझाबुझा वह धूर्त्ता वहां से चली और झट पट अपनी एक विश्वस्त सखी अशोककरी के पास पहुँची, वहां उस दुष्टा ने अपनी सारी करनी उसे कह सुनायी। हंसावली तो उक्त व्यापार के श्रवण से उदास थी ही और प्रतिज्ञा करही चुकी थी कि उस भूतग्रस्त से विवाह न करूँगी सो जब लों विवाह का दिन नहीं आया तब लों वह परम धूर्त्ता कनकमञ्जरी अपनी सखी अशोककरी के साथ उनकी सेवा शुश्रूषा में ऐसी लीन रही कि तनिक भी न प्रकट हुआ कि यह चाल चल रही है।

(१) विश्वस्त

क्रमश विवाह का दिन समीप आया, सायङ्काल में राजकुमार कमलाकर हाथी घोड़े और पदातियों के सहित राजा मेघमाली के राजभवन में आ विराजे। उस समय सब लोग तो उत्सव में व्यग्रही थे सो अवसर पाय कनकमंजरी और २ दासियों की आंख बचाय हंसावली को एक गुप्त प्रसाधन गृह में (१) ले गयी। वहां उसने हंसावली का वेष तो आप धारण किया और उन्हें अशोककरी के वेष में सजाय दिया और अपने वेष में अशोककरी को बनाय दिया। जब रात हुई तब उस धूर्त्ता ने हंसावली से कहा—"सुनो सखि ! अब तुम एक काम करो, नगर के पश्चिम द्वार से निकल जाओ तो एक कोस पर एक पुराना शाल्मली का पेड़ मिलेगा, उसमें एक बड़ा खोंढ़रा है; सो तुम उसी के भीतर बैठकर मेरी प्रतीक्षा करना; कार्य्य समाप्त होने पर मैं अवश्य तुम्हें आ मिलूंगी। उस व्याजसखी की (२) ऐसी बात सुन सरल सप्रकृति शुभस्वभावा हंसावली अपनी सखी के वेष में, "बहुत अच्छा," कह रात्रि के समय अन्तःपुर से निकली, और नगर के उसी द्वार से जहां कि ठटाठट्ट भीड़ लगी थी, धीरे से निकल गयी, और चली २ उस शाल्मली पादप के पास पहुँची। वहां जब पहुंची तब खोखले में घना अन्धकार देख यह साहस न हुआ कि उसमें पैठे और एकान्त में डर भी लगता था अब क्या करे; पासही में एक बड़ का पेड़ था सो राजदुलारी उसी पर चढ़कर बैठ रही। वहां पत्तों के बीच में छिपी बैठी हुई वह अपनी सखी के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। राजकुमारी का हृदय तो शुद्ध था उसमें छल कपट का लेश मात्र न था वह कैसे समझ सकती थी कि मेरी सखी कैसी चाल चल रही है, इसी हेतु से कनकमंजरी की कुटिलगति का पता उन्हें न लगा।

अब लग्न आया, राजकुल में सब वैवाहिक उपक्रम होने लगे; हंसावली के वेष में कनकमञ्जरी वेदी पर लायी गयी और शुभ मुहूर्त्त में कमलाकर ने उसका करकमल ग्रहण किया। एक तो रात थी, दूसरे घूंघट कढ़ा था इससे कोई यह जान न सका कि यह कनकमंजरी है। उसी समय विदाविदाई का भी मुहूर्त्त था राजकुमार कमलाकर विवाहोत्तर व्याजहंसावली को (३) विदा करा ले चले

(१) जहां शृङ्गार किया जाता है। (२) कपट करनेवाली सखी। (३) जो यथार्थ में ... थी किन्तु हंसावली के वेष में बनी थी

और साथ में माया कनकमंजरी अशोककरी (१) भी चली। उसी पश्चिम फाटक से निकलकर हुआ कमलाकर अपनी नवविवाहिता पत्नी के साथ हाथी पर आरूढ़ दि। यह उनका प्रयाण निज कटक की ओर हुआ।

चलते २ सब लोग वहां पहुंचे जहां शाल्मली का पेड़ था जिसके समीपवर्ती वटवृक्ष पर असल हंसावली कनकमंजरी के वेष में छिपी बैठी थी। ज्योंही हाथी वहां पहुंचा वह झूठी हंसावली कमलाकर के अङ्ग में लिपट गयी, राजकुमार ने पूछा—"प्रिये! क्या है, हा तुम डरती क्यों हो?" तब वह झूठेही आंखों में आंसू भरकर बोली—"आर्यपुत्र। मैं क्या कहूं, कल एक स्वप्न देखा था जिसके स्मरण से हृदय दहल उठता है, मैंने क्या देखा सो आप से कहती हूं। इस शा-ल्मली के पेड़ से राक्षसी सी एक स्त्री निकली और मुझे पकड़कर खाने चली; इसी समय एक ब्राह्मण देवता आ गये उन्होंने उसके हाथ से मेरा छुटकारा किया उन्हीं ने मुझको आश्वासन देकर यों कहा कि पुत्रि। तुम शाल्मली का यह पेड़ समूचा जलवा डालना और जो वह स्त्री इसमें से निकल भागे तो उसे पकड़वाकर इसी दहकते पेड़ में झोंकवा देना। बस इसी से तेरा कल्याण होगा। इतना कह वह ब्राह्मण देवता अन्तर्धान हो गये, उसी क्षण मेरी नींद भी टूट गयी। सो इस पेड़ के देखने से मुझे वह स्वप्न स्मरण हो आया इसी से मैं डर गयी हूं।" अपनी प्रिया की इतनी बात सुनतेही कमलाकर ने अपने भृत्यों को तत्क्षण उस वृक्ष और उस स्त्री के दग्ध कर देने की आज्ञा दे दी। आज्ञा पातेही वह वृक्ष जलाकर भस्म कर दिया गया हंसावली उसमें से निकली नहीं इससे उस कूट हंसावली ने समझा कि वह भी उसी में जल गयी। अब राजकुमार कमलाकर उस कूट हंसावली के साथ, जिसका हृदय कि अब निर्द्वन्द्व हो गया था; अति हृष्ट हो अपने कटक में पहुंचे, उन्हें पूर्ण विश्वास था कि यह मेरी अभीष्ट प्राणप्रिया हंसावलीही है। दूसरे ही दिन उन्होंने अपनी कोशलापुरी को प्रस्थान कर दिया, और जब वह अपनी नगरी में पहुंचे तब उनके पिता अत्यन्तही प्रमुदित हुए कि मेरे लाड़िले कृतकार्य होकर नगर में लौट आये; इसके उपरान्त अति प्रसन्नतापूर्वक राजा विमलाकर ने अपने पुत्र कमलाकर को राजासन पर अभिषिक्त किया। जब राज्यभार पुत्र को

(१) वह अशोककरी जो कि कनकमंजरी के वेष में बनी ठनी थी।

सौंप कोशलेश्वर विमलाकर वन में चले गये, तब राजा कमलाकर अपनी भार्या हंसावली कनकमञ्जरी के साथ पृथ्वी का शासन करने लगे। अब मनोरथ सिद्धि नामक वह वन्दी भी वहां से टल गया, उसे यह भय हुआ कि कहीं कनकमञ्जरी पहिचान ले तो किसी उपाय से मरवा न डाले।

उधर हंसावली उस बड़ के पेड़ पर बैठी हुई सब सुन और देख रही थीं तब उनकी आंखें खुलीं, अब उन्होंने समझा कि मैं ठगी गयी, सो जब कमलाकर चले गये तब वह अपने मन में यह चिन्ता करने लगीं,—"अहो! देखो तो इस दुष्ट सखी ने कैसा छल कर मेरे कान्त को हर लिया है, अहो मुझे भस्म करके वह शान्त हुआ चाहती थी। ठीकही है दुर्जन का विश्वास कर किसने कल्याण भोगा है? देखो तो सही मेरे कारण यह विचारा शाल्मली तरु व्यर्थही दग्ध किया गया तो मैं इसका ऋण क्योंकर चुकाऊँ; सो आओ इसी के अङ्गारों में गिरकर इस से उऋण हो जाऊँ।" इस प्रकार विचार अपने प्राण त्यागने के हेतु वह उस बड़ के पेड़ से उतरीं, परन्तु दैवात् उनकी बुद्धि ठिकाने आयी और वह अपने मन में विमर्श (१) करने लगीं, "भला यह मैं क्या करने चली हूं. वृथा आत्महत्या कर मैं क्या फल उठाऊँगी, जो जीती रही तो शीघ्रही इस सखीद्रुह का (२) पलटा चुका लूंगी। देखो उस समय जब कि पिताजी ज्वरार्त्त हुए थे भगवान् शौरि ने स्वप्न में उनसे क्या कहा था कि हंसावली के करस्पर्श से ज्वर शान्त हो जायगा—और यह भी न कहा था कि हंसावली कमलाकर को पावेगी जो कि उसके उचित पति हैं किन्तु एक बात है कि उसे बीच में कुछ क्लेश अवश्य उठाना पड़ेगा, सो चलो किसी वन में चलकर रहूं और उस समय की प्रतीक्षा करूँ और देखूं कि समय कब पलटता है।" इतना विचार वह निर्जन अटवी की ओर चलीं। जब कुछ दूर निकल गयीं तो बहुत थककर लड़खड़ाने लगीं, इतने में रात बीत गयी मानों मार्ग दिखाने के हेतु उसके हृदय में दया का सञ्चार हुआ आकाश से बूंदें गिरने लगीं मानों उनके दर्शन से उसके हृदय में क्षपा का आवेग हुआ उसीमें वह रोने लगा हो। दुखियों के बन्धु सूर्य्यनारायण अपने कर (१) फैलाकर उदय हुए, मानों मगा हो। गुणियों के बन्धु सूर्य्यनारायण अपने कर (१) फैलाकर उदय हुए, मानों अपनी सखी से द्रोह किया अर्थात् से धोखा दिया।

(१) विचार। (२) जिसने छलकर अपनी सखी से द्रोह किया अर्थात् से धोखा दिया।
(१) किरण।

कहीं वह निगोड़ी भण्डाफोड़ न कर दे, दूसरे अब यह एक महा उत्पात माथे आ पड़ा।" हंसावली के करस्पर्श से ज्वर नष्ट हो जाता है," ऐसा उसके पिता ने सबके साम्हने मेरे प्रभु से कहा था; सो इस समय यह ज्वराक्रान्त हैं ही, जो कहीं यह बात स्मरण हुई तो भेद खुल जायगा क्योंकि मुझ में वैसा प्रभाव तो है नहीं, बस अब भेद खुल जाने से मैं नष्ट हो जाऊँगी। पूर्व में किसी योगिनी ने जो मुझे ज्वर का चेटक (१) बताया था सो इनके लिये मैं विधिपूर्वक उसी को सिद्ध करूँ तो वह ज्वर को नष्ट कर देगा। फिर उसी के समक्ष किसी युक्ति से इस अशोक करी को भी मार डालूंगी क्योंकि मानुष अङ्ग से आर्घ्यादि पाय (२) वह सिद्ध हो जायगा और अभीष्ट भी सिद्ध कर देगा। इस प्रकार करने से राजा का ज्वर छूट जायगा और साथही अशोककरी भी नष्ट हो जावेगी, बस मेरे दोनों भय शान्त हो जायँगे और यदि ऐसा न हुआ तो और किसी प्रकार से मेरा कल्याण नहीं होने का।"

इस प्रकार विचार कर उसने अशोककरी को फिर साधा और जो कुछ चिकीर्षित (३) था सो सब उसे कह सुनाया केवल मानुष बध की बात छिपाय रक्खी। अशोककरी इसपर सहमत हुई और उसने चटपट सब सामग्री जुटा दी। अब कनकमञ्जरी ने किसी उपाय से सब दासियों को बाहर भेज दिया; इसके उपरान्त वह अपने हाथ में खड्ग लेकर अशोककरी के साथ रात्रि के समय चुपचाप नगर के दूसरे द्वार से निकली और एक सूनसान भैरवालय में पहुँची जहां भैरवजी का एकमात्र लिङ्ग था। वहां उसने एक बकरे का बध किया उसके शोणित से उसने लिङ्ग को स्नान कराया और लोहू ही का अर्घ्य दिया, अँतड़ी की माला पहिनाई, उस पशु का हृत्पद्म भैरवलिङ्ग के मस्तक पर रखकर पूजा कियी, आँखें जलाकर धूप दिया और उसका सिर नैवेद्य लगाया (चढ़ाया)। तब रक्तचन्दन से लिप्त अपवेदी पर उसने गोरोचन से अष्टदल कमल उरेहा, उसकी कर्णिका पर लोहू से ज्वर का चित्र बना दिया, जिसके तीन सिर और तीन ही पांव थे; हाथ में प्रहार के निमित्त भस्म था, दलों पर ज्वर के परिवार के चित्र

(१) प्रेत अथवा दैत्य। (२) मनुष्य के रक्त का अर्घ्यदान और मांस का [illegible]। (३) करने का अभीष्ट।

लिये। तत्पश्चात् अपने मन्त्र से ज्वर का आह्वान किया और पूर्वोक्त विधान से स्नान कराय अर्घ्य पाद्यादि दिये। अब मानुष अङ्ग के रक्तपात का अवसर आया तब उसने अशोककरी से कहा—"सखि! अब देव को साष्टाङ्ग प्रणाम करो इससे तुम्हारा कल्याण होगा।" "बहुत अच्छा," कह ज्योंही अशोककरी धरणी पर गिर साष्टाङ्ग प्रणाम करने लगी त्योंही दुराशया कनकमंजरी ने उसपर खड्गप्रहार किया; दैवात् खड्ग ठीक उसके गले पर नहीं जमा किन्तु तनिक सा कन्धे पर लग गया इससे वह चकपकाकर उठी और डर के मारे प्राण लेकर भागी। उसको भागती देख कनकमञ्जरी भी उसके पीछे दौड़ी। अशोककरी यह कहती हुई कि बचाओ बचाओ!! चिल्लाती भागती जाती थी, उसका ऐसा आर्त्तनाद सुन नगररक्षक(१) चहुँओर से घिर आये, देखें तो खड्ग खींचे महाभयङ्कर रूप कनकमञ्जरी है; देखतेही सभों ने समझा कि यह कोई राक्षसी है बस चारों ओर से सब शस्त्र-प्रहार करने लगे यहां लों कि वह मृतक सी हो गयी। जब उन सभों को अशोक-करी के मुख से पता लगा कि बात ऐसी २ है तब वे पुराधिप को (२) आगे कर उन दोनों को राजा के न्यायालय में ले गये। महाराज कमलाकर को यह वृत्तान्त सुन बड़ाही आश्चर्य हुआ, उन्होंने अपनी उस कुभार्या को तथा उसकी उस सखी को अपने समक्ष मँगाया। जब वे दोनों महाराज के सम्मुख लायी गयीं उस समय कनकमंजरी निदारुण प्रहारव्यथा से तत्क्षण परलोक को सिधारी। राजा इस व्यापार से बड़े खिन्न हुए थे उन्होंने उसकी सखी अशोककरी से पूछा कि कह तो सही यह क्या बात है, तू निर्भय होकर सब बता दे। तब जो कुछ कनक-मंजरी ने किया था और जिस प्रकार हंसावली को धोखा दे अपना विवाह करा लिया सो सब कथा आरम्भ से वह सुना गयी। जब राजा कमलाकर को तत्त्वार्थ विदित हुआ तब वह अति दुःखित हुए और इस प्रकार अपने मनमें विचार क-रने लगे—"अहो! इस कूट-हंसावली से मैं ठगा गया, हाय! मैं ऐसा मूर्ख था कि हंसावली को अपने हाथ से जला दिया। यह दुष्टा तो अपने पाप का फल पा चुकी कि राजमहिषी होकर इस प्रकार मारी गयी। विधाता कैसे क्रूर हैं उ-

(१) पुलिस के सिपाही, पहरुये। (२) नगर का प्रधान, कोटपाल अर्थात् कोतवाल।

उसने कैसा मुझे ठग लिया कि रूपमात्र से मोहित कर बालक के समान मुझे कांच दे मुझ से रत्न छीन लिया। हाय! मुझे ज्वरशान्ति के लिये उसके पिता ने जो बताया था कि विष्णु भगवान् ने कहा है कि हंसावली के करस्पर्श से ज्वर दूर हो जाता है, सो भी स्मरण न आया।"

इस प्रकार विलाप और सन्ताप करते २ उनको नारायण की यह बात स्मरण हुई कि हंसावली पति को प्राप्त करेगी परन्तु पहिले इसे कुछ क्लेश उठाना पड़ेगा सो वह विचार करने लगे कि नारायण का ऐसा वचन जो महाराज मेघमाली ने मुझ से कहा था कभी मृषा नहीं हो सकता—सो कदाचित् हंसावली कहीं अन्यत्र जाकर अपने जीवन की रक्षा करती हो! क्योंकि स्त्री के चित्त और दैव की गति दुर्विभाव्य है। अब वही मनोरथसिद्धि वन्दी फिर मिले तो मेरा काम सिद्ध होवे। इस प्रकार सोचकर राजा ने मनोरथसिद्धि वन्दीवर को बुलवा भेजा—जब वह आया तब उन्होंने उससे कहा—"भाई आजकल आप कहां रहते हैं कि देख भी नहीं पड़ते अथवा जो धूर्त्तों से ठगे गये हैं उनके मनोरथ की सिद्धि कहां!" ऐसा प्रश्न राजा का सुन वह वन्दी बोला—"महाराज! मन्त्रभेद के भय से चाहत की गयी यह अशोककरीही मेरा उत्तर है। अब हंसावली के निमित्त आप विषाद न करें क्योंकि हरि भगवान् ने ही बतला दिया है कि कुछ काल उसको दुर्गति भोगनी पड़ेगी, सो वह भगवान् की आराधना में लीन होवेहीगी और भगवान् उनकी रक्षा करतेही होवेंगे। धर्म्म जो है सो बड़ा प्रबल है. इसका तो प्रत्यक्ष

हां हंसावली तपस्या कर रही थीं। वहां देखते हैं तो भास्वत् अशोक की जड़
र हंसावली सुशोभित हैं मानों चन्द्रमा की अन्त्य कला हो, यद्यपि तपस्या के
ारण शरीर क्षीण हो गया था और वह पाण्डुवर्ण हो गयी थीं तथापि मनोरम
गती थीं। उनको देखकर महाराज कमलाकर उस बन्दी से कहने लगे, "भाई
नोरथसिद्धि! यह निःशब्द और निश्चल ध्यानस्थ कौन है कोई देवता तो नहीं
! क्योंकि इसका रूप अमानुष है, मनुष्यों में ऐसा सौन्दर्य कहां पाइये।" महा-
ाज का ऐसा वचन सुन उसने ध्यान से जो देखा तो उसे निश्चित हो गया सो वह
काएक बोल उठा "महाराज! आप धन्य हैं, महाप्रभो! आप हंसावली को ढूंढ़
हे हैं यह तो वही हैं।" इतना सुनतेही हंसावली का ध्यान टूट गया, आंखें
खोलकर देखे तो साम्हने दो जन खड़े हैं। बन्दी को तो देखतेही पहिचान गयीं,
अब उनका दुःख मानों नया हो आया सो वह रो रोकर कहने लगीं—"हा तात!
हा आर्यपुत्र! मैं व्यर्थ मारी गयी! हा मनोरथसिद्धि! हा विपरीतविधायक
विधि!" इस प्रकार विलाप करती हुई वह मूर्छित होकर धरती पर गिर पड़ीं,
उनकी ऐसी वाणी सुन तथा ऐसी दशा देख दुःखार्त हो कमलाकर भी पृथ्वी पर
गिर पड़े। मनोरथसिद्धि ने दोनों जनों को ढाढ़स दिलाया। अब दोनों जनों को
एक दूसरे का निश्चित ज्ञान हुआ उस समय उनके आनन्द का ठिकाना न रहा;
बहुत दिनों के वियोग के उपरान्त अब जो संयोग हुआ इससे एक अनिर्वचनीय
आमोद उन दोनों के हृदय में उमड़ आया। इसके उपरान्त उन दोनों ने परस्पर
अपना २ वृत्तान्त कह सुनाया। तत्पश्चात् महाराज कमलाकर हंसावली को लेकर
अपने बन्दी के साथ कोशलापुरी को लौट आये; महाराज मेघमाली के पास सन्देश
भेजा गया वह भी वहां आ विराजे; तब महाराज कमलाकर ने विधिपूर्वक हंसा
वली का रीतनाशक पाणि ग्रहण किया। अब हंसावली से संयुक्त हो कमलाकर
विशेष शोभायमान हुए क्योंकि एक तो वह स्वयं विमलयशा थे, दूसरे हंसावली
मिलीं जिनका विरहदुःख सो दूर हो गया और मातृकुल भी विशुद्ध मिला। हंसा
वली का धैर्य फलित हुआ सो महाराज कमलाकर उनके साथ आनन्दपूर्वक
रमण करते हुए सुख से दिन बिताने लगे। अब उन्होंने पृथ्वी का भार फिर अपने
ऊपर उठाया, मनोरथसिद्धि भी उनके समीप ही रहता। इस प्रकार महाराज
कमलाकर धर्म से पृथ्वी का शासन करने लगे।

इतनी कथा सुनाय वह वृद्ध पथिक भीमपराक्रम से कहने लगा कि अत: इसीसे मैं कहता हूं कि तुम भी धीरज धरो, धीरज धरने से कार्य सिद्ध हो जाता है। अत: शरीर मत त्याग करो क्योंकि जीते रहोगे तो कभी न कभी अपने इष्ट को अवश्य पाओगे। फिर मेरी यह बात भी गांठ बांध लो कि जो लोग विपत्ति के समय अपना धैर्य नहीं छोड़ते व सब कुछ पाते हैं, इससे धैर्य का त्यागना कदापि उचित नहीं है।

यों अपना वृत्तान्त सुनाय मन्त्री भीमपराक्रम मृगाङ्कदत्त से कहने लगा कि देव! इस प्रकार मुझे मरण से निवृत्त कर वह महात्मा वृद्ध पथिक जहां जाना था वहां चले गये और मैं भी उनके उपदेश से कुछ आश्वस्त हुआ।

चण्डकेतु के गृह में रात्रि के समय मन्त्री भीमपराक्रम इस प्रकार राजकुमार मृगाङ्कदत्त को अपना वृत्तान्त सुनाय फिर बोला कि देव! इसके उपरान्त मैं उज्जयिनी की ओर चला क्योंकि यह तो मैं जानताही हूं कि वहीं के लिये आप निकले हैं सो अवश्य वहां आवेंहीगे तो इधर उधर भटकने से क्या सिद्ध होगा; यह विचार मैं उधरही चला, वहां आप लोग न मिले; मैं थक तो गया ही था सो एक स्त्री के घर में उतरा, उसे भोजनादि सामग्री का मूल्य देकर मैं विश्राम का विचार करने लगा। उस स्त्री ने झट एक पलङ्ग बिछा दिया बस उसी पर मैं लेट गया; थकावट के कारण लेटतेही नींद आ गयी। थोड़ीही देर में मेरी नींद खुली तो बड़ा आश्चर्य देखने में आया, सो मैं चुपचाप पड़ा २ देखने लगा। उस स्त्री ने एक मुट्ठी यव लिये, कुछ मन्त्र पढ़कर उन्हें घर में चारों ओर छींट दिया, उसी क्षण वे जौ उग आये और देखतेही देखते बालें उनमें लग गयीं और दाने भी पक गये, उन्हें लव कर उसने भूंजा और पीसकर सत्तू बनाया। कांस के पात्र में रख कर उस सत्तू पर उसने थोड़ा सा जल छिड़का इसके उपरान्त पूर्ववत् गृह सजाय वह झटपट स्नान करने चली गयी।

यह व्यापार देख मुझे आश्चर्य तो बड़ा हुआ साथही मनमें यह भावना हुई कि कोई शाकिनी है, सो मैं धीरे से उठा, वह सत्तू तो मैंने दूसरे पात्र में रख और उतनाही सत्तू दूसरे सत्तू के बर्तन से निकालकर उस बर्तन में रखा। की बड़ी ही सावधानी की कि दोनों सत्तू मिल जावें। इतना काम

इतनी कथा सुनाय वह वृद्ध पथिक भीमपराक्रम से कहने लगा कि इसीसे मैं कहता हूं कि तुम भी धीरज धरो, धीरज धरने से कार्य सिद्ध होता है। अतः शरीर मत त्याग करो क्योंकि जीते रहोगे तो कभी न को अवश्य पाओगे। फिर मेरी यह बात भी गांठ बांध लो कि जो के समय अपना धैर्य नहीं छोड़ते व सब कुछ पाते हैं, इससे धैर्य का त्याग दापि उचित नहीं है।

यों अपना वृत्तान्त सुनाय मन्त्री भीमपराक्रम मृगाङ्कदत्त से कहने देव! इस प्रकार मुझे मरण से निवृत्त कर वह महात्मा वृद्ध पथिक जहां वहां चले गये और मैं भी उनके उपदेश से कुछ आश्वस्त हुआ।

चण्डकेतु के गृह में रात्रि के समय मन्त्री भीमपराक्रम इस प्रकार मृगाङ्कदत्त को अपना वृत्तान्त सुनाय फिर बोला कि देव! इसके उपरान्त यिनी की ओर चला क्योंकि यह तो मैं जानताही हूं कि वहीं के लिये कले हैं सो अवश्य वहां जावेंहीगे तो इधर उधर भटकने से क्या सिद्ध हो विचार से उधरही चला, वहां आप लोग न मिले; मैं थक तो गया ही एक स्त्री के घर में उतरा, उसे भोजनादि सामग्री का मूल्य देकर मैं वि विचार करने लगा। उस स्त्री ने झट एक पलङ्ग बिछा दिया बस उसी पर गया; थकावट के कारण लेटतेही नींद आ गयी। थोड़ीही देर में मेरी नीं तो बड़ा आश्चर्य देखने में आया, सो मैं चुपचाप पड़ा २ देखने लगा। उस एक मुट्ठी यव लिये, कुछ मन्त्र पढ़कर उन्हें घर में चारों ओर छींट दिय क्षण वे जौ उग आये और देखतेही देखते बालें उनमें लग गयीं और गये, उन्हें लव कर उसने भूंजा और पीसकर सत्तू बनाया। कांस कर उस सत्तू पर उसने थोड़ा सा जल छिड़का इसके उपरान्त वह झटपट स्नान करने चली गयी।

यह व्यापार देख मुझे आश्चर्य तो बड़ा हुआ सायद यह कोई शाकिनी है, सो मैं धीरे से उठा, वह ... दिया और उतनाही सत्तू दूसरे सत्तू के बर्तन से इस बात की बड़ी ही सावधानी की कि दोनों ...

वीर है जो तुम्हारा मोर चुरा ले गया ।' इसपर मृगाङ्कदत्तादि एक दूसरे का मुँह निरख हंसने लगे, यह देख मायावटु को बड़ाही आश्चर्य हुआ सो वह बड़े निर्बन्ध से उनसे पूछने लगा कि कहिये तो सही आपलोग क्यों हँस रहे हैं, अवश्य इसमें कुछ भेद है, कहिये बात क्या है ?" मृगाङ्कदत्त ने जब देखा कि अब बिना कहे काम नहीं चलता तब जिस प्रकार उस प्रतीहार से रात को भेंट हुई, राजपत्नी के घर में जाकर उस कामी प्रतीहार ने क्योंकर रानी पर शस्त्र उठाया था, कैसे वह उस प्रतीहार के घर पहुंचे, क्योंकर भीमपराक्रम का मयूरत्व से छुटकारा हुआ, कैसे वहां से निकला इत्यादि २ प्रतीहारसम्बन्धी सब बातें वह नगरेन्द्र को आद्यन्त सुना गये । यह सब वृत्तान्त सुनतेही नगरेन्द्र का मुँह लाल हो गया, उसने अन्तःपुर में जाकर देखा तो राजमहिषी पर छुरी का आघात पाया; पुनः आकर भीमपराक्रम के गले में वही गण्डा बँधवाया तो चट वह यथाही मयूर बन गया सो उसने अन्तःपुर के दूषक उस प्रतीहार का उसी क्षण वध कर डाला। मृगाङ्कदत्त के बहुत कुछ कहने सुनने पर उस अविनीत रानी मञ्जुमती का तो उसने वध नहीं किया किन्तु उसे घर से निकाल कहीं दूर पर रख उसके साथ सम्पर्क छोड़ दिया ।

दोहा ।

एहि विधि तहँ कछु दिन रहे, पाये सचिव समेत ।
राजपुत्र सु मृगाङ्कदत, नगराधीश निकेत ॥
श्रीशशाङ्कवति हेतु सों, जदपि रहे अकुलाय ।
तदपि भूप मन्त्रीन के, लाभ हेतु अटकाय ॥

पश्चात् वही गण्डा अपने गले में बांधकर और वन में भी बाहर निकल
बस आप मेरे कण्ठ से गण्डा खोल देंगे इस प्रकार हमदोनों पूर्ववत् हो
यदि कहें तो ऐसेही निकल चलें क्योंकि द्वार बाहर से बन्द हैं इस
जाना कठिन है ।

परम बुद्धिमान् भीमपराक्रम का ऐसा कथन सुन मृगाङ्कदत्त
उसके साथ वहां से निकले और अपने डेरे पर पहुंचे जहां उनके अन्य दोनों
थे। मृगाङ्कदत्तादि प्रसन्न हो परस्पर अपना २ वृत्तान्त सुनाने लगे;
कहते सुनते सारी रात बीत गयी ।

दूसरे दिन उस पल्ली का अधीश्वर भिल्लराज मायावटु, मृगाङ्कदत्त के
आया। उसने मृगाङ्कदत्त से पूछा कि कहिये रात्रि तो सुख से कटी न।
कार की अनेक बातों से उनका मन प्रमुदित कर भिल्लराज ने उनसे कहा
आइये अब जूआ खेला जाय तदनन्तर मृगाङ्कदत्त का सखा श्रुतधि भिल्लराज
उस प्रतीहार के सहित आया देख बोला —"जूआ खेलकर क्या होगा—क्या
भूल गये ? कलही न यह बात हुई थी कि आज इस प्रतीहार के मयूर का नृत्य
जायगा सो इससे कहिये कि यह अपना मयूर ले आवे और उसका नृत्य दिखा
यह सुन शबरेश्वरको भी स्मरण हो गया, बोले "हां हां आज तो नाच देखना है,
बस उसने झट अपने प्रतीहार को आज्ञा दी कि जाओ अपना मयूर ले आओ
अब तो प्रतीहार को उस चोर का स्मरण हो आया. वह विचारने लगा—"

पांचवां तरङ्ग
नवें भाग में
देखो —

आनन्दीबाई उपन्यास ।≠)
अब्दुल्ला का खून ≠)
अकबर उपन्यास प्रथम भाग ॥)
अघोरपन्थी ≠)
अमलावृत्तान्तमाला ।॥)
वनकन्या ।≠)
ईश्वरीलीला ≠)
उघेली ≠
कथासरित्सागर आठ भाग ४)
किसान की बेटी १।)
कमलिनी उपन्यास ।)
अनूठी बेगम ≠)
तिब्बत वृत्तान्त ≠)
खोई हुई दुलहिन ≠)
लट्टाटापू ≡)
भयानकभूल ≡)
चन्द्रभागा उपन्यास १)
महेन्द्रमाधुरी ॥)
रजीया बेगम १।)
स्वर्णलता ॥)
विद्याधरी ≠)
सरला उपन्यास ≠)
रामिन्सनक्रूसो ॥)

तारा उपन्यास तीनो भाग १॥)
दुर्गेशनन्दिनीदोनोभाग ॥)
दीपनिर्व्वाण ॥)
दीनानाथ ।)
दलितकुसुम ।≠)
नरेन्द्रमोहिनीदोनोभाग १)
नरपिशाच चारो भाग ३)
प्रणयिनीपरिणय ≠)
पुलिसवृत्तान्तमाला ॥)
सुखशर्वरी ।)
पन्नाराज्यकाइतिहास ≠)
चन्द्रभागा उपन्यास १)
रम्भा उपन्यास १)
वीरजयमल ॥)
वीरपत्नी ।)
वनकन्या ।≠)
बड़ा भाई ॥≠)
प्रेममयी ≠)
प्रिन्सपूरण (अंग्रेजी में) ।)
प्रवीण पथिक १)
पति की स्त्री ।)
निराला नकाबपोश ।≠)

सौन्दर्यमयी
संसारदर्पण
स्वर्णलता उपन्यास
हवाईनाव
अवधकी बेगम ।)
कुङ्कुमदेवी ॥
हम्माम का मुर्दा ।)
हीराबाई ।
ठगवृत्तान्तमाला चारो भाग १।
चांदी का महल ≠
चम्पा ≠)
चन्द्रकला ॥
गिरिजा ≠)
गंगागोविन्दसिंह ।
कुवरसिंह सेनापति १
किसान की बेटी १।)
कपटी मित्र ≠

रामलालवर्म्मा
भारतजीवन कार्य्यालय
बनारस सिटी।

भाषा-कथासरित्सागर।

का

नवाँ रत्न (भाग)।

भारतजीवनपत्र के अध्यक्ष

बाबू रामकृष्णवर्म्मा द्वारा उद्घाटित।

सवैया।

श्रीगिरिजाप्रणयाचलमन्दर बासुकि बालविनैबल पाई।
शम्भुमुखार्णव ते निकसी या कथा की सुधा वसुधा मधँ छाई॥
प्रेमसमेत पिये जो कोई बलवीर भनै बलि ईस दुहाई।
पावहि सो जगदीस कृपा तें अनन्त अमन्द बड़ी विबुधाई॥

॥ काशी ॥

भारतजीवन रत्नाकर (प्रेस) से प्रातव्य।

१८०६ ई०।

प्रथम बार]

[मूल्य ᠄)

पाँचवाँ तरङ्ग ।

इस प्रकार राजपुत्र मृगाङ्कदत्त अपने पाये हुए विमलबुद्धि आदि मन्त्रियों के साथ भिल्लाधिपति मायावटु के भवन में रहते थे । एक दिन की बात है कि शबराधिपति का आत्मीय चमूपति घबराया हुआ उसके समीप आया और इस प्रकार कहने लगा –"महाराज । आपने भगवती के उपहार के लिये जैसा पुरुष बतलाया था वैसा मिला तो सही पर आप से क्या कहूं वह एक अद्भुत योद्धा है । देखतेही देखते उसने हमारी ओर के पांच सौ वीरों को काट डाला, बहुतेरे प्रहारों से जब वह विवश हो गया तब हमलोगों ने उसे पकड़ लिया; अब वह यहां लाया गया है आज्ञा हो तो आपके समक्ष उपस्थित करूँ ।" उसका ऐसा कथन सुन पलिन्देन्द्र ने उस से कहा झटपट यहां लाओ, देखें तो वह कौन है । सेनापति तुरत उसे राजसभा में लाया और सभास्थित सब लोग उसे देखने लगे, शस्त्र के घावों से लहू बह रहा था, रण की धूलि समस्त शरीर में लगी थी, उस समय वह कैसा जान पड़ता था जैसे कोई मतवाला हाथी पाश से बँधा हो जिसके गण्ड-स्थल से सिन्दूर के सम्पर्क से पङ्किल मद बह रहा हो । इतनेही में मृगाङ्कदत्त ने पहिचाना कि यह तो मेरा मन्त्री गुणाकर है, सो वह रोकर दौड़े और उसके गले में लिपट गये, वह भी उनके चरणों पर गिर पड़ा । मृगाङ्कदत्त के अन्यान्य मित्रों से यह जानकर कि यह उनका सचिव गुणाकर है, भिल्लेन्द्र भी उठा और अति नम्रता से उसे आश्वासन देने लगा; इसके उपरान्त वह उसे अपने भवन में ले गया जहां उसे स्नान कराया गया, घावों पर पट्टियां बांधी गयीं और वैद्य के बत-लाये पथ्य पान और भोजन से उपचार किया गया । जब वह कुछ स्वस्थ हुआ तो मृगाङ्कदत्त ने उससे पूछा कि सखे ! कहो तुम्हारा वृत्तान्त क्या है ? सब सबके सम्मुख वह गुणाकर बोला—"देव ! सुनिये मैं अपना वृत्तान्त आपको सुनाता हूं"—

जब कि नागराज के शाप से मैं आप लोगों से अलग हुआ तब उस अटवी में इधर उधर भटकता फिरा, मुझे यह भी विदित नहीं कि मैं कहां जा रहा हूं मार्गों से उचाट हो गया । कुछ कालोपरान्त जब मेरी बुद्धि ठिकाने आयी तब मैं दुःखित हो चिन्ता करने लगा कि यह दुःखित विधाता का खेल है । अथवा

जो मृगाङ्कदत्त राजप्रासाद में रहकर भी खिन्न हो जाया करते थे वह इस पटवी में क्योंकर रह सकता अथवा सब मर्देंगे जहां की वालू ऐसी अङ्गार सी सहसहा रही। और मेरे उन मित्रों की क्या दशा होगी। इस प्रकार विविध भावनायें मेरे मन में उठने लगीं। घूमता फिरता मैं दैवात् भगवती श्रीविन्ध्यवासिनीजी के धाम में पहुँचा, देवी के भवन में रात दिन नाना प्रकार के अनेक जीव जन्तु बलि होते थे जिससे उस भवन की उपमा यमसदन से दी जा सकती है, सो मैं उन भवन के भीतर गया। वहां मैंने जगदम्बा को प्रणाम किया और देखा कि वहीं एक पुरुष का शव पड़ा हुआ है, उसके हाथ में एक खड्ग था उसीसे अपना गला काट उसने आत्मबलि चढ़ाई थी। आपके वियोग से मेरा चित्त उद्विग्न तो था ही पुनः उस मृतक आत्मोपहारक को देखकर मेरे मनमें यह भावना उठी कि मैं भी आत्मबलि चढ़ा के भगवती को सन्तुष्ट कर दूं। ज्योंही कि दौड़कर मैंने उसके हाथ से खड्ग लेकर उठाया कि उसी क्षण दूर से मना करती हुई कोई एक कृपालु वृद्धा तापसी वहां आयीं, वह ऐसी जुलजुल थीं कि बुढ़ौती से उनका सिर कांप रहा था; उन्होंने मुझे मरण से निवारण किया और पूछा कि कहो तुम्हारा क्या वृत्तान्त है तुम ऐसा निदारुण व्यापार क्यों करने चले हो। जब मैं अपना वृत्तान्त आरम्भ से सुना गया तब वह दयामयी फिर बोलीं "पुत्र! कभी ऐसा मत करो, सुनो ऐसा भी देखा गया है कि मृतकों का संयोग हुआ है फिर जीवतों के संगम का क्या पूछना है; इसी विषय की मैं तुमको एक कथा सुनाती हूं।

जगतीतल पर अहिच्छत्रा नाम्नी एक विख्यात नगरी है, पूर्व समय वहां राजा उदयतुङ्ग हुए थे जो बड़ेही प्रतापी थे। उनके पास एक कमलमति नामक प्रतीहार था वह भी बड़ाही पराक्रमी था; उसके एक पुत्र था जिसका नाम विनीतमति था; यह विनीतमति ऐसा गुणाकर था कि उस समय में उसकी जोड़ी का कोई भी न पाया जाता था। उसके पास समस्त गुण ऐसे विद्यमान थे कि मृणाल और चाप से उसकी तुलना नहीं हो सकती क्योंकि एक तो छिद्रयुक्त है दूसरा कुटिल(१)। एक समय की बात है कि वह सायङ्काल में सुधाधौतप्रासाद शिखर

(१) गुण शब्द पर यहां श्लेष है, कमल में गुण (होते हैं, धनुष की भी गुण के नाम से प्रसिद्ध है।

ऊपर मञ्च पर बैठा हुआ था कि इतने में चन्द्रमा का उदय हुआ मानों काम
ल्पद्रुम के पल्लव का बना पूर्वदिशा की रजनी का उज्ज्वल कर्णफूल हो। धीरे २
सकी चन्द्रिका से जगत् शोभायमान हो गया. यह देख विनीतमति का मन अति
त्कण्ठित हुआ सो वह अपने चित्त में इस प्रकार विचारने लगा—"अहो! देखो न
धामी चन्द्रिका से समस्त मार्ग कैसे शोभायमान हो रहे हैं, सो अब के किसी
र टहलूं न क्यों," ऐसा विचार वह अपना धनुष लेकर निकला और घूमने लगा।
मते २ वह एक कोस निकल गया जहां उसे रोने की ध्वनि सुन पड़ी, अब वह
सी ओर चला जिधर से रोने का शब्द आता था, वहां जाकर क्या देखता है
क एक दिव्यरूप कन्या वृक्ष की जड़ पर बैठी रो रही है। विनीतमति उससे
छने लगा—"हे शोभने! तुम कौन हो और क्यों यह चन्द्रवदन मलीन कर रही
ो?" उसके ऐसे प्रश्न सुन वह बोली—"महात्मन्! नागपति गन्धमाली की मैं

के रूप में क्रीड़ा कर रहा था कि दैवात् उसके पंख का झटका लगा और कुबे के हाथ से अर्घ्यपात्र गिर पड़ा । धनद अपना क्रोध न सम्हाल सके, उन्होंने शाप दिया कि रे दुष्ट जा तू अपनी पत्नी के साथ इसी योनि में बना रह, वह दोनों चकवा चकवी होके वहीं रहने लगे । अब प्रति रात्रि में दोनों पृथ रहने लगे सो कालजिह्व अपने विरहातुर ज्येष्ठ के प्रेम से प्रति रात्रि में उ स्त्री के रूप में आता है और अनेक प्रकार के सान्त्वना वाक्यों से उसे विनो करता है, इस प्रकार रात भर तो वह अपने भाई के साथ रहता है। सो हे पु पद्मिकचत्र नगरी का रहनेवाला महावीर विनीतमति जो प्रतीहारपुत्र है बड़ा उद्यमी है, उसे तू वहां भेज, ले यह एक खड्ग और एक अश्व मैं देती हूं, इन्हीं के द्वारा वह वीरवर उसको मारकर तेरे पिता को मुक्त करावे जो कोई पुरुष इस खड्गरत्न का स्वामी होगा वह समस्त शत्रुओं को जीत भूतल पर राज्य करेगा ।

इस प्रकार वृत्तान्त सुनाय विजयवती फिर बोली कि महात्मन् ! इतना देवी मुझे अश्व और खड्ग देकर अन्तर्धान हो गयीं । इसके उपरान्त आपके के लिये मैं यहां आयी, देवी के प्रसाद सहित आपको आज रात में बाहर नि देख इसी युक्ति से रोने की ध्वनि सुनाय आपको यहां ले आई, सो हे सु आप इतना मेरा अभीष्ट सिद्ध कर देवें । इस प्रकार उसकी प्रार्थना सुन वि मति उसके कार्यसाधन पर सन्नद्ध हुए ।

इसके उपरान्त जाकर वह नागकन्या तत्क्षण उस घोड़े को लाई, घोड़ा ब वेगवान् था वर्ण उसका श्वेत और ऐसा चमचमाता था कि आंखों में चकाचौंध जाती थी, मानों चन्द्रमा का रश्मिजाल दिगन्त के अन्धकार के नाश के हेतु भ में आया हो । वह खड्ग जो वह लायी थी एक अद्भुत प्रकाश रखता था; तार के साथ जैसी शोभा गगनमण्डल की होती है वैसीही कान्ति उस खड्गरत्न थी, जिसके अवलोकन से ऐसी भी भावना उठती थी कि मानों वीरों की श्री की परीक्षा के हेतु साक्षात् लक्ष्मी देवी ने अपना कटाक्ष किया हो । ोड़ा और खड्गरत्न उस नागकन्या ने विनीतमति को समर्पण कर दिये ।

अब विनीतमति खड्ग और घोड़ा पा ... हुए और विजयवती

ाय वहां से चला और उस अश्व के प्रभाव से बात की बात में मानसरोवर पर
हुँच गया जहां वायु के वेग से कमलनाल कम्पायमान हो रहे थे, और चकवे
ार्तनाद कर रहे थे जिससे ऐसा प्रतीत होता था कि कालजिह्व पर अनुकम्पा
र वे निषेध करते हों कि यहां मत आइये। वहां यक्षों के वश में गन्धमाली को
ेखकर उसने उसके छुटकारे के लिये उनपर खड्ग चलाया जिससे जर्जरित कले-
र हो सब भाग चले । यह देख कालजिह्व चकवी का रूप त्याग वर्षाकाल के
ेघ के समान गर्जता हुआ उस सरोवर से निकला । दोनों में घोर संग्राम होने
गा, तब कालजिह्व आकाश में उड़ गया घोड़े के सहारे से विनीतमति भी वहीं
ा पहुंचा पहुंचतेही उसने कालजिह्व के केश पकड़ लिये । ज्योंही कि वह केश
पकड़ उसका शिरच्छेद किया चाहता था कि वह यक्ष अति विनती से चिरौरी
करने लगा और उसकी शरण में आया, तब तो उसने उसे छोड़ दिया। छूटकर
उस कालजिह्व ने अपनी अंगूठी उसे दी जिसमें यह गुण था कि जिसके पास वह
रहे उसके ऊपर किसी प्रकार की विपत्ति न पड़े और न उसके अधिकार में ईति
(१) का भय हो । इसके उपरान्त उसने गन्धमाली को दास्य से मुक्त किया ।
गन्धमाली के पास वहां क्या था कि देकर ऋणमुक्त हो, उसके हर्ष का तो ठि-
काना न था, सो अपनी कन्या विजयवती को उसे दे वह अपने घर चला गया।
इतने में प्रभात हो गया सो विनीतमति खड्ग, अंगूठी, अश्व तथा कन्यारत्न को
लिये अपने घर आया। पिता अपने पुत्र का वृत्तान्त सुन अति प्रमुदित हुआ और
उसका अभिनन्दन करने लगा; उसके राजा भी इस वृत्तान्त के सुनने से अति
हर्षित हुए। इसके उपरान्त विनीतमति ने विधिपूर्वक उस नागकन्या का पाणि-
ग्रहण किया।

अब एक समय कमलमति ने चारों रत्नों तथा निज गुणों से युक्त अपने पुत्र से
एकान्त में कहा, कि हे पुत्र! महाराज उदयतुङ्ग जो हैं उनकी कन्या उदयवती सब
विद्याओं में शिक्षिता है किन्तु महाराज ने यह प्रण किया है कि जो कोई ब्राह्मण हो
या क्षत्रिय उन्हें शास्त्रार्थ में जीत ले उसी के साथ राजकन्या का विवाह कर देंगे।
बहुतेरे शास्त्रार्थ करने आये पर सब हारकर चले गये; रूप तो उनका ऐसा है

(१) अतिवृष्टि, अनावृष्टि, शलभ, मूसे और सुग्गे ये छः ईतियां हैं।

कि जिसके सामने देवाङ्गना भी हार मान बैठी हैं । बेटा तू अपने क्षत्रियों के बालक में एकही वीर है तो इस समय तू चुप क्यों बैठा है अवसर क्यों चूकता है, जा राजकुमारी से शास्त्रार्थ कर उन्हें जीतकर उनका भी पाणिग्रहण कर ले। पिता की ऐसी बात सुन विनीतमति बोला 'हे तात! अबलाओं के साथ मो समान लोगों का शास्त्रार्थ कैसा? तथापि आपकी आज्ञा शिर माथे, मैं राजकन्या से शास्त्रार्थ करूँगा।"

इस प्रकार पुत्र का कथन सुन कमलमति राजा के निकट गया और महाराज से कहने लगा कि पृथ्वीनाथ! मेरा पुत्र विनीतमति राजपुत्री से शास्त्रार्थ किया चाहता है सो कल वह यहां आवेगा और उनसे वाद-विवाद करेगा। राजा ने उसकी बात मान ली तब उसने घर जाकर अपने पुत्र विनीतमति से वह वृत्तान्त कह दिया।

अब प्रातःकाल होने पर समाज जुटने लगा, चहुँओर से विद्वान् लोग शास्त्रार्थ सुनने के लिये आ आकर राजसभा में बैठने लगे; कुछ कालोपरान्त महाराज उदयतुङ्ग भी आकर अपने आसन पर विराजमान हुए। तत्पश्चात् शास्त्रार्थ करने वाला विनीतमति उस विद्वन्मण्डली में आया उसके आवेही सभा मानों प्रकाशित हो गयी और चारों ओर से गुणी लोग उसके मुख की ओर टकटकी लगाये देखने लगे। कुछ कालोपरान्त कामदेव की प्रत्यञ्चा के समान गुणालङ्कृता राजपुत्री उदयवती भी मन्थरगति से वहां आ विराजीं; राजकुमारी के सब आभूषण गुणवान् थे क्योंकि उनसे जो शब्द निकलता था उससे एक विचित्र ध्वनि का उद्गम होता था उन्हीं आभूषणों के शब्द से यह भी प्रकट होता था कि पूर्वपक्ष को मानो उपेक्षा कर रहे हों। राजकुमारी मरकतमणि के सिंहासन पर शोभित हुईं, स्वच्छ आकाश में निर्मल इन्दुलेखा की शोभा जैसी होती है राजकन्या की वैसीही शोभा इस समय थी।

अब राजकुमारी ने पूर्वपक्ष उठाया, उस समय यह भासा कि यह अपने प्रकाशमान दन्तों की किरणरूपी तन्तुओं में सुग्रथित पदरत्नों की माला गुह रही हों। राजकन्या ने प्रश्न तो किया किन्तु विनीतमति ने तत्क्षण यह सिद्ध कर दिया यह प्रश्नही अशुद्ध है, इसका जो सिद्धान्त होगा वह भ्रमात्मक रहेगा। तब

राजदुलारी ने दूसरा प्रश्न किया, विनीतमति ने उसका भी खण्डन कर दिया। इसी प्रकार वह मुमुक्षु उदयवती जो जो प्रश्न करती विनीतमति तत्क्षण खण्डन कर उन्हें निरुत्तर कर देता। इस पर सभा में जितने लोग बैठे थे सबके सब जयजयकार कर विनीतमति की स्तुति करने लगे। इस प्रकार पराजित होकर भी उत्तम भर्त्ता की प्राप्ति के कारण राजकुमारी अपनाही जय मानती थीं। राजा उदयतुङ्ग के आनन्द का ठिकाना न था क्योंकि आज उनका मनोरथ पूर्ण हुआ, सो उन्होंने तत्क्षण सब वैवाहिक विधान कर अपनी कन्या उदयवती का विवाह विनीतमति से कर दिया, और यौतुक में असंख्य रत्न कन्या और जामाता को दिये। अब इतो विनीतमति उन दोनों नागसुता और राजसुता के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगा।

एक दिन की बात है कि विनीतमति अपनी सभा में बैठा था उसके कुछ मित्रों ने बात छेड़ी कि भाई जूआ होना चाहिये, बस जूआ आरम्भ हो गया। विनीतमति हारने लगा और दूसरे लोग जीतने लगे। इससे उसका मन बड़ा व्याकुल हुआ; इसी अवसर में एक भूखा ब्राह्मण आया और भोजन मांगने लगा। विनीतमति इधर जूए में लीन था उधर ब्राह्मण भी अपना टर्रा लगा मचाने; विनीतमति हारते हारते विड़चिड़ा तो उठाही था कि इस ब्राह्मण के हठ से और भी झुंझला गया उसने एक सेवक से कान में कह दिया कि किसी बर्तन में बालू भर कपड़े में लपेट कर इसे दे दो, बस उसी प्रकार कर दिया गया। बर्तन भारी था इससे ब्राह्मण अपने मन में सोचने लगा कि इसमें सोना भरा होगा सो किसी निराले स्थान में चलकर खोलना चाहिये; एकान्त में जाके खोले तो क्या देखता है कि पात्र बालुकापूर्ण है इसपर पात्र धरती पर पटककर वह बोला, "ओः उसने मुझे अच्छा धोखा दिया," इतना कह विचारा ब्राह्मण चलिहो उदास हो अपने घर चला गया। जब ब्राह्मण भीख लेकर चला गया तब विनीतमति भी जूआ छोड़ उठ खड़ा हुआ और जाकर अपने नित्यकर्म में लीन हो गया। इस प्रकार वह अपनी दोनों भार्याओं के साथ सुखपूर्वक रहता पर उसे इस बात का स्वप्न में भी खटका न था कि मैंने किसी ब्राह्मण को हताश किया है, उसका फल परमात्मा की ओर से क्या मिलेगा।

इस प्रकार समय बीतते २ महाराज उदयतुङ्ग को बुढ़ौती आ गयी, अब वह सन्धिविग्रहादि कार्य्यों में असमर्थ हो गये तथा राज्य का भार भी उनसे न चलता। उनके कोई पुत्र तो था ही नहीं सो जामाता विनीतमतिही को राजासन पर अभिषिक्त कर आप गङ्गाजी के तट पर जाकर तपस्या में तत्पर हुए कि यह कलुषित देह फिर न मिले। राज्य पाने के थोड़ेही कालोपरान्त महाराज विनीतमति दिग्विजय को निकले और अपने अस्त्र तथा खड्ग के प्रभाव से दशों दिशाएँ जीत निज राज्य में लौट आये और धर्म्म से प्रजापालन करने लगे ।. उस ईतिनाशक अंगूठी के प्रभाव से उनके राज्य में किसी प्रकार का रोग नहीं था न दुर्भिक्षही होता था, उनका राज्य महाराज रामचन्द्र के राज्य की नाईं था।

एक समय की बात है कि वादिद्विरदकेसरी (१) रत्नचन्द्रमति नामक एक भिक्षु (२) राजाके समीप आया । महीपति ने बड़े हर्ष से सत्कारपूर्वक उसका आतिथ्य किया । तब उसने उनसे कहा—"राजन् ! आप गुणियों का समुचित सत्कार करते हैं और वाद (३) में अद्भुत शक्ति रखते हैं, यह सुन मैं बड़ी दूर से आपके साथ शास्त्रार्थ करने आया हूं, और सुनिये हम दोनों के बीच यह पण होगा कि यदि तुम हार जाओ तो बुद्धदेव का शासन ग्रहण करो और यदि मैं हार जाऊँ तो अपनी कौपीन सौपीन फेंकफांक ब्राह्मणों की सेवा शुश्रूषा करूँ," यह सुन राजा ने कहा, "तथास्तु." अब शास्त्रार्थ होने लगा । पूर्वपक्ष उत्तरपक्ष उठते और क्रमानुसार सबका समाधान होता; इस प्रकार सात दिन पर्य्यन्त राजा विनीतमति उस भिक्षु से शास्त्रार्थ करते रहे आठवें दिन भिक्षुक ने उन्हें जीत लिया जिन्होंने कि समस्त वादियों को हरानेहारी उदयवती को जीत लिया था। तब उस भिक्षु ने राजा को बुद्धधर्म्म की शिक्षा दी और बताया कि इस धर्म्म का प्रधान उद्देश्य यह है कि परोपकार अर्थात् जीवों का उपकार करना, इससे बढ़कर दूसरा पुण्य हैहो नहीं राजा विनीतमति के हृदय में श्रद्धा उत्पन्न हुई सो उन्होंने बड़े आदर से वह धर्म्म ग्रहण किया और जिन देव की पूजा में तत्पर हो

(१) शास्त्रार्थ करनेवाले जो गजों के समान हैं उनके लिये जो सिंह समान है।
(२) जैन संन्यासी। (३) शास्त्रार्थ।

भिक्षुक, ब्राह्मण तथा सर्वसाधारण के उपकार के लिये विहार (१) बनवा दिये, (२) खोल दिये और धर्मशालायें बनवा दीं।

इस प्रकार अभ्यास करते २ राजा का हृदय शुद्ध हो गया सो उन्होंने उस भिक्षुक से यह प्रार्थना की कि हे महात्मन्! बोधिसत्व की सर्वोपकारिणी चर्या की आज्ञा दीजिये। महीपति का ऐसा प्रश्न सुन वह भिक्षुक बोला—"राजन्! जिनके पाप निर्मूल हो गये हों वेही तो बोधिसत्व की महाचर्या कर सकते हैं, दूसरे नहीं; जबलों लेशमात्र पाप रहे इसका अभ्यास नहीं हो सकता। हमलोगों के चर्मचक्षु से तो आप में ऐसा कोई स्थूल पाप नहीं दीख पड़ता, स्थूल दृष्टि से स्थूलही पाप देखे जा सकते हैं, सूक्ष्म पाप की मैं नहीं कह सकता, कदाचित् आपमें कोई सूक्ष्म हो। सो अब मैं आपको एक उपाय बतलाता हूं उसीसे आप देखें कि आपमें कोई सूक्ष्म पाप है या नहीं, जो कोई पाया जाय तो उसका शमन कीजिये।" इस प्रकार कहकर उस भिक्षुक ने राजा को एक स्वप्नमाणव (३) बता दिया राजा ने उसीके प्रभाव से रात्रि में एक स्वप्न देखा जिसका वर्णन उन्होंने प्रात काल उस भिक्षु से इस प्रकार किया। "आचार्य! आज स्वप्न में मुझे ऐसा जान पड़ा कि मैं परलोक में गया हूं, वहां मुझे बड़ी कड़ी भूख लगी सो मैं वहां के रक्षकों से अन्न मांगने लगा; वे दण्डधारी पुरुष बोले—"राजन्! लो यह बहुत सा बालू है इसे भकोसो (फांको), एक समय भूखा ब्राह्मण तुमसे अन्न मांगने आया था तो तुमने बालूही दी थी अब वही तुम खाओ क्योंकि यह तुम्हारी कमाई है। जो तुम दश करोड़ सुवर्णमुद्रा दान करो तो इस पाप से छूट सकते हो।" उन दण्डहस्तों (४) की इतनी बात सुनकर मैं जाग पड़ा और सायही रात भी बीत गई।"

इस प्रकार स्वप्नवृत्तान्त सुनाय राजा ने दश करोड़ स्वर्णमुद्रायें दान कीं पश्चात् उन्होंने पुनः स्वप्नमाणव का अनुष्ठान किया। फिर स्वप्न देखा और प्रातः-काल उठकर अपने गुरु को कह सुनाया—"गुरो! आज भी मैंने वही बात देखी परलोक में उन पुरुषों ने बालूही मुझे खाने को दी। जब मैंने उनसे पूछा कि

(१) जैन संन्यासियों का मठ। (२) अन्न सत्र जहां अन्न बँटे। (३ एक मन्त्र, जिसके प्रभाव से स्वप्न में ज्ञेय विषय ज्ञात हो जाय। (४) जिनके हाथ में डंडे थे।

मैं तो दश करोड़ स्वर्णमुद्राएं दान कर चुका हूं क्या अब भी बालुकाही खानी पड़ेगी ? इसपर उन्होंने उत्तर दिया कि वह दान तो तुम्हारा निष्फल हो गया क्योंकि उसमें एक मुद्रा ब्राह्मण की थी । इतना जब सुना तब मेरी नींद टूट गयी ।" इस प्रकार स्वप्न का वर्णन कर राजा ने अर्थियों को पुनः दश करोड़ सुवर्णमुद्रायें दान कीं।

जब रात हुई तब राजा ने फिर वही स्वप्नमाणव किया और जो कुछ देखा सो प्रातःकाल अपने गुरु को कह सुनाया—"महाराज ! आज भी वही बात! आज भी परलोक में उन्होंने सिकताही खाने को दी । जब मैंने इसका कारण पूछा तो उन्होंने उत्तर दिया—"राजन्! तुम्हारा यह दान भी निष्फल गया क्योंकि तुम्हारे राज्य में डाकुओं ने आज अरण्य में एक ब्राह्मण को मार डाला है और उसका सर्वस्व छीन लिया है । तुम्हारी ओर से ऐसा कोई प्रबन्ध नहीं था कि उस ब्राह्मण की रक्षा होती, इसीसे तुम्हारा यह दान भी निष्फल हो गया, सो अब तुम उसका दूना दान करो तो काम चले ।" इतना सुनतेही मैं जाग उठा'। इस प्रकार अपने गुरु उस भिक्षुक को स्वप्नवृत्तान्त सुनाय राजा ने आज दूना दान दिया ।

इसके उपरान्त राजा ने अपने आचार्य उस भिक्षुक से पूछा कि 'हे गुरो ! जब कि धर्म में ऐसे ऐसे सङ्कट व्याप्त हैं तो मेरे समान लोगों से क्योंकर उसका पालन हो सकता है ? अपने शिष्य का ऐसा प्रश्न सुन वह भिक्षुक बोला—"राजन्! धर्मरक्षा में कभी अनुत्साह न करना चाहिये; जो हो पर मति उसी ओर बनी रहे, कदापि उधर से हटे नहीं। जो लोग धैर्य धारण कर उत्साह सहित अपने धर्म का पालन करते रहते हैं, देवगण उनकी रक्षा करते और उनकी अभिलाषा पूरी करते हैं। भगवान् बोधिसत्व ने वाराह शरीर धारण किया था, यह कथा जो आप न जानते हों तो सुनिये मैं आपको सविस्तार सुनाता हूं।"

पूर्व समय की बात है कि विन्ध्याचल की गुहा में बुद्धांशसम्भव (१) कोई वराह बुद्धिमान्, अपने मित्र एक मर्कट के साथ रहता था । वह अपने सुहृद से सदा सब जीवधारियों का हितसाधन किया करता और जो कोई अतिथि

१ अंश से उत्पन्न

आ जाता तो उसका समुचित सत्कार करता; इस प्रकार वह धर्मपूर्वक अपने दिन बिताता था। एक समय दुर्दिन (१) उपस्थित हुआ पांच दिन पर्यन्त लगातार मूसलधार पानी बरसता रहा जिससे समस्त जीव जन्तुओं को बड़ाही कष्ट हुआ। पांचवें दिन की बात है कि वह वराह रात्रि के समय अपने मित्र उस कपि के साथ सोया था कि उसकी गुफा के द्वार पर एक सिंह अपनी स्त्री तथा पुत्र के साथ आया। सिंह अपनी भार्या से कहने लगा—"प्रिये! क्या किया जाय, ऐसे दुर्दिन में भोजन कहां मिले; ऐसी झड़ी लगी है कि बाहर निकलना भी कठिन हो गया है तो अहेर का पाना कहां। उसकी तो कुछ बातही नहीं; इधर भूख के मारे प्राण भी कण्ठगत हो गये हैं बस अब निश्चय जानो कि हम सभों की मृत्यु आ गयी अब इससे निस्तार नहीं है।" सिंह का ऐसा कथन सुन सिंही बोली—"नाथ! ठीक कहा, भूख से अब हम सभों का जीवन अन्त हुआही चाहता है, ऐसी अवस्था में मुझे एक उपाय सूझता है सो यह है कि मुझे खाकर तुम दोनों अपना जीवन धारण करो; तुम तो प्रभुही हो और यह पुत्र हम दोनों का प्राणसर्वस्व है; मेरी सी पत्नी तो तुमको और भी होती रहेगी; सो मेरेही प्राण जांय तो जांय पर तुम दोनों तो बच जाओगे।"

इस प्रकार गुफा के द्वार पर सिंह और सिंहनी परस्पर आलाप कर रहे थे कि उसी समय दैवात् वराह महाशय की नींद खुल गयी सो वह उनका कथोपकथन विचारने लगा, फिर वह अति प्रसन्न हो अपने मनमें इस प्रकार चिन्ता करने लगा—"अहो भाग्य! भला कहां यह निशा और कहां ऐसा दुर्दिन फिर कहां ऐसे अतिथियों की प्राप्ति! आज मेरे पुण्यों का उदय हुआ है। सो यदि कोई विघ्न न आ पड़े तो अपने इस क्षणभङ्गुर शरीर से इन अतिथियों को क्यों न तृप्त कर देऊं।" इतना सुन वह उठा और बाहर आकर स्नेहमयी वाणी से सिंह से कहने लगा,—"भाई तुम विषाद मत करो, मैं तुम्हारा भक्ष्य उपस्थित हुआ हूं सो तुम तुम्हारी स्त्री और तुम्हारा पुत्र सब मिल के मुझे खाओ।" वराह की ऐसी उक्ति सुन वह केसरी अपनी भार्य्या से कहने लगा कि पहिले यह बच्चा खा ले,

(१) जब लगातार वृष्टि होती रहती है और कई दिन लों सूर्यनारायण के दर्शन नहीं होते, ऐसा समय दुर्दिन कहलाता है।

हां तुम तो स्थिर बने रहे टुक भी अपने धर्म से न डटे; बस इस परोपकारिता की पराकाष्ठा दिखा तुमने मुझ धर्म को जीत लिया और उसी के प्रभाव से यह मुनीन्द्रता प्राप्त की है।" धर्मराज की ऐसी बात सुन तथा उन्हें सामने खड़ा देख वह मुनि बोला, "भगवन्। मैं मुनीन्द्र बन गया, इसमें कुछ सन्देह नहीं कि यह बड़े आनन्द का विषय है पर इससे मुझे किञ्चित् भी आह्लाद नहीं है, हां आह्लाद तब हो कि जब यह मेरा मित्र मर्कट भी तिर्यक् योनि से मुक्त हो जाय।" उसका इतना कथन सुन धर्म भगवान् ने उस मर्कट को भी मुनि बना दिया। इतना कर धर्म भगवान् अन्तर्धान हो गये और मरी सिंहनी भी लोप हो गयी। ठीकही कहा है—'कोहि न सुसंग बड़प्पन पावा ॥'

इतनी कथा सुनाय वह भिक्षुक विनीतमति से फिर कहने लगा कि राजन्! देखा न आपने जो लोग अपने बलबल से निज धर्म पर दृढ़ बने रहते हैं उनकी सहायता देवता लोग करते हैं और वे लोग अपना अभीष्ट पाते हैं।

इस प्रकार उस भिक्षुक का उपदेश सुन दानशूर राजा विनीतमति ने रात्रि में उस स्वप्नमाणव का फिर अनुष्ठान किया और जो स्वप्न देखा प्रातःकाल होने पर अपने गुरु उस भिक्षुक को कह सुनाया। राजा बोला, "हे गुरो! आज मुझे ऐसा ज्ञात हुआ कि कोई दिव्य मुनि मुझसे कह रहा है कि "पुत्र। अब तू निष्पाप हो गया सो तू अब बोधिसत्त्व की चर्या कर।' उसके वचन सुनकर मैं जाग पड़ा और आज मेरा अन्तरात्मा भी प्रसन्न है।" इस प्रकार गुरु से निवेदन कर महीपति ने शुभ दिन में उनकी आज्ञा पाय उस महाचर्या का अवलम्बन किया। अब वह बैठकर अतिथियों को यथेष्ट धन देने लगे, अनवरत द्रव्य की वृष्टि करने लगे, जितना वह उठाते उतना बढ़ जाता उनका भण्डार अक्षय हो गया; ठीक है कि सम्पत्ति का मूल धर्मही है। क्याही उचित कहा गया है—।

तुलसी चिड़ियन के पिये सरिता घटे न नीर।
दान दिये धन ना घटे जो सहाय रघुवीर ॥ १ ॥

एक समय एक अर्थी ब्राह्मण राजा विनीतमति के पास आया और कहने लगा, "राजन्! मैं पाटलिपुत्र का रहनेवाला ब्राह्मण हूं; मेरी अग्निशाला ब्रह्मराक्षस ने घेर रक्खी है मेरे पुत्र को भी उसने पकड़ लिया है, अब इस विषय

में मुझे कोई उपाय नहीं सूझता कि क्या करूँ क्योंकर उस दुष्ट से पिण्ड छूटे। आप अर्थियों के लिये कल्पवृक्ष हैं सो आपही से याचना करने आया हूं; आप सब दोषों की नाशनहारी यह अंगूठी मुझे दे देवें तो मेरा उद्धार हो नहीं तो और कोई उपाय नहीं है।" इस प्रकार उस अर्थी ब्राह्मण की प्रार्थना सुन महाराज विनीतमति कुछ भी नहीं हिचकिचाये, और बिना कुछ आगापीछा सोचे उन्होंने कालजिह्व से पाई हुई वह अंगूठी उस ब्राह्मण को दे दी। ब्राह्मण जब अंगूठी लेकर चला गया तब राजा का यह यश दिग्दिगन्त में व्याप गया, चहुँओर उनके बोधिसत्व व्रत की प्रशंसा होने लगी।

इसके उपरान्त एक समय उत्तर दिशा से इन्दुकलश नामक एक राजपुत्र उनके यहां अतिथि आया। राजा को उसने बड़ी नम्रता के साथ प्रणाम किया, महाराज विनीतमति ने उससे वंशादि पूछा तो ज्ञात हुआ कि वह एक उत्तम कुल का राजकुमार है। तब महीपति ने उससे पुनः प्रश्न किया कि "कहो इन्दुकलश! किस अर्थ से चले? इसपर वह राजपुत्र अपने आने का कारण बतला चला, .. ! आप अर्थियों के चिन्तामणि हैं, यह बात धरातल पर प्रसिद्ध है; यदि आपके प्रार्थों का भी प्रार्थी आवे तो वह विमुख होकर नहीं जाता। मेरा ... यह है कि मेरे भाई कनककलश ने मेरा राज्य छीन लिया और मुझे से बाहर निकाल दिया है; अब मैं आपके पास अर्थी होकर आया हूं। है ..! आपके पास एक घोड़ा और एक खड्ग अत्युत्तम रत्न हैं सो आप उन्हें .. दे देवें तो उन्हीं के प्रभाव से मैं अपने भाई को जीतकर अपने पिता का फिर हस्तगत कर लेऊँ।" इतना सुनतेही निज राज्य के रक्षामणिरूप उन .. अश्व राजा विनीतमति ने उस राजपुत्र को दे दिये और उनके मानस में .. विकल्प न हुआ कि भला यह क्या कर रहा हूं राज्य की रक्षा क्योंकर यदि कभी टेढ़ा मेढ़ा समय आ गया तो प्रजा किसकी शरण लेगी। प्र को तो यह बात बड़ी कसकी पर वश क्या था, वे नीचे मुंह करके लम्बी भरतेही रह गये और महाराज ने निःसङ्कोच वे रत्नयुगल राजपुत्र को दे । राजकुमार ने अश्व और खड्ग पाकर अपने भाई पर चढ़ाई किया और .. प्रभाव से उसे जीत अपना राज्य पुनः हस्तगत कर ..

पर इन्दुकलश के भ्राता कनककलश को राज्य से च्युत हो जाने के कारण बड़ी ग्लानि हुई सो वह राजा विनीतमति की नगरी में चला गया और वहां उसने अग्निप्रवेश का उपक्रम आरम्भ कर दिया। महाराज के कानों में यह बात पड़ी सो उन्होंने अपने मन्त्रियों से कहा कि यह बिचारा मेरेही अपराध से इस दशा को पहुंचा है सो अब मैं अपना राज्य उसे देकर उससे उऋण होता हूं। यदि मेरा राज्य पराये का उपकार न कर सका तो किस काम का। फिर मेरे कोई सन्तान तो हैही नहीं तो यही मेरा पुत्र होवे और राज्य धारण करे।" मन्त्रियों को यह बात सुना कब रुचे, वे आनाकानी करने लगे पर महाराज विनीतमति ने एक भी न सुनी उन्होंने कनककलशको बुलाकर अपना राज्य देही तो डाला।

कनककलश को राज्य देकर महाराज विनीतमति बिना किसी प्रकार का विकल्प किये अपनी दोनों भार्य्याओं के साथ राज्य से निकल खड़े हुए। "हा! हा!! धिक्कार है; हा! यह सम्पूर्ण अमृतदीधिति * अभी उदय हुए और तुरत अकालमेघ ने आकर उन्हें घेर लिया। यह महाराज समस्त देहधारियों की आशापूर्त्ति में प्रवृत्त हुए, प्रजाओं के लिये यह कल्पवृक्ष हैं सो विधि इन्हें कहां से चला। हा! दैव की गति भी कुछ जानी नहीं जाती।" इस प्रकार भांति भांति के विलाप करते और रोते पीटते आंसुओं से धरती सींचते प्रजावर्ग राजा के पीछे हो लिये। राजा विनीतमति ने किसी प्रकार समझा बुझाकर अपनी प्रजा को लौटाया। इसके उपरान्त वह अकम्पित हो अपनी दोनों भार्य्याओं के साथ जङ्गल की ओर चले। कोई वाहन तो थाही नहीं तीनों जन पांवही पांव चले जाते थे।

चलते २ एक मरुभूमि में पहुंचे जहां न कहीं पानी और न कहीं कोई हरियाली दिखाई पड़ता था, सूर्य्यनारायण की प्रखर किरणों से बालू भी उत्तप्त हो रही थी; मानो विधि ने उनके धैर्य्य की परीक्षा के हेतु उस मरुभूमि की सृष्टि की हो। भूख से तथा मार्ग चलने से तीनों जन व्याकुल हो रहे थे सो राजा विश्राम करने के हेतु पत्नी सहित एक स्थान में बैठ गये बैठतेही क्षणभर में सबको नींद आ गयी। जब नींद खुली तो राजा क्या देखते हैं कि सामने एक प्रशस्त और बहुत उद्यान विद्य-

---

* अमृत सी शीतल है चन्द्रिका जिसकी, अर्थात् चन्द्रमा।

भाग है, जो कि उनके पुण्यप्रताप से बना था; जिसमें एक बावड़ी है जिसका जल शीतल और स्वच्छ, जिसमें पद्म विकसित हैं। वाटिका में जिधर दृष्टि फेरो उधरही नीली नीली और हरी हरी घासें दीख पड़ती हैं और सब वृक्ष फलों के बोझ से झुक गये हैं। कहीं २ पादपों की शीतल छाया में सुचिक्कण बड़ी बड़ी शिलायें बिछी हैं। उस उद्यान के निरीक्षण से ऐसी भावना मनमें उदित होती है मानो राजा के पुण्यप्रभाव से नन्दनवन स्वर्ग से खिंच पड़ा हो। वाटिका देख देख राजा बड़े अचम्भित होते और मनमें विचारते कि यह मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूं अथवा मुझे कुछ भ्रम तो नहीं हो गया है। इस प्रकार वह विस्मय में पड़े थे कि आकाश से दो हंसों के रूप में दो सिद्धों की वाणी उन्हें सुन पड़ी—"राजन्! यह तो तुम्हारे पुण्यप्रताप का परिणाम है इसमें तुम क्यों चमत्कृत हो रहे हो, सो इस फल पुष्प से परिपूर्ण कानन में यथेच्छ वास करो।" सिद्धों का ऐसा कथन सुन राजा विनीतमति का भ्रम दूर हुआ, वह अति प्रमुदित हुए और अपनी दोनों पत्नियों के साथ तपस्या करते हुए उस कानन में रहने लगे।

एक समय वह एक शिला पर बैठे थे तो एक ओर जो उनकी दृष्टि गयी तो क्या देखते हैं कि पासही में एक पुरुष पेड़ में फांसी लगाकर मरने की चेष्टा कर रहा है। राजा अति शीघ्र उसके पास दौड़ गये और प्रिय वचनों से उसे समझा बुझा वैसा अनर्थ करने से विरत कर उससे पूछने लगे कि भाई ऐसा अनर्थ तुम क्यों करने चले हो, कहो तो सही इस प्रकार प्राण देने का कारण क्या है? तब वह पुरुष बोला "महात्मन्! सुनिये मैं जड़ से सारा वृत्तान्त सुना जाता हूं।"

मैं सोमवंशी नागशूर का बेटा हूं, और नाम मेरा सोमशूर है। जब कि मेरा [जन्]म हुआ उस समय मेरे पिता ने जातक के ज्ञाता ज्योतिषियों को बुलाकर पूछा [कि] आप लोग इस बालक के लक्षण बतलावें कि यह कैसा होगा? उन्होंने विचार [कर कहा] कि यह लड़का चोर निकलेगा। यह सुनतेही मेरे पिता को बड़ा दुःख [हुआ, पर] र यश क्या? तथापि उसके बचाव के लिये उन्होंने मुझे बड़े प्रयत्न से धर्म- [शा]स्त्र शिक्षा दिलवाई। धर्मशास्त्र पढ़कर भी मैं दुष्ट संगति में फँसकर चोरी [करने ल]गा, भला पूर्वजन्म के कर्म कौन अन्यथा कर सकता है। ठीकही कहा है—

करमरेख नहिं मिटै

एक समय ऐसा हुआ कि नगर के रक्षकों ने चोरी के साथ मुझे पकड़ लिया बस अब क्या, वे शूली पर चढ़ाने के लिये वधस्थान को ले चले। इतने में क्या हुआ कि राजा का बड़ा हाथी मस्त हो गया सो सिकड़ तोड़ वह निकल भागा और मार्ग में जितने जीव जन्तु साम्हने पड़े उन्हें कुचलता चोड़ता फाड़ता वहीं आ पहुँचा। उसके त्रास से वधिक मुझे छोड़ इधर उधर भाग गये, बस इसी गड़बड़ी में मुझे भी अवसर मिल गया सो मैं भी वहां से निकल भागा। लोगों से मुझे विदित हुआ कि जब मेरे पिता ने यह जाना कि वधिक मुझे वध के निमित्त लिये जा रहे हैं तब शोक के मारे उन्होंने प्राण छोड़ दिये और माता मेरी उनकी अनुगामिनी हुईं। अब मेरे मन में यह भावना उठी कि जब मेरे माता पिता मेरे शोक से मर गये तो इस अधम शरीर को रख के क्या होगा बस इसका त्यागनाही श्रेय है; इसी विचार से घूमता घामता, कि कहीं निराला मिले तहां शरीर त्याग कर देऊं, मैं यहां पहुँचा। ज्योंही कि मैं इस कानन में पैठा कि एक दिव्य स्त्री अकस्मात् मेरे नेत्रों के समक्ष आ विराजी और मुझे बहुत कुछ समझा बुझा तथा शान्ति दे इस प्रकार कहने लगी—"हे पुत्र! अब तू राजर्षि विनीतमति के आश्रम में आ पहुँचा है, तेरा समस्त पाप नष्ट हो गया, अब तू उनसे ज्ञान प्राप्त करेगा।" इतना कह वह तो अन्तर्धान हो गयीं और मैं उन राजर्षि की खोज करने लगा, जब वह न मिले तब तो मुझे बड़ा शोक हुआ और फिर वही भावना हुई कि शरीर त्याग देऊँ सो यही मैं प्राणोत्सर्ग किया चाहता था कि आपने देख लिया।

इस प्रकार जब सोमशूर अपना वृत्तान्त सुना चुका तब राजर्षि विनीतमति उसे अपनी कुटी में ले गये, वहां उन्होंने उसे बताया कि जिसकी खोज तुम कर रहे हो वह मैंही हूं। इतना कह उन्होंने उसका आतिथ्य किया। जबकि वह खा पीकर सुखित हुआ तब अति नम्रता से हाथ जोड़ बोला कि महाराज! अब कुछ ऐसा उपदेश दीजिये कि मेरा अज्ञान दूर हो जाय; तब वह राजर्षि नाना प्रकार की धर्मकथायें उसे सुनाने लगे कि जिनके श्रवण से उसका अज्ञान जाता रहे। इसके उपरान्त वह फिर बोले—"वत्स! मूर्खे अज्ञान तो सर्वथा त्यागना ही चाहिये क्योंकि जिनकी बुद्धि ठिकाने नहीं रहती उनको वह दोनों लोकों से भ्रष्ट

कर देता है और यहां वहां दोनों स्थानों में वह उनके लिये दोषोत्पादक होता है। सुनो इसी विषय में मैं तुमको आगम की एक कथा सुनाता हूं।

पूर्वकाल में पञ्चाल देश में देवभूति नामक एक दैवज्ञ ब्राह्मण रहता था, उसको स्त्री भोगवती नाम्नी बड़ी पतिव्रता सती थी। एक समय की बात है कि जब ब्राह्मण स्नान करने गया था उसी समय भोगवती बाड़े में साग खोंटने गयी तो क्या देखती है कि किसी धोबी का गदहा साग चर रहा है। एक पटकन ले वह गदहे को भगाने लगी, गदहा भागा और दौड़ता २ एक गड़हे में गिर पड़ा जिस से उसका खुर टूट गया। यह बात धोबी को ज्ञात हुई सो वह क्रोध के मारे दांत पीसता हुआ लट्ठ लेकर दौड़ा और वहां पहुंचकर ब्राह्मणी को लट्ठ और लातों से लगा पीटने, उस दुष्ट ने ऐसा पीटा कि उस विचारी गर्भिणी ब्राह्मणी का गर्भ गिर पड़ा। इतने में वह दुष्ट धोबी गदहे को लेकर अपने घर चला गया।

जब ब्राह्मण स्नान करके घर आया तो सब वृत्तान्त सुन तथा ब्राह्मणी को उस अवस्था में देखकर बड़ा दुःखित हुआ; सो उसने जाकर नगर के अध्यक्ष से आवेदन किया कि अमुक धोबी ने ऐसा ऐसा अत्याचार किया है। उस धोबी का नाम बलासुर था सो न्यायाधीश ने उसे पकड़ मंगाया। न्यायाधीश पूरा घनचक्कर था, वादी और प्रतिवादी का विवाद सुन उस मूर्खाधीश ने इस प्रकार का न्याय सुनाया—"गदहे का खुर टूट गया है इससे धोबी का बोझा अब कैसे ढोया जाय, सो जबलों उसका खुर अच्छा न हो धोबी का बोझा यह ब्राह्मण ढोवे; और इस धोबी ने ब्राह्मणी का गर्भ गिरा दिया तो यह उसमें दूसरा गर्भाधान कर देवे। ... यही दण्ड दोनों को दिया जाता है।" इस प्रकार का अद्भुत न्याय सुन ब्राह्मण ब्राह्मणी को बड़ाही सन्ताप हुआ सो दोनों ने विष खाकर प्राण त्याग दिये। राजा को यह बात ज्ञात हुई कि अमुक न्यायाधीश ने ऐसा अनुचित न्याय ... जिससे ब्राह्मण और ब्राह्मणी के प्राण गये तो उन्होंने उस मूर्ख ब्रह्मघाती ... दिया, मरने के उपरान्त वह दुष्ट बहुत काल पर्य्यन्त तिर्य्यक्योनि

... कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले कि पुत्र! इसी प्रकार के अज्ञान- ... में पड़े हुए लोग, अपनेही दोष से असन्मार्ग पर चलते हैं; शास्त्ररूपी ... आगे रहताही नहीं बस वे भ्रष्ट

इस प्रकार राजर्षि का कथन सुन वह सौदागर बोला "महात्मन्! ऐसेही ऐसे और उपदेश सुनाकर मेरा अज्ञान दूर कीजिये, मैं आपकी शरण में आया हूं अब ऐसा उपदेश करें कि मेरी मुक्ति हो जाय।" उसकी ऐसी विनती सुन राजर्षि विनीतमति बोले —"वत्स! सुनो मैं तुमको क्रमानुसार विशुद्धज्ञान का उपदेश देता हूं, तुम ध्यान लगाकर सुनो।"

पूर्व समय की बात है कि कुरुक्षेत्र में मलयप्रभ नामक कोई राजा थे। एक समय उनके राज्य में दुर्भिक्ष पड़ा सो राजा अपनी प्रजा को धन देने लगे। इस पर मन्त्रियों ने लोभवश उन्हें समझाया कि महाराज आप इस प्रकार से धन न उठा डालें इसमें भला न होगा सो राजा ने अपने मन्त्रियों की बात मान दान करने से हाथ खींच लिया।

राजा को इस प्रकार दान से विरत देख उनका पुत्र इन्दुप्रभ उनसे कहने लगा—"हे तात। इन दुष्ट मन्त्रियों की बात में आकर आप प्रजाओं की उपेक्षा क्यों करने लगे हैं; आप उनके कल्पद्रुम हैं और वे आपकी कामधेनु हैं।" इस प्रकार बारम्बार पुत्र का कथन सुन राजा को बड़ा खेद हुआ, वह तो मन्त्रियों के वश में थे सो खेदित हों न तो करें क्या। उन्होंने अपने पुत्र से कहा—"वत्स! तुम क्या समझते हो कि मेरे पास अक्षय कोष है; यदि बिना अक्षय धन के मैं प्रजावर्ग का कल्पवृक्ष हूं तो तुही इसको कल्पवृक्षता क्यों नहीं धारण कर लेता।" पिता की ऐसी तीखी बात राजकुमार के हृदय में चुभ गयी उन्होंने अपने मनमें दृढ़ प्रतिज्ञा की कि या तो मैं तपस्या कर कल्पवृक्षत्वही सिद्ध करूँगा नहीं तो प्राणो त्सर्गही कर दूंगा। इस प्रकार विचारकर वह महासत्व तपोवन में चले गये, और ज्योंही राजकुमार वहां पहुँचे और तपश्चर्या में लीन हुए कि उनके राज्य में जलवृष्टि हुई और दुर्भिक्ष शान्त हो गया। उनकी कठोर तपश्चर्या से इन्द्र बड़ेही प्रसन्न हुए सो उनसे राजकुमार ने कल्पवृक्षत्व वर मांग लिया।

अब राजकुमार इन्दुप्रभ अपने नगर में आये और सचमुच कल्पवृक्ष के समान प्रजाओं पर अर्थवृष्टि करने लगे। थोड़ेही काल में उनका यश दिग्दिगन्त में फैल गया और चहुंओर से अर्थीगण उनके निकट आने लगे, मानो उस राजकुमार-रूपी कल्पवृक्ष की शाखाएँ दूर दूर से अर्थियों को बुलाने लगी हों और उस वृक्ष

पर के पक्षीगण अपने कलरव से यह उचारते हीं कि हे अर्थसङ्कट से पीड़ित लोगो अब क्यों और दुःख सहते हो राजकुमार इन्दुप्रभ के समीप आओ और अपने कष्ट से छूट जाओ । राजकुमार अपनी प्रजाओं को दुष्प्राप्य अर्थ देकर प्रयाण करने लगे यहां लों कि अल्पकाल में उनकी प्रजा निराकांक्ष हो गयी और किसी को किसी प्रकार की आकांक्षा न रही, सबके मनोरथ परिपूर्ण रहते मानो सब लोग स्वर्ग में स्थित हों ।

जब बहुत दिन इस प्रकार बीत गये तब एक दिन महेन्द्र राजकुमार के पास आये और सुभाकर उनसे कहने लगे कि अब तो आपका परोपकार पूर्णावस्था को पहुँच गया अब आप मेरे साथ स्वर्ग को चले चलिये । इन्द्र का ऐसा कथन सुन कल्पद्रुमीभूत राजकुमार इन्दुप्रभ बोले "महेन्द्र ! जहां देखिये ये वृक्ष स्वार्थ निस्पृह हो दूसरों के उपकार के निमित्तही अपने पुष्प फल धारण करते और उनसे पराये का उपकार साधन करते हैं तहां सचमुच कल्पतरु होकर, दूसरों की आशा नाश कर अपने ही सुख के लिये कैसे स्वर्ग को चलूं ।" राजकुमार का ऐसा उदार वचन सुन शक्र फिर बोले—"अच्छा, तो आपकी यह समस्त प्रजा स्वर्ग को चले ।" तब फिर राजपुत्र ने उत्तर दिया "यदि आप तुष्ट हैं तो समस्त प्रजा को स्वर्ग ले जावें, मुझे इस कल्पवृक्षत्व को अब कुछ चिन्ता नहीं है, मैं परोपकार की सिद्धि के हेतु महत् तप करूंगा ।" इस प्रकार इन्दुप्रभ की उक्ति सुन इन्द्र बड़ेही प्रसन्न हुए और उनकी स्तुति करने लगे । पश्चात् उनकी समस्त ... को लेकर महेन्द्र स्वर्ग को चले गये । इधर राजपुत्र भी वृक्षता त्याग अपना ... घर वनवास कर तपस्या में लीन हो गये थोड़ेही काल में बोधिसत्वता उनको ... हो गयी ।

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति सोमशूर से कहने लगे कि जो लोग ... में रत रहते हैं उनको सिद्धि इसी प्रकार पाप से आप हो जाती है । वत्स ! तुमको दान की पराकाष्ठा की कथा सुनायी गयी । अब सुनो शील की ... तुमको सुनाता हूं ।

पूर्व समय की बात है कि सुगताश्रयवाला सूर्यो का एक राजा था नाम उसका ... था और वह ... था तथा पुण्यवान् का ... में जो ...

उससे हना हुआ था। निवास उसका विन्ध्याद्रि में था । वह तो जातिस्मर था और धर्मोपदेश भी करता था परन्तु उसका जो एक चारुमति नामक सुग्गा प्रतीहार था सो बड़ाही रागद्वेष से परिपूर्ण था। एक समय उसकी भार्य्या शुकी किसी बहेलिये के जाल में पड़ गयी और मार डाली गयी इससे वह प्रतीहार उसके वियोग से उसी की चिन्ता में पड़े रहने से बड़ी दुरवस्था को प्राप्त हो गया, तब उसको शोक से निवृत्त करने के हेतु हेमप्रभ उसके हित के लिये इस प्रकार झूठ बात बना बोला —"भाई इतना शोक क्यों करते हो। वह तुम्हारी भार्य्या मरी नहीं वह तो उस बहेलिये के जाल से जीतीही निकल भागी यह मैं अपनी आंखों देख चुका हूं। अभी मैं तुम्हें उसे दिखा दूं।" इतना कह राजा उसे आकाशमार्ग से एक जलाशय पर ले गया, तहां जल में उसीकी परछांही दिखा बोला "देखो तुम्हारी भार्य्या यहां है।" यह सुन वह मूर्ख अपनाही प्रतिबिम्ब देख अति प्रहृष्ट हुआ और उसी जल के भीतर घुसकर उसे आलिङ्गन कर चूमने चाटने लगा। उसे न तो स्पर्श का सुखही मिला और न तो कुछ शब्दही श्रवण में आया तब तो वह अति चिन्तित हुआ कि प्रिया न तो आलिङ्गनही करती है और न कुछ बोलतीही है इसका क्या कारण है । तब उसके मन में यह भावना उठी कि यह कुपित हो गयी है अच्छा इसे कुछ खानेको देना चाहिये ऐसा विचार वह कहीं से एक आंवला तोड़ लाया और स्त्री बुद्धि से अपनीही परछाहीं पर रखके बहुत कुछ चाटुकारता करने और पुचकारने लगा पर वह क्यों बोले। आंवला ऊपर से गिरतेही पहिले तो जल में डूब गया पर तुरतही उतिरा आया जिससे उस मूढ़ को यह ज्ञात हुआ कि प्रिया ने मेरा उपहार स्वीकार न किया; तब तो उसके शोक की चरम सीमा आ पड़ी वह बड़ाही खेदित हुआ और अन्त में जाकर अपने राजा से इस प्रकार कहने लगा—"देव। मेरी भार्य्या न तो मुझे छूतीही है न कुछ बोलती है, और कहां लों कहूं मैंने जो आंवला उसे दिया उसे भी उसने फेंक दिया।" उसका ऐसा कथन सुन राजा ने धीरे से उसके कान में कहा, — मानो उसके कहने उसे बड़ा कष्ट होता था, राजा ने कहा "भाई। यह कहने की बात नहीं है तथापि तुमपर मेरा ऐसा गाढ़ प्रेम है कि बिना कहे बनता भी नहीं इससे अगत्या कहना पड़ता है, सुनो बात यह है कि अब उसका मन दूसरे

से लग गया है तो भला तुमसे क्योंकर प्रीति कर सकती है; चलो न उसी जल के भीतर में दिखा देता हूं।" इतना कह राजा उसे वहां ले गया और उस सरोवर के निर्मल जल में उसने अपना तथा उस मुर्गे का दो प्रतिबिम्ब उसे दिखा दिये। उस दूसरे प्रतिबिम्ब के निरीक्षण से उस मूर्ख के मनमें यह निश्चय हो गया कि सचमुच यह दूसरे से फँस गयी है, सो वह अपने स्वामी के निकट लौट गया और इस प्रकार कहने लगा—"देव ! मुझ मूढ़ ने जो आपका उपदेश नहीं सुना उसी का यह परिणाम है, अब आप यह बतलाइये कि मुझे क्या कर्त्तव्य है।" इस प्रकार जब वह अपना निर्वेद सुना चुका तब अपने उपदेश प्रदान का अवसर पाय राजा हेमप्रभ उससे इस प्रकार कहने लगा—"भाई चारुमति ! क्या कहूं, हलाहल विष का पीना वरु अच्छा है तथा गले में सांप का लपेटना भला है किन्तु स्त्रियों का विश्वास किसी अंश में भला नहीं, क्योंकि मणिमन्त्रादि से सर्प और विष की शान्ति हो सकती है किन्तु स्त्रियों की कुटिलता की कोई औषधि नहीं है। स्त्रियां, सन्मार्ग पर चलनेवालों को दूषित कर डालती हैं पुनः उन्हें सब प्रकार से नष्ट भ्रष्ट कर छोड़ती हैं स्त्रियां आंधी की भांति अति चपल और रज से (१) परिपूर्ण रहती हैं। अतः बुद्धिमान् धीरसत्वों को उचित है कि उनमें लीन न होवें प्रत्युत ऐसे शील और सदाचार का अभ्यास करें कि वीतराग की पदवी मिल जा[illegible]।" इस प्रकार अपने राजा से स्त्री के विषय में उपदेश पाकर चारुमति स्त्री-वासना त्याग ऊर्ध्वरेता हो क्रमानुसार बुद्ध समान हो गया।

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले भद्र! यह तो तुमने शीलवान् की कथा सुनी अब तुमको क्षमाशील का वृत्तान्त सुनाता हूं सुनिये।

केदार पर्वत पर शुभनय नामक एक मुनि रहते थे, सदा मन्दाकिनी में स्नान [illegible]ने और तपस्या में लीन रहने के कारण उनकी सब इन्द्रियां उनके वश में हो [illegible]यीं तथाच घोर तपस्या से उनका शरीर अति दुर्बल हो गया था। एक समय [illegible] बात है कि एक रात में कुछ चोर अपना कांचन खोद निकालने आये जो वे पहिले कभी गाड़ गये थे। जब उनका धन उन्हें न मिला तब तो वे बड़े [illegible] में पड़े कि निर्जन स्थान में कौन आया कि ले गया पश्चात् सभी ने वहीं

(१) स्त्री पक्ष में रजोगुण, आंधी पक्ष में धूलि।

निश्चय किया कि बस यह काम इसी मुनि का है, ऐसा ठहरा वे सब मुनि की मठिका में घुस गये और डांटकर कहने लगे—"अरे पापिष्ट पाखण्डी! बता हमारा धरती में गड़ा सोना तू कहां ले गया, अरे हम तो चोर हैं ही, फिर तू चोरों का चोर कहां से आया?" इस प्रकार उनके आक्षेपमय वचन सुनकर मुनि बोले— "भाई मैं क्या जानूं तुम्हारा सोना चोना; मैंने उसे नहीं लिया है और न देखाही है।" तब तो वे दुष्ट लट्ठों से मुनि की पूजा करने लगे, तब भी वह सत्यभाषी मुनि वही कहते रहे जो कुछ कि उन्होंने पहिले कहा था। तब तो उन चोरों का कोप और भी भड़का, "यह बड़ा क्रूर है," इतना कह उन्होंने मुनि महाराज के दोनों हाथ काट डाले, फिर दोनों पांव काट लिये यहां लौं कि पीछे दोनों आंखें भी निकाल लीं। तब भी ऋषि अपने वचन से न टले, जो बात उनके मुंह से पहिले निकली वही अब भी थी और विशेषता यह कि हाथ पांव कट गये और आंखें निकल गयीं तथापि मुनि निर्विकार बने रहे। उनकी यह दशा देख चोरों के मनमें यह बात आई कि अशु कोई दूसरा चुरा ले गया होगा, इतना विचार वे वहां से चले गये।

दूसरेही दिन उस देश के राजा महाराज शेखरज्योति मुनिजी के दर्शनार्थ वहां आये, वह मुनिराज के शिष्य थे; वह आये और देखें तो मुनि उस दशा में पड़े हैं। इससे उनके शोक का पार न था, पूछने पर अब विदित हुआ कि चोरों ने व्यर्थही ऐसी गति की है तब राजा ने उन चोरों को खोजखा के पकड़वा मंगाया। जब कि महाराज ने आज्ञा की कि इनका बध किया जाय तब मुनि बोले— "महाराज यदि इन चोरों का बध किया जायगा तो मैं भी आत्महत्या कर डालूंगा। यदि यह कहा जाय कि शस्त्र के द्वारा मेरी ऐसी गति की गयी तब इन बिचारों का दोषही क्या रहा, हां ये उसके प्रेरक हुए तथापि ये निर्दोष हैं क्योंकि बड़ा कारण क्रोध है, क्रोध का भी कारण सर्वनाश है जिसका प्रधान कारण मेरे पूर्वजन्म का पाप है, तहां मेराही अज्ञान मुख्य कारण है अतः मेरेही अज्ञान से मेरी ऐसी दुर्गति हुई। सो मेरा वही अज्ञान बध्य है। यदि यह कहा जाय कि ये जो अपकारी हैं अत. बध किये जावेंगे तो मेरा कहना होगा कि ये मेरे उपकारी हैं अतः इनकी रक्षा होनी चाहिये; क्योंकि यदि ये ऐसा न करते तो मोक्षजन

देनेवाली क्षमा का अवसर कहां मिलता, और मैं किसका अपराध क्षमा करता, सो इन चोरों ने मेरा उपकार किया है।" इत्यादि २ वचनों से क्षमा-तत्पर मुनि ने राजा को समझाया बुझाया और उन चोरों को निगड़बन्धन से छोड़वा दिया। महामुनि के तपःप्रभाव से उनका शरीर पूर्ववत् अक्षत हो गया और उन्हें सिद्धि भी प्राप्त हो गई।

इतनी कथा सुनाय विनीतमति बोले "भद्र! इस प्रकार से क्षमाशील जन इस संसारसागर से आप तो तरतेही हैं किन्तु औरों को भी तार देते हैं। अच्छा अब तुमको धैर्यशील की कथा सुनाता हूं।"

पूर्वकाल में मालाधर नामक एक ब्राह्मणकुमार था, उसने एक बार व्योमगामी सिद्धकुमार को देखा तो उसके मन में आया कि मैं भी क्यों न आकाश में उड़ूं सो वह तिनकों के पंख बना दोनों ओर बांध प्रतिदिन उड़ने लगा और इसी प्रकार वह आकाश में उड़ने की गति सीखता था। वह प्रतिदिन इतना परिश्रम उठाता पर कुछ उत्तम फल नहीं होता किन्तु उसने धैर्य्य का त्याग नहीं किया।

एक दिन की बात है कि वह इसी प्रकार उदुक फुदुक रहा था कि ऊपर से सिद्धकुमार की दृष्टि उसपर पड़ी, उसका अध्यवसाय निरख उनके मनमें दया आई कि देखो यह विचारा मेरे समान आकाशमें उड़ने को चेष्टा कर रहा है पर समर्थ नहीं होता तथापि इस व्यापार से विरत नहीं होता तो मुझे उचित है कि इस बालक पर अनुकम्पा करूँ। इतना विचार वह अपनी योगविद्या से उसे आकाश में उड़ा ले गये और अपनी शक्ति से उन्होंने उसे अपना सहचर बना लिया।

इतनी कथा सुनाय विनीतमति बोले कि देखा न तुमने धैर्य्य का ऐसा प्रभाव ..... है। अच्छा यह तो धैर्यशील की कथा हुई अब तुमको ध्यानशील की कथा ..ता हूं—

पूर्वकाल की बात है कि कर्णाटक देश में विजयमाली नामक एक अत्यन्त ... बनिया रहता था। उसके एक पुत्र था जिसका नाम मलयमाली था ... मलयमाली अपने पिता के साथ राजसभा में गया जहां उस युवा की ... इन्दुकेसरी की कन्या इन्दुयशा पर पड़ी। वह इन्दुयशा क्या थी मानो ... की मोहिनी लता थी; ज्योंही कि वणिक्पुत्र की दृष्टि उसपर पड़ी त्योंही

राजकन्या ने उसके हृदय में डेरा डाल दिया। जब वह घर गया तब उसकी वेदना और भी प्रबल हो गयी, रात भर उसे नींद न आती, जागताही रह जाता और दिन में सङ्कुचित रहता, इस प्रकार उसने कुमुद व्रत का (१) अवलम्बन किया और क्रमश: उसका शरीर पाण्डुवर्ण हो चला। उसे रात दिन राजकुमारी का ध्यान बना रहता और २ व्यापारों की कौन चलावे भोजन से भी वह पराङ्मुख रहता, रहने लगा जब कोई इसका कारण उससे पूछता तो गूंगे के समान चुप हो किसी से कुछ भी न कहता था।

उसका एक बड़ा भारी मित्र मन्थरक था जो कि राजकीय चित्रकार था; उसने उसका यह हाल देख एक दिन एकान्त में उससे पूछा कि कहो मित्र! यह तुम्हारी क्या दशा हो गयी है? तुम सदा भीत पर औठंगे बैठे रहते हो जैसे कोई चित्र हो, न हिलते हो न डोलते हो, और न कुछ खाते पीते हो, फिर न किसी की कुछ सुनते हो न समझाने से समझते हो और न किसी की ओर दृष्टि उठाकर देखते हो। सो कहो तो सही कि तुम्हारे हृदय में क्या वेदना है क्योंकि जबलों व्याधि जानी न जाय उसकी औषधि क्योंकर हो सकती है। इस प्रकार कहकर जब वह बार बार हठ करके पूछने लगा तब तो मलयमाली अपने मित्र से अपना अभिप्राय कह गया। यह सुन चित्रकार बोला—"मित्र! यह बात तो अच्छी नहीं है, राजपुत्री पर दृष्टि लगाना तुम्हें उचित नहीं है; हंस और और सरोवर के सरोजों की सुषमा का आनन्द लूटा करे परन्तु हरि भगवान् के नाभि कुण्ड से जो कमल निकला है उसकी भोग्यश्री का वह कौन है।" इस प्रकार की अनेक बातों से तो चित्रकार उसका मन उस ओर से न हटा सका, जब उसने देखा कि मलयमाली किसी प्रकार भी इस व्यापार से विरत नहीं होता तब उसने राजकुमारी का एक चित्र खींचकर उसे दे दिया कि जिस के दर्शनही से किसी प्रकार उसका समय कुछ शान्तिपूर्वक कटे। मलयमाली चित्रलिखित अपनी प्रिया को पाकर बड़े ध्यान से उसे देखता, आलिङ्गन करता, और विविध आभूषणों से भूषित करता। उसकी यह भावना हो गयी थी कि वह यथा इन्दु

(१) कोईं का यह नियम है कि वह रात में खिलती और दिन में सङ्कुचित रहती है।

यथा राजकुमारी है, होते होते वह वणिक्पुत्र तन्मय हो गया, ऐसा कि जो कुछ कार्य्य करता उसी वृत्ति से। उसे किञ्चिन्मात्र यह विचार न था कि यह चित्र है, उसको पूर्ण भावना थी कि राजदुलारी धीरे धीरे मुझसे बात करती हैं सो वह उस चित्र से आलाप करता; राजकुमारी चुम्बन लेती हैं, राजकुमारी का चुम्बन लेता। अब वह उसी भावना से अपनी कान्ता के साथ सम्भोग से सुखित रहने लगा, सांसारिक व्यापार से कुछ कार्य नहीं, रात दिन चित्रपट लिये आनन्दमग्न रहता।

एक दिन की बात है कि रात्रि के समय जब चन्द्रोदय हुआ तो उसके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि चलो अपनी प्रिया के साथ उद्यानविहार करूँ, सो वह चित्रपट ले घर से निकला और उद्यान में गया। वहां एक पेड़ की जड़ पर चित्र रख वह अपनी प्रिया के लिये फूल चुनने चला, फूल चुनता २ वह बहुत दूर निकल गया। उसी समय विनयज्योति नामक मुनि उसे देख दयार्द्र हो गये सो वह आकाश से उतरे कि अब इसका अन्धकार दूर कर उद्धार करूँ। उन्होंने क्या किया कि अपनी शक्ति से चित्र के एक भाग में सजीव कृष्णसर्प उरेह दिया, और उसे वहीं रख मुनि एक ओर छिप बैठे। इतने में मलयमाली फूल चुनकर आ गया देखे तो चित्र पर काला सांप विद्यमान है देखतेही वह चिन्ता करने लगा "हाय हाय! यह सर्प यहां कहां से आया? क्या विधि ने तो रूपनिधान इस सुन्दरी की रक्षा के लिये बनाकर इसे यहां नहीं भेजा है!। इस प्रकार चिन्ता कर उसने [illegible]पनी प्रिया को फूलों से अलङ्कृत किया पश्चात् बड़े प्रेम से आलिङ्गन कर पूछा, [illegible] मुनि की माया पहुंची तो उससे उसे ज्ञात हुआ कि सर्प के काट लेने से [illegible]। तो मर गयी है यह मैं छाती से किसे लगा रहा हूं। तब तो वह पट भूल हाहाकार कर विमोहित हो गया और धरती पर गिर पड़ा जैसे कोई विद्या[illegible] विद्या के प्रभाव से पृथ्वी पर आ पड़े। कुछ कालोपरान्त जब वह सचेत [illegible] पुनः विलाप करने लगा, पश्चात् विचारा कि जब प्राणप्रिया ही मर गयी [illegible] क्या करूँगा, ऐसा स्थिर कर वह उठा और एक बड़े ऊँचे पेड़ पर चढ़ पृथ्वी की ओर कूद पड़ा। धरती पर गिरने नहीं पाया था कि इतनेही में [illegible] मुनि ने उसे रोक लिया और बहुत शान्ति दे [illegible] —"हे मूढ़

तू [illegible] कि इस [illegible] है यह [illegible] कहीं
[illegible] है। सो यह तू बता कि किसको तू या
[illegible] है। यह तेरी भावना मात्र है,
[illegible] भावना तुझको है—परे यह घोर
[illegible] है। जैसा [illegible] घोर है वैसा कहीं तत्वजिज्ञासा में होता तो तु
[illegible] न होता। सुन किसी महात्मा ने क्याही अच्छा कहा है को—

> जैसी प्रीति हराम में, तु पै राम से होय।
> चला जाय बैकुंठ को, पल्ला गहे न कोय ॥

इस प्रकार मुनि के उपदेश से मलयमाली को मोहनिद्रा का लय हो गया और वह भाग्य तब मुनि के चरणों पर गिर के इस प्रकार कहने लगा,—"भगवन्। आपके प्रसाद से मैं इस आपत्ति से पार हुआ अब ऐसी दया करिये कि मैं इस संसारसागर से भी पार हो जाऊँ।" उसका ऐसा अनुनय सुन बोधिसत्व मुनि उसे अपने विज्ञान का उपदेश कर अन्तर्धान हो गये।

अब मलयमाली वन में जाकर तपस्या करने लगा, कुछ कालोपरान्त उसका तप सिद्ध हुआ जिससे उसे तत्त्वज्ञान प्राप्त हो गया, जिसके द्वारा यह ज्ञात हुआ कि क्या क्या हेय (१) है तथा क्या क्या उपादेय (२) है और उसी तप के प्रभाव से उसने अर्हत्त्व (३) प्राप्त किया। इसके उपरान्त वह अपने नगर में लौट आया और राजा इन्दुकेसरी तथा उनकी प्रजा को ज्ञानोपदेश करने लगा, इसी ज्ञानोपदेश से सबको मुक्ति प्राप्त हो गयी। देखो क्याही ठीक कहा है—

सतसंगति मुद मंगल-मूला। सब सुखकरणि हरणि सब शूला ॥

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले कि भाई इस प्रकार असत्य भी सत्य रूप में परिणत हो जाता है, जो ध्यान करनेवाला दृढ़ हो। देखा न तुमने कि मलयमाली असत्य का ध्यान लगाते २ किस पदवी को पहुँच गया। बस साधक हो तो ऐसा। अच्छा यह तो ध्यान की परा काष्ठा हुई अब तुमको प्रज्ञा की पराकाष्ठा सुनाता हूँ।

(१) त्यागने के योग्य। (२) ग्रहण करने के योग्य। (३) जैनधर्म के देव

र और सिंहविक्रम अति प्रसन्न हुआ और बोला —"महाराज अभीष्ट देवता की
ानि के लिये मैंने अपनी अर्घ्य आपको दी । तब तो चित्रगुप्त प्रत्यक्ष हो गये और
हने लगे कि मैं तुमपर प्रसन्न हुआ हूं सो कहो क्या करूँ । चित्रगुप्त का ऐसा
चन सुन वह चोर अति प्रसन्न हुआ और बोला कि महाराज यदि आप मुझ
र प्रसन्न हैं तो यह वर दीजिये कि मृत्यु मुझपर हाथ न डाल सके । तब तो
चत्रगुप्त बोले—"यह बात तो अनहोनी है क्योंकि जीवमात्र पर मृत्यु का प्राबल्य
 इससे कोई बचा नहीं है तथापि तुम मेरे भक्त हो, मैं तुम्हारे हेतु एक युक्ति
ूंगा, सो सुनो मैं तुमको बतलाता हूं। श्वेतमुनि के निमित्त कुपित हो महादेवजी
ो काल को भस्म कर दिया किन्तु उसके बिना संसार का कामही नहीं चल स-
कता अत: भगवान् ने पुन: उसकी सृष्टि की । तब से महाप्रभु ने उसे आज्ञा दे दी
ै कि जहां श्वेत बसते हैं उसके आश्रम भर में तू न जाना और वहां के किसी
ीव पर हाथ न डालना । इस प्रकार देव ने उसे यन्त्रित कर दिया । अब वह
श्वेतमुनि पूर्व समुद्र के उस पार जहां तरङ्गिणी नदी है तपोवन में रहते
हैं, उस तपोवन में मृत्यु का वश नहीं है । सो मैं ले चलकर तुमको उसी स्थान
में रख देता हूं पर स्मरण रहे कि तुम तरङ्गिणी के इस पार कदापि न आना ।
और फिर कदाचित् भूल से इस पार आ भी गये तो अवश्य मृत्यु के वश में पड़
जाओगे, सो परलोक में जब आओगे तब मैं देख लूंगा । इतना कह अति प्रसन्न
मन चित्रगुप्त सिंहविक्रम को श्वेत मुनि के आश्रम में ले गये और वहां उसे रख
आप अन्तर्धान हो गये ।

कुछ कालोपरान्त सिंहविक्रम के इस लोक से प्रस्थान करने का समय
आया, किन्तु वह तो श्वेताश्रम में था इससे काल का वश उसपर नहीं चलता
था, इस कारण उसके मनमें यह चिन्ता हुई कि किस उपाय से सिंहविक्रम को
हाथ में लाऊँ । इतना सोच वह तरङ्गिणी के इस पार आ बसा और उपाय सोचने
लगा । जब उसे कोई उपाय न सूझा तब उसने अपनी माया से एक अप्सरा नि-
र्मित कीयी और उसे उसके समीप भेजा । उस मोहनी ने वहां जाकर अपना
जाल फैलाया और अपने हावभाव कटाक्ष से सिंहविक्रम को अपने वश में कर
लिया । अब दोनों आनन्द से रहने लगे ।

इस प्रकार जब कुछ काल बीत गया तब उस मोहनी ने एक दिन कहा कि प्यारे भाई बन्धुओं को देखे बहुत दिन हो गये अब आज्ञा देते तो उनसे भेंट कर आती। उसको संमति हो गयी। तब वह चली और नदी किनारे लों सिंहविक्रम उसे पहुँचाने आया। अब वह मोहनी पार न जाके निर्मित तरङ्गवती तरङ्गिणी में पैठी, सिंहविक्रम अपनी प्रिया को तीर पर खड़ा २ देख रहा था। जब कि वह मझ धार में पहुँची तो उसने ऐसा दिखाया कि पांव फिसल गये और वह धारा में बह चली। तब तो वह चिल्लाकर कहने लगी—"आर्यपुत्र! मैं बह चली, मैं मरी, मुझे बचाओ! अरे मैं तो मरी और तुम तीर पर खड़े देख रहे हो! अरे तुम तो शृगालविक्रम दीखते हो किस मूर्ख ने तुम्हारा नाम सिंहविक्रम रक्खा है।" प्रिया की इतनी बात सुनतेही सिंहविक्रम नदी में कूद पड़ा और उसके बचाने के लिये चला। यह मनमोहनी ललना आगे २ बही जा रही है और पीछे २ सिंहविक्रम उसकी रक्षा के हेतु चला आ रहा है; इस प्रकार बात की बात में नदी के इस पार आ पहुँचा। यहां तो पाश लिये काल पूर्वही से विराजमान था, उसने झट उसके गले में पाश डाल दिया और कहा—

"विषयिन के नित सीस पर नाचत काल कराल।"

अब वह असावधान सिंहविक्रम काल के द्वारा यमराज की सभा में पहुँचाया गया। चित्रगुप्त महाराज ने उसे पहिचाना, वह तो पूर्वही से उसपर सानुकूल थे सो एकान्त में ले जाकर उससे कहने लगे कि यदि तुमसे यह पूछा जाय कि पहिले नरक भोगोगे कि स्वर्ग तो तुम कहना कि मैं पहिले स्वर्ग भोगूंगा। स्वर्ग में जब रहने लगना तो वहां ऐसा पुण्य करना कि वह दृढ़ हो जाय, तब पीछे तपस्या करना जिससे समस्त पाप नष्ट हो जायगा। चित्रगुप्त महाराज का ऐसा कहना सिंहविक्रम ने स्वीकार कर लिया; वह डर तो गयाही था और मारे भय के उसका लक्षण विकृत हो गया था अत: अब इसके अतिरिक्त और उपाय क्या था सो वह झटपट चित्रगुप्त की बात पर सहमत हो गया, और इसमें उसका भला भी था।

थोड़ेही काल में वह महाराज धर्मराज के समक्ष उपस्थित किया गया, उसको देखतेही उन्होंने चित्रगुप्त से पूछा कि कहिये तो महा... और का कुछ पुण्य

ी है। चित्रगुप्त ने उत्तर दिया—"हां महाराज! इसने कुछ पुण्य भी किया है, क तो यह कि यह अतिथियों की बड़ी सेवा करता था, जहां कोई अभ्यागत सके घर आया कि तन मन धन से उसकी परिचर्या में लीन हो जाता था दूसरा ह कि अपने इष्टदेव की प्रसन्नता के हेतु इसने अर्थी को अपनी भार्य्या भी दे दी ी। सो प्रभो! एक दिव्य (१) दिन इसको स्वर्ग में रहना पड़ेगा कि अपने सुकृत ा फल भोग लेवे।' इतना सुन धर्मराज ने सिंहविक्रम की ओर दृष्टि किई और समे पूछा—"कह रे। शुभ और अशुभ में से पहिले क्या भोगेगा?" सिंहविक्रम ोला "महाप्रभो। मैं पहिले शुभ भोगूगा।" अब धर्मराज की आज्ञा से एक दिव्य वेमान आया उसपर चढ़कर वह स्वर्ग को चला और चित्रगुप्त की बात स्मरण करता गया।

जब वह स्वर्ग में पहुंचा तब उसके लिये नाना प्रकार के भोग उपस्थित हुए रन्तु वह सबसे मन हटाकर आकाशगङ्गा में स्नान कर जप और व्रत में लीन हो गया; इस पुण्य के प्रभाव से उसे एक दिन और भी रहने की आज्ञा हुई। इसी कार वह तपश्चर्या में परायण रहने लगा इसी हेतु उसके स्वर्गवास की अवधि बढ़ती गयी; अन्ततोगत्वा ऐसा हुआ कि अपने तपोबल से उसने शङ्कर भगवान् को प्रसन्न कर उनसे ज्ञान प्राप्त कर लिया जिससे उसका समस्त पाप भस्म हो गया। अब नरक के दूतों का इतना सामर्थ्य कहां कि उसका मुंह भी निरख सकें; इधर चित्रगुप्त ने बही में जो उसके पाप लिख रखे थे उन्हें काट निकाला और महाराज यमराज भी कुछ न बोल सके, चुपचाप हो रहे।

इतनी कथा सुनाय राजर्षि विनीतमति बोले कि सुना न तुमने इस प्रकार अच्छी बुद्धि के प्रभाव से सिंहविक्रम चोर भी सिद्ध हो गया। सो बुद्धि का ऐसा माहात्म्य है, यह मैंने बुद्धि की पराकाष्टा सुना दी। वत्स! मैंने तुम्हें बुद्धदेवोक्त छः उपदेश सुनाये इस उपदेश से षट्कर्णिणी नौका पर आरूढ़ हो बुध लोग संसार समुद्र के पार हो जाते हैं।

इस प्रकार बोधिसत्व के पदस्थ राजर्षि विनीतमति ने उस वन में सोमशूर को जो उपदेश दिये उन्हें श्रवण कर भगवान् भास्कर भी सन्ध्या के रंग से कषायवर्ण

(१) देवतों का एक दिन।

लोग वहां जाइये और उसके मांस से अपने प्राण बचाइये ।" "बहुत अच्छा
[म]हाराज!" इतना कह वे अतिथि उस गढ़े की ओर चले, इधर बोधिसत्व विनीत-
[ता] पूर्वही वहां पहुँच गये और उस गढ़े पर जाकर योग से मृग बन गये तथा
[अति]थि के हेतु उसमें गिरकर उन्होंने प्राण त्याग दिये । धीरे २ चलते २ कनक-
[कल]श आदि भी वहां पहुँचे और देखें तो मृग मरा पड़ा है; उसे निकाल, घास
[मे]ं भूंजकर सब लोग उसका मांस खा गये ।

[इ]तने में बोधिसत्व की दोनों भार्य्याएँ आश्रम का विध्वंस देख तथा पति को
[न पा]कर अति विकल हुईं; उन दोनों नागकन्या तथा राजसुता ने जाकर सोम
[शर्मा क]ो समाधि से जगाया और यह दुर्घटना सुनाकर कहा कि हमारे स्वामी का
[प]ता नहीं लगता है कि वे कहां हैं । उसने ध्यान द्वारा अपने गुरु की करनी
[जान] ली तब गुरुपत्नियों से गुरु की गति कह सुनाई । यद्यपि यह बात उनके
[अपार] दुःख की उत्तेजक हुई तथापि सोमशर्मा क्या करे, बिना कहे बनता नहीं
[था,] उसे कहनाही पड़ा । अब वह अपनी गुरुपत्नियों के साथ वहां गया जहां
[उसके] गुरु ने अतिथियों के हेतु आत्मोत्सर्ग किया था । वहां नागतनया और राज-
[कन्या] हाडमांसावशिष्ट मृगाकृति अपने पति को देखकर अत्यन्त शोकविह्वल
[हुईं ।] वे अपने आश्रम से लकड़ी बटोर लायीं और सींग तथा हड्डी लेकर
[वे प]तिव्रतायें अग्नि में जलकर सती हो गईं ।

[राजा] कनककलश अभी उस अरण्य से चले नहीं गये थे, इस वृत्तान्त से उनके
[हृदय को] बड़ा आघात पहुँचा कि अहो ! हमारी जीवन रक्षा के निमित्त इस
[महात्मा] ने अपने शरीर का कुछ भी मोह न किया और तत्क्षण उसे त्याग दिया,
[और इसी] कारण इन दोनों पतिव्रताओं के प्राण गये सो हमारे इस अधम
[जीवन से] क्या ? ऐसा विचार राजा कनककलश भी अपने सहचरों के साथ अग्नि
[में जल] मरे ।

[य]ह सब व्यापार देखकर सोमशर्मा को जो ग्लानि हुई वह वर्णनातीत है, उसने
[य]ही निश्चय किया कि हमारे पथदर्शक गुरुजी महाराजही जब इस लोक में
[नहीं र]हे तो अब मैं रहकर क्या करूँगा, ऐसा विचार वह प्राणोत्सर्ग की अभिलाषा
[से अग्नि] के आसन पर बैठ गया कि इसी अवसर में साक्षात् इन्द्र उसके पास आये

दोहा ।

शवरेश्वर के भवन महँ, गुणआकर वृत्तान्त ।
सुनि मृगाङ्कदत्त भूपसुत, पायो तोष नितान्त ॥
युद्धाहत को हेत है, चर्य्यादिक मन लाय ।
लखि दूरतो दिन सचिव सँग, सन्ध्या कीन्हो जाय ॥
कछु दिन तहवां रहि गये, गुणआकर के हेत ।
मन की चिन्ता (१) रोकि कै, श्रीशवरेन्द्र-निकेत ॥

छठवां तरङ्ग ।

अब गुणाकर के सब घाव भर आये और वह अच्छा हो गया, तब राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने मित्र शबराधिपति से पूछकर शशाङ्कवती की प्राप्ति के हेतु उज्ज-यिनी को चले। शबरेन्द्र मायाबटु अपने अनुचरवर्ग तथा अपने सखा मातङ्गपति दुर्गपिशाच के साथ उन्हें पहुँचाने चला। जब सब लोग बहुत दूर निकल गये तब मृगाङ्कदत्त ने बड़ी विनती कर शबरेन्द्र को लौटाया, वह अपने सहचरवर्ग के साथ अपनी पल्ली को लौट आया और मृगाङ्कदत्त अपने सहचरों के संग उज्ज-यिनी का ओर चले।

राजकुमार मृगाङ्कदत्त श्रुतधि, विमलबुद्धि, गुणाकर तथा भीमपराक्रम के साथ और सखाओं को ढूंढ़ते ढाढ़ते चले जाते थे कि चलते २ सब लोग विन्ध्याटवी में पहुँचे; जहां रात्रि के समय सब लोग किसी पेड़ के नीचे सो रहे। अकस्मात् जो मृगाङ्कदत्त की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि वहां एक दूसरा मनुष्य भी सो रहा है; ज्योंही उसका मुंह उघारकर देखते हैं तो उनका सखा विचित्रकथ है; देखतेही तो वह पहिचान गये। इतने में विचित्रकथ भी जाग पड़ा सो वह अपने

(१) मन की चिन्ता यह थी कि प्रिया शशाङ्कवती की प्राप्ति के हेतु उज्जयिनी जाना है, और वहां पर सम्भवतः और सब बचे सचिव पहुंचेंगे। यद्यपि यह चिन्ता मन में बनी रही तथापि गुणाकर की चिकित्सा के हेतु उनको शबरेन्द्र के घर में कुछ दिन और ठहरना पड़ा।

चौर कहने लगी—"सोमशूर! साहस मत कर, सुन प्राण त्याग न कर; यह तेरे गुरु की परीक्षा हुई है, सुन तू अपने प्राण मत त्याग क्योंकि मैंने अमृत सींचकर तेरे गुरु को दोनों पत्नियों तथा अतिथियों के सहित जिला उठाया है।" इस प्रकार इन्द्र का वचन सुन वह सोमशूर प्रणाम कर बड़े आनन्द से उठा और जाकर देखे तो उसके गुरु विनीतमति अपनी दोनों भार्य्याओं तथा कनककलश-प्रमुख अतिथियों के साथ जी उठे हैं। तब वह अपने गुरु के चरणों पर गिर पड़ा, वाष्प पुष्पों से उनकी पूजा करने लगा और उनको निरखकर उसकी आखें तृप्त नहीं होती थीं। इस व्यापार के निरीक्षण से राजा कनककलश तथा उनके मन्त्रियों के हृदय में भक्ति का बड़ा उद्गार हुआ।

इसी अवसर में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव प्रभृति देव भी वहां आ विराजे, विनीतमति के सत्त्व से वे अति प्रसन्न हुए और दिव्यानुभाव वर देकर अन्तर्धान हो गये।

इसके उपरान्त सोमशूर ने जो कुछ उनके मरणोत्तर हुआ था सो सब विनीतमति को कह सुनाया। तब महानुभाव राजर्षि उन सोमशूरादि को साथ ले एक दूसरे दिव्य तपोवन में चले गये।

इतनी कथा सुनाय वह वृद्ध तापसी गुणाकर से फिर कहने लगी कि पुत्र! प्रकार जलकर भस्म हो गये लोग भी फिर मिल जाते हैं तो स्वच्छन्दचारी जीते मनुष्यों की क्या बात है। सो वत्स! तुम अपना शरीर मत त्यागो; तुम वीर हो, मृगाङ्कदत्त से तुम्हारा समागम अवश्य होगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय गुणाकर अपने स्वामी मृगाङ्कदत्त से पुनः ने लगा कि देव! वृद्धा तापसी के मुंह से ऐसी कथा सुनकर मुझे विश्वास हुआ अवश्य मैं आपसे मिलूंगा। तब मैं अपना खड्ग उठा, उनको प्रणाम कर वहां से । चलते चलते इस अरण्य में पहुंचा और चण्डिका के हेतु उपहार ढूंढ़ते हुए ।। ने मुझे पाया, मैं इनसे यथाशक्ति लड़ा अन्त में ये मुझे अतिशय आहत यहां शबराधिपति मायावटु के समक्ष लाये। यहां दो तीन मन्त्रियों मिल गये; आपके प्रसाद से मेरा बड़ा सुपास हुआ मैं अपने घर के हूं किसी प्रकार की चिन्ता नहीं है।

प्रभु मृगाङ्कदत्त को देखकर बड़ा आनन्दित हुआ और उनके चरणों पर गिर पड़ा। मृगाङ्कदत्त तो अकस्मात् मित्र की प्राप्ति से फूले नहीं समाते थे सो उन्होंने भी उसे अपने गले लगा लिया। इतने में और सब मन्त्री भी जाग पड़े परस्पर अभिनन्दन हुआ, सभों ने अपना २ वृत्तान्त उसे कह सुनाया। पश्चात् उससे पूछा कि कहो सखे! तुम कैसे रहे, तुम अपना वृत्तान्त भी सुनाओ। इस प्रकार सभों से पूछा जाकर विचित्रकथ अपना वृत्तान्त सुनाने लगा।

उस समय जब कि पारावत नागराज के शाप से आप लोग छितर बितर हो गये, मेरे नेत्रों के समक्ष अन्धकार सा छाय गया, कुछ सूझही न पड़े अब मैं भी इधर उधर भटका फिरने लगा। इस प्रकार भटकता हुआ मैं बहुत दूर निकल गया, कुछ ध्यान तो था नहीं कि कहां जा रहा हूं; सो किसी प्रकार जंगल के प्रान्तभाग में पहुँचा तहां एक दिव्य नगर मिला। भूख प्यास और थकावट से मैं लथपथ हो गया था, एक पग और चलना मेरे लिये पहाड़ था। भाग्यवश वहां एक दिव्य पुरुष से भेंट हुई जिसके साथ दो दिव्य स्त्रियां थी, उस पुरुष ने सुशीतल जल से मुझे स्नान कराया और बहुत कुछ समझा बुझाकर शान्ति दी। पश्चात् घर के भीतर ले जाकर उत्तमोत्तम दिव्य पदार्थ खिलाये। इसके पश्चात् उसने भोजन किया तदनु उन दोनों नारियों ने भी भोजन किया। खा पीकर जब वह सुचित्त हुआ और मैं भी विश्राम कर चुका तब मैंने उस पुरुष से कहा—"महात्मन्! आप कौन हैं कि मुझ मुमूर्षु के प्राणों की रक्षा की, आप ऐसा क्यों करते गये, मैं तो अपने प्रभु के बिना अपना शरीर अवश्यही त्याग देऊँगा।" इतना कह मैंने अपना सारा वृत्तान्त उसे सुना दिया। तब वह महात्मा अति प्रसन्न हुए और ऐसा बोले—"महाभाग! मैं यक्ष हूं, ये दोनों मेरी भार्य्याएँ हैं, तुम आज हमारे यहां अतिथि आये हो; गृहस्थों का धर्म्म है कि यथाशक्ति अतिथि की पूजा करें, इसी हेतु मैंने तुम्हारा इतना सत्कार किया है। पुनः तुम प्राण क्यों त्याग रहे हो, यह जो नाग के शाप से तुम लोगों का वियोग हुआ है कुछ काल में वह मिटही जायगा, फिर शाप के अन्त में तुम लोगों का समागम होवेहीगा। भाई कहो तो सही इस संसार में बिना दुःख का है कौन? सुनो मैं तो यक्ष न हूं जो दुःख मेरे माथे पड़े हैं उन्हें तुमसे कहता हूं, सुनो—"

ऐसी आज्ञादी मुनि नड़कूवर ने ध्यान से सब बात जान ली तब उन्होंने शाप का अन्त इस प्रकार ठहरा दिया—"जिससे तू अनुरक्त है उसी यक्षिणी में, मनुष्य होकर जब तू अपने इस भाई दीप्तशिख को पुत्र उत्पन्न कर लेगा तब इस शाप से छूट जावेगा और अपनी पत्नी के साथ अपना पद प्राप्त करेगा। तेरा यह भाई धरातल पर तेरा पुत्र होगा और कुछ काल राज्य करने के उपरान्त यह भी शाप से मुक्त हो जावेगा।" इस प्रकार शाप का अन्त ठहराय धनेश के सुवन सो चले गये और अट्टहास भी उसी शाप के प्रभाव से तत्क्षण न जानें कहां अन्तर्धान हो गये। सो हे मनि! यह निज नयनों से देख मैं यहां तुम्हारे समीप चली आई हूं, जानो! मेरे उदास होने का यही कारण है और कुछ नहीं।

इतनी कथा सुनाय वह यक्षिणी पवित्रधर से फिर कहने लगी कि आर्यपुत्र! उस सखी का ऐसा कहना सुन मेरी जो दशा हुई उसका वर्णन मैं क्या करूं। कुछ काल तो मैं शोकसागर में डूबी रही पश्चात् जाकर मैंने सारी कथा अपने पिताजी को सुनाय दी कि इस प्रकार उन्हें (अट्टहास को) नड़कूवर ने शाप दिया है और ऐसा शापान्त ठहराया है। अस्तु अब मैं उनसे पुनः मिलन की वाञ्छा से किसी प्रकार कालक्षेप करने लगी। सो आर्यपुत्र! आप वही अट्टहास उत्पन्न हुए हैं और मैं वही यक्षिणी हूं, अब हम दोनों मिले हैं आप चिन्ता न करें, थोड़ेही दिनों में हमारे पुत्र होगा।

इस प्रकार उस ज्ञानवती यक्षिणी सौदामिनी का कथन सुन वह पवित्रधर ब्राह्मण आनन्द के मारे फूला न समाया, उसे यह विश्वास हो गया कि अवश्य हमारे पुत्र होगा। कुछ कालोपरान्त उस यक्षिणी के गर्भसे उसको एक पुत्र हुआ, जिसके उत्पन्न होने से उन दोनों का घर और चित्त प्रकाशित हो गया। उस पुत्र का मुख निरीक्षण करतेही वह पवित्रधर ब्राह्मण दिव्याकृति अट्टहास यक्ष हो गया और अपनी भार्या उस यक्षिणी से कहने लगा—"प्रिये! इस दोनों का शाप छूट गया, देखो यह मैं अट्टहास हो गया सो चलो अब अपने लोक को चलें।" उसका ऐसा कथन सुन उसकी भार्या बोली—"आर्यपुत्र! यह आपके भाई पुत्र होकर जन्मे हैं, अभी शिशु हैं, सो इन्हें छोड़कर जो हम दोनों चले जा-यगे तो इनकी क्या गति होगी, इनकी भी तो कुछ चिन्ता करनी चाहिये।" उसका

बेटी हूं। मेरे पिता बड़े स्नेह से मुझे कुल पर्वतों पर ले जाकर घुमाते फिराते थे,
सो मैं उन नगों के उपवनों में खेला करती थी । एक समय की बात है कि मैं
अपनी सखी कपिशम्रू के साथ खेल रही थी कि कैलाश पर्वत के ऊपर अट्टहा
नामक यक्षयुव पर मेरी दृष्टि पड़ी, वह भी अपने मित्रों के साथ विहार कर
आये थे उनकी दृष्टि भी मुझपर पड़ी बस दोनों के नेत्र, हृदय से आकृष्ट हो,
सर देखने लगे। यह बात मेरे पिताजी ताड़ गये सो उन्होंने तत्क्षण अट्टहास
बुलाकर हम दोनों का विवाह निश्चित कर दिया कि अमुक दिन विवाह होगा,
तब पिताजी मुझे लेकर घर चले आये और अट्टहास भी अपने मित्रों के साथ
पने घर चले गये।

दूसरे दिन की बात है कि मेरी सखी कपिशम्रू मेरे पास आई उस सम
वह बड़ी उदास थी, मैं उसको चिन्तित देख उसकी उदासी का कारण पूछने ल
कि कहो आली तुम आज उदास क्यों हो? बार बार हठपूर्वक जो मैं पूछती रही तो
उसको अगत्या अपनी उदासी का कारण बतलानाही पड़ा। वह बोली—"सखि!
यह बात कहने योग्य नहीं है, यह अप्रिय भी है, पर बिना कहे काम भी नहीं
चलता। सुनो आली! आज जब मैं आ रही थी तो तुम्हारे वह वर अट्टहास दीख
पड़े, हिमालय पर्वत के चित्रस्थल नामक उद्यान में वह उस समय तुम्हारे ध्यान में
मग्न थे। उनके साथी उनके चित्तविनोद के हेतु नाना प्रकार के उपाय करने लगे
अन्त में सभों ने यह एक नया खेल रचा कि उन्हें तो यक्षराट् बनाया और उनके भा
दीपशिख को यक्षराट् का पुत्र नडकूबर बनाया और स्वयं वे सब उनके मन्त्री ब
प्रकार तुम्हारे प्रियतम अपने मित्रों की मण्डली में चित्तविनोद कर रहे
उसी समय नडकूबर अकस्मात् उसी मार्गसे आकाश में आ निकले। यहां
ह लीला हो रही थी उसे देख धनाधिप के पुत्र को बड़ा क्रोध आया, उ
ट्टहासको बुलाकर यह शाप दिया—"अरे दुष्ट! तू भृत्य होकर प्रभु को
रता है इससे तू मर्त्य हो जा, अरे दुर्मति! तू ऊर्द्ध लोक की कामना
तो नीचे जा।" उनका ऐसा शाप सुन अट्टहास बड़ेही व्याकुल हुए, सो
विनती करने लगे—"देव! मुझ मूर्ख ने चित्तविनोद के लिये ऐसा
... मेरा अपराध क्षमा किया जाय,।"

अपना अभीष्ट पाया था वैसेही वह उनकी उपासना में सदा सर्वदा लीन बना रहता। ठीकही कहा है—"कर सेवा तो खा मेवा" जो इष्टदेव की आराधना ही न करेगा वह क्या पावेगा ! ।

इधर श्रीदर्शन अपने पिता के घर में बढ़ने लगा, क्रमानुसार वह बड़ा हुआ और वेदविद्या में सर्वश्रेष्ठ तथा अस्त्र-शास्त्र में भी अत्यन्त प्रवीण हुआ। समय पाकर जब वह युवा हुआ तब उसका पिता तीर्थ यात्रा करने गया किन्तु प्रयाग पहुँचकर परलोक का यात्री हो गया, उसकी माता को जब पति की मृत्यु का वृत्तान्त विदित हुआ तो वह अग्नि में जलकर सती हो गयी। श्रीदर्शन को माता पिता के मर जाने से शोक तो बहुत हुआ तथापि उसने शास्त्रोक्त विधि से उनकी सब क्रियायें कीं। कुछ कालोपरान्त, धीरे २ उसका शोक घट गया। संसार में श्रीदर्शन का अब कोई न रहा, माता पिता उसके अज्ञान में ही कालकवलित हो गये, वे अपने पुत्र का व्याह कर पुत्रवधू का मुंह निरीक्षण न कर सके सो श्रीदर्शन क्वाराही रह गया। कहाही है 'परमस्वतन्त्र न सिरपर कोई। भावै मनहिं करे सोइ सोई' सोही घटना श्रीदर्शन पर घटी। घर में धन बहुत, सिर पर कोई नहीं, भार्या होती तो भला एक अटकाव भी होता, सो श्रीदर्शन यद्यपि स्वयं बड़ा विद्वान् और ज्ञानी था तथापि भावीवश दैवात् द्यूतक्रीड़ा में फँस गया, द्यूत का दुर्दान्त दुर्व्यसन उसे लग गया अतएव थोड़ेही काल में उसकी सारी सम्पत्ति उड़ गयी और वह कौड़ी का तीन हो गया। अब यह दशा उपस्थित हुई कि भोजन का भी ठिकाना न लगता। कहां तो श्रीदर्शन यथार्थनामा श्रीदर्शनही था कहां ऐसी दारुण दशा हो गयी कि कोई उससे बात भी न करता और बिचारा भूखों रह जाता। हा! जुआ कैसा सर्वनाशक व्यसन है! क्या कहा जाय।

एक समय की बात है कि द्यूतशाला में श्रीदर्शन तीन दिन और तीन रात निराहार पड़ा रह गया, एक तो पेट में अन्न नहीं, दूसरे तन पर वस्त्र नहीं, उधर शक्ति का अभाव इधर लाज को दबकन, अतः वह बाहर भी न निकल सका। जो लोग कुछ खाने को दें तो वह ले भी नहीं। इस प्रकार वह बड़े कष्ट में पड़ा था। उसकी ऐसी दशा देख उसका एक मित्र मुखरक नामक जुआड़ी उससे यों कहने लगा—'मित्र। तुम ऐसा शोक क्यों करते हो, जुआ ऐसा ही होता है क्या तुम नहीं

ऐसा कथन सुन, ध्यान कर देव अट्टहास बोला—"प्रिये ! इसी नगर में देवदर्शन नामक कोई ब्राह्मण रहता है, वह पञ्चाग्नि तापता है, इनके अतिरिक्त उसे दो अग्नियों का बड़ा सन्ताप है, एक तो उसको तथा उसकी भार्य्या को जठराग्नि भूख से सदा जलती रहती है और दूसरी अग्नि प्रजा (सन्तति) का अभाव है। ब्राह्मण अग्निदेव का उपासक है, सो एक दिन भगवान् विभावसु ने अपने उस धन पुत्रार्थी तथा तपश्चर्या में लीन भक्त को स्वप्न में दर्शन देकर उससे कहा—"ब्रह्मन् ! औरस (१) पुत्र तो तुम्हारे लिखा नहीं है हां क्रत्रिम (२) होगा और उसी से तुम्हारा दारिद्र भी नष्ट हो जायगा।" अग्निदेव के आदेशानुसार वह ब्राह्मण उसकी प्रतीक्षा कर रहा है सो यह शिशु उसीको दे दिया जाय, इसकी ऐसीही भवितव्यता है इसमें वश क्या है। इस प्रकार अपनी प्रिया से कह के अट्टहास ने एक कलश में सुवर्ण की मुद्रायें भरीं और ऊपर उसके मुंह पर बच्चे को रक्खा और उसके गले में दिव्य रत्नों की एक माला बांध दी। इतना कर वह रात्रि के समय बच्चे को ले जाकर उस ब्राह्मण के घर में छोड़ आया और पश्चात् अपनी भार्य्या के साथ निज लोक को चला गया।

कुछ कालोपरान्त वह देवदर्शन ब्राह्मण जागने पर क्या देखता है कि रत्नों के बीच में एक बालक पड़ा है, जैसे तारागणों के बीच चन्द्र। उस बालचन्द्र को देखकर दोनों प्राणी बड़ेही अचम्भित हुए कि यह क्या बात है पश्चात् उसे उठाकर उस घड़े की ओर जो दृष्टि करें तो लो वह तो सोने से भरा है। अब तो उनके अचम्भे का ठिकाना न रहा, उसी क्षण उन्हें अग्निदेव की बात स्मरण हुई तब तो दम्पती को जो आनन्द हुआ वह वर्णन क्योंकर हो सके। ब्राह्मण ने बड़े हर्ष से घड़े और बालक को ले लिया और विधि का दान समझ सानन्द रात बिताई। प्रातःकाल होने पर ... बड़ा उत्सव किया। जब बालक ग्यारह दिन का हुआ तब ब्राह्मण ने उसका नाम श्रीदर्शन रक्खा। अब दरिद्र देवदर्शन महा धनी हो गया और नाना ... के भोग विलास कर आनन्दपूर्वक दिन काटने लगा। लोग जब धनी हो जाते हैं तब प्रायः अपने धर्म्मकर्म्म से बहिर्मुख हो जाते हैं पर ब्राह्मण देवदर्शन नित्यकर्म्म में बराबर तत्पर रहा जिस प्रकार अग्निदेव के प्रसाद से उसने

(१) अपना जन्मा हुआ। (२) बनावटी अर्थात् गोद लिया हुआ पोष्यपुत्र।

अपना अभीष्ट पाया था वैसेही वह उनकी उपासना में सदा सर्वदा लीन बना रहता। ठीकही कहा है— "कर सेवा तो खा मेवा" जो इष्टदेव की आराधना ही न करेगा वह क्या पावेगा।।

इधर श्रीदर्शन अपने पिता के घर में बढ़ने लगा, क्रमानुसार वह बड़ा हुआ और वेदविद्या में सर्वश्रेष्ठ तथा अस्त्र-शास्त्र में भी अत्यन्त प्रवीण हुआ। समय पाकर जब वह युवा हुआ तब उसका पिता तीर्थ यात्रा करने गया किन्तु प्रयाग पहुँचकर परलोक का यात्री हो गया, उसकी माता को जब पति की मृत्यु का समाचार विदित हुआ तो वह अग्नि में जलकर सती हो गयी। श्रीदर्शन को माता पिता के मर जाने से शोक तो बहुत हुआ तथापि उसने शास्त्रोक्त विधि से उनकी सब क्रियायें कीं। कुछ कालोपरान्त, धीरे २, उसका शोक घट गया। संसार में श्रीदर्शन का अब कोई न रहा, माता पिता उसके अकाल में ही कालवसित हो गये, वे अपने पुत्र का व्याह कर पुत्रवधू का मुंह निरीक्षण न कर सके सो श्रीदर्शन क्वाराही रह गया। कहाही है 'परमस्वतन्त्र न सिरपर कोई। भावै मनहिं करे सोइ सोई' ऐसी घटना श्रीदर्शन पर घटी। घर में धन बहुत, सिर पर कोई नहीं, भार्या होती तो भला एक अंकुश भी होता, सो श्रीदर्शन यद्यपि स्वयं बड़ा विद्वान् और ज्ञानी था तथापि ज्ञानभ्रमवश दैवात् द्यूतक्रीड़ा में फँस गया, द्यूत का दुर्दान्त दुर्व्यसन उसे लग गया अतएव थोड़ेही काल में उसकी सारी सम्पत्ति उड़ गयी और वह कौड़ी का तीन हो गया। अब यह दशा उपस्थित हुई कि भोजन का भी ठिकाना न लगता। कहां तो श्रीदर्शन यथार्थनामा श्रीदर्शनही था कहां ऐसी दारुण दशा हो गयी कि कोई उससे बात भी न करता और बिचारा भूखों रह जाता। हा! जुआ कैसा सर्वनाशक व्यसन है! क्या कहा जाय।

एक समय की बात है कि द्यूतशाला में श्रीदर्शन तीन दिन और तीन रात निराहार पड़ा रह गया, एक तो पेट में अन्न नहीं, दूसरे तन पर वस्त्र नहीं, ऊपर [illegible] का अभाव इधर जाड़ा को [illegible], अत वह बाहर भी न निकल सका। जो [illegible] कुछ खाने को दे तो वह ले भी नहीं। इस प्रकार वह बड़े कष्ट में पड़ा रहा। [illegible] ऐसी दशा देख सहसा एक [illegible] नामक जुआरी उससे यों कहने लगा—"मित्र। तुम ऐसा शोक क्यों करते हो, [illegible] है [illegible] नहीं

ऐसा कथन सुन, ध्यान कर ऐश अट्टहास बोला—"प्रिये ! इसी नगर में देवदर्शन नामक कोई ब्राह्मण रहता है, वह पञ्चाग्नि तापता है, इनके अतिरिक्त उसे दो अ ग्नियों का बड़ा सन्ताप है, एक तो उसकी तथा उसकी भार्य्या की जठराग्नि भूख से सदा जलती रहती है और दूसरी अग्नि प्रजा (सन्तति) का अभाव है। ब्राह्मण अग्निदेव का उपासक है, सो एक दिन भगवान् विभावसु ने अपने उस धन पुत्रार्थी तथा तपश्चर्या में लीन भक्त को स्वप्न में दर्शन देकर उससे कहा—"ब्रह्मन्! औरस (१) पुत्र तो तुम्हारे लिखा नहीं है हां क्रत्रिम (२) होगा और उसी से तुम्हारा दारिद्र भी नष्ट हो जायगा।" अग्निदेव के आदेशानुसार वह ब्राह्मण उसकी प्रतीक्षा कर रहा है सो यह शिशु उसीको दे दिया जाय, इसकी ऐसीही भवि तव्यता है इसमें वश क्या है। इस प्रकार अपनी प्रिया से कह के अट्टहास ने एक कलश में सुवर्ण की मुद्रायें भरीं और ऊपर उसके मुंह पर बच्चे को रक्खा और उसके गले में दिव्य रत्नों की एक माला बांध दी। इतना कर वह रात्रि के समय बच्चे को ले जाकर उस ब्राह्मण के घर में छोड़ आया और पश्चात् अपनी भार्य्या के साथ निज लोक को चला गया।

कुछ कालोपरान्त वह देवदर्शन ब्राह्मण जागने पर क्या देखता है कि रत्नों के बीच में एक बालक पड़ा है, जैसे तारागणों के बीच चन्द्र। उस बालचन्द्र को देखकर दोनों प्राणी बड़ेही अचम्भित हुए कि यह क्या बात है पश्चात् उसे उठाकर उस घड़े की ओर जो दृष्टि करें तो लो वह तो सोने से भरा है। अब तो उनके अचम्भे का ठिकाना न रहा, उसी क्षण उन्हें अग्निदेव की बात स्मरण हुई तब तो दम्पती को जो आनन्द हुआ वह वर्णन क्योंकर हो सके। ब्राह्मण ने बड़े हर्ष से घड़े और बालक को लिया और विधि का दान समझ सानन्द रात बिताई। प्रातःकाल होते ही बड़ा उत्सव किया। जब बालक ग्यारह दिन का हुआ तब ब्राह्मण ने उसका नाम श्रीदर्शन रक्खा। अब दरिद्र देवदर्शन महा धनी हो गया और भाग्य से भोग विलास कर आनन्दपूर्वक दिन काटने लगा। लोग जब धनी होते हैं तब प्रायः अपने धर्मकर्म से बहिर्मुख हो जाते हैं पर ब्राह्मण देवदर्शन ... में बराबर तत्पर रहा जिस प्रकार अग्निदेव के प्रसाद से उस

जानते थे कि दरिद्रा के कटाक्ष के पात्र अब (१) ऐसे होते हैं। सुनो कुआड़ी के बाहुही आस्तरण (२) है, धूलिही शय्या है, चत्वर (३) ही घर है और विध्वस्तता ही (४) गृहिणी है। विधाता ने उसकी ऐसीही गति ठहरा दी है। तुम तो विद्वान् हो सब जानते हो तो फिर क्यों इस प्रकार अपनी उपेक्षा करते हो, जो मिले तुझे उसे खाकर अपना जीवन क्यों नहीं बचाते। जो धैर्य धर अपने जीवन की रक्षा करता है वह क्या अपना अभिमत नहीं पाता? नहीं अवश्य अपना अभीष्ट सिद्ध करता है। सो तुम अपना शरीर सँभालो, जीते रहोगे तो बहुत धन हो रहेगा। सुनो इसी विषय में मैं तुमको भूनन्दन की विचित्र कथा सुनाता हूं।

इस धरातल पर पृथ्वी का आभरणस्वरूप काश्मीरमण्डल है, विधाता ने सुकृतियों के उपभोग के हेतु मानो एक दूसरा स्वर्गलोक बनाया हो। दोनों में भेद इतनाही है कि स्वर्ग का भोग अवणपथगामी है और काश्मीर का दृश्य है। "मैं यहां अधिक (प्रधान) हूं, तो क्या मैं नहीं हूं," इस प्रकार ईर्ष्या से कहती हुई सरस्वती और लक्ष्मी दोनों वहां विराज रही हैं। धर्मद्रोही कलि का प्रवेश न होने पावे इस हेतु तुहिनाद्रि (५) उसे चहुंओर से घेरे हुए हैं। जहां वितस्ता नदी अपनी बीचियों से हाथ पसार के मानो यह कह रही है कि यह देश देव तीर्थमय है, हे पाप! तू यहां से दूर भाग तेरा यहां वश न चलेगा। जहां के अति उत्तुङ्ग (६) श्वेतवर्ण, मानो सुधा से धोये प्रासाद, आसन्नवर्ती हिमाद्रि के उन्नत शिखर की शोभा देते हैं।

ऐसे सुरम्य काश्मीर देश में भूनन्दन नामक एक महीपति थे, जो कि वर्णाश्रम के संरक्षक और प्रजावर्ग के आनन्दचन्द्र थे। राजा स्वयं आगम निगम में बड़े प्रवीण और पण्डितों के मानदाता थे। वे बड़े पराक्रमी थे उनके विक्रम के सूचक नखचिह्न कामिनियों के कुच युगल तथा शत्रुओं के मण्डल (७) पर विराजमान थे। वे बड़े नीतिमान् भी थे और उनकी प्रजाओं में किसी प्रकार की अनीति (८) नहीं थी, महाराज श्रीकृष्ण के एकान्त भक्त थे और उनकी प्रजायें सदा शुद्धमन थीं, उनमें किसी प्रकार के दुर्गुण नहीं थे।

(१) पामे। (२) बिछौने। (३) चौराहा। (४) बर्बादी।
(५) हिमालय। ( ) ... (७) राज्य। (८) ...

एक समय की बात है कि द्वादशी के दिन महाराज विधिपूर्वक भगवान् चक्रगुप्त की पूजादि क्रिया समाप्त कर सुख-नींद सोये थे कि स्वप्न में क्या देखते हैं कि एक देव कन्या आई है; राजा उसके संयोग के उपरान्त ही जाग पड़े तो उन्हें विदित हुआ कि यह पर सम्भोग के चिन्ह विद्यमान हैं परन्तु वह सम्भोगदात्री नहीं है। अब तो उनके विस्मय का ठिकाना न रहा, महाराज अति विस्मित हो तर्कना करने लगे कि यह स्वप्न तो होही नहीं सकता क्योंकि यह सम्भोग तो प्रत्यक्ष जानपड़ता है, इस में यही समझता हूं कि किसी दिव्य नारी ने (१) मुझे धोखा दिया है। अब राजा का मन उसी की ओर लगा, सदा उसीका ध्यान बना रहता, उसके विरह से वह अत्यन्त व्याकुल रहते, होते २ सब राजकार्य्य से हाथ खींच बैठे। अब वह उसकी प्राप्ति के उपाय सोचने लगे, पर कोई उपाय ऐसा न बन पड़ा कि उस प्रियतमा से भेंट हो। अन्त में उन्होंने यह विचारा कि यह मेरा वणिक्सङ्गम उस अप्सरा के साथ बस भगवान् हरि के प्रसाद से हुआ है और किसी का ऐसा प्रताप नहीं हो सकता सो अब मैं एकान्त में चलकर उस प्रिया की प्राप्ति के हेतु उन्हीं भगवान् की आराधना करूँ। देखो यह राज्य जो कि पहिले मुझको बड़ा सुखद प्रतीत होता था वही अब नीरस (२) और पाश के (३) समान भासता है बस यह उसी देवकन्या के अभाव के कारण है। इस प्रकार सङ्कल्प कर राजा ने अपने मन्त्रियों को बुलाया और अपना अभिप्राय कह सुनाया तथा अपने भाई सुनन्दन को राज्य का भार सौंप दिया।

अब राजा भूनन्दन राजपाट त्याग राजभवन से निकल चले, चलते २ क्रमसर नामक तीर्थ में पहुँचे जहां पूर्वकाल में भगवान् वामन ने अपना पांव रखकर पवित्र स्थान निर्माण किया था। वहां पर्वत के तीन शृङ्गों के रूप में त्रिदेव (४) वास करते हैं, और वहीं विष्णु भगवान् के चरण से मानो वितस्ता के प्रकार से एक दूसरी सुरनदी विपुषती नाम्नी निकल के बहती है। वहां राजा भूनन्दन तपस्या करने लगे, सब रसों का त्याग कर चातक के समान नव्य रस की आकांक्षा कर ध्यानस्थ हुए (५)। इस प्रकार तपस्या करते २ जब बारह वर्ष हो गये तब

अर्थ भी निकलता है। (१) अप्सरा ने। (२) फीका। (३) बन्धन। (४) ब्रह्मा, विष्णु और महेश। (५) जिस प्रकार चातक सब रस (जल) त्याग नवीन स्वाती का जल

जानते थे कि दरिद्रा के कटाक्ष के पात्र अच (१) ऐसे होते हैं। सुनो तृणही के बिछुही आस्तरण (२) हैं, धूलिही शय्या है, चत्वर (३) ही घर है और विध्वस्तता ही (४) गृहिणी है। विधाता ने उसकी ऐसीही गति ठहरा दी है। तुम तो विद्वान् हो सब जानते हो तो फिर क्यों इस प्रकार अपनी उपेक्षा करते हो, जो मिले उसे खाकर अपना जीवन क्यों नहीं बचाते। जो धैर्य धर अपने जीवन की रक्षा करता है वह क्या अपना अभिमत नहीं पाता? नहीं अवश्य अपना अभीष्ट सिद्ध करता है। सो तुम अपना शरीर सँभालो, जीते रहोगे तो बहुत धन हो रहेगा। सुनो इसी विषय में मैं तुमको भूनन्दन की विचित्र कथा सुनाता हूं।

इस धरातल पर पृथ्वी का आभरणस्वरूप कश्मीरमण्डल है, विधाता ने सुकृतियों के उपभोग के हेतु मानो एक दूसरा स्वर्गलोक बनाया हो। दोनों में भेद इतनाही है कि स्वर्ग का भोग श्रवणपथगामी है और कश्मीर का दृश्य है। "मैं यहां अधिक (प्रधान) हूं, तो क्या मैं नहीं हूं," इस प्रकार ईर्ष्या से कहती हुई सरस्वती और लक्ष्मी दोनों वहां विराज रही हैं। धर्मद्रोही कलि का प्रवेश न होने पावे इस हेतु तुहिनाद्रि (५) उसे चहुँओर से घेरे हुए हैं। जहां वितस्ता नदी अपनी वीचियों से हाथ पसार के मानो यह कह रही है कि यह देश देव तीर्थमय है, हे पाप! तू यहां से दूर भाग तेरा यहां वश न चलेगा। जहां के अति उत्तुङ्ग (६) श्वेतवर्ण, मानो सुधा से धोये प्रासाद, आसन्नवर्ती हिमाद्रि के उन्नत शिखर की शोभा देते हैं।

ऐसे सुरम्य कश्मीर देश में भूनन्दन नामक एक महीपति थे, जो कि वर्णाश्रम के संरक्षक और प्रजावर्ग के आनन्दचन्द्र थे। राजा स्वयं आगम निगम में बड़े प्रवीण और पण्डितों के मानदाता थे। वे बड़े पराक्रमी थे उनके विक्रम के सूचक नखचिह्न कामिनियों के कुच युगल तथा शत्रुओं के मण्डल (७ पर विराजमान थे। वे बड़े ही नीतिमान् भी थे और उनकी प्रजाओं में किसी प्रकार की अनीति (८) नहीं थी, महाराज श्रीकृष्ण के एकान्त भक्त थे और उनकी प्रजायें सदा शुद्धमन थीं, उनमें किसी प्रकार के दुर्गुण नहीं थे।

(१) पासे। (२) बिछौने। (३) चौगड्डा। (४) बर्बादी।
(५) हिमालय। (६) बड़े ऊंचे ऊंचे। (७) राज्य। (८) यहां "विपत्ति" ऐसा

यहाँ प्राप्त हो गये, अब पब मैं कश्मीर में आया हूं सो आओ राजन् हमारे साथ शारिकाकूट को चलो, फिर दैत्याङ्गना की प्राप्ति के निमित्त मैं तुमको पाताल में ले चलूंगा।" जब तपस्वी इतना कहकर चुप हुए तब राजा भूनन्दन उनके साथ शारिकाकूट को चले।

चलते २ सब लोग शारिकाकूट पर पहुंचे, वहां तपस्वी ने वितस्ता में स्नान कर विनायक तथा शारिका देवी की पूजा किया और दिशायें बांधीं। पश्चात् हर के अनुग्रहगामी उस महातपस्वी ने सरसों छीटकर, वह विवर प्रगट किया, और शिष्यों के सहित जब तपस्वी ने उसमें प्रवेश किया तब उनके साथ राजा भूनन्दन भी पैठे। इस प्रकार पाताल के मार्ग पर सब लोग चले और बराबर पांच दिन तथा पांच रात चलते गये। छठवें दिन सब लोग पातालवाहिनी गङ्गा पर पहुंचे, गंगा पार कर रजतमयी (१) भूमि में आये, तहां उनको एक दिव्य कानन (२) दीख पड़ा जिसमें मूंगे, कपूर, चन्दन और अगुरु के वृक्ष लगे थे। वह उद्यान प्रफुल्ल सौवर्णस्थलकमल की सुगन्धि से वासित था। उस उद्यान के बीच में उन्हें एक शिवालय दीख पड़ा जिसका प्रकार बहुत प्रशस्त था, जिसकी सीढ़ियां रत्नों की बनी थीं, उसकी भीतें सुवर्ण की थीं, जिसमें मणिमय खम्भे लगे थे जो बड़ी दूर से चमकते थे, इन प्रकारों से वह मन्दिर बहुतही शोभायमान था। उस मन्दिर के निरीक्षण से सब लोगों को बड़ा हर्ष तथा आश्चर्य हुआ। तब उस ज्ञानी तपस्वी ने अपने शिष्यों तथा राजा भूनन्दन से कहा—"यह वही पातालवासी देव हाटकेश्वर है जिनका नाम तीनों लोकों में होता है सो तुम लोग इनकी पूजा करो।" तपस्वी का ऐसा कथन सुन सभोंने पातालगङ्गा में स्नान किया और पाताल के उन उन पुष्पों से देवादिदेव महादेव की पूजा की। पूजा के समय जो कुछ काल लगा उसीसे उन लोगों का विश्राम भी हो गया। इसके उपरान्त से सब आगे बढ़े, कुछ दूर जाने पर उन्हें एक दिव्य बड़ा भारी जामुन का पेड़ मिला जिससे पके २ फल टपक रहे थे। उसे देख तपस्वी ने अपने अनुयायियों को वारण किया कि इस वृक्ष के फल मत खाइयो क्योंकि जो ये खाये जायँ तो विघ्न करते हैं इससे इनपर मन न चलाना। गुरुदेव का ऐसा वचन सुनकर भी भूख के मारे

(१) चांदी की। (२) उद्यान भी कह सकते हैं।

एक दिन ऐसा हुआ कि उसी मार्ग में कोई बड़े ज्ञानी तपस्वी आ निकले, जिनकी जटा पिङ्गलवर्ण थी, वे घोरवासा थे, जिनके पीछे पीछे शिष्यगण चले आ रहे थे, मानों उस शैलशिखर में साक्षात् भगवान् शिवजी गणों के साथ उतरे हों। राजा को देख उनके मनमें अति प्रीति उत्पन्न हुई सो वह उनके समीप आकर अति नम्र वाणी से पूछने लगे; कि प्रभु ! अपना वृत्तान्त तो सुनाओ कि तुम कौन हो और क्यों तपस्या में तत्पर हो ? जब राजा ने अपना वृत्तान्त सुनाया तब क्षणभर ध्यान कर मुनि फिर बोले—"राजन् ! वह तुम्हारी प्रिया दैत्यकन्या है वह पाताल में रहती है; सो तुम धीरज धरो मैं तुम्हें उनके समीप पहुंचा देता हूं। मैं दाक्षिणात्य ब्राह्मण यश नामक यज्वा का भूतिवसु नामक पुत्र हूं और मैं योगियों का गुरु हूं। पिता ने मुझे अपना ज्ञान सिखाया, फिर मैंने पाताल शास्त्र से हाटकेशान (१) के मन्त्र की विधि सीख ली; तब मैं श्रीपर्वत पर चला गया और भगवान् शङ्कर की आराधना में तपस्या करने लगा, आशुतोष तो महाप्रभु का नामही है सो वे थोड़ेही काल में सन्तुष्ट हो गये और साक्षात् दर्शन दे बोले "पुत्र ! तू पाताल में जा और वहां दैत्याङ्गना से युक्त हो, विविध भांति के भोग भोगकर पीछे मेरे पास आवेगा। सुन उसकी प्राप्ति का उपाय मैं तुझे बताता हूं; भूतल में पाताल के अनेक विवर हैं पर वे सब गुप्त हैं परन्तु कश्मीर में जो मय का बनाया हुआ एक बिल है वह प्रत्यक्ष है जिसके द्वारा बाणसुता ऊषा अपने कान्त अनिरुद्ध को पाताल में ले जाकर दानवों की उद्यानभूमियों में विहार करती रही । तब प्रद्युम्न ने अपने पुत्र को वहां से बचा लेने के लिये गिरि शृङ्ग पर एक दूसरा प्रगट द्वार बनाया, और उस द्वार की रक्षा के हेतु सैकड़ों भांति से स्तुति और आराधना कर दुर्गा को वहां स्थापित किया और उनका नाम शारिका रक्खा; इससे आजकाल उसका नाम प्रद्युम्नशिखर पड़ा है, कोई २ उसे शारिकाकूट भी कहते हैं सो वह स्थान दोनों नामों से प्रख्यात है । उसी बिल से तू जाकर प्रवेश कर और अपने अनुचरों के साथ पाताल में जा, मेरे प्रसाद से वहां तेरा कार्य्य सिद्ध होगा।" इतना कह भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये और उन्हीं के प्रसाद के प्रभाव से मुझे समस्त ज्ञान

चाहता है उसी प्रकार राजा अब नवीन रस उस दैत्यकन्या की आशा करने लगी।

(१) महादेवजी का नाम है।

राजा भूनन्दन को भी एक दासी अति नम्रतापूर्वक प्रणाम कर बाहर के एक मणिमय भवन में ले गयी, जिसकी मणिमय भीतों पर सुन्दरियों की छायायें पड़ा करती थीं उनसे यह भावना होती थी कि मानों अनपर सजीव चित्र बने हुए हैं। उस गृह के भूभाग (१) अति प्रकाशमान सोनम के बने थे, भवन ऐसा था मानों विमान के जीतने के लिये आकाशरथ पर आरूढ़ हो। पुनः वह भवन ऋषियों के निकेत के समान भासता था जहां मदाकुल बलराम विद्यमान हैं, उनके मनहरन करनेवाले प्रद्युम्न विराजमान हैं; जो गृह वस्तुन के प्रभाव से सदा साध्य (२) रहता था (३)। उस गृह में जो स्त्रियां रहती थीं उनके अंगों की उपमा उन पुष्पों से दी जा सकती है जो बाल सूर्य्य का आतप भी नहीं सह सकते। गृह मणिनिनाद से सदा निनादित रहता था। राजा भूनन्दन जब उस गृह में गये तो क्या देखते हैं कि वही पूर्वकाल की स्वप्न में देखी हुई असुरकन्यका विराजमान है; उसकी कान्ति से पाताल, जहां कि सूर्यादि के प्रकाश का अभाव है, प्रकाशित है, जिससे यह अनुमान होता था कि प्रजापति ने रत्नादि आलोक के (४) निर्माण में व्यर्थही श्रम किया।

उस अनिर्वाच्यरूपा (५) रमणीरत्न को देखतेही राजा के नेत्रों से हर्षांशु बह चले, नेत्रों ने जो दूसरों को देखा था उस देखने का मल मानों वह धो रहे हों। ठीकही है बहुत दिनों के उपरान्त वियोग के अनन्तर जब संयोग होता है उस समय की अग्नि अश्रु विना और किससे बुझायी जाय। उस दैत्यकन्या ने भी, कि जिसकी सखियां गुणगान कर रही हैं, और जिसका नाम कुमुदिनी था राजेन्दु (६) भूनन्दन को देखकर अकथनीय प्रमोद पाया। उन्हें देखतेही वह आसन से उठी और राजा का हाथ पकड़कर बोली—"प्यारे! मैंने तुम्हें बड़ा कष्ट दिया," इस प्रकार कह के उसने उन्हें ले जाकर आसन पर बैठाय दिया। जब वह कुछ

(१ गच। (२) अत्र धन लक्ष्मी से परिपूर्ण। (३) यहां श्लेष है—यथा, गृह पक्ष में जहां मदमादी रामायें (रमणियां) विराजती हैं, सबके मन को प्रेरणा के निहारे कामदेव, अविनाशी जो प्रभाव तिसमें। ऋषियों के निकेत का अर्थ ऊपरही दिया हुआ है। (४) प्रकाशक द्रव्यों के। (५) जिसके रूप का विवरण नहीं हो सकता। (६) राजेन्दु पाठ होने से उपमा ठीक हो जाती है।

एक शिष्य ने उस वृक्ष का एक फल खा लिया, त्योंही वह निर्जीव पत्थर बन गया। यह देखतेही सब लोग भयभीत हो गये पर किसी को भी इच्छा न रही कि फल खावे, भला यह किसे पड़ी है कि फल खाके पाषाण बने।

अब तपस्वी महाराज अपने उन शिष्यों के साथ महाराज भूनन्दन के संग आगे बढ़े। एक कोस दूर निकल गये होंगे कि सामने सुवर्णनिर्मित एक बड़ा भारी द्वार मिला जिसके प्राकार सोने के बने और बड़े ऊंचे २ थे। द्वार के दोनों बाजूओं में (१) लोहमयाङ्ग (२) दो मेढ़े थे जो द्वार में पैठनेवालों को सींग से मार मार दूर भगा देते थे। भला उनका रोकना और उस तपस्वी का रोकना क्या बराबर हो सकता है, तपस्वी क्या ऐसेवैसे थे, ज्योंही उन मेढ़ोंने उनको रोका कि तपस्वी ने मन्त्र पढ़ ऐसा दण्डा मारा कि वे जहां के तहां ठंडे हो गये। जैसे कोई वज्र का मारा फिर नहीं पनपता, वैसेही दण्डाहत वे मेढ़े बिलाय गये। अब महाराज तपस्वी, उनके शिष्य और राजा भूनन्दन उस द्वार में पैठे, आगे ज्यों बढ़े त्योंही उनको दिव्य हेमरत्नमय गृह दीख पड़े; वहां वे क्या देखते हैं कि प्रत्येक द्वार पर रखवाले लोहे के दण्ड लिये विद्यमान हैं, जिनका रूप बड़ा उत्कट, और सबके सब अपने दांतों से अधरोष्ठ काट रहे हैं। सब लोग एक वृक्ष के नीचे बैठ गये और तपस्वी महाराज दुष्टनाशन योग का साधन करने लगे। उस साधन के प्रभाव से वे सब भयङ्कररूप द्वाररक्षक समस्त द्वारों से भाग भग कर लोप हो गये।

क्षण ही भर में उन द्वारों से दैत्यकन्याओं की दासियां दिव्य आभरण और वसनों से विभूषित निकलीं, उन सभोंने पृथक् २ अपनी २ स्वामिनियों की ओर से सबसे तथा तपस्वी महाराज से प्रार्थना कियी। तब फिरी तपस्वी ने उन सब अपने अनुगामियों को चिता दिया कि भीतर जाने को तो जाओ पर स्मरण रहे कि अपनी २ प्रिया का वचन कदापि उल्लङ्घन न करना। इस प्रकार अपने अनुचरों को समझाकर वह तपस्वी कतिपय दासियों के साथ एक सर्वोत्तम मन्दिर पैठे जहां एक अति उत्तम दैत्यकन्या उन्हें मिली और उसके साथ उनके अभीष्ट भी प्राप्त हुए। इसी प्रकार और २ लोग भी एक २ करके दिव्य वेश्मों में (३) गये और सब लोग दैत्यसुताओं के सम्भोग के पात्र हुए।

(१) बगल में। (२) जिनके अङ्ग लोहे के बने थे। (३) घरों में।

उनके माथे पड़ी। अप्सरा ने जो पान (१) उनके ऊपर उंडेल दिया था उसकी सुगन्धि से बहुत से भौंरों ने उनको घेर लिया । अब राजा और भी घबराये कि भला यदि इतना परिश्रम उठाया इसका फल इष्ट न हुआ तो नहीं सही पर अनिष्ट फल माथे पड़ा, यह तो ठीक जैसे बेताल का उठाना (२) हुआ। भौंरों के दंशन से राजा अति व्याकुल और उद्विग्न हुए तब अपने मनमें उन्होंने विचारा कि अब इस शरीर का रखना ही अच्छा नहीं क्योंकि जब दुःख ही भोगना है तो इस जीने से मरना ही उत्तम होगा।

इसी अवसर में उसी ओर एक मुनिपुत्र दैवात् आ पड़े, देखते हैं तो राजा बड़े व्याकुल हैं, और भौंरे भन २ कर चहुँओर से उनपर भूम रहे हैं और बींध भी रहे हैं। राजा की यह दुर्दशा देख मुनितनय के हृदय में करुणा का सञ्चार हुआ, उन्होंने भौंरों को भगाकर महीपति से उनका वृत्तान्त पूछा; जब उन्हें राजा अपना सारा वृत्तान्त सुना गये तब करुणामय ऋषितनय फिर बोले—"राजन्! जब लों यह देह है तब लों भला दुःख का क्षय कैसे हो सकता है इससे बुद्धिमानों को उचित है कि उद्वेग त्यागकर पुरुषार्थ करते रहें । जब लों अच्युत भगवान्, महादेव और ब्रह्मा में ऐक्य की मति न हो और इनकी उपासना में भेद की दृष्टि बनी रहे तब लों सिद्धि कदापि प्राप्त नहीं हो सकती। सो हे महीपति! भेददृष्टि त्याग ब्रह्मा विष्णु और महेश्वर का ध्यान करो तथा धीरज धर और बारह वर्ष यहीं तपस्या करो। तब तुम अपनी प्रियतमा को पाओगे और अन्त में तुम्हें शाश्वती सिद्धि भी प्राप्त होगी । तुम्हारी देह तो सिद्ध हो चुकी देखो न यह कैसी दिव्य सुगन्धि उससे निकल रही है। लेओ मैं तुम्हें मन्त्र सहित यह अपना कृष्ण मृगचर्म देता हूं जब इसे तुम लपेटे रहोगे तो भ्रमर तुम्हें न सतावेंगे।" इतना कह राजा को मन्त्र सहित अजिन दे मुनिकुमार चले गये और महीश भूनन्दन धैर्य धर उसी तपोवन में पुनः तपस्या करने लगे।

इस प्रकार भगवान् की आराधना करते २ जब राजा को बारह वर्ष व्यतीत हो गये तब उनके पास वह दैत्यकन्या कुमुदिनी स्वयं आयी; राजा भूनन्दन उसके

(१) मद्य। (२) जगाना।

काल विश्राम कर चुके तब उठकर सा ... ... अनौखा
वस्त्र आभूषण पहिनाये गये, तदनन्तर ...
में ले गयी; वहां एक बावड़ी के किनारे वह उनके साथ बैठ गया। जबक ...
जो पेड़ लगे थे उनपर शव लटक रहे थे मुर्दों के रक्त, और चर्बी तथा मदिरा से
वह बावड़ी भरी थी। अब वह उसी बावड़ी में से एक कटोरा चर्बी और मदिरा
भर लाई और राजा भूनन्दन को देकर बोली "महाराज! पीजिये।" भला राजा
ऐसा दूषित पदार्थ कब पीने के। तब तो वह असुराङ्गना चमककर बोली—"महा
राज! यदि भला चाहो तो इसे पी लो, सिर मत हिलाओ; सुनो यदि इसे न
पीओगे तो तुम्हारा कल्याण किसी प्रकार न होगा।" इस भांति जब वह बार बार
कहने लगी तब राजा बोले, "सुनो जी यह अपेय पदार्थ में कभी न पीऊँगा चाहे
जो हो सो हो," इतना कहना था कि दैत्यकन्या अपना रोष सम्भाल न सकी वह
वह कटोरा राजा के माथे पर फेंक (उछिल) वहां से चली गयी। उस वसा और
मदिरा से राजा के नेत्र और मुंह भर गये अब वह भली भांति देख भी नहीं स
कते थे, इतने में उस दैत्यकन्या की एक दासी उन्हें उठाकर एक दूसरे तड़ाग में
फेंक आयी।

उस तलाव में गिरना था कि राजा तत्काल अपने तपोवन में उसी क्रमसर तीर्थ
में आ पहुँचे, अब वह देखते हैं तो वही स्थान वही हिम और वही हँसता हुआ
जंगल पहाड़ है। राजा इस दृश्य से उदास तो हुए ही पर उन्हें आश्चर्य भी बड़ा
हुआ सो वह अपने मनमें सोचने लगे कि ओः! मैं धोखे में पड़ गया; कहां दैत्य
सुता का वह उद्यान कहां यह क्रमसर गिरि! अहो यह कुछ आश्चर्य है, या माया
है अथवा मेरी बुद्धि में ही भांग पड़ गयी है!! बस २ समझा मैंने, सुनकर भी
तपस्वीजीकी बात जो मैंने न मानी, उसका उल्लङ्घन किया, यह उसी का परिणाम
है। वह मदिरा भी नहीं थी, मेरी प्रिया मेरी परीक्षा करती थी, देखो न वह मेरे
माथे पर जो पड़ी उसका सौरभ कैसा दिव्य प्रतीत होता है। ठीक है, भाग्यहीनों
का भाग्यही ऐसा होता है कि कितना भी कष्ट उठावें पर परिणाम शून्यही मि
लता है, जब विधाताही वाम है तो सिद्धि कैसे हाथ लगे।

राजा तो इधर इस प्रकार सोचही रहे थे कि उधर से एक ... विपत्ति

भोजन दिया जाता है। सो अब तू वहीं जा, तेरा कल्याण होगा।" ऐसी आकाशवाणी सुन श्रीदर्शन अपने मित्र सहित घर गया वहां उसने धरती खोद सब आभरण निकाल लिये। अब तो उसके आनन्द का ठिकाना न रहा, इसे देवता का अनुग्रह मान, वह पुन: वहां से अपने मित्र के साथ मालव देश की ओर चला।

उस रात में दोनों बराबर चलते गये, और दिन भर भी चले गये, सायङ्काल को बहुगन्ध नामक ग्राम में पहुंचे। गांव के समीप ही एक तलाव था जिसका जल अति निर्मल था। दोनों रात दिन चलने से बहुत थक तो गये ही थे उसी तड़ाग के किनारे बैठ गये। क्षणभर के उपरान्त उन दोनों ने अपने पांव धोकर जल पान किया, फिर ऊपर आकर दोनों मित्र बैठकर विश्राम करने लगे। इसी अवसर में एक अति सुन्दरी कन्या वहां पानी भरने आई, उसके अङ्ग का क्या वर्णन किया जाय, नील उत्पल के वर्ण के सदृश उसके अङ्ग का रङ्ग, मानो रति अकेली रह गई हो और महादेवजी ने कामदेव को जलाय दिया हो उसी धूम से उसका अंग श्यामल हो गया है। श्रीदर्शन को देखकर उसके मनमें प्रेम का प्रादुर्भाव हो गया सो प्रेमभरी चितवन से उसे निरीक्षण कर उसके पास जाय इस प्रकार कहने लगी—"अहो महाभागो! तुम दोनों कहां से यहां विपत्ति के मुंह में आ पड़े हो, क्या नहीं जानते थे कि जलती आग में पतंग के समान गिर पड़े हो?" उसका ऐसा कथन सुन घबड़ाकर मुखरक उससे पूछने लगा "कहो तो तुम कौन हो? और यह क्या कह रही हो, तुम्हारे कहने का क्या अभिप्राय है?" तब वह बोली—"इतना समय नहीं है कि मैं समस्त वृत्तान्त कहने बैठूं तथापि संक्षेप में कुछ सुनाये देती हूं; सुनो—"

"सुघोष नामक एक स्थान है जो कि राजा की ओर से ब्राह्मणों को मिला है, वहां वेदज्ञ पद्मगर्भ नामक एक ब्राह्मण रहता था, उसकी भार्या सत्कुल की जन्मी शशिकला नाम्नी थी। उस ब्राह्मणी से उस ब्राह्मण के दो सन्तान उत्पन्न हुए, एक पुत्र दूसरी कन्या, पुत्र का नाम मुखरक कन्या का पद्मिष्ठा सो वही पद्मिष्ठा मैं हूं। मेरा भाई मुखरक बड़ा जुआड़ी था, सो बालक अवस्था ही में, नहीं जानती कहां चला गया; उसी के शोक से मेरी माता का शरीरान्त हो गया। पुत्र के चले जाने से पिता दुःखी थे ही अब उनपर दोहरा दुःख पड़ा इससे उन्होंने घरबार सब

साथ पाताल में गये और अपनी उस प्रिया के संग बहुत दिनों लों नाना प्रकार के भोग भोगते रहे; पश्चात् कुछ कालोपरान्त उन्हें सिद्धि भी प्राप्त हो गयी।

इतनी कथा सुनाय मुखरक श्रीदर्शन से फिर कहने लगा "भाई श्रीदर्शन! इसीसे मैं कहता हूं कि धीरज धरो, देखो न यह कथा जो मैं तुमको सुना चुका हूं, इस बात की साक्षी देती है कि बहुत दूर फेंके गये लोग भी जो धीरज रक्खें तो अपना स्थान पुन: प्राप्त कर लेते हैं। सखे श्रीदर्शन! तुम्हारे लक्षणों से ऐसा भासता है कि तुम्हारा कल्याण होनेवाला है सो तुम आहार त्याग क्यों इस प्रकार आत्मा को कष्ट पहुँचा रहे हो।" रात्रि के समय द्यूतशाला के मध्य अपने मित्र मुखरक का ऐसा वचन सुन वह निराहारी ब्राह्मणकुमार श्रीदर्शन बोला—"भाई तुम्हारा कहना बहुत ठीक है, किन्तु यह बात भी तो तुम जानते हो कि मैं कैसा कुलीन हूं, फिर जूए के कारण मेरी क्या दुर्गति हो गयी है तो बाहर निकल मुंह दिखाने में लज्जा लगती है तुम्हीं कहो क्योंकर बाहर निकलूं, एकही उपाय है कि मैं बाहर चल सकता हूं और अन्न भी ग्रहण कर सकता हूं सो यह कि इसी रात्रि में निकलकर मैं कहीं विदेश चला जाऊँ, यदि इसकी सम्मति तुम दे सको तो मैं भोजन करूँ।" "बहुत अच्छा मैं मना न करूँगा" इतना कह मुखरक ने कुछ भोजन लाकर उसे दिया और उसने भी अपने मित्र के कथनानुसार भोजन किया। भोजन कर चुकने पर श्रीदर्शन परदेश को चला और उसका मित्र मुखरक भी स्नेह के मारे उसके साथ लगा।

जाते २ जब दोनों कुछ दूर निकल गये तब मार्ग में श्रीदर्शन के माता पिता अर्थात् यक्ष यक्षिणी उन दोनों सौदामिनी और अट्टहास ने उन्हें देखा जो जन्मतेही उसे ब्राह्मणके घरमें छोड़ आये थे, देखतेही उन्होंने पहिचाना कि यह वही हमारा पुत्र है और कि जुए में सर्वस्व हार जाने से खिन्न हो विदेश जा रहा है, सो वे अदृश्य हो आकाश में से बोले—"हे श्रीदर्शन! तेरी माता देवदर्शन की भार्य्या अपने घर में धरती के भीतर आभूषण गाड़ रक्खे है, सो उन्हें तू खोदकर निकाल ले और मालवदेश में जा, वहां अति समृद्ध श्रीसेन नामक राजा है; बालावस्था में जुए के फन्दे में पड़कर वह बहुत कुछ भोग चुका है अत: उसने जुआड़ियों के हेतु एक अच्छा मठ बनवा रक्खा है; वहां जुआड़ी रक्खे (बसाए) जाते हैं और उन्हें अभीष्ट

ख़रत रो रहा है सो उन्होंने उससे पूछा "भाई इसके लिये क्यों इतना रो
ो।" उनका ऐसा प्रश्न सुन बड़ी नम्रता से मुखरक बोला—'यह मेरे बड़े
'हैं, हम दोनों ब्राह्मण हैं; यह तीर्थयात्रा को निकले, साथ २ मैं भी चला;
चलते २ यह मांदे हो गये, यहां पहुँचतेही इनका रोग बढ़ गया और चेष्टा
ो बिगड़ गई तब इन्होंने मुझसे कहा कि उठो भैया झटपट कुशा बिछाके
उनपर लिटा दो और जाकर इस गांव में से किसी ब्राह्मण को बुला लाओ
जो कुछ मेरे पास है, उस ब्राह्मण को दान कर दूं क्योंकि अब रातभर में न
ूंगा। इनकी ऐसी बात सुन मेरा ज्ञान नष्ट हो गया, यह विदेश ठहरा कहां
कँ किससे क्या कहूं, फिर सूर्य्यनारायण भी अस्त हो गये हैं अब रात का स
। ठहरा कुछ मुझसे करते नहीं बनता है इसीसे रो रहा हूं । सो आप लोग
दे किसी ब्राह्मण को जानते हों तो कृपाकर बुला लाइये तो जो कुछ हमारे
स है उसे यह अपने हाथ से दान कर देंगे। यह तो रातभर के पाहुने हैं, इसी
ि भर में मरही जावेंगे, और मैं इनका वियोग दुःख सहही न सकूंगा कल
ग्नि में जलकर मैं भी प्राण त्याग कर दूंगा । सो आप लोग इतना कार्य कर
ें तो हमपर आपकी बड़ी कृपा होगी, अहोभाग्य हमारे कि आप लोग विदेश
अकारण बन्धु मिल गये।"

उसका ऐसा कथन सुन उन डाकुओं को बड़ी दया आयी सो उन्होंने जाकर
पने स्वामी वसुभूति से सारा वृत्तान्त कह दिया और यह भी कहा कि अभी
न ब्राह्मण ने दान में सर्वस्व धन तुम्हीं से लो। मार के भी तो धनही न लेते सो यह
ो आपही सब दे देनेपर उतारू है इससे धन ले लेओ । उनकी ऐसी बात सुन
सुभूति बोला हां यह तुम क्या कह रहे हो, बिना मारे धन ले लेना हमलोगों
ं पक्ष में अन्याय कहा गया है भला जिसका सर्वस्व छीन लिया जाय और वह
िना मारे छोड़ दिया जाय तो वह हमारा अनिष्ट करेगा ?" उस पापिष्ट की ऐसी
ात सुन अन्य फिर बोले—"यह सदा कैसी ? भला कहां छीनना कहां एक मरते
ुए से दान लेना, हां एक बात हो सकती है कि ये दोनों ब्राह्मण यदि जीते जा
ेंगे कल तक रह गये तो इन्हें मार डालेंगे नहीं तो व्यर्थ ब्रह्महत्या के पाप से
क्या फल ?" उन अन्यों का ऐसा कथन सुन वसुभूति उनकी बात पर उद्यत हुआ

छोड़छाड़ दिया । वह अकेले, घर छोड़ मुझे लेकर पुत्र की खोज में निकले, इधर उधर घूमते घामते विधिवश इसी ग्राम में पहुंचे। यहां डकुओं का सरदार वसुभूति नामक एक बड़ा भारी डाकू रहता है, कहने को तो वह ब्राह्मण है पर कामं उसका बड़ा खोटा है । सो वह दुष्टात्मा यहां अपने सेवकों के साथ आया और मेरे पिता का वध कर उनके शरीर पर के सब आभूषण छीन ले गया तथा मुझे भी बन्दी कर लेता गया। घर ले जाकर उसने मुझे भी बन्दी कर रक्खा और यह कहा कि अपने पुत्र से इसका विवाह कर दूंगा। उसका पुत्र कहीं बटोहियों को लूटने गया था सो मेरे पुण्यों के प्रताप से आज लौं तो नहीं लौटा है आगे अब भाग्य जाने। सो वह दुष्ट डांकू आकर तुम दोनों के भी प्राण ले लेगा इससे मैं कहती हूं ऐसा उपाय करो कि इस संकट से बच जाओ।"

उसका ऐसा कथन सुन मुखरक पहिचान भी गया कि यह मेरी भगिनी है सो वह उसे गले लगा रोने लगा और बोला, "हा पद्मिष्ठे ! यह बन्धुद्रोही तेरा भ्राता मुखरक मैंही हूं, हा मैं मारा गया।' इतना सुन बड़े भाई को देख पद्मिष्ठा अति व्याकुल हुई, मानों समस्त दुःखों ने उसे एकबेरही आ घेरा । इस प्रकार वे दोनों अपने मृत माता पिता का शोक कर विलाप कर रहे थे कि श्रीदर्शन ने उन्हें शान्ति देकर समझाया और कहा—"भाई यह अब शोक करने का समय नहीं है, अब तो वह उपाय करना चाहिये जिससे प्राण बचें, धन जो कुछ पास में है सो जाय तो कुछ चिन्ता नहीं पर प्राणों की रक्षा हो वही उपाय करना उचित है।" श्रीदर्शन का ऐसा कथन सुन दुःख त्याग वे दोनों सम्भले। अब धैर्य धर तीनों परामर्श करने लगे कि क्या विधेय है, सो परामर्श कर सभों ने यह उपाय निकाला।

श्रीदर्शन दिनभर का क्या कई दिनों लौं भोजन न करने से अति दुर्बल तो होही गया था सो मांदा बन वहीं धरती पर तलाव के किनारे सो रहा और उसके पांव पकड़ मुखरक पुका फार २ रोने लगा और पद्मिष्ठा उनके यहां से चलकर डाकुओं के सरदार के पास पहुंची और कहने लगी "तलाव के किनारे एक जन बटोही मांदा पड़ा है, उसके साथ एक परिचारक है ।" इस प्रकार उसका कथन सुनतेही उस डाकू ने उसी चण अपने सेवक डाकुओं को भेजा कि जाकर पता तो लगाओ क्या बात है। उन्होंने जाकर देखा तो सब ठीक २ पाया और

और रात को उनके साथ वहां गया। उनकी आहट पाय श्रीदर्शन लम्बी २ सांसें भरने लगा, अस्तु माता के गहनों में से कुछ तो उसने छिपा रक्खा और कुछ लड़खड़ाती जीभ से उसे दान कर दिया । तब कृतार्थ हो डाकुओं का वह अधम अपने सेवकों के साथ घर चला गया।

जब वे सब डाकू सो गये तब रात्रिही में पद्मिष्ठा, श्रीदर्शन और मुखरक वे पास आयी और झटपट सम्मति ठहरा तीनों वहां से ऐसे मार्ग से भाग चले कि जहां डाकुओं का भय न हो। मालवा की ओर फिर चले । उस रातभर बरा बर तीनों चलते हुये बड़ी दूर निकल गये, सवेरा होते २ सब एक घोर जंगल में पहुँचे जहां कांटों के कारण चलना बड़ा कठिन था उन कांटों से ऐसी भावना होती थी मानों वह जंगलही भय से कण्टकित (१) हो रहा है, फिर इधरउधर मृग जो इधर से उधर चौकड़ियां भरते दौड़ रहे थे उनसे यह भासता था कि अरण्य की नेत्र भय के कारण अति चंचल हो गये हैं । लतायें सूख गयी थीं, इस दृश्य से यह भावना होती थी कि विभीषिका (२) के मारे उस बन का शरीर सूख गया है पुनः सूखे पत्ते जो गिरते थे सो यह प्रगट करते थे कि अरण्य चिल्ला२ रो रहा है। ऐसे भयङ्कर जंगल में वे तीनों दिनभर चलतेही गये, जब सांझ हुई मानों उनके दिनभर का क्लेश देख भगवान् सूर्यनारायण के हृदय में बड़ी दया आयी इससे वह अस्त हो गये। भूखे प्यासे तो वे थेही इस विषय में कुछ कहना हो नहीं है फिर थक भी गये थे सो सायङ्काल में एक वृक्ष के नीचे उतरे और विश्राम करने लगे। थोड़ीही दूर पर उन्हें आग की ज्वाला दिखाई पड़ी, तब श्रीदर्शन बोला कि ऐसा भासता है कि यह गांव है, अच्छा मैं जाकर देखता हूं इतना कह अवर देखता हुआ वह चला। वहां पहुँच कर क्या देखता है कि रत्न निर्मित एक विशाल भवन है उसी की प्रभा ज्वाला सी दीख पड़ती है। वह नि- र्भय उस घर के भीतर घुस गया वहां जाकर देखता क्या है कि दिव्यरूप एक यक्षिणी विराजमान है और यक्ष उसे घेरे खड़े हैं जिनके चरण पीछे को ओर और नेत्र तिरछे थे। इतने में नाना प्रकार के अन्न पान आये और उस यक्षिणी के ... चुने गये, तब तो उसका ढाढ़स और बढ़ा, उस वीर ने यक्षिणी के समक्ष

(१) रोमाञ्चित। (२)

ग्रौर रात को उनके साथ वहां गया। उनको चाहट पाय श्रीदर्शन सभी
भरने लगा, परन्तु माता के गहनों में से कुछ तो उसने छिपा रक्खा ग्रौर कु
लपलपाती जीभ से उसे दान कर दिया । तब कृतार्थ हो डाकुग्रों का व
अपने सेवकों के साथ घर चला गया।

जब वे सब डांकू सो गये तब रात्रिही में पद्मिष्ठा, श्रीदर्शन ग्रौर मुख
पास ग्रायी ग्रौर झटपट सम्मति ठहरा। तीनों वहां से ऐसे मार्ग से भाग
जहां डाकुग्रों का भय न हो। मालवा की ग्रोर फिर चले । उस रातभ
भर तीनों चलते हुये बड़ी दूर निकल गये, सबेरा होते २ सब एक घो
में पहुँचे जहां कांटों के कारण चलना बड़ा कठिन था उन कांटों से ऐसो
होती थी मानों वह जंगलही भय से कण्टकित (१) हो रहा है, फिर
मृग जो इधर से उधर चौकड़ियां भरते दौड़ रहे थे उनसे यह भासता
ग्ररण्य के नेत्र भय के कारण ग्रति चंचल हो गये हैं । लतायें सूख गयी थ
दृश्य से यह भावना होती थी कि विभीषिका (२) के मारे उस बन का शरी
गया है पुनः सूखे पत्ते जो गिरते थे सो यह प्रगट करते थे कि ग्ररण्य
रो रहा है। ऐसे भयङ्कर जंगल में वे तीनों दिनभर चलतेही गये, जब सांझ
मानों उनके दिनभर का क्लेश देख भगवान् सूर्यनारायण के हृदय में बड़ी
ग्रायी इससे वह ग्रस्त हो गये। भूखे प्यासे तो वे थेही इस विषय में कुछ
हो नहीं है फिर थक भी गये थे सो सायङ्काल में एक वृक्ष के नीचे उतरे
विश्राम करने लगे। थोड़ीही दूर पर उन्हें ग्राग की ज्वाला दिखाई पड़ी,
श्रीदर्शन बोला कि ऐसा भासता है कि यह गांव है, ग्रच्छा मैं जाकर देख
इतना कह लवर देखता हुग्रा वह चला। वहां पहुँच कर क्या देखता है कि
निर्मित एक विशाल भवन है उसी की प्रभा ज्वाला सी दीख पड़ती है। वह
भय उस घर के भीतर घुस गया वहां जाकर देखता क्या है कि दिव्यरूप
यक्षिणी विराजमान है ग्रौर यक्ष उसे घेरे खड़े हैं जिनके चरण पीछे की ग्रोर
नेत्र तिरछे थे। इतने में नाना प्रकार के ग्रन्न पान लाये ग्रौर उस यक्षि
समक्ष चुने गये, तब तो उसका दाढ़स ग्रौर बढ़ा, उस वीर ने यक्षिणी के

(१) रोमाञ्चित। (२) भय।

योदर्शन ने महाराज को प्रणाम किया, महीपति ने देखा कि यह भव्य (१) है सो वह उसकी आकृति से हो तुष्ट हो गये और उनके मनमें यह आश्वासन हुआ कि अब इसके करने मेरा रोग छूटा, तो वह बोले, "ब्रह्मन् । तुम्हारे यत्न से मेरा यह रोग अवश्य छूट जायगा, क्योंकि तुम्हारे दर्शन ही से मेरी पोड़ा दूर हो गयी इसीसे भरोसा होता है, सो आर्य्य । मेरा साहाय्य कीजिये ।" राजा का यह कथन सुन योदर्शन बोला —"राजन् । यह कौन बड़ी बात है ।"

राजा ने उस मन्त्रवादी को बुलाया और उससे कहा—"भद्र । यह और तुम को सहायक दिया जाता है, अब वह (काम) करो जो तुमने कहा था ।" महीपति का ऐसा कथन सुन उस ओझे ने योदर्शन से कहा कि भाई वेताल के बुलाने के कार्य में जो तुम सहायता दे सकते हो और इसमें समर्थ हो तो आज कृष्ण-पक्ष की चतुर्दशी है आजही रात्रि के समय श्मशान में मेरे पास आओ तो मैं उसे सिद्ध करूं ।" इतना कह वह मन्त्रसाधक तपस्वी चला गया । तत्पश्चात् महीपति की आज्ञा ले योदर्शन भी मठ को गया, वहां उसने प्रतिष्ठा और सुखरता के साथ भोजन किया ।

जब रात हुई तब योदर्शन उठा और कृपाण हाथ में ले अकेला श्मशान की ओर चला और झटपट वहां आ पहुंचा; श्मशान, जहां अनेक प्रकार के भूत पिशाच डाकिनी शाकिनी वेताल नाच रहे हैं; महाभयङ्कर सन्नाटा छाया हुआ है, जहां किसी प्रकार धीरज भाव देही नहीं सकता है, फिर ऊपर से सियारों का महा भयंकर शब्द और भी भय बढ़ा रहा है; अन्धकार का तो कुछ पूछनाही नहीं स्वयं कृष्ण चतुर्दशी, फिर उसका प्रभुत्व न हो तो किसका हो; हां वहां कुछ २ प्रकाश है जहां कि चितायें जल रही हैं । ऐसे भयङ्कर समय में योदर्शन अकेले उस महा भयङ्कर स्थान में पहुंचा, उसके मन में तनिक भी आशङ्का न हुई वह निधड़क उस मन्त्रसाधक को ढूंढ़ने लगा; खोजते २ क्या देखता है कि वह बीच श्मशान में बैठा है; समस्त शरीर में भस्म रमाये हुए है, केश का जनेऊ कन्धे पर विराजमान है, कफन की पगड़ी बांध ली है और काला कपड़ा धारण किये हुए है । योदर्शन उसके समक्ष निःशङ्क चला गया और बोला,—"महाराज । मैं उप-

(१) योग्य हार ।

गये पर कुछ गुण नहीं होता। बहुतेरे यन्त्र मन्त्र करनेहारे भी आये और आते ही जाते हैं पर किसी का किया कुछ नहीं होता। अब एक ओझा आया है उसने प्रतिज्ञा की है कि मैं यह रोग छुड़ा दूंगा पर मुझे कोई एक ऐसा साहसी वीर सहायक दिया जाय जो वेताल के सिद्ध करने में सहायता देवे तो उसी वेताल को सिद्ध करके मैं महाराज को अच्छा कर दूंगा। राजा ने ढोंढ़ी फेरवा दी है पर ऐसा कोई वीर नहीं मिला तब महाराज ने अपने मन्त्रियों को यह आज्ञा दी कि जुआड़ियों के लिये मैंने जो मठ बनवा रक्खा है उसमें जो आ जायें तो इस का विचार रखना कि कदाचित् उनमेंसे कोई वीर निकले क्योंकि जुआड़ी बड़े निरपेक्ष (१) होते हैं, अपनी स्त्री और बन्धुबान्धवों को छोड़ बैठते हैं, निर्भय भी ऐसे होते हैं कि जहां कहीं हो योगियों की नाईं वृक्ष की जड़ही पर सो रहते हैं। राजा की आज्ञा सिरपर रख मन्त्रियोंने मठाध्यक्ष को वैसी आज्ञा दे दी है। सो वह सदा इस बात की ताक में रहता है कि कोई वीर आ जावे। तुम सब भी जुआड़ी हो, सो हे श्रीदर्शन! जो तुमसे यह काम हो सके तो चलो तुम्हें उस मठ में ले चलूं। राजा से तो तुम उपहार पाओगेही फिर मेरा भी बड़ा उपकार हो जायगा क्योंकि यह मेरा प्राणान्त दुःख है यदि तुम्हारे द्वारा दूर हो जाय तो बड़ा काम हो।

बुढ़िया का ऐसा कथन सुन श्रीदर्शन बोला—"हां हां मैं यह काम कर सकता हूं, मुझे मठ में ले चलो।" इतना सुनकर वह बुढ़िया पद्मिशा और मुखरक के सहित श्रीदर्शन को मठाधिप के पास ले गयी और कहने लगी—"यह एक ब्राह्मण जुआड़ी है, राजा की रोगशान्तिके हेतु यह ओझा जो सहायक ढूंढ़ता है यह उसकी सहायता में समर्थ है। यह एक दूर देश से आया है।" यह श्रवण कर मठाधिपने उससे पूछा कि क्यों जी तुम ऐसा कर सकते हो? श्रीदर्शन बोला—"जी हां मैं करूँगा।" तब तो अति सत्कार कर मठाधिप उसे राजा के पास ले गया और महाराज से उसने निवेदन किया "पृथ्वीनाथ! यह एक ब्राह्मणकुमार है जो उस ओझे की सहायता किया चाहता है।" श्रीदर्शन ने महाराज को देखा तो वह पाण्डुरोग के कारण अति क्षीण हो गये थे जैसे मलीन चन्द्र।

(१) बेपरवाह।

काम कर सके वह मुझे जहां चाहे ले जावे।" इतना सुन बेतालाविष्ट वह दूसरा बोला "भाई मेरी शक्ति तो नहीं है कि तुम्हें इस समय भोजन दे सकूं यदि इसमें बने तो यह दे।" सो सुन श्रीदर्शन ने कहा "हां हां मैं देता हूं," इतना कह उसने अपने कन्धे पर के बेताल के भोजन के लिये उस दूसरे पर खड्ग चलाया, इसी अवसर में वह बेतालाविष्ट दूसरा शव लुप्त हो गया। अब कन्धे पर वाला शव श्रीदर्शन से कहने लगा "भाई तुमने भोजन देने की प्रतिज्ञा की है सो मुझे खाना दो।" अब क्या हो दूसरे का मांस तो मिल सकता नहीं और शव को भोजन देनाही चाहिये सो श्रीदर्शन ने झट अपने शरीर में से एक टुकड़ा मांस काट कर उसे खाने को दिया। इसका ऐसा साहस देख बेताल बोला, "हे महासत्व! मैं तुम्हारे इस साहस से बड़ाही सन्तुष्ट हुआ, तुम्हारी देह अक्षत (१) हो जाय; अब मुझको ले चलो पर स्मरण रखो कि तुम्हारा काम तो हो जायगा किन्तु वह तपस्वी डरपोक है सो वह तो मर जावेगा। इसके इतना कहतेही श्रीदर्शन का शरीर पूर्ववत् हो गया, अब उसने लाकर वह शव उस साधक को समर्पण कर दिया। शव को पाय वह साधक अति प्रसन्न हुआ।

उसने पूर्वही से मनुष्य की हड्डियां कूंच कर चूर्ण बनाया था उसी से एक गोल बड़ी रेखा खींच रखी थी, उसी गेंडुरी के एक कोने में एक घड़ा रखा था जिसमें रक्त भरा था, मण्डल के भीतर तेल का एक दीपक प्रज्वलित था। अब उस साधक ने रक्त की माला और अनुलेपन से (२) उस शव की पूजा की और उसे उस मण्डल के भीतर उतान लेटा दिया। इतना कर वह बेतालाविष्ट उस शव की छाती पर बैठ कर नरास्थि की स्रुवा से उस शव के मुंह में होम करने लगा। भक भक भक करके उस बेताल के मुंह से तीन बेर ज्वाला निकली जिससे डर के मारे वह साधक उसकी छाती पर से उठ भागा, उसका सत्व जाता रहा, हाथ से स्रुवा गिर पड़ी बिचारा अपना जी लेकर भागा। बेताल मुंह बाय उसके पीछे दौड़ा और पकड़ उसे खड़ाही निगल गया। यह दशा देख ज्योंही श्रीदर्शन खड्ग उठा उसके पीछे दौड़ा त्योंही वह बेताल बोला "श्रीदर्शन! मैं तुम्हारे इस धैर्य से अति सन्तुष्ट हूं सो तुम मेरे मुंह में से ये सरसों लेलो राजा इन्हें सिर पर बांधे

(१) जैसी की तैसी। (२) लोहू की माला और लोहूही के लेप से।

स्थित हूं कहिये क्या करूं ?" तब तो वह ओझा बड़ा प्रमुदित हुआ और कहने लगा —"भाई। यहां से पश्चिम की ओर सीधे चले जाओ, आध कोस पर अशोक का एक वृक्ष मिलेगा, जिसके पत्ते चिताओं की अग्नि के ताप से झुलस गये हैं; उसके मूल पर एक शव पड़ा है उसे उठा लाओ, देखना इस बात की बड़ी सावधानता रखना कि उसका अङ्ग भङ्ग न होने पावे।" "बहुत अच्छा"

इतना कह श्रीदर्शन वहां से झटपट चला, जब उस पेड़ के समीप पहुंचा तो क्या देखता है कि कोई दूसरा उस शव को उठाये लिये आ रहा है, दौड़ कर इसने उसे पकड़ा और कहा 'छोड़ इसे कहां ले चला है, यह मेरा मित्र है मैं इसे ले जाकर जलाऊंगा तू कौन है जो ले चला है ?" इतना कह उसके कन्धे से शव खींचने लगा। तब वह दूसरा श्रीदर्शन से कहने लगा "भाई आप यह कह रहे हैं मैं तो इसे कभी न छोड़ूंगा, यह तो मेरा मित्र है। कहिये आप आकर बीच में क्यों कूद पड़े।" इस प्रकार कह के वह भी खींचने लगा सो दोनों में परस्पर खींचा खींची होने लगी। इसी खींचा खींची में बेताल से अनुप्रविष्ट (१) वह शव उठ बैठा और भयङ्कर शब्द करने लगा, उस भयङ्कर शब्द से दूसरा अति डर गया, उसका हृदय डर के मारे फट गया और वह ठांवही ठंढा हो गया और श्रीदर्शन शव को लेकर चलता हुआ।

अब इधर जो दूसरा पुरुष मर गया था वह बेतालाधिष्ठित (२) हो उठ बैठा उसने दौड़ कर श्रीदर्शन का मार्ग रोका और उससे कहा "अरे खड़ा तो रह, तू मेरे मित्र को कन्धे पर रख कर कहां उठा ले चला है ? चेत आगे पांव न रखना।" श्रीदर्शन समझ गया कि इसमें भूत का आवेश हो गया है सो वह ठहर गया और बोला "भाई। [illegible] अपना मित्र बताते हो इसमें प्रमाण क्या रखते हो ? [illegible]।" उसकी ऐसी उक्ति सुन वह

[illegible] कार्यों का निर्वाह हुआ करे।
[illegible] राज्यभर के लोग एकत्रित हुए, [illegible] रहे। इससे [illegible] अति सन्तुष्ट हुए उन्होंने अपने गणों [illegible] किया कि यह [illegible] मेरे प्रसाद से भूमण्डल में सम्राट् होगा। यहां से दूर समुद्र में चन्द्रद्वीप नामक एक प्रसिद्ध द्वीप है, जहां राजा चन्द्रकेतु राज्य करता है, उसकी कन्या चन्द्रप्रभा स्त्रियों में एक अनुपम रत्न है। वह कुमारी मेरी भक्त है, प्रतिदिन मेरी पूजा कर मुझसे यह वर मांगती है कि हे देव। मुझे [illegible] सर्वोत्तम पति मिले। सो मैं योदर्शन से उसे संयुक्त कराया चाहता हूं, इसी प्रकार दोनों को भक्ति का फल प्राप्त हो जायगा। सो अब तुम लोग योदर्शन को वहां ले जाओ और किसी युक्ति से दोनों को परस्पर दर्शन करा देओ। इतना कर योदर्शन को फिर तुम लोग यहां चले आना फिर पीछे और दोनों का संयोग होता रहेगा उसकी चिन्ता नहीं है। यह काम आज ही हो जाना चाहिये। फिर इस प्रतिमा स्थापनेहारे उपेन्द्रशक्ति को भी कुछ उपकार किया होना चाहिये सो भी इसी प्रकार होगा।

गणेशजी की ऐसी आज्ञा पाय गण लोग उसी रात में तत्क्षण योदर्शन को ले चले और अपनी सिद्धि के प्रभाव से बात की बात में चंद्रद्वीप में पहुँच गये; वहां चन्द्रप्रभा के वासभवन में ले जाकर उन्होंने योदर्शन को राजकुमारी के पलङ्ग पर रख दिया। थोड़ीही देर में योदर्शन की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि एक अनुपम भवन में जहां कि प्रज्वलित रत्न ही दीपक है, नाना प्रकार के द्योतमान मणियों के चंदोवे तने हैं, राजवर्त्त की गन्ध है, तहां एक पलङ्ग पर, जिसपर कि अति श्वेत बिछौना बिछा है एक कन्या पौढ़ी है मानो स्वर्ग से अमृत की बंद चू पड़ी हो, उसकी कान्ति जो चहुँओर छिटकी थी उससे यह

घोर हाथ में रखें तब उनका चयी रोग तुरन्त ही चच्छा हो जायगा। चौर श्री-दर्शन! तुम थोड़े ही दिनों में समस्त पृथ्वी के राजा हो जाचोगे।" उसका ऐसा वचन सुन श्रीदर्शन बोला "भद्र! इस साधक के बिना मैं यहां कैसे जा सकता हूं राजा कहेंगे न. कि, म्यायवग इसने उसे मार डाला है।" श्रीदर्शन की ऐसी बात सुन वह वेताल बोला "सुनो श्रीदर्शन मैं तुझे एक उपाय बतलाये देता हूं उसी से राजा तुम्हारा विश्वास करेंगे चौर तब तुम्हारा दोष कोई न देगा चौर तुम शुद्ध प्रमाणित हो जाचोगे। एक काम करना कि यहां तो यह शव पड़ा न रहेगा इसका पेट फाड़ कर भीतर तुम मुझसे निगले हुए इस साधक को दिखा देना। इतना कह वह वेताल उस शव में से निकला चौर श्रीदर्शन की सरसों देकर कहीं चला गया चौर वह तुरन्त धरती पर गिर पड़ा। सर्षप लेकर श्रीदर्शन अपने डेरे अर्थात् उस मठ को लौट आया जहां उसके साथी थे, चौर रात भर आनन्द से सोया।

प्रातःकाल होने पर श्रीदर्शन राजा के समीप गया चौर रात्रि में जो कुछ हुआ था सो महीपति को आद्योपान्त सुनाय गया चौर राजमन्त्रियों को वहीं ले गया जहां श्मसान में वह शव पड़ा था वहां उसने उस मृतक का पेट फाड़ा चौर दिखा दिया कि देखिये यही वह वेताल निगीर्ण साधक है। इसके उपरान्त उसने राजा के हाथ चौर मस्तक पर सर्षप बाँध दिये, इस प्रकार राजा की व्याधि छूट गयी चौर वह भली भांति चंगे हो गये।

श्रीदर्शन के करते महीपति चयी रोग से निर्मुक्त हो गये, अब उनके हर्ष का थाह न रहा। महाराज यह विचार करने लगे कि क्योंकर इसका प्रत्युपकार किया जाय। महीपति अनपत्य थे सो उन्होंने यह विचारा कि श्रीदर्शन को ही गोद लेलूं; यह विचार उन्होंने श्रीदर्शन को अपना पालट पुत्र नियुक्त किया चौर उसे युवराज पद पर अभिषिक्त करदिया। ठीक है कुक्षेत्र में सुकृति रूपी बीज बोया हुआ उत्तम ही फल फलता है। तदुपरान्त श्रीमान् सुदर्शन ने पूर्व ही सेवार्थ साथ में आई हुई पद्मिष्टा का पवित्र पाणिग्रहण किया, उसके तथा उसकी भाँति सुखरक के साथ नाना प्रकार के भोगों का उपभोग करते हुए वह चौर श्रीदर्शन महाराज धर्मपूर्वक पृथ्वी का पालन करने लगे।

अनङ्गमञ्जरी के पलङ्ग पर सोया था, कहां उसका वासभवन कहां मैं फिर जहां का तहां, यह तो वही कहावत हुई 'पुनस्तत्रैवावलम्बितो वेतालः' (१) यदि कहो कि यह स्वप्न है तो स्वप्न कैसा? यह देखो उसी के आभरण मेरे शरीर पर विद्यमान हैं और येही साक्षी देते हैं कि यह स्वप्न नहीं है तो भगवन्! यह है क्या? निश्चय यह विधि का विलास (२) है। श्रीदर्शन तो इसी प्रकार चिन्ता में मग्न थे कि इतने में उनकी पत्नी पद्मिष्टा की नींद खुल गयी, उसने पूछा "प्राणनाथ! आप उदासीन क्यों हैं कहिये क्या चिन्ता कर रहे हैं" अस्तु उस साध्वी ने बहुत कुछ समझाया बुझाया और धीरज बँधाया तब किसी प्रकार श्रीदर्शन की रात कटी।

प्रातःकाल हुआ, राजकुमार की उदासीनता महाराज श्रीसेन के कर्णगोचर हुई, पूछापाछी होने लगी तब श्रीदर्शन ने रात्रि का समस्त वृत्तान्त महाराज को सुना दिया, अनङ्गमञ्जरी का नाम बता दिया और उसके चिह्नस्वरूप वे आभूषण दिखा दिये। महाराज राजकुमार का क्लेश कब सह सकते थे, उन्होंने डौंड़ी फिरवा दी कि जो कोई हंसद्वीप का पता लगा दे उसे इतना पारितोषिक दिया जायगा, महीपति ने सब उपाय किये पर किसी प्रकार हंसद्वीप का पता न चला।

इधर अनङ्गमञ्जरी के विरह से राजकुमार श्रीदर्शन निपट विकल हो गये। विरहाग्नि से उनका समस्त शरीर मानो जलने लगा, कामज्वर से अति पीड़ित हो गये, न दिन को चैन न रात को कल, सदा उसी प्रियतमा का ध्यान, सब उत्तमोत्तम भोग विलास विषवत् प्रतीत होने लगे, न कुछ खाते न पीते, आहार की क्या चिन्ता, सदा उसी का हार देखते रहते, उसी प्रिया के समस्त आभूषण निरखा करते; उसके मुखपङ्कज के रसपान की सदा अभिलाषा बनी रहती इसीसे निद्रा भी दूर हो गई। तात्पर्य्य यह कि सर्वतोभाव से राजकुमार तन्मय हो गये।

उधर हंसद्वीप में राजकुमारी अनङ्गमञ्जरी प्रातःकाल होनेपर सारसों का शब्द सुन कर जागीं, तब उन्हें रात्रि का वृत्तान्त स्मरण आया और शरीर पर जो दृष्टि पड़ी तो देखा कि देह पर श्रीदर्शन के आभूषण वर्तमान हैं तब तो वह अति विस्मित और चकित तथा लज्जित भी हुईं और मन में इस प्रकार चिन्ता करने लगीं—

(१) फिर वेताल वहीं जा लटका। (२) खेल।

जावना होती थी मानो तारे छिटके हों, आकाश में धवल अभ्रोद के टुकड़ों के मध्य शरत्काल के चन्द्रमा जैसे भासित होते हैं वह सुन्दरी मानो उसी प्रभाव की मूर्त्ति है, जिसके दर्शन से नेत्रों को अनिर्वचनीय आनन्द प्राप्त होता था। ऐसी शोभायमती मनोरमा अनङ्गमञ्जरी को देखकर राजकुमार श्रीदर्शन अति हर्षित और विस्मित हुए। वह विचारने लगे—"परमात्मन्! यह क्या है, मैं कहां सोया था, अब कहां जाग पड़ा हूं, यह बात क्या है? फिर यह स्त्री कौन है? यह निश्चय करके स्वप्न ही है अथवा ऐसा ही वरदान हो। अच्छा इसे जगाके देखूं क्या बात है।" इतना विचारकर वह उस ललनारत्नके कन्धे पर हाथ रख धीरे धीरे उसे जगाने लगे। जिस प्रकार इन्दुकर से कोई खिल जाती है उसी प्रकार श्रीदर्शन के करस्पर्श से वह सुन्दरी अनङ्गमञ्जरी जाग पड़ी, देखतेही वह भी परम विस्मित हुई कि यह दिव्याकृति पुरुष कौन है, भला जहां वायु का भी प्रवेश कठिन है वहां यह कैसे आया, निश्चय यह कोई देवता है। इतना विचार वह झटपट उठ बैठी और पूछने लगी—"महासत्व! आप कौन हैं और यहां क्योंकर आये सो कहिये।" उसका ऐसा प्रश्न सुन श्रीदर्शन अपना नाम ग्राम सब बतलाय गये पश्चात् उन्होंने भी उसका वृत्तान्त पूछा, तब उस सुन्दरी ने भी अपना नाम तथा गोत्रादि सब बतला दिया।

अब क्या, अब तो बातही और चली, दोनों का स्वप्नभ्रम दूर हो गया; दोनों में परस्पर भूषणों का विनिमय (१) हुआ कि जब किसी समय पुनः संयोग हो तो उसीके द्वारा निश्चयात्मक ज्ञान हो। अब दोनों ने गान्धर्व विवाह का विचार किया, उसका उपक्रम होने लगा किन्तु हाय! उसी क्षण गणों ने मोहवश कर दोनों को निद्रित कर दिया, दोनों की लालसा मनही में रह गई, ठीक वही कहावत हुई—"ऊधो मन की मन मांह रही।" अस्तु जब श्रीदर्शन सो गया तो गणों ने उसे उठाके घर पहुँचा दिया।

जब निज भवन में श्रीदर्शन की नींद टूटी तो क्या देखते हैं कि शरीर पर स्त्री के आभरण विद्यमान हैं, यह कौतुक देख वह अति विस्मित हुए और मन में चिन्ता करने लगे कि यह क्या बात है; कहां तो मैं कमलोदर की दुहिता

(१) परिवर्तन।

इसके सम्बन्ध में तुम कृतार्थ हो जाओगे।" उस ज्ञानी की ऐसी उक्ति सुन राजा बोले "महाराज। कहां मालवदेश और कहां यह कर्मद्वीप ! इतनी दूर की बात ठहरी, मार्ग भी अगम्य है, फिर यहां भी यह दशा उपस्थित है कि एक क्षण युग सम बीतता है। भगवन् ! अब मेरी गति आपही हैं जो चाहें सो करें आपको छोड़ मेरा उपकारक इस प्रकरण में और कौन है । प्रभो ! प्रसाद कीजिये, मेरा यह कठिन कष्ट दूर कीजिये, मैं शरणागत हूं।"

तपस्वी बड़े भक्तवत्सल और कृपालु थे, महीपति की ऐसी दीन वाणी सुन बोले "राजन् ! तुम कुछ चिन्ता मत करो तुम्हारा कार्य्य मैं अभी सिद्ध किये देता हूं।' इतना कह महायोगी अन्तर्धान हो गये क्षणभर में मालवदेशान्तर्गत राजा श्रीसेन के नगर में जा विराजे। वहां पहुंच वह पहिले उस मन्दिर में गये जिसे श्रीदर्शन ने श्रीगणेशजी के हेतु बनवाया था। वहां योगीश्वर गणाधीश को प्रणाम कर बैठ गये और हाथ जोड़ उनको इस प्रकार स्तुति करने लगे— ।

सोरठा।

वन्दौं तोहिं गणराज, नखत-माल भूषितशिर ॥
मेरु शिखर सम भाल, कल्याणों की मूर्त्ति जनु ॥ १ ॥
प्रणवौं तुम्हरो शुण्ड, त्रिभुवन को अवलम्ब जो ॥
सजल मेघ उत्तुण्ड, नृत्य समय यह राजतो ॥ २ ॥

दोहा।

विघ्नराज तोहिं नमत हौं, सर्वसिद्धि-आगार ॥
तुन्दिल थूल शरीर पर, सोहत पन्नगहार ॥ १ ॥

इस प्रकार तपस्वी महाराज, विघ्नराजजी की स्तुति कर रहे थे कि उसी समय उस प्रतिमा लानेहारे उपेन्द्रशक्ति बनिये का पुत्र महेन्द्रशक्ति अकस्मात् वहां आ पड़ा; वह बहुत दिनों से उन्मत्त हो सिकड़ तोड़ इधर उधर घूमा करता था, सो वह महेन्द्रशक्ति वहां आया और धड़ाधड़ मन्दिर में घुसही तो गया, और तपस्वी को पकड़ने दौड़ा, तपस्वी ने मस्त पर एक थप्पड़ जमाय दिया। थप्पड़ का लगना कि उसके उन्माद का भागना, अब वह वणिक्पुत्र पूर्ववत् सुस्त हो गया, इसके

"हा ! क्या यह बात कभी स्वप्न की हो सकती है, देखो न ये आभूषण तो शरीर पर विद्यमान हैं; हा प्रेम । तू ने एक जन को मिलाया और फिर वह बिछुड़ गया, अब आभरणों के निरीक्षण से देखूं मैं जीवित रहती हूं अथवा परलोक का पथ पकड़ती हूं।"

राजकुमारी पुरुष के आभरणों से युक्त इसी प्रकार चिन्ता में मग्न थीं कि उसी अवसर में उनके पिता महाराज अनङ्गोदय अकस्मात् वहां आ पहुंचे, उनको देखते ही राजदुलारी ने साड़ी से अपना अङ्ग ढाँक लिया और लज्जा के कारण नीचे मुख कर सिकुड़ के बैठ रहीं । तब महाराज उन्हें गोद में बैठाकर अति प्रेम से पूछने लगे—"पुत्रि ! यह तुम्हारा पुरुष का सा वेश कैसे हुआ ! फिर बाले इतनी लाज आज क्यों ? इसका कारण तो बताओ । वत्से ! यह तू विश्वास रख कि मेरे प्राण तेरेही में बंधे हैं, तेरा नेह भी पिराया कि मुझे प्राणान्त वेदना हुई, सो तू शीघ्र बता कि इस प्रकार अधोमुखी उदास क्यों बैठी है ?" राजा के इस प्रकार प्रियवचनों से राजकुमारी की लाज कुछ घटी तब वह आरम्भ से सेरे सारा वृत्तान्त उन्हें सुना गयीं । सुनतेही राजा चकित हो गये कि परमात्मन् ! यह क्या विषय है, यह तो कोई अमानुषीय व्यापार बोध होता है । भला मनुष्य का

दिया जाय। अतः उस दिवस को महाराज अनङ्गोदय ने शुभ लग्न में रत्नों की माला से विभूषित, वसुधा के समान अनङ्गमञ्जरी का दान श्रीदर्शन के हाथ में कर दिया। इसके उपरान्त उन्होंने अपनी जामाता को इस वधू के साथ उन्हीं तपस्वी की अलौकिक शक्ति के द्वारा मालव देश में पहुँचवा दिया। श्रीदर्शन जब वधू सहित अपने राज्य में पहुँचा तो महाराज श्रीसेन ने बड़ा आनन्द मनाया। तब श्रीदर्शन अपनी दोनों भार्य्याओं के साथ सुखपूर्वक रहने लगा।

अब वह समय आया कि दुरतिक्रम काल ने महाराज श्रीसेन को आ घेरा। उनके परलोक सिधारने पर श्रीदर्शन महाराज हुए, समस्त पृथ्वी का विजय कर वह धर्मपूर्वक राज्यशासन और प्रजाओं का पालन करने लगे।

कुछ कालोपरान्त महाराज श्रीदर्शन की पद्मिष्ठा और अनंगमञ्जरी दोनों रानियों के एक एक पुत्र हुआ, महीपति ने एक का नाम पद्मसेन और दूसरे का अनंगसेन रक्खा। दोनों राजकुमार शुक्लपक्ष के चन्द्रमा के समान दिनोंदिन बढ़ने लगे।

एक समय की बात है कि महाराज श्रीदर्शन अपनी दोनों महिषियों के साथ अन्तःपुर में विराजमान थे कि बाहर से किसी ब्राह्मण के रोने की भनक उनके कानों में पड़ी, तो उन्होंने उस विप्र को अपने समक्ष बुलाय मँगाया और बड़ी नम्रता से उससे पूछा—"देवता जी! कहिये आप क्यों रो रहे हैं?" तब वह ब्राह्मण बड़ी व्यग्रता दिखाय बोला—"राजन्। दीप्तशिख नामक जो हमारी अग्नि है काल मेघ ने अट्टहास करके ज्योतिलेखा और धूमलेखा के सहित उसको नष्ट कर डाला।" (१) इतना कह वह ब्राह्मण देखतेही देखते लोप हो गया। यह अपूर्व दृश्य देख महाराज को बड़ाही अचम्भा हुआ कि अहो यह क्या व्यापार है। वह इस प्रकार की चिन्ता कर ही रहे थे कि तो उनकी दोनों पत्नियां आंखों से आंसुओं की धारायें बहाती हुईं तत्क्षण परलोक के पथ पर जा रहीं। पत्नियों की पञ्चत्वप्राप्ति देख महीपति श्रीदर्शन "हाय हाय यह क्या हुआ यह वज्र कहां से गिरा" ऐसा कहते हुए सहसा धरती पर गिर पड़े और निश्चेष्ट हो गये, तब सेवक लोग उन्हें एक दूसरे स्थान में लेजाकर उनके सचेष्ट करने की चेष्टा करने

(१) आगे चलकर इसका अर्थ स्वयं खुल जायगा।

पूर्व वह इधर उधर नंगा घूमा करता था, पर अब उन्माद के दूर हो जाने से उसे ज्ञान हो गया कि मैं नङ्गा हूं सो वह लाज के मारे हाथों से अपना अङ्ग छिपाय झटपट वहां से निकल भागा और अपने घर की ओर चला गया। लोगों ने जाकर उसके पिता को सूचना दी कि तुम्हारा बेटा तो अच्छा हो गया, चल के देखो न वह घर को आ रहा है। यह सुन उसका पिता उपेन्द्रशक्ति फूला न समाया और घर से निकला कि चलकर पुत्र को लिवा लाऊँ, आके देखे तो सचमुच पुत्र आरहा है। बड़े आदर से पिता उपेन्द्रशक्ति अपने पुत्र महेन्द्रशक्ति को अपने घर ले गया। वहां उसको स्नान कराया गया और वस्त्र पहिनाये गये, इसके उपरान्त उपेन्द्रशक्ति अपने पुत्र के साथ उस सिद्ध तपस्वी महाराज ब्रह्मसोम के निकट उपस्थित हुए, पुत्रदानदेनेवाले उक्त महानुभाव तपस्वी को वह बहुत कुछ उपहार देने लगा पर महात्मा ने कुछ भी ग्रहण न किया। क्योंकि वह तो स्वयं सिद्ध थे उन्हें कमी किस बात की थी।

होते होते यह बात महाराज श्रीसेन के कर्ण लों पहुँची सो वह तुरन्त सौदर्शन को साथ ले स्वयं उक्त तपस्वी महाराज की सेवा में उपस्थित हुए और बड़ी नम्रता से प्रणाम कर बोले—"महाराज! आपने अमुक वणिक् के पुत्र को चंगा कर उस दीन का बड़ा उपकार किया, महाराज आपका आगमन हमलोगों के भाग्य से हुआ है, सो प्रभो अब इस दास पर भी कृपादृष्टि करें, स्वामिन्! मेरा भी कुछ उपकार करें; साथ ऐसा कुछ उपाय कीजिये कि मेरे इस पुत्र सौदर्शन का कल्याण हो।" महीपति की ऐसी बात सुन तपस्वी हँसकर बोले, "राजन्! मैं इसका क्या उपकार करूं, जो रात्रि के समय राजपुत्री कनकमञ्जरी के आभरण चुराकर इस द्वीप में यहां चला आया। तौभी तुम्हारा अनुरोध रक्खूंगा।" इतना कह सौदर्शन को लेकर तपस्वी अन्तर्धान हो गये।

अब वह तपस्वी महाराज सौदर्शन को लिये कनकद्वीप में पहुंचे वहां पहुंच कर कनकमञ्जरी के आभूषणों से युक्त सौदर्शन को महाराज कनकोदय के राजभवन में ले गये। राजेश्वर कनकोदय सौदर्शन का दर्शन कर अति प्रसन्न हुए और पहुँचे क्योंकि उस तपस्वी महाराज के चरणों पर सिर [illegible]
हम इस दिन [illegible]

कमनगर्भ यक्षयोनि में प्रदीप्ताक्ष यक्ष का पुत्र होकर जन्मा, वहां उसका नाम दीप्तशिख पड़ा. यह अट्टहास यक्ष का छोटा भाई हुआ, पूर्वजन्म की तपस्या प्रबल थी इससे उसकी भार्य्यायें पद्मा और वसा भी यक्षयोनि में धूमकेतु यक्ष की कन्या होकर जन्मीं, एक का नाम ज्योतिर्लेखा और दूसरी का धूमलेखा था।

समय पाकर दोनों बहिनें युवती हुईं तब अरण्य में जाकर पति के हेतु भगवान् उमापति की आराधना करने लगीं। भगवान् आशुतोष प्रसन्न हुए और दर्शन दे उन दोनों से कहने लगे—"पूर्वजन्म में एक संग अग्नि में प्रवेश कर जिसके साथ सब जन्मों में भार्य्यापतित्व का वरदान मांगा था वही तुम्हारा पति अट्टहास यक्ष का भाई दीप्तशिख होकर जन्मा है, अब स्वामी के शाप से यह फिर मर्त्य हुआ है, श्रीदर्शन उसका नाम है सो तुम दोनों भी मर्त्यलोक में जाकर उसकी भार्य्या बनो; जब शाप का क्षय हो जायगा तब तुम सब फिर यक्ष होकर भार्य्यापति हो जाओगे।

गौरीपति का ऐसा वचन सुन वे दोनों यक्षकन्याएँ भूतलपर पद्मिष्ठा और पद्मसुन्दरी होके जन्मीं और श्रीदर्शन को पति पाकर बहुत दिनों लों आनन्द से रहीं। एक दिन अट्टहास ब्राह्मण का रूप धर आया और युक्ति से उन दोनों के नाम उच्चारण कर उन्हें जाति का स्मरण दिलाय अन्तर्धान हो गया; इसी से वे दोनों तत्क्षण मर्त्य शरीर त्याग यक्षिणी हो गयीं। सो वेही हम दोनों हैं, और आप वही दीप्तशिख हैं। उन दोनों दिव्य अङ्गनाओं की ऐसी बात सुनतेही श्रीदर्शन महाराज को अपनी पूर्व जाति का स्मरण हो आया सो वह तत्क्षण दीप्तशिख यक्ष हो गये और विधिपूर्वक उन भार्य्याओं से पुनः उनका संयोग हो गया।

इतनी कथा सुनाय वह यक्ष विचित्रकथ से पुनः कहने लगा "भाई! वही मैं दीप्तशिख यक्ष हूं और ये दोनों मेरी भार्य्यायें ज्योतिर्लेखा तथा धूमलेखा हैं। सो जब हम देवयोनियों को भी इस प्रकार सुख दुःख भोगने पड़ते हैं तो मानवों का पूछना ही क्या। वत्स! धीरज धरो, थोड़े ही दिनों में तुम सभों की भेंट स्वामी मृगाङ्कदत्त से हो जायगी, सो तुम विषाद मत करो। यह मेरा भौम (१) गृह है, मैं यहां इसीलिये ठहरा हूं कि तुम्हारा आतिथ्य करूं, सो भाई तुम यहां निर्भय

(१) पृथ्वी पर का।

लगे। इधर दोनों देवियों को लेजाकर मुखरक ने उनका अग्निसंस्कार करदिया जब महाराज सचेत हुए तब अपनी दोनों प्राणवल्लभाओं का स्मरण कर वे अति व्याकुल हो गये। पश्चात् धैर्य्य का अवलम्बन कर उन्होंने महारानियों का श्राद्धादिक कर्म निपटाया। इसके पीछे एक वर्ष पर्य्यन्त उन्होंने किसी प्रकार से राजकाज सम्भाला, उसके उपरान्त पृथ्वी का राज्य दो भागों में विभक्त कर दोनों पुत्रों को दे दिया और स्वयं वैराग्य का अवलम्बन किया। जब वैराग्य का उदय होता है तब और क्या सोहाय, सो महाराज मोहमाया तज, राजभवन से निकले, प्रजा उनके पीछे लगी, वह उन्हें लौटाय वनमें जाकर तपश्चर्या में लीन हुए।

कहां वे उत्तमोत्तम पक्वान्नभोजन कहां अब फलमूल का भक्षण, परन्तु महाराज इसी में सन्तुष्ट रह यदृच्छया विचरण करते। एक समय की बात है कि वह घूमते घामते किसी वटवृक्ष के नीचे पहुँचे; वहां एक आकस्मिक घटना हुई. ज्योंही कि महाराज वहां आये कि हाथ में फलमूल लिये दो दिव्यरूपिणी स्त्रियां उस वृक्ष से निकलीं और महाराज श्रीदर्शन से कहने लगीं "राजन्! आइये, हमारे (दिये) ये फलमूल आज ग्रहण कीजिये।" उनकी ऐसी अभ्यर्थना सुन महीपति बोले,—"पहिले यह तो बताओ कि तुम दोनों कौन हो तब पीछे फलमूल लिये जावेंगे।" तब उन दोनों ने उत्तर दिया कि यदि इस बात के जानने की अभिलाषा है तो इसमें प्रवेश कर हमारे घर चलें वहां हम दोनों आपको ठीक ठीक सब कथा सुना देवेंगी। श्रीदर्शन भूप उन दिव्याङ्गनाओं की बात पर सम्मत हुए और उनके साथ उस वृक्ष में पैठे, भीतर जाकर क्या देखते हैं कि एक दिव्य सुवर्णमयी नगरी है। वहां महाराज ने विश्राम किया और उनके दिये फल खाये। तब वे दोनों दिव्याङ्गनायें बोलीं—"राजन्! अब ध्यान देकर हमारा वृत्तान्त सुनिये.

गजेन्द्र दिखाई पड़ा था कि एक हरे पत्ते पुरुष को आश्वासन दे रहा था, सूंड़
से जल सींच लाकर उसे नहलाने को देता और उसी से दोनों भर के उसे जल पिलाता
और अपने कानों से उसे पंखा झलता। इसकी सेवा करता और बार २ उससे
पूछता कि भाई अब कुछ शान्ति बोध होती है न। इस प्रकार मानुषजनवत् प्रीति
वचनों से उसको आश्वासन देते हुए उस गज को देखकर मृगाङ्कदत्त ने अति विस्मय
से अपने मित्रों से कहा कि "देखो न भाइयो। कहां यह बनैला हाथी कहां इसका
ऐसा मानुषोचित व्यवहार। अवश्य यह कोई महानुभाव है किसी कारण से इस
गजयोनि में आ पड़ा है। और फिर यह पुरुष हमारे सखा प्रचण्डशक्ति के समान
दीख पड़ता है परन्तु यह अन्धा है। अच्छा अब देखना चाहिये क्या होता है।"
इस प्रकार अपने मित्रों से कहकर राजकुमार मृगाङ्कदत्त गुपके से उन दोनों का
आलाप सुनने लगे।

इतने में वह अन्धा पुरुष कुछ समाश्वस्त हुआ, तब वह वारणेन्द्र उससे पूछने
लगा "भाई! तुम कौन हो यहां तुम्हारा आना कैसे हुआ है? सो सब समझाकर
मुझसे कहो।" तब वह अन्धा पुरुष उस गजेन्द्र से कहने लगा—"भाई सुनो, मैं
अपना वृत्तान्त तुमसे कहता हूं—"।

अयोध्यापुरी के राजा अमरदत्त हैं, उनके पुत्र मृगाङ्कदत्त सब गुणआगर हैं,
मुभजन्मा उन राजकुमार का मैं सेवक प्रचण्डशक्ति हूं। किसी कारण से महाराज
ने अपने देश से राजकुमार को निकाल दिया। हम दश मन्त्री उनके संगी हैं सो
राजकुमारके साथ चले। हम सब लोग शशाङ्कवती की प्राप्ति के लिये उज्जयिनी
को जा रहे थे। जङ्गल में एक नागके शाप से हमलोगों का वियोग हो गया। उस
नाग के शाप से घूमता २ मैं अन्धा हो गया, अब यहां आ पड़ा हूं जो कुछ फलमूल
मिल गया वही खा लेता हूं नहीं तो वैसेही रह जाता हूं। यदि मुझपर वज्र
गिर पड़ता अथवा अनशन से मेरी मृत्यु हो जाती तो उत्तम होता परन्तु हाय!
विधाता ने मेरा कष्ट भोगना ही अच्छा समझा है तो मृत्यु कैसे हो। मुझे तो
ऐसा भासता है कि जिस प्रकार आज आपके प्रसाद से मेरी क्षुधापीड़ा दूर हुई है
वैसेही मेरा यह अन्धापन भी छूट जायगा क्योंकि तुम कोई देवता जान पड़ते हो।

उस अन्धे का ऐसा कथन सुन मृगाङ्कदत्त के हृदय में सायही साथ हर्ष और

रही किसी प्रकार की चिन्ता मन में न करना; मैं सब प्रकार से तुम्हारा अभीष्ट साधन करूँगा. इसके उपरान्त मैं कैलाश पर अपने धाम को चला जाऊँगा।

इस प्रकार अपना वृत्तान्त सुनाय विचित्रकथ मृगाङ्कदत्त से कहने लगा कि प्रभो ! इस भांति अपनी इतिवृत्ति सुनाय वह यक्ष विविध भांति से मेरा उपकार करने लगे; पाछ उन्हें यह बात हो गया कि आप लोग यहां आये हैं सो रात्रि के समय सोये हुए आप लोगों के मध्य में मुझे रख गये, फिर आप लोगों ने मुझे देखा और मैंने आप लोगों को; बस यही मेरा वृत्तान्त है। जब मैं आप लोगों से पृथक् हुआ तो यही घटना हुई।

दोहा।

तब विचित्रकथ सचिव वर, नाम यथारथ जासु ॥
प्रभुसन निज वृत्तान्त कहि, पायो अधिक हुलासु ॥१॥
राजतनय जु मृगाङ्कदत, सुनि अदभुत वृत्तान्त ॥
अपर सचिव संग रात महँ, आनन्द लह्यउ नितान्त ॥ २ ॥

वसन्ततिलकम्।

रात्री विताय अटवीमहँ नागशाप- ।
विक्षेपितान्य सचिवों कहँ ढूंढ़ते मे ॥
वौसे शशांकवति पाइय ध्यान याही ।
पाये वयस्य सँग उज्जयिनी सिधारे ॥

सातवां तरङ्ग।

इसके उपरान्त राजकुमार मृगाङ्कदत्त अपने उन सचिवों के साथ जिनमें कि श्रुतधि पांचवां था, विन्ध्याटवी में क्रमानुसार चलते चलते एक कानन में पहुँचे [illegible] ते [illegible] र्गों [illegible] , जिनकी छाया बड़ी मनोहारिणी थी, वहां का [illegible] वहां सुख लोग उतरे, स्नान कर उन लोगों ने नाना [illegible] एक [illegible] में मृगाङ्कदत्त को [illegible] झांकने लगे तो उन्हें एक

तपस्या की, इसहेतु तुझे कोई मुनि शाप देंगे, उस शाप के प्रभाव से तू बनैला हाथी होवेगा। उस योनि में भी तुझे अपने जन्म का स्मरण बना रहेगा और तेरी वाणी बहुत व्यक्त रहेगी। जब किसी दुर्गति अतिथि को तू अपना वृत्तान्त कह सुनावेगा तो तेरा शाप छूट जायगा और तू गज शरीर से मुक्त हो पुनः गन्धर्व हो जायगा और तब उस अतिथि का भी उपकार होगा। इतना कह भगवान् शङ्कर अन्तर्धान हो गये और शीलधर ने यह देखकर कि यह शरीर तपस्या से क्षीण हो गया है, गङ्गा में गिर यह तन त्याग दिया।

इसी अवसर में कथाप्रकरण से जिस उग्रभट राजा का पहिले नामोलेख हो चुका है उन्हीं की यह बात है कि वह महीपति अपनी नगरी राढ़ा में अपनी प्रियतमा मनोरमा नाम्नी भार्या के साथ सुखपूर्वक कालयापन करते थे कि एक दिन कोई लासक नामक नट कहीं दूरदेश से उनकी सभा में आया, उसने महाराज को वह नाट्यप्रयोग कर दिखाया जब कि स्त्रीरूप धारण कर भगवान् नारायण ने दैत्यों से अमृत हर लिया था। तहां नाट्यशाला में राजा ने जो उस नर्त्तक की बेटी लास्यवती को नृत्य करती देखा तो वह उस पर मोहित हो गये, उसका रूप भी क्या ही अपूर्व था कि उस समय ठीक वैसीही भावना होती थी कि जिस रूप से दानव मोहित हो गये थे; राजा को वह सही अमृता ही प्राप्त हुई सो वह कामवश हो गये। जब नृत्य समाप्त हुआ तो राजा ने उसके पिता को बहुत सा धन दे लास्यवती को अन्तःपुर में भेज दिया। शुभ मुहूर्त्त में राजा ने लास्यवती का पाणिग्रहण किया, अब महीपति उसी में आसक्त हो सदा उसी का मुंह निरखा करते।

एक समय राजा ने अपने पुरोहित यशःस्वामी से कहा, "महाराज! मेरे पुत्र नहीं है सो आप पुत्रेष्टि (१) कराइये।" "बहुत अच्छा, जैसा महाराज कहते हैं वैसाही किया जायगा," इतना कह पुरोहित ने विद्वान् ब्राह्मणों के साथ यज्ञ का आरम्भ किया। यज्ञमन्त्र से अभिमन्त्रित जो चरु का पहिला भाग था सो तो महीपति ने अपनी प्रियतमा भार्या मनोरमा को खिलाया क्योंकि उन महारानी पूर्वही से उनकी बहुत कुछ आराधना कर चुकी थीं, और जो शेष भाग था सो

(१) [illegible] होता है।

शोक का प्रादुर्भाव हुआ, कि मित्र तो मिला पर हाय ! वह अन्धा हो गया है अब उसकी आंखें क्योंकर खुलें, सो वह अपने साथ के सचिवों से कहने लगे कि भाइयो ! यह है तो प्रचण्डशक्ति ही, परन्तु हाय ! यह अन्धा कैसे हो गया। अब झटपट इससे परिचय कर लेना भी उचित नहीं भासता क्योंकि कदाचित् यह हाथी ही उसकी आखों का भी कुछ उपाय कर देवे और हमलोगों को देख कदाचित् वह चल दे तो कठिन हो, सो अब हमलोगों को उचित है कि छिपे २ सब व्यापार देखें। इतना कह राजकुमार अपने मित्रों के साथ उन दोनों का आलाप सुनने लगे।

इतने में प्रचण्डशक्ति ने उस वारणेन्द्र से कहा, "गजेन्द्र ! मैंने अपना वृत्तान्त तुम्हें सुना दिया, अब महात्मन् ! आप अपना वृत्तान्त भी कह सुनावें, आप गज योनि में कैसे आये और इस योनि में भी आपकी वाणी-ऐसी नम्र क्योंकर है?" उसका ऐसा प्रश्न सुन लम्बी सांस भर वह गजेन्द्र बोला —"सुनो भाई मैं अपना वृत्तान्त जड़ से तुम्हें सुनाता हूं।"

एकलव्यापुरी में पहिले श्रुतधर नामक एक राजा राज्य करते थे, उनकी दो भार्य्यायें थीं, प्रत्येक से राजा को एक एक पुत्र हुआ। बड़े का नाम शीलधर छोटे का सत्यधर था। राजा के परलोकवास करने पर उनके छोटे पुत्र सत्यधर ने अपने जेठे भाई शीलधर को राज्य से निकलवा दिया। शीलधर को इससे बड़ी ग्लानि हुई सो वह जाकर भगवान् शङ्कर की आराधना में तपस्या करने लगे। भगवान् आशुतोष अतिशीघ्र प्रसन्न हो गये और बोले—"पुत्र ! वर मांग।" शीलधर ने वर मांगा—"हे देवाधिदेव ! यदि आप प्रसन्न हैं तो यह वर दें कि मैं गन्धर्व्व हो जाऊं तब आकाशचर होकर अपने दायाद सत्यधर को बात की बात में मार डालूं।" उसकी ऐसी प्रार्थना सुन भगवान् शङ्कर बोले—"सो तब तो होगा पर तेरा शत्रु सो स्वयं मर गया, अब वह राढ़ा नगरी के राजा उग्रभट का पुत्र होके फिर जन्म ग्रहण करेगा जहां उसका नाम समरभट होगा, और वह अपने पिता का प्यारा होगा और तू उसका सौतेला बड़ा भाई होके जन्मेगा, वहां तेरा नाम शीलभट होगा सो तू उसे मार राज्य करेगा। फिर एक बात और है कि तू ने यह तपस्या शुद्ध मन से नहीं की है किन्तु उलटा मेरे को [illegible] में

धार आप स्वयं कर सकते हैं मैं क्या करूं।" प्रिया की ऐसी बात महाराज उग्रभट के हृदय में धँस गई। उनका क्रोध एकाएक भड़क उठा सो उन्होंने भीमभट को अपनी सभा से निकलवा दिया और आज्ञा कर दी कि यह मेरे समक्ष न आने पावे; उनके सब अधिकार छीन लिये और राज्य से जो वृत्ति उन्हें मिलती थी सो भी बन्द कर दी। इसके उपरान्त समरभट को कोषाध्यक्ष बना दिया और ऐसा प्रबन्ध कर दिया कि उनके साथ सदा सौ राजपूत रक्षक बने रहते कि कोई इनका एक बाल भी बांका न कर सके।

जब भीमभट को माता मनोरमा ने सुना कि मेरे पुत्र के साथ ऐसा बर्त्ताव किया गया है तब उन्होंने भीमभट को अपने समीप बुला भेजा और उन्हें बहुत कुछ समझाया और कहा —"पुत्र। तुम्हारे पिता इस समय उस नर्त्तकी के बड़े अनुरागी हैं इसीसे उन्होंने तुमको निकाल दिया है सो तुम कुछ चिन्ता मत करो, पुत्रो तुम पाटलिपुत्र में अपने नाना के घर चले जाओ, उनके कोई पुत्र नहीं है वह अपना राज्य तुम्हें दे देंगे बस तुम राजा के राजा बने रहोगे। और जो तुम मोहवश यहां पड़े रहोगे तो तुम्हारा भला न होगा, क्योंकि समरभट तुम्हारा परम बैरी हो गया है, वह इस समय प्रबल और सहायवान् है और तुम निस्सहाय हो वह तुम्हें अवश्य मरवा डालेगा। इससे मैं कहती हूं कि तुम यहां से भाग जाओ इसी में तुम्हारा कल्याण है।" माता का ऐसा कथन सुन राजकुमार भीमभट बोले—"माता मैं क्षत्रिय हूं, भला क्षत्रियपुत्र होकर देश त्याग कैसे भाग जाऊँ, यह डरपोकों का काम है, क्षत्रियों को भय नहीं व्यापता। अम्ब तू धीरज धर भला ऐसो किस बापुरे की शक्ति है जो मेरा कुछ कर सके।" उनका ऐसा वचन सुन माता फिर बोली, "तो बेटा तुम अपनी रक्षा के लिये कुछ रक्षक नियुक्त कर लो जो सदा तुम्हारी रखवाली किया करें, द्रव्य की तुम कुछ चिन्ता न करना मैं तुम्हें धन देऊँगी।" माता की ऐसी बात सुन भीमभट फिर बोले,—"अम्ब! तुम्हारा कहना तो ठीक है पर ऐसा करना पिता का घोर विरोध समझा जायगा इससे यह कार्य शोभन न होगा; और कल्याण का क्या पूछना, वह तो मात[illegible]आशीर्वाद ही से होगा। तुम चिन्ता न करो, धैर्य धरो।" इतना कह कथा[illegible]ने की इच्छा[illegible]ने।

भूपति ने दूसरी भार्य्या लास्यवती को दिया । अब पूर्वोक्त शीलधर और सलधर दोनों रानियों के गर्भ में आये । प्रसवकाल आने पर रानी मनोरमा एक शुभ लक्षण पुत्र जनी। "यही पुत्र भीमभट नामक प्रख्यात राजा होगा" उस समय यह आकाशवाणी हुई । तदुपरान्त दूसरे दिन लास्यवती के गर्भ से भी एक पुत्र हुआ, पिता ने उसका नाम समरभट रक्खा। दोनों राजकुमारों का यथावत् संस्कार किया गया और दोनों क्रमशः बढ़ने लगे। ज्येष्ठ कुमार भीमभट कनिष्ठ कुमार समरभट से सब बातों में बढ़कर निकले, इसी से दोनों भाइयों में वैमनस्य बढ़ने लगा।

एक समय की बात है कि दोनों भाई मल्लयुद्ध का खेल खेल रहे थे, भीमभट तो सहज स्वभाव से अपने दांव पेंच कर रहे थे किन्तु समरभट के मन में कल्मष था; वह अवसर ढूंढ़ते रहे कि कब घात मिले और ऐसा आघात लगाऊँ कि यह यहां से फिर न उठे। सो खेलते २ उन्होंने भीमभट के गले पर अपनी भुजा से घोर आघात लगाया; भीमभट इस चोट से अपना क्रोध सम्भाल न सके, उन्होंने चट उन्हें भुजाओं से उठा धरती पर पटक ही तो दिया; इस पटकान से समरभट चकनाचूर हो गये और उनके सब द्वारों से लोहू बहने लगा । उनकी यह दशा देख उनके सेवक उन्हें उनकी माता के समीप उठा ले गये। महारानी पुत्र की यह दशा देख अति व्याकुल हुईं और जब कि उन्हें यह ज्ञात हुआ कि पुत्र की इस दुर्दशा के कारण राजकुमार भीमभट हैं तब तो उनके शोक का अन्त ही न रहा, लगीं वह अपने पुत्र के मस्तक पर माथा पटक २ रोने और विलाप करने। इसी अवसर में महाराज उग्रभट वहां आ गये और यहां का ऐसा व्यापार देख व्याकुल हो पूछने लगे कि कहो तो सही व्यापार क्या है, यह क्या और कैसे हुआ ? महाराज के ऐसे प्रश्न सुन महारानी लास्यवती बोलीं,—"आर्य्यपुत्र! भीमभट ने मेरे पुत्र की यह अवस्था कर डाली है, वह सदा सर्वदा इसे इसी प्रकार कष्ट पहुँचाया करता है, मैं आपसे नहीं कहती कि जाने दो दोनों बालक हैं लड़ते भिड़ते रहते हैं इनकी बातों पर क्या ध्यान दिया जाय; पर जब उसने मेरे पुत्र को इस दशा में पहुँचाय दिया तब तो बड़ो आगड़ा होती है, फिर पुत्र की चिन्ता तो जो है सो है ही एक बड़ी भारी आशङ्का तो यह होती है कि जब वह पुत्र ऐसा उद्दत और उद्दण्ड है तो आपका कल्याण कैसे होगा। इसका वि

[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible]
[illegible] । [illegible] ने आकर भीमभट ने उस [illegible] को ग्रहण किया तो उन्होंने उस वणिक् से उस घोड़े को बहुत सा धन देकर मोल ले लिया । उसी समय में समरभट को भी इस उत्तम घोड़े की सूचना मिली, वह भी उस व्यापारी के पास पहुंचे और कहने लगे कि मुझसे दूना दाम ले लो और घोड़ा मुझे दे दो । वणिक् बोला "महाराज ! मैं तो घोड़ा बेच चुका, अब मैं लौटकर फेर सकता हूं ।" इसपर समरभट ने बलपूर्वक घोड़ा छीन लेना विचारा, क्योंकि उनके मनमें तो डाह भरा था कि कैसे भीमभट मुझ से बढ़ जाय । फिर दोनों राजकुमारों में तलवार खिच गयी और अन्य भी टूट पड़े, और युद्ध होने लगा । भीमभट के प्रचण्ड दोर्दण्ड के प्रहार से समरभट के सब सैनिक भाग गये और समरभट भी घोड़ा छोड़ प्राण ले भाग चले । [illegible] के मनमें तो प्यार जमो हो थो उनने उन्हें रगेदकर पकड़ा और केश पकड़ क्योंही चाहा कि सिर धड़ से अलग कर दें कि दौड़कर भीमभट ने उसे रोका और कहा—"भाई ! इस समय इसे छोड़ दो, ऐसा करनेसे पिताजी को बड़ा दुःख होगा।" इस प्रकार से छुटकारा पाय समरभट लहूलोहान भागकर अपने पिता के पास चले गये।

घोड़ा लेकर विजयी और भीमभट अपने आवास पर पहुँचे ही थे कि थोड़ी ही देर में उनके पास एक ब्राह्मण आया और उन्हें एकान्त में लेजाकर उनसे इस प्रकार कहने लगा "राजकुमार ! तुम्हारी माता मनोरमादेवी, पुरोहित यज्ञस्वामी तथा पिता के मन्त्री सुमति ने मुझे तुम्हारे पास भेजा है और यह सन्देश कहा है कि वत्स ! तुम जानते हो कि राजा कैसे तुम्हारे प्रतिकूल हैं, फिर इस घटना से उनका कोप और अधिक भड़का है, अब वह तुम्हारे पूरे शत्रु हो गये हैं; सो तात! यदि अपनी, और अपने धर्म तथा यश की रक्षा किया चाहते हो, और भविष्य [illegible]ने की इच्छा रखते हो, और जो यह मानते हो कि हम तुम्हारे हितैषी हैं तो

जब महाराज का भीमभट के साथ ऐसा व्यापार पुरवासियों को विदित हुआ तब सब लोग बड़े व्यथित हुए और परस्पर कहने लगे कि राजा ने भीमभट के साथ बड़ाही अनुचित व्यवहार किया है; फिर समरभट का यह काम भी अच्छा नहीं हुआ कि जेठे भाई का राज्य छीन आप भोग करें। अस्तु जो हुआ सो हुआ अब हमलोगों को भी उचित है कि भीमभट की सेवा करें, उनकी सहायता करें। इस प्रकार विचारकर समस्त प्रजा गुप्तरूप से भीमभट की ऐसी सहायता करने लगी कि राजकुमार भीमभट अपने भृत्यवर्गों के साथ सुखपूर्वक कालयापन में समर्थ हो गये। प्रजा तो ज्येष्ठ राजकुमार को इतना प्यार करती पर उनका छोटा भाई सदा इस चेष्टा में रहता कि क्योंकर उसका वध करूँ। महाराज तो स्वयं भीमभट के प्रतिकूल थे, उन्हों के नियुक्त किये कतिपय योद्धा समरभट की रक्षा करते इससे समरभट और भी निःशङ्क और उद्दण्ड हो गये और इसी हेतु उनका इतना साहस भी हुआ कि भीमभट के वध करने का अवसर ढूंढ़ने लगे।

दोनों राजकुमारों का एक प्रगाढ़ मित्र शङ्खदत्त नामक ब्राह्मण था, वह युवा शूर और लक्ष्मीपात्र भी था सो वह समरभट के निकट जाकर उन्हें समझाने लगा "प्रिय वयस्य! तुम्हें उचित नहीं है कि अपने जेठे भाई से वैर करो, यह धर्म नहीं प्रत्युत घोर अत्याचार है; फिर वह तुमसे बड़े हैं इससे तुम किसी प्रकार उन्हें बाधा पहुँचाय भी नहीं सकते, उलटी अकीर्त्ति हो तुम्हारी लोक में होगी, सब लोग तुम्हारी निन्दा ही करेंगे।" शङ्खदत्त की बात राजकुमार समरभट को अच्छी न लगी, उलटे वह अति क्रुद्ध हो उसे गाली देने और डाँटने लगे। ठीक ही है मूर्ख को हित उपदेश देना मानों उनका क्रोध भड़काना है, उससे उनकी शान्ति कदापि नहीं हो सकती।

है दैव भी उसका कुछ नहीं कर सकता। अब धैर्य्य ही हमारे पास है, अब धैर्य्य का अवलम्बन कर हम लोग चलें।" उसकी ऐसी सान्त्वनामयी वाणी सुन राजकुमार भीमभट कुछ आश्वस्त हुए और उसके साथ आगे चले।

राजकुमार भीमभट अपने मित्र शंखदत्त के साथ चले जाते थे, कण्टकों से उनके पांव पांव विक्षत हो गये। अस्तु किसी प्रकार रात बीती और रात्रि के अन्धकार के नाशक जगत् के दीपक दिननाथ का उदय हुआ। मार्ग के पार्श्ववर्ती सब कमल खिल गये, जिनके ऊपर भँवर झंकार करने लगे जिससे यह भावना होती थी कि उन्हें देख वे परस्पर कह रहे हैं कि महोभाग्य जो यह महानुभाव सिंहादि हिंस्र जन्तुओं से व्याप्त इस जङ्गल को पार कर आये।

चलते २ राजकुमार अपने मित्र के साथ पतितपावनी जह्नुकन्या भगवती जाह्नवी के तट पर पहुँचे जहां अनेक ऋषि मुनि तपस्या कर रहे थे। वहां महादेव जी के शिरपर रहने के कारण चन्द्रमा के सम्पर्क से अमृतमय जल में उन्होंने स्नान किया जिससे थकावट दूर हुई। व्याधे हरिणों का आखेट कर उस मार्ग से उन्हें लिये जाते थे जिनमें से शंखदत्त ने उनसे कुछ मोल ले लिया और भूनकर राजकुमार को दिया कि भोजन करें। उन्होंने उसी का भक्षण कर सन्तोष किया।

आगे अगाध जल से भरी भागीरथी प्रखर धाराओं से बह रही थीं, जिनमें ऊँचे २ पर्वत-सन्निभ तरङ्ग उठकर यह सूचित करते थे कि हे राजकुमार उतरने का साहस न करना। जब उन्हें यह भली भांति निश्चित हो गया कि गङ्गाजी का पार करना असाध्य है और कोई नाव बेड़ा भी नहीं तब वह भगवती के किनारे ही किनारे चले। जब कुछ दूर आगे निकल गये तब एक विजन स्थान में क्या देखते हैं कि एक ब्राह्मणकुमार कुटी में बैठा वेद पढ़ रहा है। भीमभट उसके समीप चले गये और उससे पूछने लगे—"भाई तुम कौन हो, और इस निर्जन प्रदेश में क्या कर रहे हो?" उसने उत्तर दिया, "मैं काशी का रहनेवाला ब्राह्मण, हिरण्या श्रीकण्ठ का पुत्र नीलकण्ठ हूं, पिता ने मेरे संस्कार निष्पन्न किये, तब मैं गुरुकुल में विद्या पढ़ने गया, जब समस्त विद्या सीखकर मैं देश को लौटा तो क्या देखता हूं कि मेरे घर में कोई नहीं है, सब बन्धु बान्धव मर चुके; अब मैं अनाथ हो गया, धन कुछ था ही नहीं कि गार्हस्थ्य का अवलम्बन करूँ इससे, मेरे

भाजही सूर्य्यास्त होने पर चुपचाप यहां से निकलकर नाना के घर चले आओ। इस समय इसीमें तुम्हारा कल्याण है। यह तो उनका सन्देश है, और मेरे हाथ रत्नपूर्ण यह डब्बा उन्होंने भेजा है सो लेओ। उस ब्राह्मण से ऐसा सन्देश सुन भीमभट अति प्रमुदित हुए, और बोले मैं ऐसाही करूँगा, इतना कह बड़ी नम्रता से उन्होंने वह रत्नभाण्ड ले लिया और अपनी ओर का सन्देश दे उस ब्राह्मण को बिदा किया।

अब राजकुमार भीमभट अपना खड्ग लेकर उस श्रेष्ठ अश्व पर आरूढ़ हुए और एक दूसरे घोड़े पर हेमरत्नादि लेकर शंखदत्त चढ़ा, और दोनों जने वहां से चलते हुए। राजकुमार अपने मित्र के साथ तावड़तोड़ घोड़ा दौड़ाये रातोरात चले जा रहे थे, आधी रात के समय महाघोर सर्कंडों के वन में पहुंचे। घोड़ों की टाप से उस वन में महा शब्द हुआ, उससे सिंहों का एक जोड़ा जाग पड़ा और बच्चे भी जागे; उन सभों ने पहिले घोड़ों पर आक्रमण किया और नीचे से उनके पेट फाड़ डाले। राजकुमार अपने मित्र सहित उन सिंहों पर टूट पड़े, उन्होंने उन सिंहों को काट कूटकर छिन्न भिन्न कर डाला। इसके उपरान्त दोनों जन अपने २ घोड़ों पर आरूढ़ हुए, इतने ही में उन घोड़ों की अँतड़ी निकल पड़ीं और वे दोनों धरती पर गिर पड़े। घोड़ों की यह दशा देख राजकुमार भीमभट को बड़ा विषाद हुआ सो वह अपने मित्र से कहने लगे - "सखे! हमारे स्वजन विरुद्ध हो गये पर उनसे बचने को हम दोनों किसी युक्ति से निकल भागे, कहो न अब क्या किया जाय? सैकड़ोंयत्न क्यों न किये जायँ पर भाग्य से कोई कहां भाग सकता है, वह तो सदा पिछियाये फिरता है; देखो न हम यहां भागकर आये, दैव से वह भी न सहा गया, हमारे वाहन क्या मारे गये मानो हमही मारे गये। देखो तो सही जिसके कारण हमारा देश छूटा वह घोड़ा भी मर गया, अब ऐसी रात और ऐसा घोर जंगल, पैदल क्योंकर चल सकेंगे?" राजकुमार की ऐसी करुणाभरी बातें सुन वह मित्र शंखदत्त बोला—'प्रिय वयस्य यह कोई नई बात नहीं है, यह निर्दय विधि इसी प्रकार पौरुष का विध्वंस किया करता है, परन्तु उसका यह नैसर्गिक गुण भी है कि वह धैर्य से जीता जाता है, जैसे वायु पर्वत का कुछ नहीं कर सकता वैसेही जो पुरुष धैर्य रख अपने कार्य को पुन लगाये

ह्राहो प्रबल है, फिर इसी विद्या के प्रभाव से भूतल पर तू राजा हो जावेगा।" इतना कह विद्या देकर भगवती जाह्नवी तो अन्तर्धान हो गयीं। अब भीमभट को मित्र की प्राप्ति में आशा हुई तो वह मरण से विमुख हुए। मित्रप्राप्ति के उत्साह में कमल के समान उन्होंने किसी प्रकार यह रात बितायी।

प्रातःकाल होने पर वह अपनी मित्र मंडली को ढूंढ़ते हुए चले, चलते २ लाट नामक देश में पहुँचे जहां मिश्रित वर्ण की वसति नहीं थी तथापि लोगों की स्थिति स्वच्छ और उज्ज्वल थी; वह देश सब कलाओं का आकर था तथापि दोषाकर शब्द उसके विषय में अप्रयुक्त था (१) उस देश के एक नगर में देवालयों के दर्शन करते हुए घूमते घामते वह एक द्यूतशाला में पहुँचे, तहां भीतर जाकर देखते क्या हैं कि अनेक जुआरी वहां पड़े हैं जिनको कटि में लंगोटी के अतिरिक्त और अङ्ग पर कुछ वस्त्र न था, तोभी उनकी आकृति से विदित होता था कि वे उच्च घराने के हैं। उनके समस्त अङ्ग गठीले और पुष्ट थे जिनसे यह प्रतीत होता था कि वे व्यायामशील हैं, उनके देखने से यह भी अनुमान होता था कि इन सभी के पास माल है, सारांश, वे भेष बनाये पड़े रहते थे। भीमभट को आभरण सहित देखकर उन सभी के मन में यह बात उदित हुई कि आज अच्छा भोजन हाथ लगा, ऐसा विचार के सब राजकुमार भीमभट से आलाप करने लगे; चलो जूए की बात छिड़ी और खेल आरम्भ हुआ। राजकुमार सीधेसादे दोषा राजपुत्र न थे वे परम प्रवीण और द्यूतकुशल भी थे, बात की बात में उन्होंने उन धूर्तों का सर्वस्व जीत लिया जो उन दुष्टों ने दूसरों को ठग ठगकर एकत्रित किया था।

जब कि वे सब अपना सर्वस्व हार अपने २ घर जाने लगे तब भीमभट द्वार रोककर खड़े हो गये और बोले—"तुम लोग चले कहां, लेओ अपना यह धन, इस धन से मुझे क्या? मैं अपने मित्रों को यह धन देऊंगा सो तो क्या तुम मेरे मित्र नहीं हो? अब तुम सरीखे मित्र मुझे कहां मिलेंगे।" राजकुमार तो अपना जीता धन उन्हें दे रहे थे पर वे यह लाज के मारे लेने पर सम्मत नहीं होते थे। इतने में चण्डचण्ड नामक एक जुआरी बोला—"भाई धन को

(१) और दोषाकर शब्दों का श्लेष है।

मन में बड़ी ग्लानि उत्पन्न हुई, सो मैं यहां चाकर घोर तप करने लगा। तब स्वप्न में देवी गङ्गाजी ने मुझे फल दिये चौर कहा कि पुत्र तू ये फल खाकर यहीं रह। जब लौं तेरा चभिवाञ्छित न मिले इन्हीं फलों से निर्वाह कर। इतना सुनते ही मेरी नींद टूट गयी चौर मैं जाग पड़ा, जब रात बीती तब प्रातःकाल गंगाजी में स्नान करने गया जहां भगवती जान्हवी के जल में मुझे कुछ फल मिले, उन्हें लेकर मैं अपनी कुटी में आया, जब मैंने उन्हें खाया तो अहा क्याही अमृततुल्य मीठे थे। बस ये फल मुझे प्रतिदिन मिलते हैं चौर वही खाकर मैं यहां रहता हूं।"

उस ब्राह्मण का ऐसा कथन सुन भीमभट ने शङ्खदत्त से कहा—"भाई यह ब्राह्मण गुणी है, इसको मैं इतना धन दिये देता हूं जितने से इसकी गृहस्थी भली भांति चले।" शङ्खदत्त ने जब इसका समर्थन किया, तब राजकुमार ने माता का भेजा सब धन उस द्विजन्मा को दे दिया। ठीकही है, महात्माओं के अतुल बल चौर कोष का महत्व ही क्या जो दूसरे की चार्त्ति सुन तत्क्षण उसे नष्ट न कर दे।

ब्राह्मण को कृतार्थ कर राजकुमार आगे बढ़े चौर गङ्गा में उतरकर पार जाने का ठांव देखने लगे पर ऐसा एक भी स्थल न मिला कि जहां से हलकर पार हो जावें, अन्त में असिरूपी विभूषण मस्तक पर बांध वह सुरनदी में उतर पड़े। जब दोनों जन बीच धारा में पहुँचे तो वहां के प्रखर जलवेग में शङ्खदत्त तो बह गया चौर वह लहरों से टकराते भोकराते गोते खाते पार लगे। तब वहां अपने मित्र को ढूंढ़ने लगे पर वह मिले कहां, वह तो न जानें कहां बह गया था, इस प्रकार उनके खोजते २ भगवान् सूर्य्यनारायण अस्ताचल पर जा विराजे। तब तो वह निराश हो गये कि अब शङ्खदत्त नहीं मिलने का; सो अति दुःखित हो वह गङ्गा में गिर प्राण त्यागने पर उतारू हुए। "हे देवि गङ्गे! मेरा जीवन सर्वस्व वह मित्र तो तुमने लेही लिया तो अब यह मेरा शून्य शरीर भी ग्रहण करो," इतना कह ज्योंही वह गङ्गाजी में कूदा चाहते थे कि इतनेही में भगवती प्रत्यक्ष हो कहने लगीं, "पुत्र! साहस न कर, तेरा वह सखा जीवित है, थोड़ेही दिनों में वह मिलेगा, ले मैं तुझे प्रतिलोम चौर अनुलोम नाम्नी विद्या देती हूं; अनुलोमा के पाठ से मनुष्य अदृश्य हो जाता है चौर प्रतिलोमा के पढ़तेही जैसा रूप चाहे बन जाय। यह विद्या सातही अक्षर की तो है पर इसका

परिभाषा ही यह है कि जो हारा गया वह हारा गया । फिर जीता हुआ धन कोई किसी को देता नहीं, तोभी जो यह मित्र होकर अपनी इच्छा से अपना जीता हुआ धन हमें दे रहे हैं तो हमलोग क्यों न ले लेवें।" उसका ऐसा वचन सुन और सब जुआरी बोले—"यदि यह ब्राह्मण सत्य (१) करके ऐसा करें तब तो हमलोग इनका अनुरोध स्वीकार कर सकते हैं अन्यथा नहीं।" उनका ऐसा वचन सुन भीमभट ने जाना कि ये सब भी वीर हैं, ऐसा स्थिर कर उन्होंने उनसे मैत्री कर ली और उन्हें वह धन दे दिया।

अब जब सब लोग मित्र हो गये, तब उन जुआरियों ने यह अनुरोध किया कि आओ चलें किसी उद्यान में आज विहार किया जाय। अस्तु राजकुमार भीमभट उनके साथ एक उद्यान में गये जहां उन जुआरियों के कुटुम्बी भी एकत्रित हुए, अनेक प्रकार के व्यञ्जन और अन्नपानादि का समाहार हुआ तब भीमभट ने भी उनके आमोद से आनन्दित हो उनके साथ विहार का आनन्द लूटा । इसके उपरान्त अक्षक्षपणक आदि ने उनसे उनका पता पूछा जिसके उत्तर में भीमभट ने अपना वंश, नाम और वृत्तान्त कह सुनाया और तत्पश्चात् उनका वृत्तान्त भी पूछा। तब अक्षक्षपणक उन्हें अपना हाल इस प्रकार सुनाने लगा—

हस्तिनापुर में शिवदत्त नामक एक ब्राह्मण था, उसका पुत्र मैं वसुदत्त नामक हूं। पिता मेरे बड़े धनी थे। बाल्य अवस्था में मैंने वेदविद्या और शास्त्रविद्या सीखीं तब पिता ने अपने बराबर कुल से मेरा विवाह करा दिया। माता मेरी बड़ी रौद्रा (२) ऐसी कोपना कि उनका मनाना दुराध्य था। उनके कारण मेरे पिता नितान्त उद्विग्न हो गये, मैं विवाहित तो होही गया था, भार्य्या मेरी मेरे पासही रहती थी इससे पिता को किसी प्रकार की चिन्ता भी न थी सो वह घर छोड़ न जानें कहां चले गये। पिता का ऐसा व्यापार देख मेरे मन में बड़ा भय उपजा सो माता जिस प्रकार प्रसन्न रहें वही बात मैं सोचने लगा । मैंने अपनी भार्य्या को जननी की सेवा शुश्रूषा में नियुक्त कर दिया; भार्य्या भी बहुत डरती रहती तथापि सदा सचेष्ट रहती कि कभी सासु जी अप्रसन्न न हो जावें । माता उससे भी असन्तुष्ट रहतीं और सदा कलह करती ही रहतीं; अब वह चुपचाप रह

र मित्र मिले । तब वह उनके साथ नाना प्रकार की कथा वार्त्ता करने लगे
र बड़े आनन्द से विहार करके सब लोगों ने वह दिन बिताया । इतने में पूर्व
शा सब प्रकार से शृङ्गार किये चन्द्र का टीका लगाये विराजमान हुई तब भीम-
ट उस उद्यान से उठकर उन छः अचलपालकादिकों के साथ उनके घर गये ।

राजकुमार भीमभट उनके साथ रहते थे कि उसी अवसर में वर्षा ऋतु आ
राजी जिसके जलवर्षण और घोर गर्जन से उनको मित्रप्राप्ति की सूचना
मी हुई । उस समय, वहां पर विपाशा नाम्नी जो नदी थी सो मानों मतवाली
। गयी क्योंकि उसका जल तो जाकर समुद्र में गिरता है परन्तु एक तो वह
ज बाढ़ से स्वयं मर्यादा तोड़ चली थी दूसरे उधर से समुद्र के ज्वार होने के
रण वह नदी उलटी बहने लगी । महावारि पुर से जब वह अपने तट के
पर बहने लगी इतने में समुद्र भाटा होने से वह निम्नगा फिर निम्नगामी
। गयी। उसी समय ऐसा हुआ कि तरङ्ग में एक महामत्स्य बह कर आया,
ड़ा भारी था इससे फिर बह न गया किन्तु नदी किनारे आ लगा । उसे देख
हां के लोग दौड़े और नाना आयुधों से उसे पीटने लगे, पीटते २ सभों ने उस
। पेट फाड़ डाला इतने में उसमें से एक जीता जागता युवा ब्राह्मण निकल पड़ा,
स अद्भुत दर्शन से सब लोग कोलाहल करने लगे । कोलाहल सुन राजकुमार
भीमभट उन मित्रों के साथ वहां गये कि देखें बात क्या है । क्या देखते हैं कि
ह जो मछली के पेट से निकला है प्रियसुहृद् शङ्खदत्त है। दौड़ कर उससे लिपट
र रोने और अश्रुधाराओं से उसे सींचने लगे, मानों मीन के उदर में रहने से
तो उसके शरीर में मलिनता लग गई थी उसे धोने लगे । शङ्खदत्त भारी विपत्ति
से उबार पाय अपने मित्र को गाढ़ आलिङ्गन कर बड़ा ही आनन्दित हुआ अब
उसके हर्ष का अन्त ही न था। तब भीमभट ने बड़े कौतुक से उसका वृत्तान्त पूछा
जिसे शङ्खदत्त इस प्रकार सुनाने लगा ।

जब मैं गङ्गा की धारा में पड़ आपकी दृष्टि से बाहर हुआ तब इस महा-
मत्स्य ने मुझे अप्रहित निगल लिया, उसके उदररूपी बड़े भवन में मैं पैठा, मुझे
वहां बहुत दिन रहना पड़ा । मैं खाता क्या, इस छूरी से उसी का मांस काट २
कर खाकर कालयापन करने लगा, आज विधाता उसे यहां लाये, और इस

तब मेरी जननी आंगन में बैठ चिल्ला २ रोने लगी। उसका रोना सुन मैं भीतर गया और बहुतेरे बन्धुबान्धव भी इकट्ठा आये और उनसे पूछने लगे कि अरे यह क्या हुआ है? तब वह डाह से इस प्रकार बोलीं,—"क्या कहूं बहू ने आकर मेरी यह दुर्दशा की है, राम जानें जो मैं कुछ बोली होऊं, बिना कारण उसने मुझे इतना कष्ट दिया है, अब मरनेहीं से मेरा निस्तार है और कोई उपाय नहीं सूझता।" इतना सुनतेही बान्धव लोग कोप से लाल हो गये, माता को लेकर वे मेरे साथ वहां गये जहां घर के भीतर वह कठपुतली बन्द थी। ताला खोल द्वार उघाड़ जो वे भीतर गये तो वहां कठपुतली के अतिरिक्त और कोई न दीख पड़ा, तब तो माता की करनी पर वे हँसने लगे, और समझ गये कि यह ऐसीही है। माता तो अपनी इस चाल से बहुत ही लज्जित हुई। अब बान्धवों को मेरी बात का विश्वास हो गया। इसके उपरान्त वे अपने २ घर चले गये।

अब मैं अपना देश त्याग वहां से निकला। इधर उधर घूमता घामता इस प्रदेश में पहुँचा और दैवात् इस द्यूतशाला के भीतर आया। यहां मैंने इन पांचों जनों को जूआ खेलते देखा, यह चण्डभुजङ्ग है, वह पांसुपट है, यह श्मशानवेताल है फिर यह कालवराटक है और यह शारिप्रस्तर है, ये पांचों शूर और तुल्य पराक्रम हैं। मैं यहां इनके साथ जूआ खेलने लगा, पण यह ठहरा कि जो हारे वह जीतनेवाले का दास होवे, ये पांचों हारकर मेरे दास हो गये परन्तु सच पूछिये तो इनके गुणों से मैंही मोहित हो इनका दास हो गया हूं। इनके साथ रहते २ मैं अपना दुःख भूल गया, जैसी अवस्था होती है वैसाही नाम भी चाहिये बस इसीसे मेरा नाम अक्षक्षपणक है। ये सब भी सत्कुलोत्पन्न हैं, पर छिपे पड़े हैं, इन्हीं के साथ मैं भी यहीं पड़ा हूं, अहोभाग्य जो आज आप मिल गये। अब तो आप हमारे प्रभु हैं यही समझकर हमने आपका यह धन स्वीकार किया क्योंकि हमलोग गुण के बड़े अनुरागी हैं।

इस प्रकार जब अक्षक्षपणक अपना वृत्तान्त सुना चुका तब दूसरे सब भी क्रमानुसार अपना २ वृत्तान्त भीमभट को सुना गये। इसके उपरान्त भीमभट के मन में यह निश्चय हो गया कि ये सब के सब वीर हैं किन्तु धन अर्जन करने के हेतु ऐसा ढोंग रचे बैठे रहते हैं, सो उन्होंने अपना भाग्य धन्य माना [illegible]

हो रहे थे कि उसी समय वहां एक कन्या स्नान करने आई, वह सुन्दरी तनलता महाराज लाटेश्वर चन्द्रादित्य की पुत्री थी जो उनकी महिषी कुवलयावली से उत्पन्न हुई थी, राजकुमारी का नाम हंसावली था। उनके समस्त अङ्ग प्रत्यङ्ग दिव्याङ्ग की भावना देते थे, केवल आंखों के भँजने से यह प्रत्यय होता था कि यह मर्त्य हैं, नहीं तो किसी प्रकार मर्त्य नहीं प्रतीत होती थीं। अङ्ग उनके फूल से जो कि करोड़ों गुणों के आकर, कमर ऐसी कि मुट्ठी में आ जाय, सच तो यह कि राजकुमारी मानो कामदेव की धनुर्लता थीं। उनकी तिरछी चितवन राजकुमार के हृदय में बाण सी विध गई, वह तत्क्षण आहत हो मोहित हो गये। यह भी क्या ऐसे वैसे थे, यह तो स्वयं कन्दर्परूप थे, जोही देखे मोह जाय, जगत् के सौन्दर्यसत्कारस्वरूप इनका सौन्दर्य निरख राजकुमारी की भी अपूर्व दशा हो गयी; नेत्रों के मार्ग से उनके हृदय में पैठकर इन्होंने उनका धैर्य हर लिया। भाव यह कि राजकुमारी सर्वतोभाव से इनपर आसक्त हो गयीं, अब यह इनका पता लगाने लगीं, गुप्तरूप से दासियां भेज उन्होंने इनका नाम धाम सब पुछवा लिया। इसके उपरान्त राजकुमारी को सब सखियां राजभवन में ले गयीं, वहां उनका शरीरमात्र गया, मन तो राजकुमार भीमभट में लगा रह गया; खान पान सब से अरुचि हो गयी, कुछ भी न सोहाये चित्त उधरही लगा रहा। इधर भीमभट भी अपने मित्रों के साथ डेरे पर गये, प्रिया के प्रेम से उनको भी कुछ सुधि न थी किसी प्रकार लुढ़कते पुढ़कते घर पर पहुँचे।

क्षणभर के उपरान्त राजकन्या हंसावली ने सन्देशा देकर एक दूती को राजकुमार भीमभट के समीप भेजा, चेरी उनके पास आकर बोली—"देव! राजकुमारी हंसावली यह प्रार्थना करती हैं, कि "कामदेवरूपी घोर ओघ में बहते हुए इस जन को देखकर बिना उद्धार किये तट पर बैठे रहना आपको उचित नहीं है।" दूती से इस प्रकार दयिता का वचनामृत सुन, मानो जीवन पाकर, अति प्रहृष्ट हो भीमभट बोले, मैं तो स्वयं ओघ में पड़ा बहा जा रहा हूं, क्या यह बात प्रिया नहीं जानतीं, परन्तु अब कुछ अवलम्बन मिल गया तो ऐसा वह कहती है मैं वैसाही करूंगा आज रात को अन्तःपुर में आकर उनका मन रख दूंगा; मुझे एक विद्या आती है उसके प्रभाव से मैं वहां पहुंच जाऊंगा और कोई भी

लोगों ने उस मत्स्य को मारा तो मैं इसके पेट से निकल पड़ा, तब सूर्यसम आप मिल पड़े आज मेरी सब दिशायें प्रकाशित हो गयीं। बस मित्र! यही मेरा वृत्तान्त है इससे अधिक मैं और कुछ नहीं जानता।

उसका ऐसा अद्भुत वृत्तान्त सुन भीमभट और वहां के सब लोग अति विस्मित हुए और कहने लगे, कहां गङ्गा में मत्स्य से निगला जाना, कहां उसका समुद्र में जाना; फिर उस मार्ग से कहां विपाशा में प्रवेश; कहां उसका मारा जाना फिर कहां उसके पेट से इसका जीता जागता निकलना। अहो! अद्भुत कर्म है, विधाता की गति जानी नहीं जाती," इस प्रकार सब लोग कह रहे थे कि भीमभट अघक्षपणकादिकों के साथ उसे अपने डेरे पर ले गये, जहां उन्होंने बड़ा उत्सव मनाया और उसको स्नान कराके उत्तम वस्त्रादि पहिनाये। उसी शरीर से मानों वह मछली के पेट से पुनः उत्पन्न हुआ हो।

जब भीमभट शङ्खदत्त के साथ उस देश में रहते थे कि उसी समय उस देश में नागराज वासुकि का उत्सव आया। राजपुत्र भी अपने मित्रों के साथ उनके दर्शन करने गये, जहां नागराज के मन्दिर में अनेक महाजन आये थे। वहां उन्होंने मन्दिर में नागराज की मूर्ति के दर्शन किये। मन्दिर का वर्णन क्या किया जाय, महा अपूर्व, पाताल में जो भोगिपुरी है उसकी छाया था जाती, मूर्ति के चहुँओर नागों के फण के आकार की मालायें पहिनायी थीं। वहां नागराज की मूर्ति को प्रणाम कर राजकुमार मन्दिर के दक्षिण ओर गये जहां उन नागराज का महान् ह्रद उन्हें दीख पड़ा जिसमें फणों के रत्न की प्रभा के तुल्य समान रक्त कमल खिले हुए थे, नील कमल भी व्याप्त थे, जिनकी नीलिमा का यह कारण प्रतीत हुआ कि नागों के विष की ज्वाला से वे नीलवर्ण हो गये हों। वायु के झकोरे से जो पादप हिलते थे उनसे फूल झरते थे जिससे यह भावना होती थी कि वे वृक्ष भी उनकी पूजा करते हैं। उस ह्रद के निरीक्षण से भीमभट के हृदय में यह भावना हुई कि इस अमुद्र ह्रद के समक्ष वह समुद्र (सागर) किस [illegible] नारायण से निकालकर ले भी है और इसकी

ऐसा विचार करते हुए ! चतुर राजकुमारी को साथ ले राजकुमार अपने डेरे पर लौट रहे।

इधर प्रातःकाल के समय कञ्चुकी प्रभृति अन्तःपुरचारी जो आये तो क्या देखते हैं कि राजकुमारी की दशा ही आज भिन्न है, उसके शरीर पर संभोग के लक्षण विद्यमान हैं; केशपाश ढीला हो गया है, दांत और नख के टटके चिह्न विराजमान हैं जिनसे यह भावना होती थी कि साक्षात् मन्मथ महाराज ने अपने बाणों के आघात किये हैं उन्हीं की असह्य वेदना से राजकुमारी अति व्याकुल है। उनकी यह दशा देख उन सभों ने महाराज को जाकर जैसी की तैसी सूचना दी। महाराज सुनतेही मन हो गये कि यह कैसा अनर्थ है। तब उन्होंने गुप्तरूप से चारों को नियुक्त किया कि इसका निरीक्षण करें कि बात क्या है।

इधर भीमभट ने अपने मित्रों के साथ सुखपूर्वक दिन बिताया और जब रात हुई तो पुनः राजकुमारी के भवन में आ पहुंचे। अपनी विद्या के प्रभाव से वह अन्तर्हित रूप से राजकन्या के समीप आ विराजे, और कोई भेदुआ उन्हें देख न सका, इस घटना से उन चारों को भी बड़ा ही आश्चर्य हुआ, वह अपने मन में यह विचार करने लगे कि हो न हो यह कोई सिद्ध हैं, ऐसा विचार उन सभों ने जाकर महाराज से कहा कि देव ! बात ऐसी २ है; बड़ा आश्चर्य होता है कि हमलोग पहरा देते रहे थे और वह महापुरुष राजकुमारी के समीप पहुंच ही गये। तब महीपति ने उनसे कहा कि निस्सन्देह यह आश्चर्य की बात है क्योंकि ऐसे गुप्तस्थान में आजाना कुछ ठठा नहीं है, यह मनुष्य का साध्य नहीं है, अच्छा तुम लोग जाकर उन्हें यहां बुला लाओ और बड़ी नम्रता से उनसे यह कहियो, "तुमने प्रगट में क्यों नहीं राजकुमारी को मुझसे मांग लिया, ऐसा रहस्य क्यों किया, तुम सा गुणवान् वर भला कहां पाइये।" राजा का ऐसा कथन सुन चारों ने जाकर द्वारपर खड़े हो भीमभट को वैसाही कह सुनाया। भीतरही से राजपुत्र भीमभट, यह जानकर कि अब तो राजा को पता लग ही गया है, तो चिन्ता क्या, इतना विचार निर्भय स्वर से बोले—"तुम लोग मेरी ओर से महाराज से जाकर कह दो कि इस समय रात अंधेरी है इससे आने का कुछ काम न होगा, [illegible] में स्वयं उपस्थित हो तत्व विषय निवेदन करूंगा।" उ

मुझको न देख सकेगा।" उसकी ऐसी उक्ति सुन चेरी ने जाकर राजकुमारी से प्रतिसन्देश कह दिया सो सुन वह अति प्रहृष्ट हो उनके सङ्गम की प्रतीक्षा करती हुई तन्मय हो रहीं।

जब सायङ्काल हुआ राजकुमार भली भांति सज धज कर राजकुमारी हंसावली से मिलने चले; भगवती गङ्गा ने जो विद्या दी थी उसका अनुलोम्य पाठ कर वह अदृश्य हो गये और जाकर अन्तःपुर में जहां कि राजकुमारी का भवन था, जिसे वह पूर्वही अलङ्कृत कर चुकी थीं, उसमें पैठे, जहां कि अगुरु की गन्धि समस्त भवन को वासित कर रही थी, जहां रति को भी आनन्द का अनुभव होता है, जहां पांच प्रकार के पुष्प अपनी २ निराली छटा दिखा रहे थे ऐसे कामदेव के उद्यान सदृश उस भवन में उन्होंने अपनी प्रिया को देखा जो दिव्य सौरभ से सुगन्धमय हो रही थीं, वह गाङ्गविद्यावली की कली के समान उन्हें देख पड़ीं। तब वह उस विद्या का प्रातिलोम्य पाठ कर प्रत्यक्ष हुए, उनके निरीक्षण से राजकुमारी आनन्द से पुलकित हो गयीं; उनके अङ्ग अङ्ग कुछ कम्पित हो गये और आभरण सब झनझनाने लगे, जिसमें यह भावना हुई मानो राजकुमारी अपने प्राणप्यारे को देखकर नाचने लगी हैं। यद्यपि उन्होंने अपने प्यारे से कुछ कहा नहीं न उठकर उन्हें आलिङ्गन ही किया प्रत्युत कन्यका भाव की लज्जा के कारण वह नीचे सिर कर बैठ रहीं मानो अपने हृदय से पूछ रही हैं कि अहो अब क्या करना उचित है? अब तुम क्या चाहते हो? राजसुता की यह दशा देख भीमभट बोले, "मुग्धे! तुम्हारे चित्त का व्यापार तो प्रकाशित होही गया है अब उसमें कौन सा तत्व है जो लज्जा छिपा रही है; ये तुम्हारे अङ्ग क्यों कांप रहे हैं, तुम्हारे वस्त्र क्यों हिल रहे हैं, सुनो अब छिपने छिपाने से काम न चलेगा।" इत्यादि २ नाना प्रकार के वाक्यों से राजकुमार ने हंसावली की लाज छुड़ा दी, वह सुमुखी उनकी ओर अपना चन्द्रवदन उठा मुस्कुराई, बस अब क्या था राजकुमार भीमभट ने गान्धर्व विधि से उनका पाणिग्रहण कर लिया। दोनों पतिपत्नी रात भर आनन्दसागर में मग्न रहे, इसके उपरान्त जब रात्रि के प्रयाण का समय आया तब प्राणप्यारे ने अपनी प्रियतमा से कहा कि प्रिये! फिर रात्रि के समय इसी प्रकार आऊंगा अब जाने की आज्ञा दो।

न भी न हैरे, यद्यपि मैं महाराजाधीश हूं तथापि अपना मत नहीं छोड़ रहा, उनके योग्य सेवो हूं . भी न इस राजासन मे पृथक् हो जा दमों मे गिरा है।" दूत ने आकर वह पत्र राजा समरभट को दिया और कहा कि, "महा ! मैं माटेश्वर महाराज भीमभट का दूत हूं उन्होंने यह पत्र आपके पास भेजा है" महाराज भीमभट का नामाङ्कित वह पत्र खोलकर पढ़ते ही राजा समर- की आंखें लाल२ हो आयीं, और भौंहें चढ़ाकर बोले,—"जिसको अयोग्य पिता ने देश से निकाल दिया उस दुर्विनीत की ऐसी मिथ्या अभिमानता नहीं सोहती। सियार भी अपनी मांद पर बैठकर सिंह के समान अपने को स- झता है पर जब सिंह का दर्शन हो तब न उसे विदित होवे कि सिंह क्या है।" इस प्रकार गर्व से महाराज समरभट बोले और यही सन्देशा लिखवा- अपने दूत के हाथ उन्होंने भी भीमभट के समीप भेज दिया।

प्रतिदूत धन्य२ माटेश्वर की सभा में पहुंचा और बड़ी नम्रता से प्रणाम उसने समरभट का पत्र उनके समक्ष रख दिया, भीमभट वह पत्र पढ़कर ठहाकर हंसे और दायाद के उस प्रतिदूत से कहने लगे—"रे दूत! जा उस कीमुत से कह देना कि वह बात भूल गयी घोड़ा लेते समय जब शंखदत्त की में आ गया था, अरे वह तो तुझे मारही डालता पर बालक और पिता का इला समझ मैंने तुझे छोड़ा दिया। अब मैं तेरे अपराध न क्षमा करूंगा, नि- जान कि अब मैं तेरे वत्सल पिता के समीप तुझे भेजकर ही छोडूंगा। अब सजग रह और थोड़े ही दिनों में मुझे वहां आया जान।" इतना कह उन्होंने तदूत को विदा किया और इधर प्रयाण का उपक्रम भी कर दिया।

जब उदयोज्वल महाराज राजेन्द्र भीमभट अद्रि समान गजेन्द्र पर आरूढ़ हुए उनके सैन्य भी समुद्र के समान क्षुभित हो गर्जन करते उठ खड़े हुए। रों ओर से असंख्य सामन्त राजपूतगण अस्त्रशस्त्र से सुसज्जित हो अपनी अपनी रा ले आ मिले। हाथी घोड़े तथा पदातियों के भार से पृथ्वी दहल उठी और पने लगी मानो इस डर से व्यस्त हो रो रही है कि कहीं मैं फट न जाऊं। इस कार अपनी सेना लिये महाराज भीमभट राढ़ा की सीमा पर आ विराजे, उनके ना से जो धूलि उठी उससे सूर्य ढँक गये और आकाश धूसरित हो गया।

न्होंने जाकर महाराज से प्रतिसन्देश कह सुनाया सो सुन महीपति चुप हो रहे। प्रातःकाल होने पर राजकुमार भीमभट अपने मित्रों के पास चले गये।

अब राजकुमार भीमभट भली भांति सज धज कर अपने मित्रों के साथ महाराज चन्द्रादित्य की सभा की ओर चले, ज्योंही राजसभा में पहुंचे त्योंही उनके तेज से राजसभा एकाएक चमक उठी, उनका सहज धैर्य और अपूर्व सौन्दर्य देख महाराज चन्द्रादित्य चमत्कृत हो गये; उन्होंने उनका यथोचित सम्मान कर उत्तम आसन पर बैठाया। जब भीमभट बैठ गये तब उनका मित्र शंखदत्त राजा से यह कहकर बोला, "राजन्! राढ़ापति राजा उग्रभट के यह पुत्र भीमभट हैं, इनकी अतर्क्य विद्या के माहात्म्य से इनका पराक्रम अपरिमेय है सो यह आपकी कन्या के हेतु यहां आये हैं।" इतना सुनतेही राजा को रात की बात स्मरण आगई सो वह बोले,—"अहोभाग्य! मैं परम धन्य हूं", इतना कह वह विवाह करने पर सम्मत हो गये।

विवाह के सब उपक्रम होने लगे, मङ्गल बाजे बजने लगे, नगर में चहुंओर आनन्द छा गया। शुभ मुहूर्त्त में राजा चन्द्रादित्य ने अपनी कन्या हंसावली का दान राजकुमार भीमभट के हाथ में कर दिया; कन्यादानोत्तर महीपति ने यौतुक में बहुत से द्रव्य रत्नादि उन्हें दिये; हाथी, घोड़े, गांव तो अनगिनतिन दिये। इतना विभव पाय राजकुमार भीमभट हंसावली तथा लक्ष्मी के साथ आनन्दपूर्वक रहने लगे। कुछ दिनों के उपरान्त उनके ससुर महाराज चन्द्रादित्य जब हद्ध हुए और कोई पुत्र तो उनके था ही नहीं तो लाटराज्य भीमभट को सौंप आप तपस्या करने के लिये वनमें चले गये। भीमभट राज्य पाय अति कृतकृत्य हुए

इत्यादि अपने साथी मित्रों के साथ धर्मपूर्वक शासन

महाराज समरभट को यह सूचना मिली कि भीमभट सीमा पर आ गये, यह कब ऐसा धर्षण सह सकें सो झटपट अपनी सेना सजाय युद्ध के लिये गढ़ से निकले। पूर्व पश्चिम सागर के समान दोनों सेनायें भिड़ गयीं और शूरों का महा युद्धरूपी प्रलय आरम्भ हुआ। दोनों दलों में शङ्खध्वनि होने लगी, अस्त्रशस्त्रों के संघर्षण से आग की चिनगारियां निकलने लगीं जिनसे आकाश व्याप्त हो गया, ऐसी भावना होती थी मानो क्रुद्ध हो कृतान्त ने जो अपने दांत पीसे सो उनसे अग्नि निकली। पैने फणवाले बाण कैसे छूटते और शोभित होते थे मानो वीरों की प्रतीक्षा में खड़ी हुई अप्सराओं की आंखों की पुतलियां हों। खटाखट वीर कटने लगे, हाथी घोड़े और रथों से ऐसी धूलि उड़ी कि सूर्य्य का दर्शन अप्राप्य हो गया; सैन्यों में महा भयङ्कर कोलाहल मच गया, कोई किसी का कुछ सुने हो नहीं मारो २ काटो २ भागने न पावे, यह मारा वह गिरा, हाय २ ओः आंह आं इत्यादि नाना प्रकार के शब्द गगनमण्डल में गूंज उठे। अब कबन्ध उठे उनके नृत्य से रणभूमि की एक अद्भुत शोभा हो गयी। इतने में रक्त की नदी बह चली कहीं धड़ बहे चले जा रहे हैं, कहीं मुण्ड की माला धारा में प्रवाहित है, वह नदी कालरात्रि की भांति प्रतीत होने लगी कि जिसमें जीवधारियों का अवश्य मरण होने लगता है।

मान ही प्रचण्डशक्ति भी अपने प्रभु को देखकर उनके चरणों पर गिर पड़ा। अब दोनों जन चिरकाल के वियोगजन्य दुःख के अनन्तर जो मिले तो दोनों जनों की आंखों से अश्रु की धारा बह चली और वे रोने लगे, तब भीमभट गन्धर्व ने इन दोनों को बहुत कुछ समझाया बुझाया और शान्ति दिलाई। इसके उपरान्त मृगाङ्कदत्त ने प्रणाम कर उक्त गन्धर्व से कहा, "भद्र ! जो हमारे यह मित्र हम-लोगों को पुनः मिल गये और कि इन्होंने अपनी दृष्टि पाई यह तुम्हारा ही मा-हात्म्य है, तुमको नमस्कार है।" यह सुन भीमभट गन्धर्व भी राजपुत्र से कहने लगे "हे कल्याण! थोड़ेही दिनों में तुम्हारे और सब भी सचिव मिले जाते हैं तुम धीरज धरो, तुम शशाङ्कवती भार्या को भी प्राप्त करोगे इतनाही नहीं वरन् पृथ्वी पर तुम्हारा साम्राज्य भी होगा। फिर मैं तुमसे एक प्रतिज्ञा करता हूं कि जब तुम मुझे स्मरण करोगे तब मैं तुम्हारे पास आ विराजूंगा और तुम्हारा कार्य करूँगा।"

छन्द।

इहि भांति शापविमुक्त ह्वै, कल्याण लहि सन्तुष्ट भो।
सखिभाव प्रगटि सुराजपुत्रहिँ बात ऐसी कह्यउ सो॥
तेहि छन सकल दिसि निज सुभूषण छगित परिपूरित कियो।
गन्धर्व चढ़ि आकाश गवनत भयो अति प्रमुदित हियो॥

सोरठा।

पाइ शुमंत्रि प्रचण्ड-शक्ति अपर सचिवन सहित॥
लह्यो प्रमोद अखण्ड, राजसुवन जु मृगाङ्कदत्त॥ १॥

दोहा।

तहँ उत्सव मनवत भयो, तेहि दिन राजकुमार॥
सब के मन महँ व्यापि रह, मोदप्रमोद अपार॥ १॥

में महादेवजी ने जो काम बताय दिया था वही पाक काल आ पहुँचा । जब मुनि द्वार पर आये तब द्वारपालों ने जाकर महाराज भीमभट को उनका आना निवेदन किया पर महाराज तो रागमद तथा ऐश्वर्य के दर्प से अन्धे हो रहे थे वह कब सुनने के । तब तो मुनि को बड़ा कोप हुआ, उन्होंने झट वाक्यम का प्रहार किया "रे मदान्ध, तू राग में ऐसा मत्त हो सुनो बात अनसुनी कर रहा है इस से जा तू बनैला हस्ती हो जायगा ।" ऐसा शाप सुनते ही राजा का मद उतर गया, अब तो वह भय के मारे थर २ कांपने लगे, झट रनिवास से निकले और मुनि के चरण पकड़ बड़ी चिरौरी और विनती करने लगे । तब मुनि का कोप शान्त हुआ, वह कहने लगे, "राजन् ! हाथी तो तुम होओगे ही, यह तो अन्यथा होही नहीं सकता, किन्तु एक बात है कि मैं इसका परिहार बताये देता हूं, जब कि राजकुमार मृगाङ्कदत्त का मन्त्री प्रचण्डशक्ति नागशाप के वश से, अपने स्वामी से पृथक् हो जाने से अति विकल होकर इधर उधर भटकते २ अन्धा हो पड़ रहेगा तब तुम उस अतिथि की सेवा शुश्रूषा कर उसे शान्ति प्रदान करोगे; और उसे पश्चात् अपना वृत्तान्त सुनाओगे तब इस शाप से तुम्हारा छुटकारा होगा; तब तुम प्रथम महादेवजी के बतलाये गन्धर्वत्व को प्राप्त हो जाओगे और तब तु म्हारा वह अतिथि भी चक्षुष्मान् हो जावेगा ।" इतना कह उत्तङ्क मुनि जहां से आये थे तहां चले गये । इसके उपरान्त महाराजाधिराज भीमभट राज्य से च्युत हो हाथी हो गये ।

इतनी कथा सुनाय वह हाथी फिर बोला कि सखे ! मैं वही भीमभट हूं, अब मुनीन्द्र के शाप से गज होकर अपने किये का फल भोग रहा हूं और तुम भी वही प्रचण्डशक्ति हो । अब मैं जानता हूं कि मेरे शाप का अन्त आ पहुँचा। इतना कहतेही भीमभट का गजेन्द्रत्व छूट गया और वह तत्क्षण दिव्य विभव सम्पन्न गन्धर्व हो गये । उसी समय प्रचण्डशक्ति के नेत्र खुल गये और वह उस गन्धर्व को देखने लगा ।

यह उन दोनों का वार्त्तालाप राजकुमार मृगाङ्कदत्त लतामण्डप के भीतर से सुन रहे थे और इनका हाल भी देख रहे थे, सो उन्होंने सुअवसर जान दौड़कर अपने मन्त्री प्रचण्डशक्ति को कण्ठ से लगा लिया, पश्चात् सुधावृष्टि से सिक्त के

बड़ा भयङ्कर सर्प रहता है, उसने मुझे डँस लिया है अब उससे मुझे विषम
पीड़ा हो रही है सो मैं इस बावड़ी में डूब मरने पर उतारू हूं।" ब्राह्मण की
की करुणवाणी सुन मुझे बड़ी दया आयी सो मैंने उसे मरने से बरजा और
पविद्या से उसका विष उतार दिया। तब तो वह ब्राह्मण बड़ा प्रसन्न हुआ और
रा हवाल पूछ बड़े आदर से मुझसे इस प्रकार कहने लगा—"हे वीर! तुमने
रे प्राण बचाये हैं सो मैं तुमको वेताल के सिद्ध करने का मन्त्र बतलाता हूं, यह
रे पिता ने मुझको दिया है सो तुमको देता हूं इसे ग्रहण करो। तुम सरीखे
निशालियों के बड़े काम का यह मन्त्र है, मेरे से डरपोक ने इससे क्या लाभ
ठावेंगे।" उस द्विजोत्तम की बात सुन मैंने उससे कहा, "महाराज! मैं तो
पति अपने स्वामी मृगाङ्कदत्त से अलग हूं सो वेताल मेरे किस काम के?" मेरा
ऐसा वाक्य सुन वह ब्राह्मण हँसकर फिर बोला कि भाई तुम क्या यह नहीं जा-
नते हो कि वेताल से सब अभीष्ट सिद्ध हो जाता है। और कहां लों कहूं क्या
तुम नहीं जानते कि राजा त्रिविक्रमसेन ने वेताल ही के प्रसाद से विद्याधर का
ऐश्वर्य प्राप्त किया। अच्छा सुनो मैं तुमको उनकी कथा सुनाता हूं।"

गोदावरी नदी के किनारे प्रतिष्ठा नामक देश है, तहां पूर्वकाल में विक्रमसेन
के पुत्र शक्र के समान पराक्रमी त्रिविक्रमसेन नामक राजा होते भये, राजा त्रि-
विक्रमसेन की कीर्ति दिग्दिगन्त में व्याप्त थी। राजा जब कि सभा में बैठे रहते
उस समय प्रतिदिन क्षान्तिशील नामक एक भिक्षुक आता और बिना कुछ कहे
सुने राजा को एक फल देकर चला जाता राजा भी वह फल लेकर समीपवर्ती
कोषाध्यक्ष के हाथ पर रख दिया करते। इस प्रकार होते २ दश वर्ष बीत गये;
एक दिन की बात है कि राजा को फल देकर जब भिक्षुक सभा से चला गया
था कि दैवात् रखवालों के हाथ से छूटकर एक क्रीड़ामर्कटपोत (१) वहां आया
सो राजा ने वह फल उस वानर को दे दिया और वह फल तोड़कर खाने लगा;
ज्योंही कि फल फूटा उसमेंसे एक बहुमूल्य रत्न टपक पड़ा। यह देख राजा ने
वह रत्न ले लिया और उस भाण्डागारिक (२) से पूछा कि भिक्षुक के लाये फल
जो मैं तुमको प्रतिदिन देता गया उन्हें तुम कहां रखते हो? राजा का ऐसा क-

(१) पालतू बन्दर का बच्चा। (२) कोषाध्यक्ष, भण्डारी।

आठवां तरङ्ग।

(वैताल पचीसी)

दोहा।

विघ्नराज जय नाहि की, नृत्यत शुण्डाघात।
पुष्पवृष्टि सम गगनते तारावलि की पात ॥

अब राजकुमार मृगाङ्कदत्त रात्रि बिताकर प्रातःकाल होने पर प्रचण्डशक्ति प्रमुख अपने मन्त्रियों के साथ उस जङ्गल से निकलकर अपने अवशिष्ट मन्त्रियों को ढूंढ़ते हुए शशाङ्कवती के निमित्त उज्जयिनी की ओर चले। जाते २ मार्ग में क्या देखते हैं कि मन्त्री विक्रमकेसरी को एक महा विकराल पुरुष आकाश में ढोये (उठाये) लिये जा रहा है, वह उसे अपने अन्य मन्त्रियों को बड़े आश्चर्य से दिखाने लगे तो इतने में वह मन्त्री स्वयं गगन से उतरा, और उस पुरुष के कन्धे से उतरकर आंखों में आंसू भरकर मृगाङ्कदत्त के चरणों पर गिर पड़ा, मृगाङ्कदत्त ने उसे उठाकर गले लगा लिया। इसी प्रकार सब मन्त्रियों ने क्रमानुसार उसे आलिङ्गन किया। इसके उपरान्त विक्रमकेसरी ने उस पुरुष से कहा "अच्छा इस समय तुम जाओ, जब मैं स्मरण करूँगा तब आना।" इतना कह उसने उस पुरुष को विदा किया। इसके अनन्तर मृगाङ्कदत्त ने उससे पूछा कि कहो मित्र तुम्हारा वृत्तान्त क्या है? तब वह बैठकर अपना इतिवृत्त सुनाने लगा।

विक्रमकेसरी बोला,—

उस समय नाग के शाप से जब कि मैं आप लोगों से पृथक् हुआ तब तो बहुत दिन लों भटकता फिरता रहा; जब कोई भो न मिला तब मैंने अपने मन में यह विचार किया कि अच्छा चलो उज्जयिनी चलूं अकस्मात् सब लोगों को वहीं आना है तो वे सब भो वहीं आवेंगे हो, इतना विचार मैं उज्जयिनी की ओर चला। चलते २ मैं उसके निकट पहुँचा, तहां ब्रह्मस्थल नामक एक गांव मिला सो मैं बावड़ी किनारे एक वृक्ष के नीचे बैठकर विश्राम करने लगा। तहां सांप एक [illegible] वृद्ध ब्राह्मण आया और मुझसे कहने लगा, "पुत्र! [illegible] सी तुम्हारी भी गति होगी [illegible]

दूसरा अति गम्भीर और भीषण रूप हो; यह घोर सियारिनें फेंकर रही हैं। ऐसे महाभयङ्कर मसान में पहुंचकर राजा उस भिक्षु को ढूंढ़ने लगे, अन्त में बटहक्ष के नीचे वह श्रमण मिला, उस समय वह मण्डल बना रहा था। राजा उसके समीप चले गये और बोले—"कहो, भिक्षु महाराज! मैं तो आ गया, अब जो आज्ञा हो सो करूं।" राजा की ऐसी उक्ति सुन भिक्षु अति प्रमुदित हुआ और बोला—"राजन्! जो आपने इतनी कृपा की तो अब आप मेरा इतना कार्य्य करिये, यहां से अकेले सीधे दक्षिण की ओर चले जाइये, बहुत दूर पर एक अशोक का पेड़ मिलेगा, उस पर एक शव लटक रहा है सो आप उसे उतार लावें बस यही मेरी सहायता, हे वीर, आप करें।"

वीर शिरोमणि राजा त्रिविक्रमसेन इतना सुनते ही वहां से दक्षिण ओर चले। अंधेरी रात में मार्ग क्योंकर जान पड़े इस हेतु चिता की एक जलती लुआठी ले ली थी। चलते २ वह किसी प्रकार उस शिंशपा वृक्ष के नीचे पहुँचे जहां वह शव लटक रहा था। वहां पहुंचकर क्या देखते हैं कि चिता के धूएँ से वह वृक्ष झुलस गया है और उसमें से कच्चे मांस की दुर्गन्धि आ रही है, उसकी पींड़ल पर एक शव लटक रहा है मानो भूत के कन्धे पर लोथ। वृक्ष पर चढ़ जाकर उन्होंने रस्सी काट शव को नीचे धरती पर गिरा दिया, गिरतेही वह अकस्मात् चिल्लाया जैसे उसे कुछ व्यथा हुई हो। तब तो राजा के हृदय में बड़ी करुणा हुई, वह समझते थे कि यह जीता है और गिरने से अति पीड़ित हो चिल्लाया है, सो वह वृक्ष से उतरकर उसका शरीर सुहराने लगे। इतने में वह मृतक अट्टहास कर हँसा, तब तो राजा समझ गये कि इसमें बेताल का आवेश है, सो उससे निःशङ्क कहने लगे—"क्यों हँसते हो आओ चलें न।" इतना उनका कहना कि बेतालाविष्ट शव लोप हो गया, देखते हैं तो वह फिर उसी प्रकार जाकर लटक रहा है। तब उन्होंने उस वृक्ष पर पुनः आरोहण कर उसे नीचे उतारा। ठीकही है वीरों का हृदय वज्र से भी कठोर होता है। अब राजा त्रिविक्रमसेन मौन धारण कर उस बेतालाधिष्ठित शव को कन्धे पर रख ले चले। तब वह बैताल जो शव में पैठा और राजा के कन्धे पर था राजा से कहने लगा—"राजन्! सुनो तुम्हें एक कथा कहता हूं, जिससे तुम्हारा मनोविनोद हो और मार्ग चलने का कष्ट न प्रतीत हो।"

यह सुनतेही वह कोशाध्यक्ष सभय बोला "महाराज ! मैं तो बिना केवाड़ खोले मोखेही में से उन्हें कोशागार में फेंक दिया करता हूं आज्ञा हो तो केवाड़ खोल कर देखूं।" महीपति ने कहा "जाओ देखो" प्रभु की ऐसी आज्ञा पाय कोशाध्यक्ष कोशागार में गया और क्षणभर में ही वहां से लौट आकर नरेश से इस प्रकार कहने लगा—"प्रभो ! फल तो सब सड़ गल गये किन्तु चमचमाते रत्नों की ढेरी लगी है।" कोशाध्यक्ष के ऐसे वचन से राजा अति सन्तुष्ट हुए, उन्होंने वह रत्नराशि उस कोशाध्यक्ष को दे दी।

दूसरे दिन अपने नियमानुसार जब वह भिक्षुक आया तो महीश्वर ने उससे पूछा, "भिक्षो ! इतना धन व्ययकर जो तुम प्रतिदिन मेरी सेवा करते हो इसका क्या कारण है ? जब लों कारण न बतलाओगे तुम्हारा फल अब न ग्रहण करूँगा" राजा का ऐसा वचन सुन भिक्षु उन्हें एकान्त में ले जाकर बोला "महाराज, मैं एक मन्त्र सिद्ध किया चाहता हूं उसमें एक वीर की सहायता अपेक्षित है, सो हे वीरेन्द्र ! उसी की सिद्धि में मैं आप से सहायता चाहता हूं।" राजा उसकी बात पर सम्मत हुए; तब वह श्रमण अति सन्तुष्ट हुआ और पुनः कहने लगा, "महाराज ! तो आप आगामिनी कृष्ण चतुर्दशी को रात्रि के समय मेरे पास आइयेगा; मैं श्मशान में उस वट के नीचे बैठा प्रतीक्षा करता रहूंगा, वहीं आप आवें।" "बहुत अच्छा, मैं ऐसाही करूँगा," राजा के इतना कहने पर अति प्रसन्न हो वह क्षान्तिशील श्रमण अपने घर चला गया।

जब कृष्णपक्ष की चतुर्दशी आई तब महासत्त्व महाराज विक्रमसेन को स्मरण आया कि आजही के लिये वह भिक्षु मुझसे प्रतिज्ञा करा गया था तो अब चलकर उसकी सहायता करनी चाहिये। इतना विचार रात्रि के समय नीलवस्त्र पहिन माथे पर तमाल का भूषण धारण कर हाथ में खड्ग ले अकेलेही राजधानी से निकले और निःशङ्क श्मशान की ओर चले और क्षणभर में वहां पहुंच गये, श्मशान की भयङ्करता वर्णनातीत है, अन्धकार अपना पूर्ण आधिपत्य जमाये राज्य कर रहा है, चहुंओर चितायें जल रही हैं जिनकी भभकती ज्वालाओं से भय को भी भय लगता है; असंख्य कङ्काल, कपाल, हाड़ चहुंओर बिखरे हैं; अत्यन्त हर्ष से भूत, प्रेत, बैताल इत्यादि नृत्य कर रहे हैं, और क्या मानों भैरवजी का

रहे कि भगवान् यह कौन है, मन्त्रिपुत्र भी उसकी ओर देख रहा था । इतने में उस बाला ने अपने देशादि ज्ञापनार्थ कुछ चिन्ह बतलाये कि मैं कौन हूं और कहां रहती हूं नाम क्या है इत्यादि २ जिनसे राजपुत्र पता लगा के वहां पहुंचे कि दोनों का समागम हो जावे। पहिले उसने अपनी कमलों की माला में से एक उत्पल निकाला और उसे कान पर धरा फिर वहां से उतार बहुत देर लों दन्तरचना दिखाती रही। इसके उपरान्त फिर एक कमल उठाया और उसे मस्तक पर धरा पश्चात् हृदय पर हाथ रक्खा । उसने यद्यपि इतने चिन्ह बतला दिये परन्तु राजकुमार के मन में उसका कुछ भी अर्थ बोध न हुआ, उनका मन तो तन्मय हो रहा था वह समझें विचारें क्या, किन्तु मन्त्रिपुत्र सब बड़े ध्यान से देखता रहा वह सब समझ गया । इसके उपरान्त वह कन्या अपनी सखियों के साथ निज गृह चली गयी, घर पहुंच वह पर्यङ्क पर पड़ रही, उसका शरीरमात्र पलङ्ग पर पड़ा रहा मन तो राजकुमार के संग संज्ञा के निमित्त बना रहा। उधर राजकुमार भी अपनी नगरी में पहुंचे, उनकी दशा बहुत बिगड़ गयी; जिस प्रकार विद्या के नष्ट हो जाने से विद्याधर हतप्रभ हो जाता है उसी प्रकार उस कन्या के बिना राजकुमार की चेष्टा नष्ट हो गयी।

राजकुमार वज्रमुकुट की ऐसी दुःसह अवस्था देख मन्त्रिपुत्र बुद्धिशरीर एकान्त पाकर उनके पास गया और बहुत प्रकार से शान्ति दे समझा बुझाकर उनसे कहने लगा कि मित्र! उस कुमारी के लिये इतने व्यग्र और व्याकुल क्यों हो रहे हो उसका पाना कुछ असाध्य तो है ही नहीं फिर इतनी व्यग्रता क्यों? अपने सखा का इतना सान्त्वना-वचन सुन राजकुमार धैर्य तजकर बोले "सखे! यह तुम क्या कह रहे हो भला जिसका नाम धाम वंश कुछ भी विदित नहीं उसके मिलने की क्या आशा की जाय सो तुम क्यों मुझे व्यर्थ आश्वासन दे रहे हो? उनकी ऐसी बात सुन मन्त्रिपुत्र फिर बोला "मित्र! यह तुम्हारा भ्रम है, क्या तुमने नहीं देखा कि उसने संकेत से क्या २ सूचित किया? जो उसने कान पर उत्पल रक्खा उससे यह सूचित किया कि मैं कर्णोत्पल राजा के राज्य में रहती हूं, फिर जो उसने दन्तरचना किई उससे यह बतलाया कि वहां मैं दन्तघाटक की (१) बेटी हूं; सिर पद्म लटाने से उसने अपना नाम पद्मावती सूचित

(१) दन्तघाटक = दांत बनानेवाला।

(पहिला वेताल)

पुण्यजनों से सेवित वाराणसी नाम्नी एक पावनपुरी है जहां पुरारि भगवान् शङ्कर स्वयं विराजमान रहते हैं, वह नगरी कैलाश पर्वत की स्थली के समान भासती है। प्रचुरजलपूर्ण स्वर्णदी भगवती गङ्गा उस पुरी के कण्ठहार के समान उपकण्ठ में सदा लगी हुई प्रवाहित होती हैं। उस पुरी में निज प्रतापरूपी अनल से नितरां दग्ध कर दिया शत्रुकुलकानन जिसने, ऐसे एक राजा प्रतापमुकुट नामक पूर्वकाल में हुए। उनके पुत्र वज्रमुकुट हुए, जिनके रूप के आगे कामदेव का दर्प दलन हो जाता और उनका शौर्य ऐसा कि शत्रु जिसके समक्ष ठहर ही न सकें। बुद्धिशरीर नामक महामति मन्त्रिपुत्र राजकुमार का सखा था जिसे वो अपने से अधिक मानते थे।

राजकुमार को मृगया का बड़ा व्यसन था सो वह एक वार आखेट के लिये निकले साथ में बुद्धिशरीर को भी लेते गये। इस प्रकार आखेट करते २ बहुत दूर निकल गये। सिंहों के केशरयुक्त मस्तक काटते हुए उनके शौर्य के चमत्कृत रूप हो गये, राजकुमार एक महा वन में जा पड़े जो कामदेव का आवासस्थान सा प्रतीत होता था, जहां कोयलों की कुहुक से यह भावना होती थी कि वन्दीजन यश गान कर रहे हैं, लता सहित वृक्ष जो वायु के झकोरे से लहरा रहे हैं, मानो चमर डोला रहे हैं। मन्त्रिपुत्र के साथ आगे जाकर राजकुमार ने एक सरोवर देखा जिनमें विचित्र २ कमल खिले हुए थे और जो स्वयं एक अपर सागर के समान भासता था।

[illegible] है कि [illegible] [illegible] है।" [illegible] और [illegible] कहा, 'तुम हमारी माता हो इसीसे तुमसे एक गुप्त बात कहते हैं, तुम इसका कहीं प्रकाश न करो, तुम दन्तवाटक की सुता से जाकर कह दो कि [illegible] जिस राजपुत्र को तुमने देखा था सो आये हैं और उन्होंने ही तुम्हें तुमसे [illegible] करने को भेजा है।"

दान का प्रभाव ऐसाही है, भला इससे कौन वशीभूत नहीं हो सकता, इस से देवता भी वश में हो जाते हैं तो मनुष्यों की क्या गिनती। यह मन्त्रिकुमार के इस प्रकार के दान से वह बुढ़िया अति प्रसन्न हुई और बोली "अच्छा मैं तुम्हारा काम कर देती हूं," इतना कह वह पद्मावती के पास गयी और क्षणभर में वहां से लौट आयी, पूछने पर इस प्रकार उनसे कहने लगी, "तुम दोनों का आना मैंने गुप्तरूप से उससे जाकर कहा, सुनतेही वह मुझे डांटने लगी और दोनों हाथों में कपूर मल मेरे दोनों गालों पर थपेड़े मारे; इससे मेरा मन बड़ा दुःखित हुआ, रोती २ मैं यहां चली आ रही हूं, देखो न मेरे मुख पर उसकी अङ्गुलियां उपट आयी हैं।"

इतना सुनतेही राजपुत्र के मुखड़े पर उदासी छा गयी, वह बड़ेही उद्विग्न हो गये तब मन्त्रिपुत्र उन्हें एकान्त में समझाने लगा, "सखे! तुम विषाद न करो इसे डांटकर जो उसने कपूर लगी दश अंगुलियों के चिन्ह किये हैं इनसे यह सूचित किया है कि आजकल शुक्ल पक्ष है दस रात्रि रह गयी हैं सो ये चन्द्रवती दश रात्रियां बीत जाने दो क्योंकि इनमें मिलना नहीं हो सकता।" राजकुमार को इस प्रकार समझा बुझाकर मन्त्रितनय ने प्रफुल्लित किया, फिर अपने हाथ का सोने का आभूषण ले जाकर बाजार में बेंचा और भोजन की उत्तम २ सामग्रियां लाकर उसी बुढ़िया से भोजन बनवाया और मिलजुलकर तीनों ने एक साथ भोजन किया।

इस प्रकार दश दिन बीत गये तब मन्त्रिपुत्र ने फिर उस बुढ़िया को हाल चाल लेने को [illegible]। मीठे २ उत्तमोत्तम भोजन के द्वारा वह उनके वश में होही

किया; हृदय पर हाथ रख के उसने यह सूचित किया कि तुम मेरे प्राण में बस गये हो। राजकुमार ने कहा सखे! मैंने सुना है कि कलिङ्गदेश में कर्णोत्पल नामक राजा हैं, उनके पास सबका कृपापात्र एक दन्तघाटक संग्रामवर्धन नामक है, उसके एक कन्या है जो तीनों जगत् को रत्न है जिसे वह दन्तघाटक अपने प्राणों से भी अधिक प्रिय मानता है। मंत्रीपुत्र ने उत्तर दिया देव! ये बातें तो तुम्हें विदित हो हैं फिर उसने जो जो चिन्ह करके अपने देशादि का पता बताया सो तो मैं वहीं अर्थ लगा चुका था।" मन्त्रिपुत्र की ऐसी उक्ति सुन राजपुत्र वज्रमुकुट अति प्रमुदित हुए और उसकी बुद्धि की प्रशंसा कर कहने लगे "फिर तो तुम मित्र! बुद्धि के शरीर ही ठहरे, भला तुम न अर्थ लगाओगे तो और कौ लगावेगा; धन्य तुम्हारी बुद्धि और परम धन्य तुम!"।

अस्तु, अब राजकुमार को उस कन्या के मिलने का भरोसा हो गया सो मंत्री के पुत्र से सम्मति कर फिर वह मृगया के बहाने से उसे साथ ले अपनी प्रिया के खोज में गढ़ से निकले और उसी ओर चले। आधी दूर गये होंगे कि उन दोनों ने यह सिद्धान्त किया कि अब किसी उपाय से सैनिकों को यहीं छोड़ देना चाहिये क्योंकि जब लों ये लोग संग रहेंगे हमारा उद्देश्य सिद्ध न हो सकेगा, इतना ठहराय दोनों ने अपने २ घोड़े ऐसे शीघ्र दौड़ाये कि अश्व बात की बात में वात समान उड़ गये और समस्त सैनिक पीछे छूट गये। राजकुमार और मन्त्रिकुमार घोड़े दौड़ाते २ कलिङ्ग देश में पहुंचे; अब कर्णोत्पल राजा के नगर में पहुंच के उस दन्तघाटक का पता लगाने लगे। जब उसका घर भी मिल गया तब उसी के समीप एक बुढ़िया के गृह में दोनों जने उतरे। मन्त्रिपुत्र ने घोड़ों को घास खिला जल पिला एक सुरक्षित सुगुप्त स्थान में बांध दिया।

ठहरा ही जाऊँ और तुम एकान्त उसके अधीन हो जाओ। फिर यह भी प्रार्थना करता हूँ, सखे ! कि इस पर क्रोध मत करो, यह स्त्री बड़ी चतुर प्रतीत होती है सो इसका हरण करना चाहिये, सुनो इस विषय में जैसी युक्ति मैं बताऊँ वैसा करो तब उसको लेकर हम दोनों अपने देश में चले चलें।"

उसका ऐसा कथन सुन राजपुत्र उसकी प्रशंसा करने लगे कि भाई तुम सच-मुच बुद्धिशरीर ही हो, बुद्धि का अक्षय भण्डार तुम में भरा है। राजकुमार इस प्रकार अपने मित्र की प्रशंसा कर रहे थे कि बाहर हाहाकार सुन पड़ा, "हाय ! हाय ! महा अनर्थ हुआ, राजा का बालक पुत्र मर गया," इस प्रकार का कोला-हल चारों ओर होने लगा; नगर में विषाद का बसेरा हो गया।

"किसी का दुःख किसी का आनन्द," संसार का अद्भुत ढंग है; राजा का तो पुत्र मर गया जिससे समस्त नगर व्याकुल और विपन्न हो गया किन्तु मन्त्रिपुत्र को उससे बड़ाही हर्ष हुआ, उसने इसे अपनी मनोरथसिद्धि का द्वार समझा। बुद्धिशरीर ने वज्रमुकुट से कहा "राजकुमार ! आज रात में तुम पद्मावती के घर जाओ और उसे इतनी मदिरा पिला देना कि जिससे वह अचेत हो जावे, जब वह निश्चेष्ट हो ऐसी प्रतीयमान हो कि मानो मर गयी है तब तुम एक काम करना कि त्रिशूल लालकर उसकी कटि पर दाग देना और उसके सब आभूषण लेकर उसी खिड़कीसे रस्सी पकड़ उतरकर सीधे यहां चले आना पीछे जो होगा मैं देख लूंगा।" इतना कह मन्त्रिपुत्र ने एक सूअर के बाल के समान पैने नोक का त्रिशूल बनवाकर राजपुत्र को दे दिया।

अब राजपुत्र कामी लोहे का बना वह कुटिल और कठोर कान्ता और वयस्य का चित्तस्वरूप त्रिशूल लेकर पद्मावती के गृह की ओर चले और पूर्ववत् वहां पहुंच गये। ठीकही है प्रभुओं को अपने शुद्धात्मा मन्त्रियों का वचन बिना विचारे मानना चाहिये, उसपर असमंजस करना ही कांटा ढूंधना है। अस्तु राजकुमार अपनी प्रिया के पर्यङ्क पर प्रतिष्ठित हुए, वहां उन्होंने अपने परम प्रेमी और हि-तैषी मन्त्रिपुत्र के वचनानुसार कार्य आरम्भ कर दिया; पहिले पद्मावती को बहुत सी मदिरा पिलायी और जब वह मदिरा से निश्चेष्ट हो गयी तब राजकुमार उस त्रिशूल से उसकी कटि पर चिह्न कर उसके सब गहने लेकर अपने मित्र के पास

लगाया और मुझे समझाया, वह बड़ा बुद्धिमान् है, और दिव्य ज्ञान रखता है।" इतना सुनतेही वह बड़ी चिन्तित हुई किन्तु तत्क्षण अपना छद्मत भाव दबाकर बोली "आर्य्यपुत्र! यह काम तो अनुचित हुआ, आपने पहिलेही क्यों न यह बात कही, भला वह आपके मित्र ठहरे तो मेरे भाई के तुल्य हैं यदि और नहीं तो ताम्बूलादि से तो उनका सत्कार प्रतिदिन हो जाया करता, अस्तु जो हो गया सो हो गया अब उसकी चिन्ता में लाभही क्या, आप जाइये और उनको सद्भाव भली भांति कीजिये पर चेत रखियेगा शीघ्रही लौटियेगा।" उसकी अनुमति से वज्रमुकुट रात्रि के समय उसी मार्ग से अपने मित्र के पास पहुंचे और अपनी प्रिया के यहां का समस्त वृत्तान्त सुना गये। और २ बातों के मध्य उन्होंने संज्ञान की जो बात हुई थी सो भी कह सुनाई। मन्त्रिपुत्र बोला, "मित्र! यह तो अच्छा नहीं हुआ, इस विषय का प्रगट करना तुम्हें उचित नहीं था।" इस प्रकार दोनों जन बातें कर रहे थे कि इतने में रात बीत गयी।

अब दोनों मित्र आह्निक कार्य्य से निवृत्त हो बैठे वार्त्तालाप कर रहे थे कि उधर से पकान्न भरे थाल और ताम्बूल हाथ में लिये पद्मावती की सखी आ पहुंची और मन्त्रिपुत्र से कुशल पूछ उसे पक्वान्न देकर राजकुमार को उसके भक्षण से मना करने के हेतु युक्तिपूर्वक इस प्रकार कहने लगी, "राजकुमार! चलिये हमारी स्वामिनी भोजन के लिये आपके आगमन की प्रतीक्षा कर रही है," इतना कह वह चटपट वहां से चली गयी।

उस सखी के चले जाने पर मन्त्रिपुत्र ने राजकुमार से कहा, "देव! देखो अब तुम्हें एक कौतुक दिखाता हूं," इतना कह उसने उस पक्वान्न में से थोड़ा सा निकालकर एक कुत्ते को दे दिया, वह खातेही मर गया। यह देख राजकुमार को बड़ा आश्चर्य्य हुआ, उन्होंने मन्त्रिपुत्र से पूछा कि कहो भाई यह क्या व्यापार है? उसने उत्तर दिया "मैंने जो पद्मावती के सब संकेतों का अर्थ लगाय लिया इससे वह मुझको परम धूर्त्त समझती है और सोचती है कि जब लों यह रहेगा राजकुमार मुझ में एकाग्र होकर न रहेंगे, और उसे इस बात का भी खटका है कि राजकुमार इसके वश में हैं तो कहीं ऐसा न हो कि मुझे छोड़ चले जावें; इसी से मित्र! उसने मेरे मारने के लिये विषमय अन्न भेजा है कि मैं खातेही

देश सदा वसन्त में इधर उधर भ्रमण करता फिरता हूं, सो आज रात घूमता घामता मैं यहां श्मशान में पहुंचा और यहीं टिक रहा। इसके उपरान्त मैं क्या देखता हूं कि चहुंओर से योगिनीगण उमड़ आया, उनके बीच में एक योगिनी ने राजपुत्र को लाकर उनका हृदय विदीर्ण कर हृत्कमल भैरवजी को चढ़ा दिया। मैं उस समय बैठा जप करता था और वह योगिनी मद से छकी थी सो मेरी माला छीनने चली उस काल में उसके विकराल मुख की आकृति मुझसे वर्णन नहीं की जाती। जब मैंने देखा कि यह और किसी उपाय से निवृत्त न होगी तब मन्त्र से चटपट त्रिशूल उत्तप्त कर उसके कटिदेश पर चिह्न कर दिया और उसके कण्ठ से यह मोती की माला निकाल ली। फिर मैंने सोचा कि यह माला तपस्वियों के किस काम की, इसीसे बिक्री के लिये भेज दी।

उस तपस्वी का ऐसा कथन सुन नगराध्यक्ष ने राजा से ज्यों का त्यों कह सुनाया, सुनकर राजा ने भी यह समझा कि यह मोतीमाला तो दन्तघाटक की कन्या ही की है सो उन्होंने एक दूती भेजी कि जाकर देख आवे कि उसकी कटि पर त्रिशूल का चिह्न है या नहीं। दासी विश्वस्त थी, उसने आकर कहा कि महाराज बात सत्य है सचमुच उसकी कटि पर त्रिशूल का चिह्न विद्यमान है। बस सुनतेही राजा को निश्चय हो गया कि इसी दुष्टा ने मेरे बच्चे के प्राण लिये हैं। सो वह (मन्त्रिपुत्र) तपस्वी के निकट स्वयं गये और हाथ जोड़ बड़ी विनती कर बोले—"महाराज कहिये इस दुष्टा को क्या दण्ड दिया जाय?" (मन्त्रिपुत्र) तपस्वी ने कहा "राजन्! इसे नगर से निकाल दीजिये।" बस तत्क्षण पद्मावती नगर से निकलवा दी गयी और उसके माता पिता रोते और बिलबिलाते रह गये कुछ करते धरते न बना।

जब पद्मावती नगर से निकलवाकर जंगल में छोड़वा दी गयी तब वह बड़ी ही उद्विग्न हुई किन्तु यह सोचकर कि मन्त्रिपुत्र ने मेरी प्राप्ति का यह उपाय रचा है, उसने अपना शरीर त्याग न किया।

सायङ्काल होने पर मन्त्रिपुत्र और राजकुमार तापस वेश त्याग दो अश्व पर चढ़ वहीं आ पहुँचे जहां पद्मावती शोकमग्न बैठी थी। बहुत कुछ समझा बुझा घोड़े पर चढ़ा वे उसे अपने देश को ले गये। अब राजपुत्र वज्रमुकुट सब शोक सन्ताप त्याग अपनी प्रिया पद्मावती के सङ्ग आनन्दपूर्वक रहने लगे।

लौट आये । तब राजपुत्र ने अपनी प्रिया के आभरण मन्त्रिपुत्र को दे वहां जो कुछ कार्य्य किया था सो सब कह सुनाया जिसे सुन मन्त्रिपुत्र ने अपना मनोरथ सफल समझा।

प्रातःकाल होने पर मन्त्रिपुत्र राजकुमार को लेकर श्मशान की ओर चला, वहां पहुंच उसने अपना वेष तो तपस्वी का सा रचा और राजकुमार को चेला बनाया फिर उनसे कहा कि इन आभरणों में से यह मोती की माला लेकर हाट में जाओ और कहना कि मैं इसे बेंचा चाहता हूं; जो कोई मूल्य पूछे तो इतना बतला देना कि कोई लेही न सके, केवल इतनाही उद्देश्य है कि तुम्हारे हाथ में वह लोग वह माला देख लेवें । और जब पुलिस के सिपाही पकड़ें तो निडर होकर कह देना कि मेरे गुरुजी महाराज ने मुझे यह माला बेंचने के लिये दी है बस इसके अतिरिक्त तुम और कुछ न कहना।

अच्छा अब राजकुमार मन्त्रिपुत्र की आज्ञा से माला हाथ में लिये हाट की ओर चले और सबको दिखाकर उसके बेंचने की बात कहने लगे । माला तो किसी ने न ली प्रत्युत पुलिस के सिपाहियों ने उन्हें पकड़ लिया, क्योंकि दन्तघा टककी कन्या के आभूषणों के चोरी चले जाने की सूचना आने में हो चुकी थी सो सिपाही लोग चोर की खोज में घूमही रहे थे। अस्तु सब उन्हें पकड़ नगराध्यक्ष के पास ले गये। नगराध्यक्ष ने उन्हें तापस के भेष में निरख उनसे पूछा, "भगवन्! यह मोतीमाला आपने कहां से चुराई, आज रात में क्या आपही ने दन्तघाटक की कन्या के आभूषण चुराये हैं?" तब तापसाकृति राजपुत्र ने उत्तर दिया,— "महाशय! मैं और कुछ तो जानता नहीं मेरे गुरुजी ने मुझे यह माला दी है और कहा है कि जाकर बेंच लाओ सो मैं बेंचने आया हूं, फिर जो कुछ सो तो आप जानतेही हैं, आपको विश्वास न हो तो चलकर मेरे गुरुजी महाराज से पूछ लें, वही इसका पूरा उत्तर दे सकेंगे।" तब नगराध्यक्ष उस तापस के पास गये और प्रणाम कर पूछने लगे "हे भगवन्! आपके चेले के हाथ में यह मोतीमाला कहां से आयी?" तब उस धूर्त्त तपस्वी ने उनसे कहा "महाराज! यह एक बड़ी गुप्त बात है, एकान्त में आपसे कह सकता [illegible] सब लोग तुरत हटा दिये गये, तब मन्त्रिपुत्र ने [illegible] से कहा, "महाराज! बात ऐसी है कि [illegible]

नवां तरङ्ग।

(दूसरा वैताल)

अब राजा त्रिविक्रमसेन उस बैताल को लाने के लिये फिर उस अशोक वृक्ष के समीप गये, वहां पहुँचकर चिता के प्रकाश से क्या देखते हैं कि वह शव धरती पर पड़ा कुछ भुनभुना रहा है; बस मृत देह में स्थित उस वैताल को कन्धे पर उठाकर राजा चुपचाप ले चले, और अबकी बार कुछ शीघ्र २ चलते थे कि झटपट उद्दिष्ट स्थान पर पहुँच जावें। तब कन्धे पर से वह वेताल फिर महीपति से कहने लगा—"राजन्! आप व्यर्थ क्लेश में पड़ गये हैं, यह एक बड़ा अनुचित व्यापार आपको सौंपा गया है, अच्छा सुनिये आपके चित्तविनोदार्थ एक कथा सुनाता हूं कि मार्ग आनन्द से कट जाय।"

श्री यमुनाजी के किनारे ब्राह्मणों का ब्रह्मस्थल नामक एक देश है, वहां वेद-वेदाङ्ग पारग अग्निस्वामी नामक कोई ब्राह्मण रहता था। उसके एक कन्या हुई जिसका नाम उसने मन्दारवती रक्खा। उस नवीन और अमूल्य लावण्यमयी कन्या को बना कर ब्रह्मा अपनी पूर्वकृति अर्थात् अप्सराओं की सृष्टि से बहुत लजाये।

जिस समय वह कन्या यौवनावस्था को प्राप्त हुई, उसी काल में तीन ब्राह्मण-कुमार सब गुणों के आगर कुल मर्यादा में बराबर कान्यकुब्ज देश से वहां आये। उनमेंसे प्रत्येक ने ब्राह्मण से उसकी कन्या की याचना की और कहा कि प्राण जाय तो जाय पर जीते जी किसी दूसरे से इसका विवाह न होने देंगे। इसके पिता ने उनमेंसे किसी को भी वह कन्या न दी, उसको इस बात का भय हुआ कि यदि एक के साथ इसका विवाह कर देता हूं तो दूसरे दोनों आपसमें मारे जायेंगे, इस से वह कन्या कुमारी ही रह गयी। वे तीनों ब्राह्मणकुमार चकोर की भांति उसका चन्द्रवदन निरखते वहीं रहने लगे, रात दिन उसका मुख निहारना ही मानो उनका काम हुआ।

एक समय ऐसा हुआ कि मन्दारवती अकस्मात् ज्वराक्रान्त हुई, अनेक उपाय किये गये पर कुछ उपकार न हुआ वह स्वर्ग को चली गई। इस दुर्घटना से उन

उधर पद्मावती के पिता का सन्ताप दिनोदिन असह्य होता चला उसने सोचा कि मेरी बेटी को हिंसक जन्तु खा गये होंगे—हाय ! मैं कैसा अभागा हूं। इसी शोक से वह दुखिया यमपुरी का पथिक हो इस लोक से चल बसा, उसकी भार्या भी पति के संग सती हो गयी।

इतनी कथा सुनाय वैताल ने राजा से पूछा कि कहिये तो महाराज ! इन दोनों के मरने का पातक मन्त्रिपुत्र को हुआ कि राजपुत्र को अथवा पद्मावती को हुआ ? आप बुद्धिमानों में बड़े श्रेष्ठ गिने जाते हैं इसीसे आपसे यह पूछ रहा हूं कृपा कर मेरा यह संशय दूर कीजिये। राजन् ! यदि जान बूझकर आप मुझसे ठीक ठीक न कह देंगे तो आपका सिर चूर २ हो जायगा।

वैताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा त्रिविक्रमसेन जो बड़े ज्ञाता थे शाप के भय से बोले, "योगीश्वर ! इसमें क्या सन्देह हो सकता है यह तो प्रत्यक्ष बात है; इन तीनों में से कोई भी पातको नहीं हुआ किन्तु राजा कर्णोत्पल को यह पाप लगा। इतना सुन वैताल फिर बोला कि उस राजा को कैसे पाप लगा, कारण तो वे तीनों हुए। यह तो बड़ेही आश्चर्य की बात है; भला हंस तो शालि खा जांय और दोष लगे कौवों पर ! तब राजा फिर बोले कि उन तीनों का दोष कुछ भी नहीं क्योंकि मन्त्रिपुत्र ने जो कुछ किया वह अपने स्वामी का कार्य्य किया, उसे पातक क्यों लगे। और राजपुत्र तथा पद्मावती का भी दोष नहीं, ये दोनों तो कामाग्नि से सन्तप्त हो रहे थे, अपनो आग बुझायाही चाहें; स्वार्थसाधन में तत्पर होने से ये दोनों निर्दोष ठहरे; फिर राजा कर्णोत्पल कैसे कि इसका तार न निकाल सके, धूर्तों की धूर्त्तता का कुछ भी पता उन्हें न लगा और उन्होंने बिना विचारे ऐसा न्याय कर दिया इसलिये वही दोषी ठहरे।

छन्द।

या भांति दै उत्तर उचित नृप मौन निज तोंयो जबै।
नृपशिवरान्तरगत बेताल सु तास्यँ परयन हित तबै॥
ता कन्ध तें घट उतारि दे नहिं जानियै कित चलि गयो।
निष्कम्प भूपति रह्यो, मन मई मेन पुनि ठानत भयो

अनन्ता २ वहां पहुंचा जहां श्मशान में उसकी प्रिया जलायी गयी थी। उसी समय वहां वह भी आ पहुंचा जो हड्डियां चुनकर गङ्गा में डालने गया था। तब इसने उससे तथा उस पहिले से जो कि उस कन्या के भस्म पर शयन करता था, यों कहा "यह झोंपड़ी चोपड़ी हटाओ यहां से, मैं एक ऐसा मन्त्र सीख आया हूं कि इसके प्रभाव से अपनी प्रिया को जिला उठाता हूं।" इतना उन दोनों से कह उस तापस विप्र ने हठपूर्वक झोपड़ी गिरवा दी और पोथी खोल वह मन्त्र पढ़ा, मन्त्र पढ़कर ज्योंही कि उसने धूली भस्म पर फेंकी कि झट मन्दारवती उस में से जीती उठ खड़ी हुई। जिस प्रकार अग्नि में पड़ने से काञ्चन की द्युति और बढ़ जाती है वैसेही मन्दारवती की शोभा अब एक अद्वितीय हो गयी।

एक तो वह स्वयं रतिस्वरूपा थी दूसरे अब सौन्दर्य्य में वृद्धि हो गयी तो फिर क्या पूछना है। ये तीनों ब्राह्मणकुमार उसी के हेतु इतने दिनों से लालायित थे भला अबकी क्या पूछना है सो तीनों कामबाण से विद्ध हो परस्पर कलह करने लगे। एक बोला कि यह मेरीभार्य्या है क्योंकि मैंने इसे निज मन्त्रबल से जिलाया है; दूसरे ने कहा कि मैं जो इसकी हड्डियां तीर्थ में फेंक आया उसी के प्रभाव से यह जी उठी है बस यह मेरी पत्नी है; तीसरे ने कहा कि मैंने भस्म की रक्षा कर तपस्या बल से इसे जिलाया है सो यह मेरी गृहिणी है, तुम दोनों कौन हो।

इतनी कथा सुनाय बैताल बोला कि राजन्। अब इस विवाद के निर्णय में आपही समर्थ हैं, कहिये वह किसकी भार्य्या हुई ? आप जानकर यदि इसका उत्तर न देंगे तो आपका सिर कट जायगा।

बैताल का ऐसा प्रश्न सुन राजा बोले, "सुनो, जिसने इतना क्लेश उठाय, मन्त्र-शक्ति से उसे जिला उठाया वह तो उसके पिता की नाईं ठहरा, वह पति नहीं हो सकता, और जो हड्डियां बटोर गङ्गा में फेंक आया उसने पुत्र का काम किया इससे वह पुत्र ठहरा, बस जो भस्म की शय्या पाणिग्रहण किये तपस्या में लीन था और उसकी प्रीति में फंस श्मशान में ही पड़ा रहा वही उसका पति ठहरा क्योंकि पति का जो कार्य्य गाढ़ानुरागी होना है वह उस ब्राह्मणकुमार ने सत्य कर दिखाया इससे वह मन्दारवती उसी की भार्य्या ठहरी।

तीनों ब्राह्मणकुमारों को जो दशा हुई सो वर्णनातीत है। अस्तु किसी प्रकार छाती पर पत्थर रख उन्होंने अपना शोक दबाया और बांधबूंध ले जाकर उसे श्मशान पर जलाय दिया। उनमेंसे एक तो वहीं झोपड़ी बनाय उसको राखो बिछाय रहने लगा और मांग यांचकर अपने दिन बिताता। दूसरा उसकी हड्डियां चुन गङ्गाजी में प्रवाह करने चला और तीसरा यगी हो देश २ घूमने लगा।

वह तपस्वी घूमताघामता एक दिन वक्रोलक नामक किसी गांव में पहुंचा वहां अतिथि हो किसी ब्राह्मण के घर में गया। गृहस्वामी ब्राह्मण ने उसका यथावत् आदर सत्कार किया और उसे भोजन के लिये उत्तमोत्तम व्यञ्जन दिये। जब कि वह ग्रास उठानेही को था कि वहां एक बालक रोने लगा, कितना मैं मनाया गया पर वह किसी प्रकार मानताही नहीं था, तब तो ब्राह्मणी को बड़ा क्रोध आया, उसने उसे उठाकर दहकती आग में झोंक दिया गिरतेही वह सुकुमार बच्चा जलकर भस्म हो गया। यह नृशंस व्यापार देख उस अतिथि से न रहा गया, वह रोमाञ्चित हो उठा और कहने लगा, "हा! बड़े कष्ट की बात है, मैं कहां से आज इस ब्रह्मराक्षस के घर में आ पड़ा। यह मूर्त्तिमान् पाप अब मैं न खाऊँगा।" उसका ऐसा वचन सुन वह गृहस्थ बोला, "भाई तुम यह क्या कह रहे हो, कुछ चिन्ता न करो, देखो मैं अपने पढ़े तथा सिद्ध मन्त्र की गुणमयोगी शक्ति तुम्हें दिखाता हूं।" इतना कह उसने मन्त्रों की पोथी निकाल एक मन्त्र पढ़ा, और थोड़ी सी धूलि अभिमन्त्रित कर भस्म पर फेंकी कि उस में से जीता जागता वह बालक निकल उठा। तब उस ब्राह्मण तपस्वी का सन्देह दूर हुआ और उसने भोजन किया। वह गृहस्थ भी खूंटी पर पोथी रख भोजनादि सम्पादित कर उसी के साथ सो रहा।

तुम सुग्गा बोला, "तुम यह क्या कहती हो? पुरुष दुष्ट नहीं होते प्रत्युत स्त्रियां बड़ी कठोर, दुष्टा और नृशंस होती हैं।" जब शुक ने ऐसा प्रत्युत्तर दिया तब तो दोनों में विवाद होने लगा। अन्त में उन दोनों पक्षियों ने यह विचार सिद्ध किया कि अब इसका निर्णय महाराज से कराना चाहिये क्योंकि वे न्याय चुकाने में अति प्रवीण हैं। उनमें यह पण भी ठहरा कि यदि सुग्गा हारे तो मैना का दास हो और जो मैना हारे तो सुग्गे की भार्या बने। अस्तु दोनों का विवाद राजपुत्र के समक्ष उपस्थित हुआ। वह उस समय अपने पिता के न्यायभवन में विराजमान थे सो पहिले उन्होंने सारिका से प्रश्न किया कि अच्छा तूही पहिले बता कि पुरुष कैसे कृतघ्न होते हैं? तब सारिका अपने पक्ष की पुष्टि के हेतु पुरुषों के दोष-प्रकाशनार्थ यह कथा कहने लगी। "सुनिये महाराज, मैं एक कथा कहती हूं उसीसे सिद्ध हो जायगा कि पुरुष कैसे कृतघ्न होते हैं।"

पृथ्वी पर कामन्दिका नामक जो एक महानगरी है उसमें अर्थदत्त नामक एक महाजन रहता था; उस बनिये के एक पुत्र हुआ जिसका नाम उसने धनदत्त रक्खा। जब धनदत्त युवा हुआ उस समय उसका पिता परलोक चल बसा। एक तो युवा अवस्था, दूसरे अचल धन, तीसरे सिर पर कोई नहीं इसलिये वह धनदत्त बड़ा उच्छृङ्खल हो गया। उसे जूए का व्यसन लगा, जिसमें उसे वैसेही बड़े २ धूर्त्त मिल गये जिन्होंने अल्पही काल में उसे भ्रष्ट कर डाला, सब धन उसका नष्ट हो गया, कौड़ी का तीन हो जाने पर कोई उससे बात भी न पूछे। ठीक है, दुर्जनों की संगति सब व्यसनों की जड़ है, जब दुर्जन संगतिही हुई तब मान मर्य्यादा धन सम्पत्ति कहां! महात्मा तुलसीदासजी ने यथाही ठीक कहा है कि—

"रहै न नीचमते गरुआई।"

पास में कौड़ी नहीं तो कौन बात पूछे, अब उस बनिये के लड़के की बड़ी दुर्गति हुई, लाज के मारे वह अपना मुंह भी किसी को न दिखावे इससे और भी कठिनता पड़ी सो वह अपना देश त्याग परदेश घूमने को निकला। चलते चलते चन्दनपुर नामक नगर में पहुँचा, वहां भूख से अति पीड़ित हो कुछ भोजन पाने की आशा से एक वणिक् के गृह में गया। गृहस्वामी के पूछने पर विदित हुआ कि यह भी बनिया है सो दैवयोग से उसने उसे बड़े आदर मान से ग्रहण किया

दोहा।

छूट्यो मौन महीश कर, जब किय उत्तर दान ॥
कन्धे से बैताल भो, तुरतहिँ अन्तर्धान ॥ १ ॥
भिक्षु अर्थ निर्वाह हित, नृप रहे अबहुं तनात ॥
प्राण जांय तो जांय पर, धीर न छाड़त बात ॥ २ ॥

दसवां तरङ्ग।

(तीसरा बैताल)

अब राजा त्रिविक्रमसेन फिर उस बैताल के लाने के लिये उसी अशोक वृक्ष के निकट गये, वहां पहुंच मृतदेह में स्थित उस बैताल को कन्धे पर उठाकर चुप-चाप चलते हुये। तब बैताल उनसे कहने लगा—"राजन्! बड़े आश्चर्य की बात है कि रात के समय आप आ जा रहे हैं तौभी कुछ उद्विग्न नहीं होते, अब सुनिये आपकी मनोविनोदार्थ फिर एक कथा सुनाता हूं।"

भूमण्डल में पाटलिपुत्र नामक एक प्रसिद्ध नगर है, वहां पूर्वकाल में विक्रमकेसरी नामक एक राजा हुए थे; महीपति जैसे सम्पत्तिपूर्ण थे वैसेही गुणपूर्ण भी थे, मानो विधाता ने उन्हें रत्नों और गुणों का आकर बनाया था। उनके पास विदग्धचूड़ामणि नामक सब शास्त्र में पारङ्गत एक सुग्गा था, केवल इतनाही नहीं वह शुक दिव्यज्ञानसम्पन्न भी था, किसी कारण शापवश शुकयोनि में उसका जन्म हो गया था। उसी सुग्गे के उपदेश से राजपुत्र ने मगधदेशोद्भवा समानवंशजा राजकुमारी चन्द्रप्रभा से विवाह किया। उक्त राजपुत्री के पास सब विद्याओं में कुशल सोमिका नाम्नी एक सारिका (मैना) थी। दोनों शुक और सारिका एकही पिंजड़े में रहते और अपनी विद्याओं से अपने स्वामी तथा स्वामिनी, राजा और रानी की सेवा किया करते।

एक समय की बात है कि सुग्गे के मनमें एक दूसरीही अभिलाषा उठी अतः उसने सारिका से कहा, "हे सुभगे! हमदोनों एकही साथ सोते बैठते और भोजन करते हैं सो यदि तुम मुझे भजतीं तो बड़ा काम हो जाता।" सारिका ने उत्तर दिया कि पुरुष बड़ेही दुष्ट और कृतघ्न होते हैं इससे मैं पुरुष का संसर्ग नहीं चाहती। यह

बेटी यह क्या बात है ? तब वह सती माध्वी रोती हुई इस प्रकार कहने लगी। "डाकुओं ने मार्ग में हमलोगों को लूट लिया, मुझे और बुढ़िया को झँडार में फेंककर वे दुष्ट मेरे पति को बाँध ले गये, बुढ़िया तो गिरतेही मर गयी और मैं कर्मभोग भोगने को जीती बच गयी। उसी मार्ग से एक बटोही आ रहा था, मेरा कराहना और रोना सुन वह वहाँ रुक गया, उसे दया आयी सो उस कृपालु ने मुझे उसमेंसे निकाला। अब मैं किसी प्रकार दैवसंयोग से जीती जागती यहाँ पहुँची हूँ, न जानूं उन दुष्टों ने उनको क्या गति की होगी।" उसका इस प्रकार कहना सुन माता पिता ने बहुत कुछ शान्ति दी और समझाया बुझाया; तब रत्नावली सती अपने पिता के घर में रहने लगी पर उसका चित्त सदा प्राणनाथ ही में लगा रहता था।

उधर धनदत्त अपने नगर में पहुँचा और यहाँ के गहने बेंच २ जुआ खेलने लगा। भला जुआ खेलने में धन कहाँ ठहर सकता है, अति अल्पकालही में सब बह गया, तब वह दुष्ट अपने मन में इस प्रकार की चिन्ता करने लगा—"चलो, फिर ससुराल चलूं, ससुरजी से कुछ धन फिर ऐंठ लाऊँ; उनसे कह दूंगा कि आपकी पुत्री मेरे घर में है।" इस प्रकार की भावना कर वह ससुराल को चला, चलता २ कुछ दिनों में वहाँ आ पहुँचा; वह घर से कुछ दूरही रहा कि उसकी पत्नी ने उसे देखा, देखतेही वह साध्वी दौड़ी और उस पतित के चरणों पर गिरकर बिलपने लगी। पति कैसा भी दुष्ट क्यों न हो पर साध्वी स्त्रियों के पक्ष में वह देवता सा पूज्य है, उनका मन कभी विकार ग्रहण नहीं करता। देखिये पतिव्रता के धर्म के विषय में गोस्वामी तुलसीदासजी क्या कहते हैं—

वृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना॥
ऐसेहु पतिकर किये अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना॥
एकइ धरम एक ब्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा॥
बिनु स्रम नारि परमगति लहई। पतिब्रत धरम छाड़ि छल गहई॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

[illegible]
[illegible]

और रत्नावली नाम्नी अपनी कन्या उसे व्याह दी तथा यौतुक में बहुत सा धन उसे दिया। अब धनदत्त अपने श्वसुर के घर में आनन्द से रहने लगा।

व्यसनी तो वह थाही, फिर इधर धन भी बहुत मिला कि कुछ कहा नहीं जाता, सुख पड़ने से वह दुर्गति अब भूल गयी और उसका मन कुलबुलाया; उसकी इच्छा हुई कि अब देश चलना चाहिये। उस दुष्ट ने अपने ससुर को इधर उधर की कुछ उलटी सीधी सुझा दी जिससे उसने इसे जाने की आज्ञा दे दी। अस्तु अब वह दुष्ट उस बनिये की एकमात्र सन्तान उस कन्या को, जो नखशिख पर्य्यन्त भूषणों से सुसज्जित थी, लेकर अपने नगर की ओर चला, पिता ने अपनी कन्या के प्रेमवश अपनी एक विश्वस्त बुढ़िया दासी को भी उसके संग भेज दिया। अब तीनों वहां से चले।

चलते २ जब कुछ दूर निकल गये तब एक बड़ा भयङ्कर घोर जङ्गल पड़ा, तहां उसने अपनी भार्य्या से कहा कि प्रिये! यहां चोर और डाकुओं का भय है सो अपने आभूषण उतार लो और मुझे दे दो कि मैं बांधकर अपने पास रख लूं। इतना कह उस दुष्ट धनदत्त ने अपनी पत्नी के समस्त आभरण उतरवाकर अपने पास रख लिये। अब वह पापिष्ठ इस बात की चिन्ता में लगा कि क्योंकर इ दोनों को जान मारूँ। हा! देखो द्यूत तथा वेश्यादि के व्यसनवालों का हृद कैसा दुष्ट होता है! हा! इन कृतघ्न पुरुषों का हृदय ऐसा कठोर होता है कि वज्र भी उसके समक्ष सिर नीचा कर लेता है! शोक!!

आगे चलते २ एक मँड़ार पड़ा बस उस दुष्ट ने अपनी गुणवती रत्नावली भार्य्या को उस बुढ़िया के सहित उसी मँड़ार में झोंक दिया और फेंककर अपने देश की राह पकड़ी। गिरते ही बुढ़िया तो ठांवही शान्त हो गयी किन्तु रत्नावली लता गुल्मों में अँटक रही इससे बच गयी उसकी आयु अभी कुछ बाकी थी उसी के भोग के लिये उसके प्राण न निकले। अस्तु लता गुल्मों के सहारे से किसी प्रकार कराहती २ ऊपर आयी, अङ्ग सो क्षत विक्षत और चूर २ होही गये थे प्राण मानो बच गये थे सो मुस्ता उस्ता कर जब कुछ चैतन्य हुई तब उठकर वहां से चली और जिस मार्ग से आयी थी उसी मार्ग से पूछती पाछती अपने पिता के घर पहुंची। उसको अकस्मात् आयी तथा क्षत विक्षत देख माता पिता पूछने लगे कि

थ्या भाषण का पाप अपने सिर पर ओढ़ लिया। पुनः जब उस पतित के दा
: तब देवता समझ वह दौड़कर उसके चरणों पर गिर पड़ी।

वह तो रत्नावली को मृतक समझ चुका था और बात बनाकर ससुर
तने आया था किन्तु यहां रत्नावली जीती जागती मिली इससे अपना पाप
कर वह पापी थर २ कांपने लगा। पति की ऐसी दशा देख साध्वी रत्नाव
ली—"प्राणनाथ। आप कुछ चिन्ता न करें, भय की कोई भी बात नहीं है
ऐसा २ कह रक्खा है," इतना कह वह सब कथा सुना गयी जैसी बात, डा
ओं के द्वारा भँड़ार में गिराने और पति के बांध ले जाने की झूटमूठ अपने
ता पिता से कह चुकी थी। यह सुन वह दुष्ट अति हर्षित हुआ और उसके
थ २ ससुर के घर आया। उसे देखतेही सास ससुर मारे आनन्द के फूले न स
ते, उन्होंने भाई बन्धुओं को बुलाके उस दिन बड़ा भारी उत्सव मनाया कि
डी भाग्य, डाकुओं के हाथ से यह जीता बच आया है। अब वह धनदत्त ससुर
सम्पत्ति का उपभोग करता हुआ अपनी पत्नी रत्नावली के साथ सुखपूर्वक
ने लगा।

क्रूर अपनी क्रूरता छोड़ता ही नहीं चाहे वह इन्द्रासन पर क्यों न अधिष्ठित
जाय; धनदत्त परम दुष्ट और क्रूर था। हाय! एक दिन रात्रि के समय उस
ट ने ऐसा नृशंस कार्य्य किया कि कहते नहीं बनता; ऐसे पतितों की कथा का
कथन भी पातक है पर किया क्या जाय कथा के अनुरोध से कहना ही पड़ता
। उस दुष्ट ने अङ्क में सोई हुई भार्य्या को मार डाला और उसके समस्त आभरण
लिये। इतना नृशंस कार्य्य कर वह पापी चुपचाप अपने देश को भाग गया।

इतनी कथा सुनाय सारिका बोली कि महाराज! पुरुष ऐसे नृशंस होते हैं
र उपकार के पलटे अपकार करते हैं।

सारिका की कही यह कथा सुन राजपुत्र ने शुक से कहा कि अब तुम सुनाओ
म्हारा वक्तव्य क्या है? तब सुग्गा बोला, "देव! स्त्रियों का साहस बड़ा भयङ्कर
ता है, स्त्रियां अति दुश्चरित्रा और पापिनी होती हैं, उनका कभी विश्वास नहीं
रना। इसी विषय में एक कथा आपको सुनाता हूं।"

हर्षवती नाम्नी एक नगरी है, वहां सब बनियों का मुखिया बहुधा....